समाजशास्त्र-परिचय

(भाग २)

लेखक

मदन मोहन सक्सेना

रीडर एवं अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
डी. ए-वी. कॉलेज,
कानपुर

हिन्दुस्थान बुक हाउस
पोस्ट बाक्स ४६०
हॉस्पिटल रोड, परेड
कानपुर-१

प्रकाशक
आनन्द नारायण शिवपुरी
मैनेजर
हिन्दुस्थान बुक हाउस
पो० बा० ४६०
हॉस्पिटल रोड, परेड
कानपुर–१

मूल्य ८·००
१९७२ संस्करण

मुद्रक
अमलतास प्रेस
४०/६९, परेड
कानपुर

भूमिका

हम पाठकों के समक्ष "समाजशास्त्र परिचय" भाग दो का नवीन संशोधित और विस्तृत संस्करण प्रस्तुत कर रहे हैं। इस संस्करण में अनेक अध्यायों में काफी मात्रा में नयी पाठ्य-सामग्री जोड़ दी गई है। उदाहरण के लिये, सामाजिक नियंत्रण (प्रथम अध्याय) में उसके उद्देश्य, स्वरूप, सिद्धान्त पर नयी सामग्री जोड़ दी गई है जो पिछले संस्करण में नहीं थी। दूसरे अध्याय में परिवार की विशेषतायें और कार्य आदि पर सामग्री जोड़ी गई है जो पिछले संस्करण में नहीं थी। साथ ही परिवार में आधुनिक परिवर्तन पर आवश्यक सामग्री जोड़ दी गई है। तीसरे अध्याय में धर्म की धारणा को स्पष्ट कर दिया गया है। साथ ही सामाजिक नियन्त्रण में धर्म की व्याख्या का अधिक विस्तार कर दिया गया है। चौथे अध्याय में सामाजिक नियन्त्रण में राज्य की भूमिका पर नये पाँच पृष्ठ जोड़ दिये गये हैं जो इसकी धारणा को अधिक स्पष्ट करते हैं। पाँचवे अध्याय में प्रथा की धारणा को अधिक स्पष्ट करने और उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है। आठवें और नवें अध्याय में 'सामाजिक नियन्त्रण में प्रचार और जनमत की भूमिका' उपशीर्षक डाल कर नई पाठ्य सामग्री जोड़ दी गई है जो पिछले संस्करण में नहीं थी।

हम उन सब शिक्षकों के प्रति आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक में आवश्यक संशोधन करने के सुझाव दिये। हमें पूर्ण आशा है कि यह नवीन संस्करण पाठकों की पूरी आवश्यकता को पूरा करेगा। इस संशोधित संस्करण को लिखते समय गत वर्षों में कानपुर विश्वविद्यालय में पूछे गये प्रश्नों को भी दृष्टि में रखा गया है।

१-९-७२

मदनमोहन

विषय-सूची
(CONTENTS)

१ सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)

मनुष्य का मस्तिष्क सदा से दो समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त रहा है; (अ) प्राकृतिक शक्तियों का नियन्त्रण (control of forces of nature); (ब) अपने साथी मनुष्यों के व्यवहार का नियन्त्रण (control of conduct of fellow human beings)। यह ध्यान देने योग्य बात है कि अपने भौगोलिक पर्यावरण का प्रबन्ध करने की विधियों (techniques) में विज्ञान की उन्नति के साथ ही सन्तोषजनक उन्नति होती रही है जब कि सामाजिक नियन्त्रण की विधियों में प्रेस, चलचित्र तथा रेडियो के आविष्कार से पहले कोई विशेष परिवर्तन न हुआ था।

सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ उन प्रक्रियाओं व संस्थाओं से लगाया जाता है जिनके द्वारा मनुष्यों को सामाजिक नियमों के अनुसार कार्य करने की शिक्षा दी जाती है अथवा उन्हें उसके लिये जोर दिया जाता है अथवा बाध्य किया जाता है। **ब्रियरलाई** ने सामाजिक नियन्त्रण की परिभाषा देते हुए कहा है कि "सामाजिक नियन्त्रण उन आयोजित अथवा अनायोजित प्रक्रियाओं तथा विधियों के लिए एक सामूहिक शब्द है जिसके द्वारा व्यक्तियों को सिखाया जाता है, आग्रह किया जाता है, अथवा बाध्य किया जाता है कि वे उन समूहों की रीतियों तथा जीवन के मूल्यों का पालन करें जिनके वे सदस्य हैं।"*

सामाजिक नियन्त्रण उसी समय स्थापित होता है जब कि एक समूह दूसरे समूहों के व्यवहार को निश्चित करता है, जब एक समूह अपने सदस्यों के व्यवहारों को नियन्त्रित करता है अथवा स्वयं व्यक्ति एक दूसरे के व्यवहार को नियन्त्रित करते

---

* "Social control is a collective term for those processes and agencies planned or unplanned by which individuals are taught persuaded, or compelled to conform to the usages and life values of the groups to which they belong." — Brearly.

हैं। सामाजिक नियन्त्रण, इसके फलस्वरूप, तीन स्तरों (levels) पर कार्य करता है : (अ) समूहों के ऊपर समूह (group over group); (ब) अपने सदस्यों के ऊपर समूह (group over its members); (स) अपने साथियों के ऊपर व्यक्ति (individuals over their fellows)। दूसरे शब्दों में सामाजिक नियन्त्रण उस समय स्थापित होता है जबकि व्यक्ति इस बात के लिये प्रेरित (induce) अथवा बाध्य किये जाते हैं कि वे दूसरे व्यक्तियों के हित को दृष्टि में रख कर कार्य करें, न कि केवल अपने ही स्वार्थ के वशीभूत होकर कार्य करें।

सामाजिक नियन्त्रण के अन्तर्गत केवल उन्हीं सामाजिक दबावों (pressures) का अध्ययन किया जाता है जिनका उद्देश्य विचारों और कार्यों में समानता लाना है। प्रत्येक समूह के सामाजिक नियन्त्रण के साधन व तरीके दूसरे समूहों से किसी न किसी रूप में भिन्न अवश्य होते हैं। उदाहरण के लिये सिसली (Sicily) के निवासियों का विश्वास है कि पीड़ित व्यक्ति (victim) की चोट का प्रतिघात (requital) उसी के द्वारा अथवा उसके सम्बन्धियों द्वारा ही होना चाहिये जब कि यह हमारे सामाजिक और कानूनी नियमों के विरुद्ध है। हमारे समाज में अपने हाथ में कानून लेने का किसी भी व्यक्ति को अधिकार नहीं है।

गिलिन और गिलिन ने सामाजिक नियन्त्रण को कुछ उपायों की ऐसी पद्धति बतलाया है—संकेत, आग्रह, बाधा तथा दमन जिसके अन्दर शारीरिक शक्ति भी सम्मिलित है—जिसके द्वारा समाज किसी उपसमूह को व्यवहार के स्वीकृत ढंगों के अनुकूल बनाता है, अथवा जिसके द्वारा एक समूह अपने सदस्यों को उन नियमों के अनुकूल मोड़ता है।* सामाजिक नियन्त्रण की विधियों तथा प्रक्रियाओं (processes) का उद्देश्य समाज में शान्ति स्थापित करना है जिससे कि सामाजिक सहयोग सम्भव हो सके। किसी भी समाज में सामाजिक नियन्त्रण से तात्पर्य व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहारों से होता है जो कि उनके पुरस्कार (rewards) अथवा दण्ड (punishment) की भविष्यवाणी करते हैं।† पुरस्कार उन लोगों को दिए जाते हैं जो कि नियमों का पालन करते हैं, जो सहयोग देते हैं और जो सामाजिक संगठन के अन्तर्गत ही कार्य करते हैं। दण्ड उन व्यक्तियों को मिलता है जो कि व्यक्तिवादी (individualist), विद्रोही (dissenters) हैं और जो अपने कार्यों के अनुसार अपने नियम बनाना चाहते हैं।

---

* "Social control is that system of measures—suggestion, persuasion, restrain and coercion by whatever means including physical force—by which a society brings into conformity to the approved pattern of behaviour a sub-group, or by which a group moulds into conformity its members."

—Gillin and Gillin, *Cultural Sociology*. P. 693.

† Hayes, *Sociology*,

मैकआइवर और पेज ने कहा है : "सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ उस तरीके से है जिससे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की एकता और उसका स्थायित्व बना रहता है। इसके द्वारा यह समस्त व्यवस्था परिवर्तनशील सन्तुलन के रूप में क्रियाशील रहती है।"*

रॉस के अनुसार : "सामाजिक नियन्त्रण उन पद्धतियों की व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज अपने सदस्यों को मान्य व्यवहार-स्तरों के अनुरूप बनाता है।"†

गुरविच और मूर के अनुसार सामाजिक नियन्त्रण का सम्बन्ध उन सभी प्रक्रियाओं और प्रयत्नों से है जिनसे समूह अपने आन्तरिक तनावों और संघर्षों पर नियन्त्रण रखता है और इस प्रकार रचनात्मक कार्यों की ओर बढ़ता है। इस बात को दूसरे ढंग से समझाते हुए गुरविच ने कहा : "सामाजिक नियन्त्रण से तात्पर्य मूल्यों और व्यवहार-आदर्शों के संग्रह से है जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों के बीच तनावों और संघर्षों को दूर अथवा कम किया जाता है जिससे समूह की दृढ़ता को बनाये रखा जा सके।"††

बोगार्डस ने कहा : "समूह नियन्त्रण वह पद्धति है जिससे एक समूह अपने सदस्यों के व्यवहारों को नियन्त्रित करता है।"‡

लैण्डिस के शब्दों में : "सामाजिक नियन्त्रण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था स्थापित की जाती है और बनाये रखी जाती है।"‡‡

---

* "...by social control is meant the way in which the entire social order coheres and maintains itself—how it operates as a whole, as a changing equilibrium." —MacIver and Page.

† "Social control is a system of devices whereby society brings its members into conformity with the accepted standards of behaviour." —E. A. Roses, *Social Control.*

†† "The term 'social control' may be regarded as referring to the aggregate of values and norms by means of which tensions and conflicts between individuals and group are resolved or mitigated in order to maintain the solidarity of some more inclusive group." —Gurvitch, quoted by Bottomore, *Sociology.*

‡ "Group control is the way in which a group regulate the behaviour of its members." —E. S Bogardus, *Sociology.*

‡‡ "Social control is the process by which order is (1) established and (2) maintained." —P. H. Landis, *Social Control.*

आगबर्न और निमकाफ ने हर प्रकार के उन सामाजिक दबावों को सामाजिक नियन्त्रण की परिभाषा में शामिल किया है जिनको व्यवस्था बनाये रखने के लिये समाज इस्तेमाल करता है। इन दबावों में कानून, बल प्रयोग, धर्म, नैतिकता आदि सभी साधन शामिल हैं। उन्होंने कहा : "व्यवस्था और स्थापित नियमों को बनाये रखने के लिए किसी भी समाज द्वारा डाले गये दबाव के प्रतिमान को उस समाज की 'नियन्त्रण-व्यवस्था' कहा जाता है।"*

सामाजिक नियन्त्रण तथा आत्म-नियन्त्रण
(Social Control and Self-control)

सामाजिक नियन्त्रण और आत्म-नियन्त्रण का अन्तर स्पष्ट कर देना आवश्यक है यद्यपि कि दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सामाजिक नियन्त्रण एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने का वर्णन करता है जब कि आत्म-नियन्त्रण किसी व्यक्ति के अपने पूर्व निश्चित आदर्श व उद्देश्य के आधार पर किये जाने वाले अपने व्यवहार को नियन्त्रित करने के प्रयास का वर्णन करता है। यह उद्देश्य वास्तव में उस समूह की लोकरीतियों व मूल्यों से ही निश्चित होता है जिसका कि वह सदस्य है। इस प्रकार से आत्म-नियन्त्रण का जन्म सामाजिक नियन्त्रण से ही होता है और वह सामाजिक नियन्त्रण का ही एक रूप है।

सामाजिक नियन्त्रण की आवश्यकता (The need of social control)

प्लेटो तथा अरस्तू के समय से लेकर आधुनिक सामाजिक दर्शनशास्त्रियों (modern social philosophers) ने इस बात पर सहमति प्रकट की है कि समाज के अस्तित्व (existence) के लिए थोड़ी बहुत सामाजिक दृढ़ता (solidarity) का होना अत्यन्त आवश्यक है। प्लेटो ने कहा है कि विधायक का उद्देश्य राज्य में अन्य वर्गों के ऊपर किसी एक विशेष वर्ग को सुखी बनाना नहीं है बल्कि सम्पूर्ण राज्य में सुख स्थापित करना है। विधायक अनुरोध और आवश्यकता से नागरिकों को एक करता है और उनको राज्य का हितैषी बनाता है और इस प्रकार एक दूसरे का हितैषी बनाता है।† अरस्तू ने इस बात पर जोर दिया कि नागरिकों के लिये यह

---

* "The pattern of pressure which a society exerts to maintain order and established rules is known as its system of social control." —Ogburn and Nimkoff, *A Handbook of Sociology*.

† "The legislator did aim at making any one class in the State happy above the rest; that happiness was to be in the whole State and he held the citizens together by persuasion and necessity, making them benefactors of the State and therefore benefactors of one another."

—Plato, *The Republic, Jowett's translarion*, Book VII.

अधिक महत्वपूर्ण है कि उनकी भावनाओं में समानता हो, न कि उनकी परिस्थितियों की समानता।*

सर्वविदित है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों और भिन्न-भिन्न समूहों में विभिन्नतायें पाई जाती हैं और सबकी भलाई के लिये यह आवश्यक है कि उनको नियन्त्रित किया जाये। यह विभिन्नतायें तीन प्रकार की होती हैं; (अ) वह विभिन्नता जो कि व्यक्तियों के जैवकीय (biological) और मनोवैज्ञानिक अन्तरों, शारीरिक गुणों के अन्तरों, बौद्धिक (intellectual) योग्यता के अन्तरों, भावनात्मक (sentimental) विशेषताओं और व्यक्तित्व (personality) के अन्तरों के कारण पाई जाती हैं; (ब) वह भिन्नता जो कि समूह के व्यक्तियों में उनकी आदतों, रीति-रिवाजों व परम्पराओं (traditions) के कारण पाई जाती हैं जिससे कि समाज और व्यक्तियों के प्रति उनके कार्यों और कर्त्तव्यों पर प्रभाव पड़ता है, और (स) विभिन्न समूहों के साँस्कृतिक स्तर जिसमें उनके विश्वास, सिद्धान्त, नीतियाँ, धार्मिक क्रियायें, रीति-रिवाज और सामाजिक मूल्य सम्मिलित हैं। यह व्यक्तिगत और साँस्कृतिक विभिन्नतायें, यदि वे बहुत गम्भीर (sharp) हैं, समाज की दृढ़ता को नष्ट कर देती हैं। सामाजिक दृढ़ता के लिये यह आवश्यक है कि समाज के सदस्यों के विचारों और कार्यों में समानता हो, उनमें सहयोग हो और इसके लिए सामाजिक नियन्त्रण आवश्यक होता है।

किम्बाल यंग ने सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य के बारे में लिखा है : "सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य एक विशिष्ट समूह या समाज की समरूपता, एकता और निरन्तरता को लाना है।"†

इसी प्रकार, **लैण्डिस** ने लिखा है : "सामाजिक नियंत्रण (१) व्यक्ति की स्वयं अपने से रक्षा करने और (२) समाज को अव्यवस्था से बचाने के लिये आवश्यक है।"‡

---

* "It is of more consequence that the citizens should entertain a similarity of sentiments than an equality of circumstances."
—The Politics of Aristotle, translated by Ellis, *Everyman's Library*, p, 44

† "The aims of social control are to bring about conformity, solidarity, and continuity of a particular group of society." K. Young, *A Handbook of Social Psychology*. p. 898.

‡ "Social control is necessary (1) to protect the individual against himself and (2) to save society from chaos."
—P. H. Landis, *Social Control*.

सामाजिक नियन्त्रण का कार्य या उद्देश्य (Functions or aims of Social Control)

प्रत्येक समूह में ऐसे अनेक उपसमूह (sub groups) होते हैं जिनके विश्वास, रीति-रिवाज़ और व्यवहार के ढंग सम्पूर्ण संस्कृति से भिन्न होते हैं। साधारणतया यह बाहर से आकर बसे हुए समूह होते हैं जो कि अपने साथ एक नयी संस्कृति लाते हैं। यदि बड़ा समाज यह समझता है कि किसी उपसमूह के कार्य और विश्वास पूरे समाज के लिये भयानक हैं तो वह अनेक साधनों से, विशेषकर कानूनी दण्ड द्वारा, उनको नियन्त्रित कर सकता है।

इस प्रकार सामाजिक नियन्त्रण के दो कार्य हैं :

(१) विभिन्न समूहों के कार्यों को सामाजिक नियमों के अनुरूप बनाना जिससे कि दुरखाइम (Durkheim) के शब्दों में वे 'सामूहिक चेतना में भाग ले सकें' (they may share the collective conscience) अथवा गिडिंग्स (Giddings) के अनुसार वे अपनी समानताओं को जान सकें और उससे लाभ उठा सकें (They may know and enjoy their likenesses)।

(२) सामाजिक दृढ़ता की उस मात्रा को बनाये रखना जो कि समाज के विकास को निश्चित करे।

किम्बाल यंग के अनुसार सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्य निम्नलिखित हैं : "किसी विशेष समूह या समाज में नियमों का पालन, सामूहिक दृढ़ता, और निरन्तरता।"* सामाजिक नियन्त्रण के वास्तविक उद्देश्यों के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। अधिकतर व्यक्ति जो अपने साथियों के व्यवहार को नियंत्रित करना चाहते हैं उनका उद्देश्य यही रहता है कि वे सब व्यक्ति भी वे सब व्यवहार आदर्श अपनायें जिन्हें वे स्वयं पसन्द करते हैं। यह पसन्दगी तीन बातों पर आधारित होती है : बचपन में मिली ट्रेनिंग, जीवन में मिले अनुभवों से उत्पन्न अन्तर्दृष्टि (insight), या दूसरे व्यक्तियों का शोषण करने के लिये। आर्थिक, वैयक्तिक या राजनीतिक शक्ति अधिकतर व्यक्तियों द्वारा महत्वपूर्ण व्यक्तियों के मूल्यों और रहन-सहन सम्बन्धी प्रतिमानों (patterns) का एक फल यहहोता है कि सामाजिक व्यवहार में अधिक नियमितता (regularity) आ जाती है और उसकी भविष्यवाणी की जा सकती है।

रूचक ने कहा है कि यद्यपि सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्यों के सम्बन्ध में कोई अन्तिम बात नहीं कही जा सकती क्योंकि वे अत्यन्त गूढ़ होते हैं परन्तु फिर

---

* "To bring about conformity, solidarity and continuity of a particular group or society."—Kimball Young, *Sociology*, p. 898

भी साधारण तौर पर उनको तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है : (१) शोषण करने के लिये (exploitative), जो किसी प्रकार के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आत्म स्वार्थ से प्रेरित होकर किया जाता है। उदाहरण के लिये, विज्ञापन और प्रचार। (२) नियमनकारी (regulatory) जो पुरानी आदत पर आधारित हो और जिसमें परम्परा-गत व्यवहार आदर्शों के अनुकूलन (conformity) की इच्छा छिपी है। (३) सृजन करने वाला (creative or constructive) जिसका लक्ष्य ऐसा सामाजिक परिर्वतन करना हो जो सबके लिए लाभकारी हो।

(१) **पुरानी व्यवस्था को पुनर्स्थापित करना (To re-establish the old order)**– सामाजिक नियंत्रण का एक उद्देश्य उन परम्पराओं, रहन–सहन के ढंगों, नीतियों आदि को बनाये रखना है जो लम्बे अर्से से चली आ रही हैं। बूढ़े लोग जिन सामाजिक नियमों का पालन करते रहे हैं वे अपने बच्चों पर भी लादना चाहते हैं। परम्पराओं के टूटने से नयी समस्यायें भी उत्पन्न हो सकती हैं।

(२) **सामाजिक एकता को स्थापित करना (To establish social unity)**—सामाजिक नियंत्रण के ही कारण समाज के सदस्यों के व्यवहार एक से दिखाई पड़ते हैं, उनमें एकरूपता होती है। यह एकरूपता सामाजिक एकता स्थापित करने के लिये आवश्यक होती है।

(३) **सामाजिक संगठन की स्थिरता बनाये रखना (To stabilise social order)**— सामाजिक संगठन को स्थिर बनाये रखने के लिये भी सामाजिक नियंत्रण आवश्यक है। यदि व्यक्तियों को मनमाने ढंग से कार्य करने, किसी भी व्यक्ति की हत्या करने, उसकी स्त्री या सम्पत्ति को छीन लेने की स्वतन्त्रता हो, कानून को अपने हाथ में लेने की छूट हो, तो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था ही नष्ट हो जाये। लोग रात दिन आपस में लड़ते रहें, जान माल की सुरक्षा अनिश्चित हो जाये। सामाजिक नियंत्रण के ही कारण समाज निरन्तर चलता आ रहा है।

(४) **सामूहिक दृढ़ता को बनाये रखना (To maintain social solidarity)**—जब समाज में शान्ति रहती है, तो नियमों का समान रूप से पालन करने से उत्पन्न एकरूपता से हम-भावना या सहयोग व सहानुभूति की भावना सामाजिक दृढ़ता को बनाये रखने में मदद करती है। शत्रु के विरुद्ध दृढ़ होने के लिये भी सामाजिक नियंत्रण आवश्यक है। शत्रु से युद्ध छिड़ने पर अपने ही समाज के कुछ तत्व तोड़ फोड़, भेदिये के कार्य, अन्दरूनी शान्ति भंग कर अशान्ति और भय उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे मौके पर सामाजिक नियंत्रण के साधन सामूहिक दृढ़ता बनाये रखने में मदद करते हैं और ऐसे अवांछनीय तत्वों को दण्ड देते हैं।

(५) **व्यक्तियों को व्यवहार चुनने में मदद करती है (Helps individuals to choose behaviour)**—समाज में हर मौके के लिये पहले से निश्चित व्यवहार-प्रतिमानों के होने से व्यक्ति को इस बात की जानकारी होती है कि उसे कब कौन सा व्यवहार करना है। जैसा कि लेस्ली व्हाइट ने कहा है, यदि हमें हर अगले क़दम के लिये सोचना पड़े तो हमारा जीवन बड़ा दुःखमय हो जाये। इस कारण, पूर्व-निश्चित व्यवहार-आदर्शों के कारण हम सोचने के झंझट से काफ़ी हद तक बच जाते हैं, हमें मानसिक शान्ति रहती है।

(६) **व्यक्तिगत व्यवहार को नियमित करता है (Regulates individual behaviour)**—जैसा कि लैण्डिस ने कहा है, सामाजिक नियंत्रण का एक उद्देश्य व्यक्ति की स्वयं से रक्षा करना है। जुआ, वेश्यागमन, अत्यधिक मद्यपान ऐसे दुराचार है जिनको करने वाला स्वयं अपने को हानि पहुँचाता है। सामाजिक नियम इन बातों का निषेध करते हैं। यहाँ तक कि आत्महत्या के विरुद्ध भी कानून हैं।

दूसरी ओर, कुछ प्राणीशास्त्रीय अन्तरों, प्रजाति, रुचियों, स्वभावों की भिन्नता, तथा धर्म, प्रथा, नीतियों की सामाजिक भिन्नता के कारण समाज में विभिन्न सदस्यों के बीच संघर्ष की सम्भावना रहती है। सामाजिक नियंत्रण के नियमों का एक यह उद्देश्य भी है कि वे व्यक्तियों के ऐसे व्यवहारों को नियमित करें जिसमें संघर्ष की सम्भावना हो। इसके स्थान में सामंजस्य और सहनशीलता और सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने को यह प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि लैण्डिस ने कहा है, "नियंत्रण के ही कारण मनुष्य एक मानव है" (man is human because of control)।

(७) **सामाजिक निर्णयों का पालन करवाना (To bring about conformity)**—सामाजिक नियंत्रण का एक उद्देश्य सामाजिक निर्णयों का पालन करने के लिये व्यक्तियों को बाध्य या प्रेरित करना है। यह बात नये और पुराने सभी निर्णयों को लागू होती है। पुरानी रीतियों का पालन करने के लिये तो व्यक्ति आसानी से तैयार हो जाते हैं परन्तु अक्सर नये कानूनों का पालन करना उनके लिये अरुचिकर होता है। उदाहरण के लिये, स्त्रियों का सम्पत्ति में अधिकार अधिकतर पुरुषों को अच्छा नहीं लगा। सामाजिक नियंत्रण ऐसे ही अवसरों पर प्रभाव डालता है।

सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप
(Forms of Social Control)

सामान्यतः सामाजिक नियंत्रण के दो स्वरूप बताये जाते हैं : औपचारिक (formal) और अनौपचारिक (informal)। कुछ समाजशास्त्रियों का विचार है

कि सामाजिक नियंत्रण के अन्दर हमें केवल उन नियमों की चर्चा करना चाहिये जिन्हें व्यक्तियों के व्यवहार पर नियंत्रण रखने के लिये समाज ने जानबूझ कर जागरूक अवस्था में बनाया है। अन्य लेखकों का कहना है कि हमें इसके अन्तर्गत उन नियमों को अवश्य लेना चाहिये जो स्वतः विकसित हुये हैं, जो अधिक प्राचीन और सार्वभौमिक हैं और जो नियंत्रण के अधिक प्रभावशाली माध्यम हैं।

(१) औपचारिक और अनौपचारिक नियंत्रण (Formal and Informal Control)

(i) **औपचारिक सामाजिक नियंत्रण (Formal social control)**— इस प्रकार के सामाजिक नियंत्रण के साधन जानबूझ कर व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये बनाये जाते हैं। इसमें राज्य, सेना, कानून, पुलिस आदि आते हैं। प्राथमिक समूहों में औपचारिक नियंत्रण का विशेष महत्व नहीं है परन्तु आज के समाज में जहाँ द्वैतीयक समूहों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है औपचारिक सामाजिक नियंत्रण का महत्व बढ़ रहा है। अव्यक्तिगत (impersonal) सम्बन्धों को नियंत्रित करने के लिये इन साधनों का प्रयोग किया जाता है।

(ii) **अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण (Informal social control)**— अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण के अन्तर्गत हम उन सामाजिक दबावों को लेते हैं जिनका स्वतः विकास होता है। उदाहरण के लिये, प्रथा, रूढ़ि, धर्म, नीति, आदर्श आदि अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण हैं। जनमत और उपहास, निन्दा, तिरस्कार, सामाजिक बहिष्कार आदि अनौपचारिक नियंत्रण के साधन हैं जिनके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार पर नियंत्रण रखा जाता है जैसा कि रॉस ने कहा है: "सहानुभूति, सामाजिकता, न्याय की भावना और रोष अनुकूल परिस्थितियों में अपने आप एक सच्ची, प्राकृतिक व्यवस्था बना लेते हैं, या ऐसी व्यवस्था बना लेते हैं जिसका कोई नक़शा या योजना नहीं होती।* इस प्रकार के नियंत्रण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि व्यक्ति इनको अपने ऊपर जबरदस्ती थोपा हुआ नहीं अनुभव करता और सहज रूप से उनका पालन करता है।

(२) सकारात्मक और नकारात्मक सामाजिक नियंत्रण (Positive and negative social control)

किम्बाल यंग ने सामाजिक नियंत्रण के दो स्वरूप बताये हैं: सकारात्मक

* "Sympathy, sociability, the sense of justice, and resentment are competent under favourable circumstances, to work out by themselves a true, natural order, that is to say, an order without design or art."— Ross, *Social Control.*

और नकारात्मक। सकारात्मक नियंत्रण वह नियंत्रण है जो अपनी विधियों द्वारा समाज-स्वीकृत कार्यों को ही करने के लिये व्यक्तियों को उत्साहित करता है। उदाहरण के लिये अच्छे कार्यों के लिये व्यक्तिगत या सामाजिक पुरस्कार, शाबाशी, प्रशंसा के द्वारा यह विश्वास पैदा करना कि ऐसे ही कार्य करना सबके हित में है। नकारात्मक नियंत्रण किन्हीं कार्यों को करने का निषेध करता है और दोषी को दण्ड देता है। राज्य, परिवार, जाति या अन्य सामाजिक समूह जेल, जुर्माना, तिरस्कार, निन्दा आदि के द्वारा व्यक्ति को गलत कार्य करने से रोकते हैं।

(३) चेतन और अचेतन सामाजिक नियंत्रण
(Conscious and unconscious social control)

चार्ल्स कूले (Charles Cooley)— के अनुसार सामाजिक नियंत्रण दो प्रकार के होते हैं: चेतन और अचेतन। चेतन नियंत्रण वह है जो जान बूझ कर लगाया जाता है और जिसके प्रभाव से ही सामान्यतः व्यक्ति चेतन होता है। क़ानून, शिक्षा, प्रचार आदि इसके साधन हैं। दूसरी ओर, अचेतन नियंत्रण वे नियंत्रण हैं जिनका अपने आप विकास हुआ है। इनका पालन करते हुये व्यक्ति स्वयं इस बात से चेतन नहीं होता कि वे सामाजिक नियंत्रण के साधन हैं। हम प्रथाओं, रूढ़ियों, धर्म नीतियों का इसलिये पालन करते हैं कि हमारे माता-पिता आदि को हमने ऐसा करते हुये देखा है। ऐसा करते समय हम इस बात से सचेत नहीं रहते कि हम सामाजिक नियंत्रण के प्रभाव में ऐसे कार्य कर रहे हैं।

(४) संगठित, असंगठित और सहज नियंत्रण
(Organized, unorganized and automatic control)

गुरविच और मूर (Gurvith and Moore) ने तीन प्रकार के सामाजिक नियंत्रणों की चर्चा की है: संगठित, असंगठित और सहज नियंत्रण (i) संगठित नियंत्रण वह है जो छोटी–छोटी संस्थाओं और व्यापक नियमों के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहार को प्रभावित करता है। विभिन्न संस्थाओं द्वारा बनाये गये नियम इसके उदाहरण हैं। (ii) असंगठित नियंत्रण से तात्पर्य ऐसे नियमों से है जो समाज द्वारा संगठित रूप से लागू नहीं किये जाते यद्यपि उनका प्रभाव बहुत होता है। प्रथायें, लोकरीतियाँ, संस्कार, सदाचार इस प्रकार के नियंत्रण के अन्तर्गत आते हैं। (iii) तीसरे प्रकार का सामाजिक नियंत्रण सहज है। इनका आधार हमें मूल्य, अनुभव, विचार, आदर्श और व्यक्तियों की आवश्यकताओं में मिलता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये व्यक्ति के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह समाज के नियमों का पालन करे। इसी प्रकार, व्यक्ति के अपने अनुभव स्वाभाविक और सहज रूप से उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। क़ानून और

धार्मिक नियमों को भी इसी श्रेणी में रखा जाता है। इनका पालन करवाने के लिये विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता जिस कारण से इनको सहज नियंत्रण कहा जाता है।

(५) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सामाजिक नियन्त्रण (Direct and Indirect social control)

कार्ल मैनहीम (Karl Manheim) ने सामाजिक नियंत्रण को दो भागों में बाँटा है: प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। जब निकट और घनिष्ठ लोगों, जैसे माता-पिता, मित्र, सम्बन्धी, पड़ोसियों, अध्यापकों, आदि के द्वारा कोई नियंत्रण व्यक्ति के व्यवहार पर लगाया जाता है तो उसे हम प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण कहते हैं। इस प्रकार का नियंत्रण प्राथमिक समूहों की विशेषता होता है। इस प्रकार के नियन्त्रण के लिये प्रशंसा, पुरस्कार, आदर, निन्दा, बहिष्कार जैसे साधन अपनाये जाते हैं। इस प्रकार के नियन्त्रण को व्यक्ति सहर्ष स्वीकार करता है क्योंकि यह अपने घनिष्ठ लोगों द्वारा लगाये जाते हैं। इसी से इनका प्रभाव दीर्घकालीन होता है। दूसरी ओर, अप्रत्यक्ष नियन्त्रण व्यक्तिगत रूप से नहीं होता। यह अव्यक्तिगत प्रकृति का होता है। इस प्रकार के नियंत्रण द्वैतीयक समूहों और संस्थाओं द्वारा लगाये जाते हैं। मैनहीन के अनुसार अप्रत्यक्ष नियंत्रण प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण द्वारा लगाया जाता है। फिर भी, मैनहीम यह भी मानते हैं कि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण भी व्यक्तियों के व्यक्तिगत माध्यम के द्वारा लागू किया जाता है।

(६) शारीरिक शक्ति-विधि और मानवीय प्रतीक विधि (Physical force method and Human symbol method)

लम्ले (Lumley) ने सामाजिक नियन्त्रण की दो प्रकार की विधियों की चर्चा की है: शारीरिक शक्ति विधि और मानवीय प्रतीक विधि। पहली विधि में व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये शारीरिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है। दूसरी विधि में भाषा, प्रथा, परम्परा, धर्म, संस्कार आदि की सहायता से सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है।

सामाजिक नियंत्रण के सिद्धान्त (Theories of Social Control)

अत्यन्त प्राचीन और आदिम समाजों में भी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार को संगठित करने के लिये एक शक्ति के रूप में सामाजिक नियन्त्रण पाया जाता

था। जिस प्रकार कि व्यक्ति प्राकृतिक पर्यावरण से घिरा रहता है उसी प्रकार जन्म से मृत्यु तक वह सामाजिक नियन्त्रण से भी घिरा रहता है यद्यपि वह इस बात से अचेतन रहता है। इसलिए 'सामाजिक नियन्त्रण की धारणा' पुरानी नहीं है यद्यपि प्लेटो की Republic, जो 296 B. C. में प्रकाशित हुई, और बहुत बाद में कॉम्त की Positive Philosophy (1830–1842) में इसका थोड़ा आभास मिलता है। लेस्टर वार्ड की Dynamic Sociology (1883) में इस पर स्पष्ट रूप से विचार किया गया है।

सन् १८९४ में स्मॉल और विन्सेन्ट ने सामाजिक व्यवहार पर अधिकार-शक्ति के प्रभाव की व्याख्या करते हुए यह लिखा कि यहाँ तक कि नेता भी अपने अनुयायियों की इच्छाओं से प्रभावित रहते हैं। उन्होंने कहा कि 'अधिकार-शक्ति के प्रति जनमत की प्रतिक्रिया सामाजिक नियन्त्रण को एक अत्यधिक नाजुक और कठिन कार्य बना देती है।' * विद्वानों के लेखों में 'सामाजिक नियन्त्रण' (Social Control) शब्द का यह सबसे पहला प्रयोग था। सन् १९०१ में रॉस ने Social Control नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तक में रॉस ने लेस्टर वार्ड के परामर्शों को स्वीकार किया है।

बीसवीं सदी में समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियन्त्रण के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करना शुरू कर दिया। इनमें रॉस के बाद कूले, मार्क्स, टूनीज़, मैक्स वैबर, दुरखाइम और पारसन्स के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ हम केवल रॉस, कूले, दुरखाइम और पारसन्स के विचारों को प्रस्तुत करेंगे।

रॉस का सामाजिक नियंत्रण का सिद्धान्त (Ross's Theory of Social Control)—रॉस ने कहा कि व्यक्ति में गहरी भावनायें होती हैं जिनके कारण वह अपने साथियों के साथ सहयोग करता है और उनके कल्याण का ध्यान रखता है। यह भावनायें सहानुभूति, सामाजिकता (sociability), और न्याय की भावना हैं। परन्तु यह भावनायें व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्तियों को दबाने में समर्थ नहीं हैं। इसलिये समाज को व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्तियों को दबाने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग करना पड़ता है जिससे आवश्यक व्यवस्था और अनुशासन बना रहे। रॉस ने ऐसे अनेक साधनों पर बल दिया जिनका प्रयोग व्यक्तियों को नियन्त्रण में रखने के लिये आदिकाल में सामाजिक समूह करते रहे हैं। इनमें जनमत, कानून, विश्वास, सामाजिक सुझाव, सामाजिक धर्म, व्यक्तिगत आदर्श, संस्कार, कला, व्यक्तित्व, ज्ञान, भ्रम (illusion), और सामाजिक मूल्य हैं।

---

* "The reaction of the public opinion upon authority makes social control a most delicate and difficult task."

रॉस ने कहा कि जनमत एक अत्यन्त शक्तिशाली साधन है जिसके द्वारा व्यक्तियों को पूरी तौर पर स्वार्थी मार्ग पर चलने से मना किया जाता है या ऐसे मार्ग पर चलने के लिये बाध्य किया जाता है जो समूह के दृष्टिकोण से अच्छा है। समूह-निर्णय प्रशंसा या घृणा, आदर या अनादर, किसी कार्य को अच्छा या बुरा कहने में प्रकट होता है। कानून दमनशक्ति के रूप में और एक अधिक बाध्यकारी या अनिवार्य शक्ति के रूप में कार्य करता है। दोनों ही रूप में वह महत्वपूर्ण साधन है। साथ ही रॉस ने यह भी कहा कि व्यक्ति जब अपने पड़ोसियों की नजर से दूर होता है तब न कानून और न जनमत व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने में एक निश्चय साधन होता है। यह नियन्त्रण तो भगवान् में विश्वास रखने से होता है जो सब कुछ देखता है और सर्वव्यापी है, जो दण्ड और पुरस्कार दोनों देता है।

आदिकाल से सामाजिक नियन्त्रण में प्रयोग होने वाला एक साधन सामाजिक सुझाव है। इससे रॉस का तात्पर्य ऐसे साधनों से था जैसे परम्परा, उदाहरण, व्यक्तिगत प्रभाव आदि। रॉस ने कानूनी धर्म, जिसका कारण उत्प्राकृतिक (super-natural) शक्तियों का भय है, और सामाजिक धर्म जिसका सम्बन्ध नैतिक आदर्शों से था, में भेद किया। सामाजिक धर्म नियन्त्रण करने की भी एक बड़ी शक्ति है।

रॉस ने व्यक्ति के व्यवहारों के नियन्त्रण करने के सम्बन्ध में विश्वासों को सबसे अधिक महत्वपूर्ण कहा। उसने कहा कि सामाजिक नियन्त्रण करने के लिये केवल कानून ही काफी नहीं हैं, बल्कि विश्वास सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

रॉस ने समाज को दो भागों में बाँटा : प्राकृतिक (natural) समाज और वर्गाश्रित (class based) समाज। प्राकृतिक समाज में कोई बाहरी नियन्त्रण नहीं होता। इस प्रकार के समाज की स्थापना स्वतः होती है, यह प्राथमिक हैं, इसलिये इनमें सामाजिक नियन्त्रण की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर, वर्गाश्रित समाज वह समाज है जिसमें अन्य वर्गों के ऊपर उस वर्ग का नियन्त्रण स्थापित हो जाता है जिसके हाथ में सबसे अधिक साधन होते हैं। जिस वर्ग के पास साधन, धन और शक्ति होते हैं वे समझते हैं कि अधिक साधनों से वे छोटे और प्राथमिक वर्गों पर नियन्त्रण रख कर अधिक शक्ति इकट्ठा कर लेंगे। यही नहीं, स्वयं छोटे वर्ग भी यह अनुभव करते हैं कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यह नियन्त्रण आवश्यक है। जैसे-जैसे समाज में नयी संस्थायें बनती हैं, वह जटिल होता जाता है और इस बाहरी नियन्त्रण की आवश्यकता अधिक अनुभव की जाने लगती है। इस प्रकार के समाजों में राज्य सामाजिक नियन्त्रण का एक माध्यम हो जाता है।

यद्यपि रॉस ने राज्य को सामाजिक नियन्त्रण का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना है परन्तु उसने इससे भी अधिक महत्वपूर्ण विश्वासों को माना है। इन विश्वासों का सम्बन्ध धर्म, श्रम, आदर्श, प्रथाओं आदि से होता है और इनको उत्सवों और अनुष्ठानों में व्यक्त किया जाता है। विविध प्रकार के विश्वासों के ही कारण व्यक्तियों में सहानुभूति, सामाजिकता, न्याय-भावना, प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है। यही सब भावनाएँ सामाजिक नियन्त्रण का आधार हैं।

कूले का सामाजिक नियन्त्रण का सिद्धान्त (Cooley's Theory of Social Control)—सन् १९०२ में कूले की Human Nature and the Social Order नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। कूले ने व्यक्ति के व्यक्तित्व के ऊपर सामाजिक दबावों के प्रभाव और व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिये उसके जीवन-इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया। उसने कहा कि सामाजिक नियन्त्रण हर समाज में पाया जाता है चाहे वह छोटा हो या बड़ा, आदिम हो या सभ्य। कूले के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने 'स्व' (self) का विकास करना चाहता है। 'स्व' से तात्पर्य व्यक्तित्व के उस रूप से है जो दूसरे व्यक्ति की निगाह में होता है। कूले ने इस सम्बन्ध में 'Looking glass self' का सिद्धान्त प्रतिप्रादित किया। प्राथमिक समूह विशेषकर परिवार के साथ सम्पर्क बना कर व्यक्ति 'स्व' की धारणा विकसित करता है। अन्य व्यक्तियों की उसके प्रति मनोवृत्तियों से यह सम्भव होता है। वह अपने बारे में धारणा बनाता है कि वह किस तरह का व्यक्ति है, जब वह यह कल्पना करता है कि अन्य व्यक्ति उसको कैसा समझते हैं। यह अन्य व्यक्तियों के उसके प्रति व्यवहार से प्रकट हो जाता है। कूले ने बच्चे की अपने बारे में धारणा को 'looking glass self' कहा। 'स्व' का विकास करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न समूहों और कार्यों में भाग लेता है। यह सामाजिक सहभागिता समाजीकरण के लिये आवश्यक है। कूले ने कहा कि सामाजिक सहभागिता और समाजीकरण के अवसरों में वृद्धि करना ही सामाजिक नियन्त्रण है। सामाजिक नियन्त्रण के साधनों में उसने ऐसी दशाओं और समूहों, विशेषकर प्राथमिक समूहों, को रखा जो 'स्व' के विकास और समाजीकरण में सहायक होते हैं।

दुरखाइम का सामाजिक नियन्त्रण का सिद्धान्त (Durkheim's Theory of Social Control)—दुरखाइम ने कहा कि प्रत्येक समाज में अपने स्वार्थ-समूह (interest groups) होते हैं। यह अपने स्वार्थ के सामने जन-कल्याण को नहीं देखते। इन समूहों का समाजीकरण करने की आवश्यकता है। इसके लिए 'सामूहिक प्रतिनिधानों' को प्रभावपूर्ण बनाना चाहिये। दुरखाइम ने कहा कि व्यक्ति के विचार और व्यवहार सामूहिक प्रतिनिधानों द्वारा निश्चित होते हैं। 'सामूहिक

प्रतिनिधानों' से दुरखाइम का तात्पर्य समूह के अनुभवों, विचारों और आदर्शों के भण्डार से था जिसके ऊपर व्यक्ति अपने विचारों, मनोवृत्तियों और व्यवहार के लिये निर्भर करता है। यह संचित समूह-अनुभव एक प्रकार का जलाशय है जिससे व्यक्तियों को विचार और मनोवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं और जिन्हें वे अपना समझ कर अपनाते हैं।

दुरखाइम ने कहा कि प्राथमिक समूहों के प्रभाव में कमी आना, जो आज के औद्योगिक समाज की विशेषता है, सामाजिक जीवन के लिये घातक हैं। परिवार, गाँव जैसे प्राथमिक समूहों के प्रभावशाली बने रह पाने के कारण व्यक्ति अपने मूल्यों, भावनाओं और पारस्परिक घनिष्ठता को कायम रख पाते हैं क्योंकि यह समूह अनौपचारिक हैं, और इनमें व्यक्तियों के सम्बन्ध व्यक्तिगत होते हैं। दूसरी ओर, औद्योगिक क्रान्ति के बाद अनेक नये वर्गों और स्वार्थ-समूहों का जन्म हुआ। व्यक्ति अपने स्वार्थ के अनुसार विभिन्न समूहों के सदस्य बनने लगे। इन विभिन्न स्वार्थ-समूहों में विरोध की भावना जागृत हुई और लोग एक दूसरे के हित के प्रति उदासीन होने लगे। यह दशा समाज में नियन्त्रण, शान्ति और स्थिरता को भंग करती है। इस स्थिति से बचने के लिये व्यक्तियों और समूहों को एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने चाहिये। इसी से सामूहिक प्रतिनिधान शक्तिशाली बनेंगे। सामूहिक प्रतिनिधानों के प्रबल होने का एक अच्छा परिणाम यह होगा कि व्यक्ति अपने स्वार्थों की अपेक्षा सामूहिक कल्याण को अधिक महत्व देने लगेंगे।

समनर के विचार (Sumner's views on Social Control)—समनर ने कहा कि लोकरीतियों, रूढ़ियों, संस्थाओं और मूल्यों का अध्ययन किये बिना, जिसमें समूह के व्यवहार के नियम शामिल हैं, सामाजिक व्यवहार को नहीं समझा जा सकता। यह सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप जो व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं को संगठित करते हैं, (किस अवसर पर कैसा व्यवहार करना चाहिये) उस दिशा को निश्चित करते हैं जिसमें सामाजिक नियंत्रण काम करता है। दूसरे शब्दों में, समूह के जीवन-मूल्य और सामाजिक संगठन काफ़ी हद तक यह निश्चित करते हैं कि सामाजिक नियंत्रण के माध्यम किसी विशेष प्रकार के व्यवहार को उत्साहित करेंगे या दबायेंगे। इस सम्बन्ध में समनर ने कहा : 'रूढ़ियाँ किसी भी बात को उचित ठहरा सकती हैं और किसी भी बात की निन्दा को रोक सकती हैं (The mores can make anything right and prevent condemnation of anything)।

पारसन्स का सिद्धान्त (Parson's Theory of Social Control)—पारसन्स ने अपने सिद्धान्त में उन सामाजिक विधियों या शक्तियों की चर्चा की है जो

समाज अपने सदस्यों के नियम-विरुद्ध व्यवहारों को रोकने के लिये लगाता है जिससे समाज में संगठन बना रहे। उन्होंने कहा : "सामाजिक नियंत्रण के आधारभूत साधन संस्थागत रूप में संगठित एक समाज-व्यवस्था की स्वाभाविक अन्तःक्रिया में पाये जाते हैं।"* इस बात को समझते हुये उन्होंने कहा कि प्रत्येक समाज में अनेक व्यक्ति होते हैं; यह सब व्यक्ति अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आपस में अन्तःक्रिया करते रहते हैं। इनमें से कुछ क्रियायें अथवा कार्य करने के ढंगों को समाज के अधिकतर सदस्य उचित समझकर अपना लेते हैं और उन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती हैं। यही मान्यता प्राप्त क्रियायें सामाजिक संस्थाओं का रूप ले लेती हैं। इन संस्थाओं के आधार पर सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होता है जिसमें अपनी इच्छाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति में लगे हुये अनेक व्यक्तियों की परस्पर क्रियायें सम्मिलित होती हैं। इस प्रकार, विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के निर्देशन में क्रियाशील रहते हुये व्यक्ति परस्पर एक दूसरे के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। साथ ही, संस्थाओं के लिये भी आवश्यक है कि वे सामाजिक नियंत्रण करें। संस्थायें यह कार्य दो प्रकार से कर सकती हैं: (१) **संस्थागत समय-सारिणी** (time schedule) और **संस्थागत प्राथमिकतायें** (institutionalized priorities)। पहले तरीक़े में संस्थायें यह बताती हैं कि भिन्न प्रकार की क्रियायें अलग अलग समय पर करनी चाहिये। दूसरे तरीक़े में संस्थायें कुछ प्राथमिकताएँ निश्चित करती हैं। इन प्राथमिकताओं को निश्चित करने का उद्देश्य यह है कि व्यक्ति को यह मालूम हो जाये कि उसे कौन सी क्रिया बाद में करनी चाहिये, कौन सी पहले। इस प्रकार भी व्यक्तियों के व्यवहार पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।

इन संस्थाओं के क्रियाशील रहने पर भी कुछ व्यक्ति समाज-विरोधी कार्य करते हैं। इसलिये समाज में कुछ द्वैतीयक साधनों व संस्थाओं की आवश्यकता होती है। इनमें उनके दण्ड, अवरोधन और पृथक्करण को शामिल किया है। अवरोधन (insulation) के साधन के द्वारा संस्कृति के परस्पर विरोधी शक्तिशाली तत्वों को एक दूसरे के सम्पर्क में आने से रोका जाता है जिससे संघर्ष न हो जाये। दूसरी ओर, पृथक्करण (isolation) के द्वारा संस्कृति के कुछ तत्वों को अलग कर उन्हें विकसित होने दिया जाता है। इस प्रकार यह तत्व समाज के संघर्षमय तत्वों से अलग रहते हैं और इनके निर्देशन के अनुसार चलने से व्यक्ति समाज-स्वीकृत व्यक्तित्व ढाल सकते हैं।

---

* "The most fundamental mechanism of social control are to be found in the normal processes of interaction in an institutionally integrated social system", —Talcott Parsons, *The Social System*,

सामाजिक नियंत्रण के साधन या विधियाँ
(Means of Social Control)

जिन साधनों के द्वारा व्यक्ति या समूह अपनी पसन्द के व्यवहार करने के लिये दूसरों को प्रेरित अथवा बाध्य करते हैं वे अनेक और नाना प्रकार के होते हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि संस्थाओं और नियंत्रण के माध्यम (agencies) साँस्कृतिक या सामाजिक परिवेश (setting) पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए, समजातीय (homeogeneous) ग्रामीण समुदाय में कानाफूसी नियमों का पालन कराने में एक महत्वपूर्ण साधन हो सकती है जब कि औद्योगिक नगरों में जहाँ अव्यक्तिगत सम्बन्ध होते हैं, लोग एक दूसरे को जानते नहीं, वहाँ इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसी प्रकार, वन्यजातियों में जादू टोना चला देने की धमकी बहादुर से बहादुर व्यक्ति को भी डरा सकती है परन्तु जिन समाजों में जादू टोने में लोग विश्वास नहीं करते, जैसे डेनमार्क और स्विट्ज़रलैण्ड, वहाँ ऐसी धमकी का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। किशोर लड़के और लड़कियाँ अपने समवयस्कों द्वारा उपहास किये जाने से डर सकते हैं परन्तु हो सकता है अपने शिक्षकों या माता-पिता द्वारा की जाने वाली आलोचना की परवाह न करें।

बहिष्कार या शारीरिक कष्ट देने की बाहरी प्रविधियों का भी प्रभाव अनिश्चित होता है। सम्भवतः नियन्त्रण के वे साधन अधिक प्रभावशाली होते हैं जो धीरे-धीरे बच्चों में वे सामाजिक मनोवृत्तियाँ और मूल्य विकसित करते हैं जिन्हें समूह स्वीकार करता है। यह बदले में व्यक्तित्व प्रतिमान (patterns), स्थायी व्यवहार विशेषतायें विकसित करने में मदद करते हैं जिससे वाँछित ढंग के व्यवहार करना और अवाँछित व्यवहार को दबाना सरल हो जाता है। व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले ऐसे लोगों की संख्या जितनी अधिक होगी जो समाज के व्यवहार आदर्शों के अनुसार कार्य करते हैं उतना ही अधिक गहरा प्रभाव आदर्शों, आदतों, और अन्य व्यक्तित्व विशेषताओं के विकास को निश्चित करने में पड़ेगा।

सामाजिक नियन्त्रण की शक्ति और प्रभाव इसी बात से स्पष्ट है कि अकेला होने पर भी व्यक्ति उसके प्रभाव में होता है। शराब पीकर लड़खड़ाता हुआ घर को आने वाला व्यक्ति माँ की याद आने पर स्वयं से कहता है कि ऐसी स्थिति में मुझे देख कर माँ क्या कहेगी।

सामाजिक संगठन में और समूह के जीवन मूल्यों (life values) में परिवर्तन होने से सामाजिक नियन्त्रण के साधनों के प्रभाव में भी अन्तर आता है। उदाहरण के लिये, एक स्थिर समाज में प्रथायें सामाजिक नियन्त्रण का एक शक्तिशाली साधन हैं। वर्तमान सभ्य समाजों में प्रथाओं का प्रभाव क्षीण हो गया है।

सामाजिक नियन्त्रण के साधनों को सकारात्मक (positive) और नकारात्मक (negative) में विभाजित किया जाता है। समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार आदर्शों के अनुसार कार्य करने के लिये प्रेरित करने में प्रशंसा और पुरस्कार सकारात्मक साधन हैं जबकि दण्ड और निन्दा अवाँछनीय व्यवहार करने से रोकने के नकारात्मक साधन हैं। प्राथमिक सामाजिक समूहों में जहाँ अन्तःक्रिया वैयक्तिक होती है सामाजिक नियन्त्रण के अनौपचारिक साधन, जैसे उपहास, प्रथा, बहुत प्रभावशाली होते हैं। विशाल द्वैतीयक सामाजिक समूहों में जहां अवैयक्तिक सम्बन्ध अधिक महत्वपूर्ण होते हैं औपचारिक (formal) अनुशंसायें (sanctions) जिनका उदाहरण कानून और उसका प्रशासन है अधिक प्रबल होते हैं।

सामाजिक नियन्त्रण के तरीके— जिनके द्वारा विभिन्न व्यक्ति इस बात के लिये प्रेरित किये जाते हैं कि वे समाज से स्वीकृत ढंग से व्यवहार करें—मानव समूह के साँस्कृतिक स्तर पर निर्भर करते हैं। वन्यजातियों (tribes) के सामाजिक नियंत्रण के तरीके सभ्य समाजों की विधियों से भिन्न हैं।

साधारण तौर पर वे विधियाँ, जिनके द्वारा समूह अपने सदस्यों के व्यवहार नियन्त्रित करता है, दो भागों में विभाजित की जाती हैं: (१) प्रथम तो वे अनौपचारिक (informal) विधियाँ हैं जिनके द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखा जाता है जैसे कि प्रत्यक्ष स्वीकृति अथवा अस्वीकृति (face-to face approval or disapproval) जिसके उदाहरण सामाजिक निषेध (taboos) तथा बहिष्कार (ostracism) हैं। यहाँ हमारा तात्पर्य लोकरीतियों तथा रूढ़ियों से है। धर्म, कला खेलकूद, परिवार आदि भी इसके उदाहरण हैं। (२) दूसरे प्रकार के वे औपचारिक (formal) साधन व विधियाँ हैं जिनको जानबूझ कर नियंत्रण के उद्देश्य से बनाया गया है जैसे कि कानून, सरकार, पुलिस, सेना, जेल और दूसरे दण्ड के साधन।

हेज़ (**Hayes**) ने दो प्रकार के सामाजिक नियन्त्रण बताये हैं:

(अ) **अनुमोदन द्वारा नियंत्रण (Control by sanction)**—अनुमोदन का अर्थ अपराधी को दण्ड देने और क़ानून का पालन करने वाले को पुरस्कृत करने से है;

(ब) **समाजीकरण और शिक्षा द्वारा नियंत्रण (Control by socialization and education)**— समाज के सदस्यों के विचारों, विश्वासों और कार्यों को ऐसा बनाना जो कि सामाजिक रीति-रिवाज के अनुरूप हों।

इसी प्रकार, **गिडिंग्स** (**Giddings**) ने भी नियन्त्रण के साधन बतलाये हैं: (अ) **लोकरीतियाँ** (**folkways**) और (ब) **राज्यरीतियाँ** (**stateways**)।

व्यक्तित्व, न कि कानून, सामाजिक शान्ति का अन्तिम आधार है।
(Not law but personality is ultimate basis of social order)

समाज में अपराधियों को दण्ड देने की अपेक्षा हमारे नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना अधिक आवश्यक है। समाजीकरण की हुई आवश्यकतायें, विश्वसनीयता सामाजिक सेवा के प्रति लगाव और दूसरों के अधिकारों के प्रति आदर न केवल क़ानून को सफल बनाने में सहायता देते हैं बल्कि हर प्रकार मनुष्यों को भी सन्तुष्ट करके समाज में शान्ति स्थापित करते हैं।

---

२ सामाजिक नियंत्रण में परिवार
(Family in Social Control)

समाज में व्यक्ति का जीवन अनेक समूहों द्वारा प्रभावित होता है परन्तु घनिष्ठ रूप से और निरन्तर प्रभाव डालने में परिवार सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जन्म से लेकर, जब पुत्र और पुत्रियाँ उसकी मृत्यु शैय्या के चारों ओर एकत्रित होते हैं, परिवार निरन्तर प्रभाव डालता रहता है। परिवार हमारे जीवन के प्रारम्भ का सर्वप्रथम समूह है, और इसी समूह में हमारे सबसे अधिक स्थायी सम्बन्ध होते हैं। हम में से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिवार में बड़ा होता है, और जीवन के अधिकतर काल तक परिवार का सदस्य अवश्य रहता है। इस या उस स्वार्थ की पूर्ति के लिये हम थोड़े या अधिक समय के लिये अन्य समूहों के सदस्य बन सकते हैं परन्तु परिवार के हम सदा सदस्य रहते हैं। परिवार का पद और उसके द्वारा दिया गया नाम समाज में हमें परिचित कराता है।

सब सामाजिक संस्थाओं में से परिवार सबसे अधिक स्थायी और सार्वभौमिक (pervasive) संस्था है। ऐसा कोई भी मानव समाज न है और न कभी रहा है जिसमें किसी न किसी रूप में परिवार न हो। सभी छोटे और बड़े, आदिम और सभ्य, प्राचीन और आधुनिक समाजों में सन्तानों की उत्पत्ति और उनके पालन-पोषण की प्रक्रिया को संस्थागत किया गया (institutionalised) है।

'परिवार' शब्द अँग्रेजी के 'family' का हिन्दी रूपान्तर है जो कि लैटिन के 'famulus' से निकला है। 'famulus' शब्द का लैटिन में अर्थ 'नौकर' है। परिवार शब्द का सदैव एक ही सा अर्थ नहीं लगाया गया है। यहाँ तक कि इस शब्द के वर्तमान प्रयोग में भी हमें विभिन्न प्रकार के समूहों का बोध होता है। वास्तविक लैटिन शब्द 'familias' के अन्दर माता और पिता, बच्चे और नौकर और यहाँ तक कि गुलाम भी सम्मिलित किये जाते थे।* इसी प्रकार, ग्रीक लोग 'oikonomia' शब्द का प्रयोग करते थे जिससे तात्पर्य उपरोक्त समूह से भी बड़े समूह से होता था।

* Elmer, *Sociology of the Family*.

योरोपीय सभ्यता के वशीभूत होकर अक्सर हम परिवार का अर्थ दो वयस्क सदस्यों अर्थात् माता-पिता तथा छोटे (minor) सदस्यों अथवा उन माता-पिताओं की सन्तानों से लगाते हैं। वास्तव में अन्य संस्कृतियों (cultures) को देखते हुये यह अनुचित है। इसलिये हम परिवार के अन्दर गोद लिये हुये बच्चों, दादा, दादी, माता-पिता के भाई अथवा बहनों आदि को भी सम्मिलित करते हैं जो कि इस इकाई (unit) के अंग बन गये हैं। यदि पिता या माता की मृत्यु हो जाती है अथवा घर में संतानें नहीं हैं तो भी उस इकाई को कुटुम्ब कहा जायेगा।

परिवार एक सार्वभौमिक (universal) संस्था है जिसका जन्म सम्भवतः तभी हुआ था जब कि मनुष्य जाति का। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन काल में किसी न किसी कुटुम्ब का सदस्य अवश्य रहा है। कुटुम्ब कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसको कि हमारे ऊपर जबरदस्ती स्थापित (impose) कर दिया गया हो वरन् मनुष्य के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति के अनिवार्य साधन के रूप में इसका जन्म स्वतः (spontaneous) हुआ था। शास्त्रियों के विचार में परिवार का जन्म पहले और विवाह की प्रथा का जन्म बाद में हुआ। सदस्यों को देखते हुए कुटुम्ब एक समिति (association) है और उसके कार्यों व नियमों को देखते हुये हम कुटुम्ब को एक संस्था (institution) भी कह सकते हैं। इस प्रकार कुटुम्ब का अध्ययन समिति और संस्था दोनों ही रूपों में होता है।

यह ऊपर कहा ही जा चुका है कि विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न कालों में परिवार की परिभाषा भिन्न-भिन्न दी जाती रही क्योंकि कुटुम्ब के आकार में भी भिन्नता पाई जाती रही है। एक ही संस्कृति में विभिन्न कालों में भी इसका आकार (size) बदलता रहा है। साधारण रूप से यह समझ लेना काफ़ी होगा कि पश्चिम (योरोप) में कुटुम्ब का अर्थ स्त्री-पुरुष व केवल उनकी ही सन्तानों से लगाया जाता है जब कि पूर्व (एशिया) में परिवार के अन्दर स्त्री-पुरुष और उनकी सन्तानों के अतिरिक्त चाचा, चाची, दादा, दादी आदि अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित किये जाते रहे हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवार की परिभाषा देते समय उसके आकार को दृष्टि में रखना हमारे लिये उचित न होगा। इसी विचार के आधार पर मेकाइवर और पेज ने परिवार की परिभाषा देते हुये कहा है :—

"कुटुम्ब एक ऐसा समूह है जो कि लिंग सम्बन्ध पर आधारित है और इतना छोटा या स्थाई है कि उसमें बच्चों की उत्पत्ति और उनका पालन-पोषण हो सकता है।"*

---

* "The family is a group defined by a sex relationship sufficiently precise and enduring to provide for the procreation and upbringing of children." —Mac Iver and Page, *Society*.

बर्जेस और लॉक ने परिवार की परिभाषा निम्न प्रकार दी है :—

"परिवार विवाह, रक्त या गोद लेने के बन्धनों से जकड़े हुए व्यक्तियों का एक समूह है जो एक गार्हस्थ्य को बनाते हैं; और पति-पत्नी, माता-पिता, लड़के-लड़की और भाई-बहन के अपने-अपने सामाजिक कार्यों के रूप में एक दूसरे से अन्तः-क्रियाओं और अन्तः सन्देशों को कहते हैं और एक सामान्य संस्कृति को बनाते हैं तथा उसकी रक्षा करते हैं।"*

"यह पति और पत्नी का थोड़ा बहुत स्थाई संघ है जिनके बच्चे हों या न हों अथवा एक पुरुष या एक स्त्री का अकेले ही अपने बच्चों के साथ वाला संघ है।"† ऑगबर्न और निमकॉफ़।

मजूमदार के शब्दों में :

"परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक ही छत के नीचे रहते हैं, रक्त से सम्बन्धित हैं और स्थान, स्वार्थ तथा पारस्परिक आदान-प्रदान के आधार पर 'किस्म की चेतनता' अनुभव करते हैं।"‡

परिवार का जैवकीय आधार (The biological basis of the Family)—सामान्यतः यह समझा जाता है कि परिवार की उत्पत्ति का कारण मानव यौन इच्छाएँ हैं। परन्तु अधिक ध्यानपूर्वक विचार करने से यह पता लगता है कि जैवकीय कारक परिवार की उत्पत्ति का जवाब नहीं है। यौन सम्बन्धी आवश्य-कता वैवाहिक सम्बन्धों से बाहर भी पूरी की जा सकती है, और की भी जाती है। वैवाहिक और पारिवारिक सम्बन्धों के बाहर भी सन्तान उत्पन्न और पोषित की जा सकती है यद्यपि ऐसा करना असुविधाजनक अवश्य होता है। यदि विवाह और

---

* "A family is a group of persons united by the ties of marriage, blood or adoption, constituting a single house-hold, interacting and intercommunicating with each other in their respective social role of husband and wife, mother and father, son and daugher, brother and sister and creating and maintaining a common culture," —Burgess and Lock :- *The Family* : From Institution to Companionship.

† "Family is more or less a durable association of husband and wife with or without children, or a man or woman alone with children."—Ogburn and Nimkoff, *A Handbook of Sociology*.

‡ "Family is a group of persons who live under the same roof, are connected by blood and own a consciousness of kind on the basis of locality, interest and mutuality of obligations."

—D. N. Majumdar, *Races and Cultures of India*.

परिवार का जैवकीय आधार मान भी लिया जाय तो विवाह और परिवार की भिन्न किस्मों का कारण हमें जैवकीय कारक में नहीं मिलता। यौन इच्छा स्त्री-पुरुष के शारीरिक सम्बन्ध का कारण है परन्तु विवाह का नहीं।

कुछ लेखकों ने दूसरे जैवकीय कारक पर बल दिया है। गर्भावस्था और बाद के (lactation) लम्बे काल तक पुरुष-स्त्री और बाद में अपनी सन्तान की रक्षा करता है और उनके लिये भोजन जुटाता है जो वे स्वयं जुटाने में असमर्थ हैं। परन्तु यह भी केवल स्त्री के ही दृष्टिकोण से सही मालूम पड़ता है। किसी पुरुष में यह कार्य करने की कोई जैवकीय आवश्यकता या शरीरशास्त्रीय प्रेरणा नहीं होती। अन्य जातियों (species) की स्त्रियाँ भी इसी प्रकार अशक्त हो जाती हैं परन्तु उनकी देख-भाल आवश्यक रूप से कोई नहीं करता। बल्कि सभ्य समाजों में भी अपनी सन्तानों को त्यागने वाले माता-पिताओं की संख्या वेग से बढ़ रही है।

राल्फ लिन्टन (Ralph Linton) का कथन है कि परिवार बनाने और विवाह करने का एक मुख्य कारण है। यौन सम्बन्ध में निरन्तरता विवाह द्वारा ही सम्भव है। व्यक्ति को वैयक्तिक सम्बन्धों की सुरक्षा (security) और मैत्रीपूर्ण साथी और प्रतिक्रिया की इच्छा होती है। परन्तु इस तर्क को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। वेश्यावृत्ति की संस्था का इतिहास इस बात का खण्डन करता है। यदि व्यक्ति को अपने यौन सम्बन्धों की सुरक्षा की इच्छा होती तो वेश्यावृत्ति का कभी भी जन्म नहीं होता। वैयक्तिक सम्बन्धों में यह कहा जा सकता है कि पुरुष की यह इच्छा अन्य पुरुषों, न कि स्त्री, की संगति से पूरी हो सकती है। सामान्य स्वभाव, रुचि और मनोवृत्ति होने पर पुरुष भी अच्छे साथी हो सकते हैं।

वास्तव में, परिवार की उत्पत्ति का जवाब हमें समाज और संस्कृति में मिल सकता है। परिवार कुछ ऐसे कार्य करता है, जिसका आगे वर्णन करेंगे, जिसे कोई अन्य समूह इतनी खूबी के साथ नहीं कर सकता। परिवार की भिन्न किस्मों का होना समाजों की संस्कृतियों पर और उनके अन्तर पर निर्भर करता है।

मानव कुटुम्ब की सामान्य विशेषतायें
(General characteristics of the family)

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। जहाँ कहीं भी इस संसार में मनुष्य जाति पाई जाती है वहाँ कुटुम्ब की संस्था भी विद्यमान है। उनमें कुछ मूलभूत (fundamental) ऐसी बातें हैं जो सामान्य रूप से विश्व में समस्त परिवारों में पाई जाती हैं तथा जिनके द्वारा परिवार को जाना जा सकता है।

मेकाइवर और पेज के अनुसार सब जगह मानव समाज में परिवार की कुछ सामान्य विशेषतायें पाई जाती हैं जिनमें से निम्नलिखित पाँच मुख्य हैं।

(१) यौन सम्बन्ध (a mating relationship) : स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्ध के आधार पर अथवा यौन इच्छा (sex instinct) की पूर्ति के लिये ही परिवार की स्थापना हुई है। इसलिए प्रत्येक परिवार की यह पहली विशेषता है।

(२) किसी प्रकार का विवाह या कोई दूसरा संस्थात्मक प्रबन्ध (institutional arrangement) जिसके अनुसार यौन सम्बन्ध स्थापित किया जाता है : प्रत्येक संस्कृति में परिवार की स्थापना स्त्री-पुरुष के विवाह के बाद ही होती है चाहे वह विवाह एक पुरुष और एक स्त्री के बीच हो या एक पुरुष और एक से अधिक स्त्रियों के बीच हो या एक स्त्री और एक से अधिक पुरुषों के बीच हो। इसके अतिरिक्त कुछ समाजों में रखेल रखने की भी प्रथा है। यह रखेलें परिवार का ही अंग समझी जाती हैं और इनके साथ यौन सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। चीन के संभ्रान्त परिवारों में रखेलें रखना एक आवश्यक विषय समझा जाता रहा है।

(३) वंशावली (system of nomenclature) और वंश का नाम : प्रत्येक परिवार के वंश का नाम भी होता है। इसी वंश के नाम के आधार पर एक परिवार और दूसरे परिवार में भेद किया जाता है। अधिकतर परिवारों का नाम पिता के नाम पर चलता है और कुछ थोड़े से परिवारों का नाम माता के नाम पर चलता है। पिता के नाम से चलने वाले वंश को पितृवंशीय (patrilineal) और माता के नाम से चलने वाले वंश को मातृवंशीय (matrilineal) कहते हैं।

(४) प्रत्येक परिवार के सभी सदस्यों के सहयोग से आर्थिक प्रबन्ध होता है जिसमें सन्तानोत्पत्ति तथा संतान के पालन-पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रत्येक परिवार का यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने सदस्यों के लिये रोटी कपड़े का प्रबन्ध करे तथा अन्य आर्थिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करे। इसमें सन्तानों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है, परिवार के बड़े सदस्य स्वयं कष्ट सहकर भी सन्तानों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

(५) एक सामान्य निवास, घर या गार्हस्थ्य : परिवार के सभी सदस्य एक मकान में रहते हैं और उनकी सामान्य गृहस्थी होती है।

परिवार संगठन की अपूर्व विशेषतायें
(Distinctive features of the family organisation)

समाज के अन्दर पाये जाने वाले सभी छोटे और बड़े संगठनों में समाजशास्त्रीय महत्ता (sociological significance) में कोई भी परिवार को नहीं पा सकता है। परिवार समाज के सम्पूर्ण जीवन पर अनेक प्रकार से प्रभाव डालता

है और उसके परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब (reflection) सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचे पर पड़ता है। इसमें अनगिनती परिवर्तन होते हैं फिर भी यह संस्था आश्चर्यजनक दृढ़ता और स्थिरता प्रदर्शित करती है। यह अन्य समितियों से सर्वथा भिन्न है जिसमें उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित अपूर्व विशेषतायें (distinctive features) मिलती हैं :—

(१) **सार्वभौमिकता (Universality) :** परिवार सभी सामाजिक संघों में सबसे अधिक सार्वभौमिक है। यह सभी समाजों में पाया जाता है, सामाजिक विकास की सभी अवस्थाओं में पाया जाता है और पशुओं तक में भी पाया जाता है। सभी व्यक्ति किसी न किसी परिवार के सदस्य हैं या सदस्य रहे हैं।

(२) **भावनात्मक आधार (Emotional Basis) :** परिवार का जन्म यौन सम्बन्ध, सन्तानोत्पत्ति, मातृप्रेम और माता-पिता की देख-रेख जैसी शक्तिशाली मूल-प्रवृत्तियों (impulses) के आधार पर होता है। अन्य समूहों का आधार इस प्रकार की भावनायें नहीं होती हैं।

(३) **रचनात्मक प्रभाव (Formative Influence) :** यह सभी प्राणियों का सर्वप्रथम सामाजिक पर्यावरण (earliest social environment) होता है और व्यक्ति के चरित्र-निर्माण में इसका प्रभाव सबसे अधिक पड़ता है। शिशुकाल में परिवार का जो प्रभाव पड़ता है वही व्यक्तित्व को निश्चित करता है। शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का विकास परिवार में होता है। नैतिक व सामाजिक गुण भी व्यक्ति परिवार से प्राप्त करता है।

(४) **सीमित आकार (Limited Size) :** परिवार हमारी जैवकीय दशाओं पर निर्भर करता है। इसलिए परिवार के सदस्य साधारणतया वही होते हैं जिनमें रक्त सम्बन्ध होता है। इसी कारण परिवार के सदस्यों की संख्या कम होती है अथवा परिवार का एक सीमित आकार होता है। अन्य समूह जैवकीय दशाओं पर आधारित नहीं होते, इसलिये उनकी सदस्यता की संख्या में कोई रुकावट नहीं होती और उनका असीमित आकार होता है।

(५) **सामाजिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति (Nuclear position in the social structure) :** यह सभी सामाजिक संगठनों का केन्द्र है। साधारणतया सभी समाजों में सामाजिक ढाँचा परिवार की इकाइयों (units) से ही बना होता है। केवल अत्यन्त गूढ़ सभ्यताओं में ही परिवार यह कार्य नहीं करता है। अनेक परिवारों के जोड़ से ही अन्य सामाजिक संगठन बने हैं। इसलिए अरस्तू ने समुदाय की परिभाषा देते हुए उसे 'कुटुम्बों का संघ' (union of families) कहा था।

(६) **सदस्यों का उत्तरदायित्व (Responsibilities of the members) :** अन्य समितियों की अपेक्षा परिवार अपने सदस्यों पर लगातार और बड़ी-बड़ी

माँगें रखता है। संकट के समय व्यक्ति अपने देश के लिये कार्य करें, युद्ध करें तथा मर भी सकते हैं, परन्तु परिवार के लिये वे सदा ही कुछ न कुछ करते रहते हैं। परिवार के सदस्य एक दूसरे के सुख के लिये और समृद्धि के लिए अपने सुखों को बलिदान भी कर सकते हैं। परिवार के कार्यों का कोई आदि और अन्त नहीं होता है।

(७) **सामाजिक नियम (Social Regulation)**: परिवार सामाजिक निषेधों तथा कानूनी नियमों के ही अनुसार कार्य करता है। आधुनिक समाज में परिवार उन थोड़े से समूहों में से एक है जिनमें प्रवेश स्वच्छन्दतापूर्वक किया जा सकता है परन्तु जिनको छोड़ना या भंग करना सरल नहीं होता।

(८) **इसका स्थाई एवं अस्थाई रूप (Its permanent and temporary nature)**: जब कि संस्था के रूप में परिवार सबसे अधिक स्थाई और सार्वभौमिक है, समिति (association) के रूप में यह समाज के सब महत्वपूर्ण संगठनों में सबसे अधिक अस्थाई और परिवर्तनशील है। किसी व्यक्ति की मृत्यु, कारावास, त्याग या तलाक से यह समिति भंग हो सकती है परन्तु संस्था के रूप में यह विनाश से परे है।

मनुष्य का परिवार में रहना क्यों आवश्यक है ?

संसार भर में अधिकतर मनुष्य परिवार में रहना लाभदायक और उचित समझते हैं बनिस्बत अकेले रहने के। इसके अनेक कारण हैं परन्तु हम केवल उन्हीं लाभों का यहाँ पर वर्णन करेंगे जो कि संसार भर में सर्वत्र पति और पिता पर विशेष प्रभाव डालते हैं :—

(१) पुरुष का स्त्री के प्रति यौन सम्बन्धी आकर्षण (sexual attraction) जो स्त्री के लिए भी महत्वपूर्ण है, उसको परिवार में ही रहने को बाध्य करता है। प्रत्येक सभ्य समाज में किसी भी व्यक्ति को इधर-उधर प्रेम प्रदर्शित करते फिरने की आज्ञा नहीं मिलती है और यदि वह ऐसा करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है अथवा उसमें निरन्तर संतोष प्राप्त करने में असफल रहता है अथवा दोनों ही अवस्थाओं को प्राप्त होता है। आदिम जातियों में भी—जहाँ कहीं उसे इस कार्य के लिए दण्डित नहीं किया जाता है—पुरुष के लिए यह बहुत कठिन है कि वह निरन्तर और सावधान यौन-सम्बन्ध का प्रबन्ध करे, क्योंकि वह ऐसी स्त्री अथवा स्त्रियों के प्रति कोई सामाजिक उत्तरदायित्व अनुभव नहीं करता है।

(२) प्रत्येक समाज में स्त्री और पुरुष के बीच श्रम विभाजन (division of labour) होता है और ऐसी अवस्था में मनुष्य अनुभव करता है कि एकाकी जीवन यदि असम्भव नहीं तो, निराशाजनक और कष्टप्रद अवश्य होता है। जिस समाज में केवल स्त्रियाँ ही भोजन पकाना जानती हैं वहाँ पुरुष के लिये पत्नी रखना अनिवार्य

है, यदि वह ठीक से भोजन प्राप्त करना चाहता है। ऐस्कीमो लोगों में केवल स्त्रियाँ ही ऊनी वस्त्र सिलना जानती हैं जो कि पुरुष शिकारी के जीवन के लिए अनिवार्य है। ऐसी दशा में घर में स्त्री का उपस्थित रहना आवश्यक हो जाता है।

(३) मनुष्यों में एक प्रवृत्ति यह भी होती है कि वे अपनी आशाओं और आकाँक्षाओं को अपने बच्चों में फलीभूत होता देखना चाहते हैं। मनुष्य सबके सम्मुख यह स्वीकार करता है कि कोई उसका बच्चा है और वही उसके वंश को चलायेगा, सम्पत्ति का अधिकारी होगा और अपने पिता का प्रतिरूप होगा। ऐसी दशा में प्रत्येक व्यक्ति यही कामना करता है कि वे कार्य व क्षेत्र, जिनमें वह स्वयं असफल रहा है, वह उसकी सन्तानों द्वारा परिपूर्ण हों। परिवार के बाहर सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा समाज नहीं देता। इसलिए केवल परिवार में ही सन्तान उत्पन्न करके किसी व्यक्ति की उपर्युक्त कामना पूरी हो सकती है।

संस्था और समिति के रूप में परिवार

संस्था किसी भी कार्य को करने का संगठित ढंग है, समिति उस कार्य को करने वाला एक संगठित समूह है। संस्था के रूप में परिवार बच्चों की उत्पत्ति और पालन-पोषण के लिए प्रमाणित, औपचारिक, और नियमित ढंग है; समिति के रूप में वह एक समूह है जो उपर्युक्त कार्य करता है। हम परिवार की समिति के सदस्य होते हैं, न कि परिवार की संस्था के। समिति के रूप में परिवार का अपना एक स्थान, पता होता है परन्तु संस्था के रूप में परिवार के लिए किसी स्थान-विशेष का प्रश्न ही नहीं उठता। वह तो हर जगह विद्यमान है। संस्था के रूप में परिवार सब सामाजिक संस्थाओं से अधिक स्थायी है परन्तु समिति के रूप में यह अत्यधिक रूप से अस्थायी है, अपने व्यक्तिगत सदस्यों के जीवन काल में ही अक्सर नष्ट हो जाता है, चाहे इसका कारण तलाक़, त्याग, कारावास हो।*

* "In these terms it is clear, therefore, that *the family* is an insitution, *a family* an association. *The* family is a standardized, formalized, and regularized procedure for the procreation and rearing of children; *a* family is a group that carries on these activities—your family, my family, any family.... We can all belong to *a* family, and most of us do; but none of us can belong to *the* family. *A* family, in addition, always has a location, an address, but the question of locus makes no sense with respect to *the* family. *The* family, finally, is one of the most durable of all social institutions; *a* family on the contrary, is one of the most temporary of human associations, so temporary indeed that it cannot survive the lifetime of his individual members."—Bierstedt, *The Social Order*.

परिवार के कार्य व महत्व
(Functions and importance of family)

परिवार का मुख्य कार्य मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।* यौन और माता-पिता के कार्य इसकी प्रमुख विशेषता हैं और सभी संस्कृतियों में पाये जाते हैं। वास्तव में परिवार के कार्य लचीले होते हैं। परिवार थोड़े या बहुत कार्य कर सकता है। यौन और माता-पिता के कार्यों के अतिरिक्त परिवार अपने सदस्यों के लिये आर्थिक सेवाओं (economic services) का प्रबन्ध कर सकता है, शिक्षा प्राप्त करने में सहायता दे सकता है, धार्मिक विषयों में पथ-प्रदर्शक बन सकता है, मनोरंजन का प्रबन्ध कर सकता है, नाना प्रकार के खतरों से रक्षा कर सकता है और स्नेह और आर्थिक सम्बन्ध प्रदान कर सकता है। किसी संस्कृति में परिवार के महत्व को समझने के लिये यह आवश्यक है कि इस बात का पता लगाया जाय कि परिवार कौन-कौन से कार्य करता है। इस प्रकार परिवार को, उसके बदलते हुए संगठन और कार्यों में ही समझा जा सकता है।

परिवार की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता, जो कि आजकल अपना महत्व खो रही है, यह है कि उत्पादन तथा उपयोग के लिये यह एक आर्थिक इकाई का कार्य करता है। परिवार का उत्पादन कार्य उस समय अधिक महत्वपूर्ण होता है जबकि बच्चों के पालन-पोषण आदि के खर्चे किसी व्यक्ति के आर्थिक साधनों पर बल डालते हैं। ऐसी दशा में परिवार स्वयं उत्पादन और उपभोग दोनों ही करते हैं। परिवार का कार्य बच्चों की भौतिक आवश्यकताओं तक ही नहीं सीमित है, बल्कि इसका मुख्य कार्य बच्चों के अन्दर सामाजिक समूह के विचारों, तरीकों और रीति-रिवाज़ों को बैठा देना है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी साँस्कृतिक विरासत पहुँचाने के लिए (transmission) यह समाज की सबसे प्रभावशाली संस्था है। परिवार के कार्यों को हम निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं :

(१) जैवकीय कार्य (Biological Functions)

(अ) **यौन सम्बन्धी इच्छा की पूर्ति**—भोजन के पश्चात् यौन ही मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यह इच्छा परिवार में ही स्थायी रूप से पूरी हो सकती है। सभ्य समाजों में इधर-उधर प्रेम प्रदर्शित करते फिरने वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया जाता है। जिन आदिम जातियों में परिवार के बाहर यौन-सम्बन्ध स्थापित करने पर दण्ड नहीं दिया जाता है वहाँ भी इस कार्य में निरन्तर सफल होना सम्भव नहीं है क्योंकि कोई व्यक्ति ऐसी स्त्रियों के प्रति सामाजिक उत्तरदायित्व अनुभव नहीं करता। इसलिये यह आवश्यक नहीं है कि वे स्त्रियाँ किसी पुरुष की कामेच्छा

* "The basic task of the family is to serve human needs."—Elmer.

पूरी करें ही। इसके विपरीत परिवार व्यक्ति की कामेच्छा की पूर्ति का स्थायी प्रबन्ध करता है।

(ब) **सन्तानोत्पत्ति का कार्य**—स्त्री और पुरुषों में माता या पिता बनने की एक मूल प्रवृत्ति होती है। परिवार इस मूल प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करता है। वैसे सन्तानोत्पत्ति परिवार के बाहर भी हो सकती है परन्तु कहीं भी अवैध सन्तानों को समाज स्वीकार नहीं करता है। केवल परिवार के अन्दर ही, कुछ नियमों के अन्तर्गत ही, विवाह के बाद ही, माता-पिता के सन्तानों के प्रति कर्त्तव्यों को स्वीकार किया जाता है।

(स) **प्रजाति का विकास**—प्रजाति का विकास (perpetuation of race) करना परिवार का प्रमुख कार्य है। यदि परिवार सन्तान न उत्पन्न करे और बूढ़े व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हों तो शीघ्र ही ऐसा समय आ जायेगा जबकि मनुष्य जाति का ही नाश हो जायेगा। परिवार सन्तानोत्पत्ति द्वारा प्रजाति को नष्ट होने से बचाता ही नहीं है बल्कि उसका विकास भी करता है।

(२) शारीरिक देख-रेख का कार्य (Physical care)

(अ) **बच्चों का पालन-पोषण**—बच्चा असहाय अवस्था में जन्म लेता है और बिना माता-पिता की देख-रेख के जीवित नहीं रह सकता। इसलिये बच्चे के पालन-पोषण सम्बन्धी कार्य के अन्दर शस्त्र चलाने, भोजन, वस्त्र तथा मकान बनाने व प्राप्त करने की विधि की शिक्षा भी सम्मिलित है।*

परिवार ही व्यक्ति को जीवन और जीवित रहने का अवसर देता है। अनेक बच्चे जो कि अवैध सम्बन्धों के कारण गर्भ में आते हैं भ्रूण-हत्या (abortion) के कारण नष्ट हो जाते हैं, अथवा जन्म लेने के बाद उनकी हत्या कर दी जाती है जिससे उनकी जन्मदात्री बदनामी से बच सके।

(ब) **सदस्यों की शारीरिक रक्षा**—इस कार्य के अन्दर शारीरिक चोट व बीमारी की रक्षा, घायल व अपाहिज की सेवा और जन्म के समय और बाद में माँ और नवजात शिशु की देख-रेख सम्मिलित है।

(स) **भोजन का प्रबन्ध**—परिवार का यह भी कार्य है कि वह अपने सदस्यों के लिये भोजन का प्रबन्ध करे और आयु और लिंग के आधार पर उसका वितरण करे।

(द) **स्थान व कपड़ों की व्यवस्था**—परिवार के सदस्यों के रहने के लिए एक सामान्य घर या मकान होना चाहिए और उसके लिए वस्त्रों का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए। परिवार का यह कार्य है कि वह इन वस्तुओं का किसी प्रकार से प्रबन्ध करे।

---

* Elmer, *Sociology of the Family*.

(३) आर्थिक कार्य (Economic Functions)

परिवार एक महत्वपूर्ण आर्थिक इकाई है। इसमें परिवार के समस्त सदस्य सामूहिक रूप से धनोपार्जन करते हैं और वह धन सामूहिक रूप से व्यय किया जाता है। प्रायः परिवार का व्यवसाय वंशानुगत होता है। परिवार के सदस्य केवल अपने ही स्वार्थ को दृष्टि में रखकर धनोपार्जन नहीं करते हैं बल्कि सम्पूर्ण परिवार के हित के लिए धन अर्जित करते हैं।

(अ) **श्रम-विभाजन**—परिवार में लिंग और आयु के आधार पर सदस्यों के कार्य निश्चित होते हैं। स्त्रियों और पुरुषों के कार्य जिस प्रकार भिन्न-भिन्न होते हैं उसी प्रकार बच्चों, वयस्कों और बूढ़ों के भी कार्य अलग होते हैं।

(ब) **आय का प्रबन्ध**—परिवार का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है कि वह अपने सदस्यों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धन का प्रबन्ध या उपार्जन करे।

(स) **सम्पत्ति का प्रबन्ध**—प्रत्येक परिवार की थोड़ी या बहुत सम्पत्ति अवश्य होती है चाहे वह मकान, जेवर, दुकान, खेत या नकद मुद्रा के रूप में हो। इस सम्पत्ति का उचित प्रबन्ध करना परिवार का एक आर्थिक कार्य है।

(द) **उत्तराधिकारी**—प्रत्येक परिवार में उत्तराधिकार की प्रथा होती है। साधारणतया पितृवंशीय परिवारों में पुत्र ही सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं। वैसे कहीं-कहीं लड़कियों को भी पिता की सम्पत्ति का एक भाग मिलता है। मातृवंशीय परिवारों में केवल लड़कियाँ ही सम्पत्ति की अधिकारिणी होती हैं। यह निश्चित करना कि किस सन्तान के भाग में परिवार की सम्पत्ति का कौन सा भाग जायगा परिवार का एक आर्थिक कार्य है।

(४) शैक्षिक कार्य (Educational Functions)

साधारणतया बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा परिवार में ही मिलती है। हमारे जैसे निर्धन देश में जहाँ प्रत्येक के लिये स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करना सम्भव नहीं है, वहाँ अनेक परिवार ही अपने बच्चों को शिक्षा देते हैं। इस प्रारम्भिक शिक्षा का बच्चे के चरित्र पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। बच्चों की शिक्षा माता-पिता का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य है क्योंकि बच्चे की अज्ञानता का दोष बच्चे पर नहीं बल्कि बच्चे के माता-पिता पर लगाया जाता है। चीन में कहावतें प्रसिद्ध हैं—(अ) सन्तान की अज्ञानता माता-पिता का दोष है (Ignorance of the child is the fault of the parents); (ब) माता-पिता ही बच्चे की प्रथम दो पुस्तकें हैं (parents are the child's first two books)। मूर (Moore) ने कहा है

कि शिक्षा देने वाली संस्था के रूप में उसकी कार्य-कुशलता पर ही सम्पूर्ण समाज की सुरक्षा और अच्छी किस्म अवलम्बित है ।*

किसी ने कहा है कि परिवार सामाजिक जीवन का अमित स्रोत है । प्रारम्भ में बच्चा परिवार में खाने-पीने, बातचीत करने तथा वस्त्र आदि पहनने की समुचित शिक्षा पाता है । परिवार एक बहुत बड़ा कारखाना है जहाँ पर एक अबोध बालक सभ्य और विचारशील व्यक्ति में परिवर्तित किया जाता है । बच्चा अनुकरण (imitation) के द्वारा अपने परिवार वालों की भाषा व आदतें सीखता है और उन्हीं के आधार पर अपना जीवन बनाता है । विश्व की अनेक महान् आत्माओं ने यह घोषित किया है कि उनके उत्थान का एकमात्र कारण उनकी मातायें रही हैं ।

(५) सामाजिक कार्य (Social Functions)

(अ) किसी परिवार के साथ अपना सम्बन्ध होने के कारण ही कोई व्यक्ति समाज में अपने पद या स्थान (status) का पता लगाने में समर्थ होता है । प्रत्येक परिवार का समाज में एक निश्चित स्थान होता है और बच्चा अपने माता-पिता का नाम धारण करने के कारण ही वैसा स्थान प्राप्त करता है । इसलिये परिवार को समाज का स्थिति पैदा करने वाला प्रतिनिधि (status-giving agent of society) कहा जाता है ।

प्रत्येक समाज में सामाजिक स्तरण (stratification) का अपना ढंग होता है । इस स्तरण-संरचना (stratification-structure) में व्यक्ति का समाज में पद अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा से निश्चित होता है । राबर्ट विन्च ने कहा है कि जन्म के समय व्यक्ति अनेक प्रकार के प्रारम्भिक पद (status) प्राप्त करता है, और इनमें से अधिकतर उस परिवार और रक्त सम्बन्धी (kinship) संगठन से निश्चित होते हैं जिनमें उसने जन्म लिया है । जैसे-जैसे वह बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रविष्ट होता है उसके ऐसे कुछ पद अवश्य रहते हैं जो कि किसी परिवार के सदस्य होने के कारण उसको प्रदान किये जाते हैं । विन्च के अनुसार परिवार व्यक्ति को दो प्रकार के पद प्रदान करता है : (१) वे जो कि परिवार के अन्य सदस्यों के साथ उसके सम्बन्ध के फल हैं, जैसे कि वह किसी का भाई, पिता, चाचा, भतीजा, आदि होता है, (२) जो कि परिवार के अन्य सदस्यों की भाँति वह भी बाहरी समाज के साथ अपने सम्बन्ध में पाता है, जैसे कि वह नागरिक (urban), प्रोटेस्टेंट, हिन्दू, यहूदी, मध्यम् वर्ग (middle-class) का व्यक्ति कहलाता है क्योंकि स्वयं उसके परिवार का समाज में ऐसा ही पद है ।

---

* "Upon its efficiency as an educational agency primarily depend the security and the quality of society as a whole."

—*An Introduction to Sociology.*

(ब) परिवार अपने सदस्यों की रक्षा अनेक प्रकार की सामाजिक दुर्घटनाओं से करता है। किसी सदस्य का दिवालिया होना, बदनाम होना, अपमानित होना परिवार की प्रतिष्ठा पर आक्रमण है। इसलिये परिवार इन सब सामाजिक दुर्घटनाओं से हमारी रक्षा करता है।

(स) परिवार अपने सदस्यों के जीवन साथियों के चुनाव में एक महत्वपूर्ण भाग लेता है।

(६) सामाजिक नियन्त्रण का कार्य (Social Control)

परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्य सामाजिक नियंत्रण में मदद करना है। परिवार में ही उसे सामाजिक निममों के अनुरूप व्यवहार करने की सबसे पहले शिक्षा दी जाती है। माता-पिता की नक़ल करके बच्चा समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार करना सीखता है। परिवार में वह वे सब गुण विकसित करता है जो उसे समाज के साथ सामंजस्य करने योग्य बनाते हैं। दूसरी ओर, जिन परिवारों में लड़ाई झगड़े, त्याग, तलाक़ आदि की घटनायें होती हैं वे बाल-अपराध के कारण होते हैं। माता-पिता का दुश्चरित्र होना, शराब पीना, जुआ खेलना आदि बच्चों के ऊपर बुरा प्रभाव डालता है। व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर परिवार सामाजिक नियंत्रण का एक साधन बनता है।*

(७) साँस्कृतिक कार्य (Cultural Functions)

परिवार के अन्दर ही रहकर जीवन के प्रथम काल में ही स्व (self) उदित होता है। शिष्टाचार व भावपूर्ण व्यवहार के द्वारा शिशु के व्यक्तित्व का विकास होता है। परिवार अपने सदस्यों को लोकरीति (folklore), नैतिक व धार्मिक परम्परायें, समाज के रीति-रिवाज व भावनायें प्रदान करता है। संस्कृति में जो ज्ञान सन्तान को होता है वह इस बात पर निर्भर करता है कि परिवार संस्कृति के अर्थ किस प्रकार बतलाता है। विभिन्न व्यक्तियों के विभिन्न साँस्कृतिक स्तर इसी पर निर्भर करते हैं। परिवार हमको इस योग्य बनाता है कि हम समाज में नियमों का पालन करते हुए और दूसरों के अधिकारों का आदर करते हुए रहें। इसलिए, परिवार को समाजीकरण करने वाली संस्था (socializing agency) भी कहा जाता है। इसी में परिवार का समाजशास्त्रीय महत्त्व अन्तर्निहित है।

संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण करना परिवार का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। यह कहा जा सकता है कि पुस्तकों, लायब्रेरी, स्कूल, म्यूजियम के द्वारा शिक्षा की संस्था भी यह कार्य कर सकती है परन्तु पहले तो,

---

* आगे सामाजिक नियंत्रण के माध्यम के रूप में परिवार की व्याख्या पृष्ठ ३९ पर की गई है।

भारत जैसे अनेक देश हैं जहाँ कि अधिकतर जनसंख्या अशिक्षित है और दूसरे, हमारी संस्कृति का एक बड़ा भाग गैर-शिक्षा सम्बन्धी (non-literary) किस्म का होता है। विचारों, विचार-भावनाओं (ideologies), और रूढ़ियों (mores) के हस्तान्तरण में परिवार विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। सत्य तो यह है कि हमारे सभी नैतिक विचारों का स्रोत परिवार ही है। हमारे परिवार ही सबको बताते हैं कि क्या उचित है और क्या अनुचित है, क्या अच्छा है, और क्या बुरा है, किस वस्तु की इच्छा करनी चाहिये और किससे बचना चाहिए, किस प्रकार विजय प्राप्त करना चाहिये और किस प्रकार हारना चाहिये, क्या अपने पास रखना चाहिए और क्या बाँट कर लेना चाहिए, क्या सीखना चाहिए और क्या नहीं सीखना चाहिये, कब समर्पण करना चाहिए और कब डट कर मुकाबला करना चाहिये। यह सब मनोवृत्तियाँ और विचार हमें परिवार से मिलते हैं। यद्यपि बड़े होने पर स्वयं तर्क करके हम निर्णय लेते हैं और अपनी समस्याओं का हल निकालते हैं परन्तु परिवार के प्रारम्भिक काल में आत्मसात किये हुये संस्कृति के भार से हम मुक्त नहीं हो पाते हैं।

प्रत्येक अन्य समूह की भाँति प्रत्येक परिवार की अपनी उप-संस्कृति (sub-culture) होती है, उसके अपने धार्मिक संस्कार, प्रतीक (symbols) और अनुष्ठान (ceremonies) होते हैं, काम करने का अपना एक अलग तरीका होता है। परिवार जिस समाज का एक अंग है उसकी संस्कृति तो वह हस्ताँतरित करता ही है परन्तु कुछ विषयों में उससे मतभेद रखता है और अपनी लघुरूप (miniature) संस्कृति रखता है।

(८) कार्य-परिभाषा (Role definition)

परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्य बच्चे में स्व (self) की भावना विकसित करना है। क्योंकि मानव शिशु असहाय पैदा होता है इसलिये यह आवश्यक है कि अपने परिवार के अन्दर प्रारम्भिक सामाजिक सम्पर्क से वह सुरक्षा की भावना विकसित करे। बच्चे के प्रति स्नेह, देख-भाल, रक्षा, सिखाने, और खाने-पीने, सोने-खेलने, शरीर की देख-भाल करने की आदतों की ट्रेनिंग देने से उसमें सुरक्षा की भावना उदय होती है। इससे उसमें स्थिरता (stability) उत्पन्न होती है जो आगे सीखने के लिये आवश्यक है।

सुरक्षा की भावना इस बात से सम्बन्धित है कि शिशु अपने कार्य की स्वयं किस प्रकार परिभाषा करता है। अक्सर उसमें तिरस्कृत होने, भेद-भाव किये जाने, और हीनता की भावना विकसित हो जाती है जो जीवन पर्यन्त उसके व्यक्तित्व को प्रभावित रखती है। जिस प्रकार माता-पिता उसके प्रति व्यवहार करते हैं वैसी ही धारणा वह स्वयं अपने बारे में बना लेता है। माता-पिता का ईमानदारी, सच्चाई,

धैर्य, निष्ठा आदि गुणों की चर्चा करना उस पर अच्छा प्रभाव डालता है परन्तु इन बातों से अधिक उनके वाह्य (overt) कार्यों से उस पर प्रभाव पड़ता है।

(९) स्नेह सम्बन्धी कार्य (The Affectional Function)

सन्तानोत्पत्ति और समाजीकरण ही परिवार के मुख्य कार्य नहीं हैं क्योंकि वे तो केवल ऐसे विवाहित जोड़ों से सम्बन्धित हैं जिनके सन्तानें उत्पन्न होती हैं। वास्तव में ऐसे अनेक विवाहित स्त्री-पुरुष हर समाज में होते हैं जिनके सन्तान नहीं होती, कुछ लोगों के विवाह के अनेक वर्षों बाद सन्तान होती है, कुछ लोगों के बच्चे बड़े होकर अपने माता-पिता से विलग हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में पति-पत्नी को एक दूसरे के स्नेह की विशेष आवश्यकता होती है।

निर्भरता और सुरक्षा की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है। आज के सभ्य समाज में जहाँ परिवार में कम संख्या में बच्चे होते हैं और जहाँ परिवार के अनेक आर्थिक व शैक्षिक कार्यों को छीन लिया गया है, पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति स्नेह, संगति और यौन-सम्बन्धी आकर्षण पर अधिक निर्भर करते हैं। जैसे-जैसे समाज परिवार से अनेक कार्यों को हटाता जाता है, अनेक समूहों में यह विचार विकसित होता जाता है कि पति-पत्नी में केवल शारीरिक स्तर पर ही नहीं बल्कि उद्वेगात्मक (emotional) सम्बन्धों में भी पारस्परिक प्रशंसा और आदर, और एक दूसरे को प्रसन्न रखने की इच्छा प्रबल होनी चाहिये।

(१०) धार्मिक कार्य (Religious Functions)

परिवार में अनेक धार्मिक एवं अध्यात्मिक बातों की शिक्षा के लिए पृष्ठ-भूमि तैयार होती है और बच्चों के आध्यात्मिक तथा धार्मिक गुणों का विकास होता है। प्रत्येक परिवार किसी न किसी धर्म में आस्था रखता है। परिवार के समस्त सदस्य सामान्य रीति से ईश्वर की उपासना करते हैं। परिवार धर्म का एक मुख्य केन्द्र है। यहाँ धार्मिक उत्सवों का महत्व, उनमें भाग लेने के नियम व विधियाँ, पाप-पुण्य के भेद का ज्ञान प्राप्त होता है। माता-पिता के धार्मिक आचरण बालक के सामने आदर्श होते हैं। बच्चे इन समस्त गुणों को सीखते हैं।

(११) मनोरंजनात्मक कार्य (Recreational Functions)

आधुनिक-युग में, जबकि मनोरंजन के साधन अत्यन्त मूल्यवान हो गये हैं, इस देश के निर्धन और अन्य वर्ग के लोगों के बच्चों का मनोरंजन घर ही में होता है। सामुदायिक मनोरंजन के अभाव में इस क्षेत्र में परिवार की महत्ता हमारे देश में बढ़ गई है। परिवार मनोरंजन का एक ऐसा केन्द्र है जो बिना पैसे के बहुत ही स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन की व्यवस्था करता है। यदि दिन भर परिश्रम करने के बाद मनुष्य का बिल्कुल भी मनोरंजन न हो उसका जीवन दूभर हो जायगा। वास्तव में परिश्रम

के साथ ही मनोरंजन भी मानव स्वभाव की एक माँग हैं। परिश्रम से थके हुए मनुष्य में मनोरंजन नवजीवन का संचार करता है। एक थका हुआ व्यक्ति अपने श्रम को भूल जाता है। वह अपनी स्त्री व बच्चों के साथ रहकर आनन्द का अनुभव करता है। समय-समय पर उत्सव, त्योहार तथा अन्य कार्यक्रम भी उसका मनोरंजन करते हैं। ऐसे अवसरों पर व्यक्ति कुछ क्षणों के लिये समस्त चिन्ताओं को भूल कर स्वर्गीय आनन्द में डूब जाता है।

(१२) मानवीकरण का कार्य (Function of Humanization)

प्रत्येक मनुष्य के अन्दर लालसा, लालच, प्रतिशोध आदि की जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती हैं जो कि वास्तव में पाशविक प्रवृत्तियाँ होती हैं। परिवार सहानुभूति के द्वारा हमें इस योग्य बनाता है कि हम इन प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करें। इसलिये परिवार को मानवीकरण करने वाली संस्था (humanizing agency) कहा जाता है।

(१३) राजनीतिक कार्य (Political Functions)

परिवार का राजनीतिक महत्व भी है। यह एक प्रशासकीय इकाई भी है। इसको हम राज्य का सूक्ष्म आकार कह सकते हैं क्योंकि भूमि, जनसंख्या, सरकार आदि राज्य के तत्व परिवार में भी पाये जाते हैं। परिवार के सदस्य जनसंख्या, परिवार का निवास-स्थान भूमि, और परिवार के प्रधान शासक के रूप में होते हैं। परिवार का प्रधान समस्त घरेलू झगड़ों को निपटाता है और प्रत्येक व्यक्ति को उसके निर्णयों को स्वीकार करना पड़ता है। परिवार की आज्ञा कानून से कम नहीं है।

आधुनिक युग में राज्य ने परिवार के अनेक कार्य ले लिये हैं। पहले अपने परिवार के सदस्यों की रक्षा के लिये पारिवारिक रक्तपात हुआ करते थे। अब न्याय का कार्य सरकार ने ले लिया है। रोगी की सेवा सुश्रूषा के लिये अस्पतालों के खुल जाने से परिवार का यह कार्य भी कम हो गया है। अनेक स्थानों में शिक्षा का प्रबंध राज्य की ओर से ही होता है। सिनेमा, थियेटर, सरकस आदि ने परिवार के मनोरंजनात्मक कार्य कम कर दिये हैं। परन्तु हमारे जैसे निर्धन देश में परिवार के इन सब कार्यों में उतनी कमी नहीं आई है जितनी कि योरोप के देशों में। कुछ भी हो, सभी संस्कृतियों में अब भी परिवार का महत्त्व बहुत है। परिवार के अतिरिक्त और कोई संस्था सन्तानोत्पत्ति तथा स्नेहात्मक जैसे कार्य नहीं करती है। परिवार का समाजीकरण का कार्य तो सामाजिक जीवन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। परिवार में ही बच्चे का चरित्र-निर्माण होता है जो उसे आगे चलकर एक आदर्श नागरिक बनाने में समर्थ होता है। परिवार के महत्व पर गोल्डस्टीन ने कहा है कि "परिवार वह झूला है जिसमें भविष्य का जन्म होता है और वह शिशुगृह है जिसमें नये प्रजातन्त्र का निर्माण होता है। परम्परा के द्वारा परिवार का सम्बन्ध भूतकाल से होता

है परन्तु सामाजिक उत्तरदायित्वों तथा सामाजिक विश्वासों के द्वारा परिवार भविष्य से भी सम्बन्धित है।"*

कन्फ्यूसियस नामक चीनी विद्वान का कथन है कि "मनुष्य सबसे पहले अपने परिवार का सदस्य है और फिर राज्य का जिसे परिवार के रूप पर ही अपने को बनाना चाहिये।"† चार्ल्स कूले (Charles Cooley) ने, जिन्होंने सबसे पहले प्राथमिक समूह शब्द का प्रयोग किया था, परिवार को सर्वप्रथम प्राथमिक समूह बतलाया है। परिवार में ही बच्चा असहाय अवस्था में जन्म लेता है और बिना माता-पिता की देख-रेख के जीवित नहीं रह सकता है। परिवार में प्राथमिक समूह की सभी विशेषतायें—सीमित आकार, शारीरिक निकटता, दीर्घकालीन सम्बन्ध, स्वतः जन्म, विशेष उद्देश्य का अभाव—पाई जाती हैं। इसलिए इसको एक प्राथमिक समूह कहते हैं। अपने महत्वपूर्ण कार्यों—विशेष समाजीकरण का कार्य—के कारण परिवार एक मूलभूत (fundamental) सामाजिक समूह भी कहलाता है।

प्राथमिक समूह के रूप में परिवार
(The Family as a Primary Group)

पिछले अध्याय में हम प्राथमिक समूह की विशेषताओं और महत्व की व्याख्या कर चुके हैं। यह समय और महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम समूह हैं। यह शिशुकाल और बाल्यावस्था के प्रारम्भिक काल के समूह हैं जिनका व्यक्तित्व के विकास में गहरा प्रभाव है। कूले ने इन्हें मानव स्वभाव की वृक्षारोपिणी (nursery of human nature) कहा है। यह बच्चे को स्वामिभक्ति, ईमानदारी, आकाँक्षा, और सहानुभूति जैसी भावनायें प्रदान करते हैं जिससे वह सच्चा मानव बनता है। इनका अनिवार्य गुण पारस्परिक घनिष्ठता, व्यक्तित्वों का एक दूसरे में घुल-मिल जाना, सबके स्वार्थ व सामान्य उद्देश्य के लिये कार्य करना है। यह सब विशेषतायें परिवार में सबसे अधिक मात्रा में होने के कारण और उसको व्यक्ति का प्रथम सामाजिक पर्यावरण होने के कारण, परिवार को सर्वप्रथम प्राथमिक समूह कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बचपन में अपने माता-पिता व परिवार के अन्य सदस्यों

---

* "The family is more than a legal entity or even a social institution. It is the cradle into which the future is born and the nursery in which the new democratic social order is being fashioned. The family is related to the past through tradition; but it is also related to the future through responsibility and social trust."
—Sidney E. Goldstein.

† "Man is first of all a member of a family, then of the state which should model itself on the family." —Confucius.

के प्रभाव से वह जो आदतें, विचार और मनोवृत्तियाँ बना लेता है उनका उसके भावी जीवन में भी गहरा प्रभाव पड़ता है।

इसके अतिरिक्त अन्य प्राथमिक समूहों की अपेक्षा परिवार सबसे अधिक स्थायी व स्थिर समूह है। अधिकतर हमारे प्राथमिक समूह अत्यन्त अस्थायी होते हैं। हमारे जीवन में विभिन्न काल के भिन्न साथी, सह कार्यकर्त्ता, और मित्र होते हैं। उदाहरण के लिये, जब हम कॉलेज में प्रवेश लेते हैं तो हम में से अधिकतर लोग यह भूल जाते हैं कि चौथी कक्षा में हमारा सबसे अच्छा दोस्त कौन था। कभी-कभी यह प्रारम्भिक मैत्री आगे तक भी चलती है। परन्तु अधिकतर यह देखा गया है कि परिस्थितियों के बदलने के साथ ही वह लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार, विवाह से पूर्व जो घनिष्ठ मित्र होते हैं वह अक्सर विलग हो जाते हैं और पति-पत्नी स्वयं ही नये मित्र बन जाते हैं। इसी प्रकार, कॉलेज के सहपाठी और होस्टल में कमरे में साथ रहने वाले व्यक्तियों का स्थान सह-व्यापारी और सह-पेशे वाले ले लेते हैं। यह प्रक्रिया स्वाभाविक है और अनिवार्य भी।

परन्तु परिवार एक ऐसा समूह है जिसके साथ हमारे सम्बन्ध हमेशा बने रहते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि हम अपने माता-पिता, भाई-बहन के शहर को छोड़कर कहीं दूसरे शहर में नौकरी या व्यवसाय करने लगें परन्तु इस बात के बावजूद भी पारिवारिक बन्धन कायम रहते हैं। जब तक माता-पिता जीवित रहते हैं, उनकी सन्तानें उनके साथ नाता बनाये रखती हैं जो अनोखा है।

थॉमस और नैनिकी (Znaniecki) ने कहा है कि मनुष्य के जीवन में चार मुख्य इच्छायें होती हैं जो उसे विभिन्न कार्यों के लिये प्रेरित करती हैं। यह इच्छायें हैं—प्रतिष्ठा व ख्याति (recognition), सुरक्षा (security), स्नेह (response), और नये अनुभव (new experience) की इच्छा। प्रतिष्ठा व ख्याति की इच्छा तो बड़े समाज में ही पूरी होती है जब व्यक्ति अपने महत्वपूर्ण कार्यों और उपलब्धियों (achievements) के द्वारा ख्याति प्राप्त करता है परन्तु स्नेह की इच्छा केवल प्राथमिक समूहों, विशेषकर परिवार, में ही पूरी होती है। इसी समूह में ही उसे इस बात के द्वारा प्रशंसा व स्नेह प्राप्त होता है कि मौलिक रूप से वह क्या है, न कि इस बात के लिए कि उसने क्या किया है या कर सकता है। यहाँ स्वयं व्यक्ति, न कि उसके कार्य महत्वपूर्ण हैं। उसके तमाम सामाजिक पद, जो बड़े समाज में उसके कार्यों को प्रभावित व संचालित करते हैं, परिवार में महत्वहीन हो जाते हैं, जहाँ वह केवल परिवार का एक सदस्य होने के कारण ही स्नेह प्राप्त करता है। यही बात दोस्तों के समूह के बारे में भी कही जा सकती है परन्तु परिवार अधिक स्थायी समूह है और उसके सदस्यों के पारस्परिक घनिष्ठ और व्यक्तिगत सम्बन्ध भी अधिक स्थिर होते हैं।

इस सम्बन्ध में किंग्सले डेविस ने लिखा है : "सन्तानोत्पत्ति तथा पालन-पोषण की लम्बी अवधि के बाद जब बच्चा बाहर स्वयं अपने समूह बनाने लगता है (विवाह के द्वारा), तब परिवार एक प्रकार से टूट जाता है; परन्तु इस दरम्यान सदस्यों के जैवकीय सम्बन्ध, सहयोगमय श्रम, सामान्य वर्ग-पद, दीर्घकाल तक घनिष्ठ रूप से एक साथ रहना, एक दूसरे के सुख और दुःख में शामिल होने से प्राथमिक दृढ़ता और परस्पर-निर्भरता इतनी अधिक बढ़ चुकी होती है और संवेगात्मक बन्धन इतने अधिक मजबूत हो चुके होते हैं कि सदस्यों के जीवन में और समाज में परिवार सबसे अधिक मूलभूत (fundamental) समूह होता है।

सामाजिक नियंत्रण के माध्यम के रूप में परिवार

(Family as an agency of social control)

परिवार ही वह पहला समूह होता है जिसमें व्यक्ति अपनी आदतों और मनो-वृत्तियों को बनाता है। परिवार में उत्पन्न होने के बाद सामाजिक संसार से उसका परिचय सबसे पहले अपने माता-पिता से होता है। उनसे भाषा और व्यवहार-आदर्श सीख कर वह एक सामाजिक प्राणी बनने योग्य होता है। परिवार सामाजिक स्व (social self) तथा नैतिक ज्ञान के विकास में मौलिक हैं और सामाजिक दृढ़ता और सहयोग में व्यक्ति को मौलिक प्रशिक्षण देते हैं।

जैवकीय रूप से हम में से प्रत्येक में लालसा, लालच, प्रतिशोध, शक्ति की इच्छा जैसी कुछ प्राकृतिक इच्छायें होती हैं। वास्तव में अपने रुक्ष स्वरूप (crudest form) में यह इच्छायें पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं, न कि मानव इच्छायें। चार्ल्स कूले के शब्दों में : "व्यवहार का स्पष्ट रूप से मानव स्तर केवल उस समय प्रकट होता है जबकि इन कच्ची मूल प्रवृत्तियों को सहानुभूतिपूर्ण अन्तर्दृष्टि के द्वारा प्रेम, आकाँक्षा और असन्तोष जैसी भावनाओं के वशीभूत कर दिया जाता है।"* दूसरे शब्दों में, परिवार में जब व्यक्तियों को एक दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की शिक्षा दी जाती है तभी व्यक्ति पशुता से मानवता की ओर अग्रसर होता है। चार्ल्स कूले के अनुसार पाशविक इच्छाओं का मानवीकरण ही सम्भवतः सबसे बड़ी सेवा है जो परिवार करता है। इसके बगैर समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा और सामाजिक नियंत्रण असम्भव हो जायेगा यदि व्यक्ति अपनी इच्छाओं को अपने वश में न रख सके और अन्य सदस्यों के हित को ध्यान में रखे बगैर केवल अपने ही स्वार्थों की पूर्ति में लग जायें।

---

* "The distinctively human level of behaviour appears only when the raw instincts have been conditioned through sympathetic insight into sentiments such as love, ambition and resentment."

—C. H. Cooley.

परिवार अनेक प्रकार से शिशु का चरित्र निर्माण करता है। जो सामाजिक गुण शिशु अपने बाल्यकाल में सीखता है वह उसको एक आदर्श नागरिक बनने और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक नियन्त्रण में सहायता देते हैं। हेज़ ने निम्न-लिखित तरीके बतलाये हैं जिनके द्वारा परिवार सामाजिक नियन्त्रण में सहायता करता है।*

(अ) नित्य के उपदेश व स्वयं के कार्यों द्वारा; (ब) दिये गये वचन और कार्य की तुलना के द्वारा; (स) पड़ोसी के सामने व पीछे कहे गये वाक्यों की तुलना के द्वारा; (द) अपने आनन्ददायक अनुभवों को बतलाकर, (य) आकाँक्षाओं का वास्तविक रूप बतलाकर अथवा दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखते हुए कार्य करना। हेज ने कहा है कि जो माता सोने के समय अपने बच्चे को कोई धार्मिक पुस्तक पढ़कर सुनाती हैं वह उसके चरित्र का सबसे सुन्दर ढंग से निर्माण करती है।

(१) **सामाजिक गुण विकसित करके**—वास्तव में परिवार बच्चों को अनेक सामाजिक गुण प्रदान करता है जो कि उनको आदर्श नागरिक बनने में सहायता देते हैं। उनमें से कुछ गुण नीचे दिये गए हैं :—

(अ) **प्रेम**—बच्चा जब परिवार में जन्म लेता है तो उसके ऊपर माता और अन्य लोग प्रेम की वर्षा-सी कर देते हैं। इसके बदले में बच्चा भी अपने परिवार के सदस्यों से प्रेम करना सीखता है। इस पारिवारिक प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह प्रेम विशुद्ध और स्वार्थरहित होता है। यह पारिवारिक प्रेम ही व्यापक होकर सामाजिक प्रेम में परिणित हो जाता है जिससे व्यक्ति समाज की व्यवस्था और शान्ति को ठीक रखने में सहायता देता है।

(ब) **सामंजस्य (adjustment)**—परिवार में बच्चा सामंजस्य का ज्ञान प्राप्त करता है। परिवार के सदस्य पारिवारिक स्थिति को देखते हुए और एक दूसरे के सुख-दुःख का ध्यान रखते हुए ही कार्य करते हैं। पति-पत्नी के सम्बन्ध में तो विशेष रूप से सामंजस्य मिलता है। इसी प्रकार बच्चा भी परिस्थितियों के अनुसार अपने को व्यवस्थित करने का तरीका सीख लेता है। इसी से आगे चलकर व्यक्ति सामाजिक नियमों के अनुकूल कार्य करने योग्य बनता है।

(स) **आत्म-त्याग**—परिवार में माता-पिता अपने बच्चों के लिये अनेक कष्ट सहते हैं और उनके लिये प्राण तक देने को तैयार रहते हैं। यहाँ से आत्म-त्याग की भावना का आविर्भाव होता है। इस बात के हमें अनेक उदाहरण मिलते हैं कि लोगों ने अपने बच्चों, भाइयों, पतियों आदि के लिए कितने बड़े-बड़े त्याग किये हैं।

* Hayes, *Sociology*.

भरत ने राम के लिए राज्य को त्याग दिया, बाबर ने हुमायूँ के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी और पत्नियों के आत्म-त्याग के उदाहरणों से तो इतिहास के अनेकों पृष्ठ भरे हैं। इनका उत्कट और पवित्र आत्म-त्याग परिवार में ही पाया जा सकता है। धीरे-धीरे यह भावना विस्तृत हो जाती है और व्यक्ति समाज, राष्ट्र और मानवता के लिए त्याग करना सीख जाता है।

(द) **कर्तव्य पालन**—परिवार सब सदस्यों की सुविधा और सुख का प्रबन्ध करता है। इसके बदले में प्रत्येक सदस्य को कुछ कर्तव्य-पालन करने होते हैं। यह कर्तव्य-पालन की भावना व्यक्ति को एक आदर्श नागरिक बनाने में सहायता करती है।

(य) **आज्ञा पालन**—परिवार में बच्चा यह देखता है कि उससे बड़े व्यक्ति किस प्रकार अपने से बड़े व्यक्तियों की आज्ञा का पालन करते हैं। अनुकरण के द्वारा वह भी बड़ों की आज्ञा-पालन करना सीखता है।

(र) **परोपकार**—अनेक परिवारों में ऐसे सदस्य भी होते हैं जो अपने शारीरिक अथवा मानसिक अवगुणों के कारण अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं नहीं कर पाते हैं। परिवार के अन्य सदस्य ही इन लोगों का उत्तरदायित्व लेते हैं। बूढ़े और अपाहिज लोगों की सेवा करके बच्चा सर्वसाधारण के प्रति भी परोपकारी होने की भावना प्राप्त करता है।

(ल) **सहयोग**—सहयोग समाज की शान्ति के लिए आवश्यक है। यह बताया ही जा चुका है कि परिवार में आयु व लिंग के आधार पर कार्य-विभाजन होता है। इस प्रकार, बाल्यावस्था से ही, यद्यपि कि बहुधा अचेतन रूप से ही, सब सदस्य एक दूसरे को सहयोग और सहायता देते हैं। बच्चे परिवार में सहयोग के गुण को सीख कर बड़े होने पर समाज में प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार अपने बच्चों में अनेक सामाजिक गुणों व भावनाओं का संचार करता है जो आगे चलकर आदर्श नागरिक बनने और सामाजिक नियन्त्रण स्थापित करने में सहायक होते हैं। किसी ने ठीक ही कहा है कि बालक नागरिकता का प्रथम पाठ माता के चुम्बन तथा पिता के आलिंगन से ही सीखता है। सामाजिक नियन्त्रण के लिए व्यक्तित्व ही प्रमुख वस्तु है जैसा कि हेज़ ने कहा है: "कानून नहीं बल्कि व्यक्तित्व ही सामाजिक शान्ति का वास्तविक आधार है।"*

(२) **यौन व्यवहारों का नियन्त्रण (regulation)**: मनुष्य की जैविक इच्छाओं में एक महत्वपूर्ण इच्छा यौन की है। परिवार विवाह की संस्था के द्वारा

* "Not law but personality is the ultimate basis of social order."
—Hayes.

उसकी इस इच्छा की पूर्ति करता है। यदि स्त्री और पुरुष में विवाह न हो तो समाज में व्यभिचार फैल जाये। स्त्री और सन्तानों के भरण पोषण का किसी व्यक्ति के द्वारा उत्तरदायित्व न लिए जाने से समाज में अव्यवस्था फैल जाये और स्त्री पुरुषों की कामेच्छा की पूर्ति करने से इन्कार भी कर सकती है। परिवार मनुष्य की यौन इच्छा की पूर्ति का प्रबन्ध कर उसे वेश्यागामी होने से बचाती है। साथ ही, विवाह के बन्धन में बांध कर परायी स्त्रियों को बुरी दृष्टि से देखने में रोक लगाती है।

(३) **समाजीकरण द्वारा नियन्त्रण** : समाजीकरण (socialization) से तात्पर्य समाज की संस्कृति के अनुसार व्यक्ति की आदत, व्यवहार, और मनोवृत्ति को बनाना है। परिवार के बड़े सदस्य समाज की संस्कृति के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। उनके विचार, आदर्श, कार्य और मनोवृत्तियाँ समाज की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते हैं। इस प्रकार, बच्चा बड़ों की नकल करके संस्कृति को ही आत्मसात करता है।

ऐसे अनेक बच्चों का अध्ययन जो पशुओं द्वारा बहुत छोटी आयु में उठा ले जाये गये थे और पाले गये थे बच्चों के व्यक्तित्व पर परिवार के प्रभाव को स्पष्ट करता था। ऐसे बच्चों के पास न मानव भाषा थी और न अन्य मानवोचित गुण थे। परिवार में रह कर ही बच्चा अपने माता-पिता से न केवल भाषा प्राप्त करता है बल्कि समाज की संस्कृति के अन्य तत्व—लोकरीति, रूढ़ियाँ, फ़ैशन, लोकाचार, क़ानून आदि—प्राप्त करता है। परिवार के सदस्यों और नियमों से सामंजस्य करना सीख कर वह विशाल समाज के साथ सामंजस्य करने की योग्यता विकसित करता है।

किम्बाल यंग ने सामाजिक सीखने के दो ढंग बताये हैं: प्रथम साँस्कृतिक अनुकूलन (cultural conditioning) और दूसरा, वैयक्तिक-सामाजिक सीखना (personal-social learning)। प्रथम प्रकार का सामाजिक सीखना परिवार में होता है। यंग के शब्दों में : "इसका सम्बन्ध उस ढंग से है जिसमें परिवार के सदस्य और विशेषकर माता-पिता बच्चे को समाज के मौलिक सांस्कृतिक प्रतिमानों में दीक्षित करते हैं।"*

परिवार की आर्थिक अवस्था का बच्चे के व्यक्तित्व पर विशेष प्रभाव पड़ता है। हीनता या श्रेष्ठता की भावना, पौष्टिक भोजन, अच्छे स्कूल में शिक्षा, घर

* "This has to do with the manner in which the family members and particularly the mother and father induct the child into the fundamental culture patterns of a given society."—K. Young.

में दरिद्रता से असन्तोष और तनाव परिवार के आर्थिक स्तर पर निर्भर करते हैं और बच्चे पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालते हैं।

बच्चा अपने परिवार के अन्य सदस्यों से उनके धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक विचार भी प्राप्त करता है। किसी धार्मिक सम्प्रदाय, राजनीतिक दल, जाति या वर्ग के प्रति पक्षपात की भावना बच्चा परिवार से ही प्राप्त करता है। अपने से भिन्न समूहों के प्रति सहनशीलता परिवार से प्राप्त कर व्यक्ति सामाजिक नियंत्रण में योगदान करता है।

(४) **सदस्यों की सामान्य देखरेख**—परिवार अपने सदस्यों विशेषकर, बच्चों और किशोरों की सामान्य देखरेख भी करता है। इसमें व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा यह भी देखना पड़ता है कि उनके कार्य एक दूसरे को कष्ट तो नहीं पहुँचा रहे हैं। दूसरे व्यक्तियों की भावनाओं और हितों को ध्यान में रख कर व्यवहार करना सिखा कर परिवार अपने सदस्यों को बड़े समाज से सामंजस्य करना सिखाता है। बड़े समाज में विभिन्न धर्म, जाति, प्रजाति, वर्ग आदि के लोग होते हैं। इनसे सामंजस्य करने की क्षमता परिवार से ही प्राप्त होती है। परिवार इस बात की देखभाल करता है कि कोई सदस्य ऐसे कार्य न करे, ऐसे लोगों की संगति न करे जिससे स्वयं व्यक्ति के व्यक्तित्व पर और परिवार के नाम और शान्ति पर बुरा प्रभाव पड़े। यदि कोई घर में देर से आता है, बदनाम लोगों के बच्चों से संगति करता है, स्कूल से उपस्थित रहता है तो माता-पिता उसे समझाकर सही करने की प्रेरणा देते हैं।

(५) **विवाह सम्बन्धी नियन्त्रण**—परिवार समाज की एक प्राथमिक इकाई है। इसका विघटन सामाजिक विघटन में एक प्रमुख कारक होता है। इसलिये परिवार विवाह सम्बन्धी कुछ निषेध लगाकर बेमेल विवाह होने से रोकता है। जब पति-पत्नी भिन्न संस्कृति से आते हैं तो उनमें सामंजस्य की समस्या उत्पन्न हो जाती है जो अक्सर पारिवारिक विघटन और, ऐसे मामलों की संख्या का अधिक होना, सामाजिक विघटन लाती है। तलाक़, त्याग, दूसरा विवाह आदि पर नियंत्रण रखकर परिवार सामाजिक नियंत्रण में योगदान देता है।

(६) **आर्थिक ढाँचे की धुरी**—परिवार को आर्थिक ढाँचे की धुरी भी कहते हैं क्योंकि यह सदस्यों के आर्थिक जीवन को निश्चित करता है। यही नहीं कि परिवार में केवल श्रम-विभाजन ही होता हो, साथ ही यह अलग-अलग सदस्यों का भावी आर्थिक कार्यक्रम भी बताने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। किस बच्चे को मैडिकल शिक्षा, किसको व्यावसायिक, वाणिज्य सम्बन्धी शिक्षा दी जाये यह परिवार निश्चित करता है। इससे अनिश्चितता नहीं रहती, सब सदस्य जानते हैं

भविष्य में उन्हें क्या करना है और बनना है। इससे समाज संतुलित रहता है। सम्पत्ति, उत्तराधिकार के मामलों को निपटा कर वह पारिवारिक शान्ति और परिणामस्वरूप सामाजिक शान्ति बनाये रखता है।

(७) **शैक्षिक कार्य के द्वारा और अन्य प्रकार से नियंत्रण**—परिवार में शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति एक आदर्श नागरिक बनता है। प्रारम्भिक शिक्षा बच्चे को परिवार में ही मिलती है और इसका उसके चरित्र पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अपने और दूसरों के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान उसे परिवार में ही कराया जाता है। बच्चों की शिक्षा माता-पिता का विशेष महत्वपूर्ण कर्तव्य है क्योंकि बच्चे की अज्ञानता का दोष बच्चे पर नहीं बल्कि बच्चों के माता-पिता पर लगाया जाता है। चीन में कहावतें प्रसिद्ध हैं : (अ) सन्तान की अज्ञानता माता-पिता का दोष है (Ignorance of the child is the fault of the parents); (ब) माता-पिता ही बच्चे की दो प्रथम पुस्तकें हैं (Parents are the child's first two books)। विश्व की अनेक महान् आत्माओं ने यह घोषित किया है कि उनके उत्थान का एक मात्र कारण उनकी मातायें रही हैं।

फ़िचटर ने कहा है : "परिवार की शिक्षा का उद्देश्य अपने सदस्यों को साँस्कृतिक व्यवहारों को तथा सामाजिक नियमों को स्वीकार करने की प्रेरणा देना होता हैं। यह औपचारिक और अनौपचारिक दोनों साधनों से होता है। एक ओर, पौराणिक कथायें और सुझाव का प्रयोग किया जाता है और दूसरी ओर उपहास, निन्दा के द्वारा गलत कार्य करने से रोका जाता है। परिवार का प्रत्येक बड़ा सदस्य छोटे सदस्यों का शिक्षक होता है, यद्यपि यह शिक्षा अनौपचारिक होती है।"

मूर ने कहा है कि शिक्षा देने वाली संस्था के रूप में उसकी कार्यकुशलता पर ही सम्पूर्ण समाज की सुरक्षा और अच्छी किस्म अवलम्बित है।* सम्पत्ति, अपराध, मद्यपान, जुआ, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, ईमानदारी, सच्चाई आदि के बारे में आवश्यक उचित मनोवृत्ति व्यक्ति परिवार से ही प्राप्त करता है। इनके अभाव में समाज में संगठन और नियंत्रण का रहना असम्भव है। देश भक्ति और आपत् काल में देश के लिए आत्म त्याग की प्रेरणा परिवार से ही मिलती है। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे देश में मिलते हैं जब प्रथम पुत्र के लड़ाई में, पाकिस्तान और चीन के साथ हुये युद्ध में, मारे जाने पर पिता अपने दूसरे पुत्र को सेना में भर्ती कराने के लिये ले आया। बाढ़, अकाल, महामारी आदि के काल में समाज की सेवा करने में परिवार से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक लोगों ने महान् कार्य किये हैं।

परिवार के सदस्यों के उचित रूप से धनोपार्जन करने से परिवार समाज

---

* "Upon its efficiency as an educational agency primarily depend the security and the quality of society as a whole." —Moore.

की आर्थिक व्यवस्था बनाये रखने में मदद करता है। विवाह आदि विषयों पर प्रतिबन्ध लगाकर वैवाहिक असामंजस्य की सम्भावना को परिवार कम करके सामाजिक नियंत्रण में मदद करता है।

परिवार बच्चों के सामान्य व्यवहार, कार्य, खेल-कूद का निरीक्षण कर उन्हें नियमों का पालन करने के लिये प्रेरित करता है। खेल-कूद में भी नियमों का पालन करने का महत्व सीखकर वह समाज के अन्य नियमों का पालन करने का महत्व समझता है। उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवार सामाजिक नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण साधन है!

परिवार में आधुनिक परिवर्तन
(Recent Changes in Family)

इंग्लैण्ड में जब से औद्योगिक क्रान्ति हुई, सम्पूर्ण सभ्य संसार के सामाजिक ढाँचे पर उसका भीषण प्रभाव पड़ा। इस क्रान्ति ने गतिशीलता बढ़ाई, लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान कार्य करने के लिए जाने को प्रेरित किया, स्त्रियों को नौकरी के अवसर प्रदान किये, सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन किया जिनका परिवार पर भी प्रभाव पड़ा; शिक्षा, मकान, मनोरंजन आदि पर प्रभाव पड़ा जो बदले में परिवार को भी प्रभावित करते हैं। आज सभी समाजों में औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया तेजी पर है जो परिवार के ढाँचे और कार्यों को निरन्तर प्रभावित कर रही है। साथ ही, अधिनियम (legislations) और सामाजिक योजना भी परिवार की संस्था को प्रभावित कर रहे हैं।

(i) **परिवार के आकार में परिवर्तन**—आजकल पढ़े लिखे समाज में परिवार का आकार छोटा हो गया है। पारिवारिक योजना, रहन-सहन के स्तर की चिन्ता, शिक्षा, आराम का ध्यान, स्त्रियों द्वारा नौकरी करना या राजनीतिक-साँस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेना आदि बातों ने पति-पत्नी को इस बात के लिये प्रेरित किया है कि वे कम सन्तानें उत्पन्न करें। शहरों में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और उनके स्थान में एकल परिवार बन रहे हैं जिनमें बच्चों की संख्या सीमित रहती है।

(ii) **पिता की भूमिका में परिवर्तन**—बदले हुए समाज में परिवार के अन्दर पिता की शक्ति में ह्रास हुआ है। बच्चे अब स्वतन्त्र विचार रखते हैं; शिक्षा; मनोरंजन, मित्र मण्डली, वस्त्र आदि के बारे में अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। इसी प्रकार, विवाह, नौकरी, व्यवसाय, राजनीति के मामले में लड़के लड़कियाँ अपने पिता की इच्छानुसार कार्य करना आवश्यक नहीं समझते हैं।

(iii) **स्त्रियों की भूमिका में परिवर्तन**—आधुनिक समाज में स्त्रियों के पद में विशेष उन्नति हुई जिसके कारण वह पहले के मुकाबले में भिन्न भूमिकायें निभाती हैं। कानून ने उन्हें आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में पुरुषों के

बराबर अधिकार दिये हैं। औद्योगीकरण और विज्ञान में उन्नति होने से स्त्रियों के लिये फ़ैक्टरियों, हवाई जहाज़ों, बड़े-बड़े दफ्तरों में नौकरी के स्थान उपलब्ध हैं। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन, स्त्री शिक्षा में वृद्धि के कारण अब स्त्रियों का नौकरी करना, राजनीतिक और साँस्कृतिक जीवन में भाग लेना बुरा नहीं समझा जाता। इसलिये, स्कूलों कालेजों में शिक्षिकाओं के रूप में, वकील, डॉक्टर के रूप में वे काफ़ी उन्नति कर रही हैं। इससे परिवार के अन्दर भी उनके अधिकार और शक्ति में वृद्धि हुई है। अब उनकी वह स्थिति नहीं है जो परम्परागत संयुक्त परिवारों में होती थी।

(iv) **विवाह के रूप में परिवर्तन**—पहले लगभग सभी समाजों में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी। यद्यपि काफ़ी अर्से से पढ़े लिखे हिन्दू समाज में बहु-विवाहों की संख्या बहुत कम हो गई थी, फिर भी क़ानून के द्वारा इसका निषेध हिन्दू कोड-बिल पेश होने पर ही हुआ। अब तो मुसलमानों के अतिरिक्त सभी सभ्य लोगों में एक-विवाह (monogamy) प्रचलित है। कुछ मुस्लिम देशों ने भी एक-विवाह के समर्थन में क़ानून बनाये हैं।

स्त्रियों में शिक्षा, नौकरी, जीवन-साथी के चुनाव में स्वेच्छा आदि ने, और अधिनियम ने बाल-विवाह रोक कर विलम्ब विवाह (late marriages) को उत्साहित किया है। आजकल के विवाह परम्पराओं पर आधारित नहीं रहे बल्कि जीवन की आवश्यकताओं द्वारा अधिक प्रभावित हैं। आज की बढ़ती हुई मँहगाई में अधिकतर निम्न और मध्यम वर्ग के लोग ऐसी लड़की से विवाह करना चाहते हैं जो नौकरी भी कर सके।

(v) **अस्थायित्व—**औद्योगीकरण, अधिनियम, गतिशीलता, मकानों की समस्या के कारण वैवाहिक सम्बन्ध किसी न किसी रूप में अस्थायी हो गये हैं। या तो पति-पत्नी एक साथ नहीं रहते, बहुत से मज़दूर शहरों में रहते हैं और उनकी स्त्रियाँ गाँव में, या एक साथ रहने पर भी एक दूसरे को कम समय दे पाते हैं जैसे राजनीतिज्ञ, वकील, डॉक्टर, टूरिंग जॉब वाले, व्यापारी आदि या तलाक़ का अधिकार मिल जाने से विवाहों का टूटना।

(vi) **पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन**—पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा, बदली हुई आर्थिक और सामाजिक दशाओं ने परिवार के अन्दर सदस्यों के बीच के सम्बन्धों को भी बदल दिया है। यही नहीं, कि पति-पत्नी ही कॉमरेड की तरह रहते हों बल्कि पिता-पुत्र के सम्बन्ध, भाई-बहन के सम्बन्ध भी मित्रतापूर्ण हो गये हैं। अब सन्तानें माता-पिता से भाई-बहन से वे सब बातें कर लेती हैं जो पहले अविचारणीय था। अब वयस्क सन्तानों के साथ सख्ती में कमी आ गई है और अब

केवल बच्चे ही माता-पिता की इच्छाओं और मूल्यों के साथ सामंजस्य नहीं करते, बल्कि माता-पिता भी बदले हुए ज़माने के साथ सामंजस्य करते हैं ।

परिवार के कार्यों में परिवर्तन

नागरीकरण के कारण उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार का स्थान फ़ैक्टरी ने ले लिया है । परिवार के एक के बाद अनेक आर्थिक कार्यों को बाहरी संस्थाओं द्वारा ले लिया गया है । बचे हुए कार्य, जैसे खाना बनाना और कपड़े धोना आदि बहुत छोटे पैमाने पर होने लगे हैं । यह मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग के परिवारों के लिये सत्य है । पति का नेतृत्व ख़त्म हो चुका है, अनेक परिवारों में इस बात के बावजूद भी कि पति ही धन कमाता है उसकी अधिकार-शक्ति में बेहद कमी आ गई है । माउरर ने लिखा है : "इस बात के बावजूद भी कि पति परिवार को नाम देता है और पत्नी को क्रिस्चियन नाम प्रदान करता है जो वह औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करती है, अब पति अनेक परिवारों में गृहस्थी का मुखिया नहीं रहा है...... सत्य तो यह है कि यदि बच्चे उसे उनके मामलों में दखल देने वाला बाहरी व्यक्ति न समझें तो उसे अपने को भाग्यशाली समझना चाहिये ।" नागरिक अर्थव्यवस्था में परिवार के अन्दर नेतृत्व की बहुत कम आवश्यकता है । अनेक स्त्रियाँ नौकरी करने लग गई हैं । अनेक पिछली निर्योग्यताओं (disabilities) से वे छुटकारा पा गई हैं जिससे परिवार प्रजातांत्रिक या समानतावादी हो गया है । दूसरी ओर, क्योंकि पिता घर से अक्सर बाहर रहता है और अपने व्यापार आदि में व्यस्त रहता है, माँ परिवार की वास्तविक मुखिया बन जाती है और परिवार के लगभग सभी कार्यों को अपने अधिकार में ले लेती है । ऐसे परिवारों को 'matri-centric' या मातृकेन्द्रिक (जिसमें माँ सबका ध्यान-शक्ति केन्द्र हो) कहते हैं । माउरर ने कहा है कि आधुनिक प्रवृत्ति 'शिशु केन्द्रिक' (filiocentric) परिवारों की है जिसमें बच्चे अधिक महत्वपूर्ण कार्य करने लगे हैं, वास्तव में हावी हैं और पारिवारिक नीतियों को निश्चित करते हैं ।

केवल आर्थिक कार्य ही नहीं बल्कि अनेक अन्य परम्परागत कार्य भी परिवार से बाहरी संस्थाओं को हस्तांतरित हो गये हैं, जिससे परिवार के सदस्यों को एक सूत्र में बाँधने वाले बन्धन और भी ढीले हो गये हैं । परिवार के शैक्षिक, मनोरंजनात्मक, धार्मिक और रक्षात्मक कार्यों में कमी हुई है जो ऐसी संस्थाओं द्वारा ले लिये गये हैं जिनको इसी उद्देश्य से बनाया गया था । स्कूल जिसके कार्यों में नित्य वृद्धि हो रही है, मनोरंजन की कामर्शियल और सामुदायिक सुविधायें (सिनेमा, पार्क, खेल के मैदान), चर्च, जुवेनाइल अदालतें, अस्पताल आदि संस्थायें ऐसे अनेक कार्य कर रही हैं जो पहले परिवार करता था ।

इसके फलस्वरूप, आज के परिवार के मुख्य कार्य व्यक्तित्व सम्बन्धी हैं। बर्जेस ने आधुनिक परिवार को "अन्त:क्रिया करते हुए व्यक्तियों की एक एकता" (a unity of interacting personalities) कहा है। पति-पत्नी के बीच स्नेह और बच्चों के व्यक्तित्व का विकास परिवार की मुख्य समस्या हैं। जहाँ बच्चे नहीं होते, वहाँ पति-पत्नी के बीच स्नेह परिवार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य रहता है।

(i) **आर्थिक कार्यों में परिवर्तन**—आधुनिक समय में परिवार के आर्थिक कार्यों में विशेष परिवर्तन हुआ है। उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार का कार्य सवाप्त हो गया है। पहले परिवार आत्म-पर्याप्त थे और अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं का स्वयं उत्पादन करते थे। अब समाज की आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन होने से परिवार परम्परागत आर्थिक कार्यों को नहीं करता। अब परिवार भी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाजार जैसी बाहरी संस्थाओं पर निर्भर रहता है। हाँ, उपभोक्ता के रूप में परिवार का अब भी महत्व है।*

(ii) **सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों में परिवर्तन**—आज के बदले हुये समय में परिवार के सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों में कमी आ गई है। फैशन, प्रथा, नीति सम्बन्धी शिक्षा देने में परिवार पहले के परिवारों से पीछे है। इसका एक कारण बदले हुये सामाजिक मूल्य भी हैं। आज की सामाजिक व्यवस्था ऐसी है जिसमें धन ही सबसे महत्वपूर्ण वस्तु बन गया है। फैशन और नैतिक मूल्य इतनी तेजी से बदल रहे हैं कि उनके अनुसार शिक्षा देना परिवार के लिए सम्भव भी नहीं रहा है। व्यक्तिवादिता बढ़ने और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण पुराने सांस्कृतिक तत्वों को अब कोई महत्व भी नहीं देता।

(iii) **धार्मिक कार्यों में परिवार**—पहले के परम्परागत हिन्दू समाज में धर्म का बेहद महत्व था और जीवन के उद्देश्यों में धर्म को प्राथमिकता प्राप्त थी। परिवार में धार्मिक संस्कारों और अनुष्ठानों का पालन करना अनिवार्य समझा जाता था। विवाह का सबसे प्रमुख उद्देश्य धर्म था। धार्मिक उत्सव, ईश्वर पूजा, दान, मन्दिर-स्थापना आदि परिवार के धार्मिक कार्य थे। अब धर्म के स्थान में धन का महत्व बढ़ गया है। पहले के संयुक्त परिवारों में सामूहिक रूप से पूजा पाठ करना सुखमय भी लगता था। आज का व्यक्ति इतना अधिक धन प्रेमी हो गया है कि विपत्तिकाल के अलावा कभी भगवान की याद भी नहीं करता।

(iv) **शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में परिवर्तन**—परिवार के परम्परागत शैक्षिक कार्यों में आधुनिक काल में बेहद परिवर्तन हुआ है। शिक्षा का रूप ही बदल गया

---

* "Economic production may have been diverted from the family but as a consumption unit the household still has real importance." —Sutherland, *Introductory Sociology*.

है, धार्मिक शिक्षा का स्थान व्यावहारिक और यांत्रिक शिक्षा ने ले लिया है। इसलिये, घर के स्थान में शिक्षा देने के केन्द्र स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय हो गये हैं। आज का युग विशेषज्ञों का युग है। इसलिये विशिष्ट शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये छात्रों को विशेषज्ञों के पास जाना पड़ता है।

(v) **मनोरंजन सम्बन्धी कार्यों में परिवर्तन**— परिवार का मनोरंजन सम्बन्धी कार्य भी बहुत हद तक बाहरी संस्थाओं ने ले लिया है। सिनेमा, थियेटर, बड़े-बड़े फुटबाल क्रिकेट मैच, नाच गाने समारोह आदि व्यक्तियों का मनोरंजन करते हैं। सामाजिक जीवन की गति तेज हो जाने से व्यक्ति इतना अधिक थक जाता है और मकानों के छोटे और परिवारों के एकत्र हो जाने के कारण वह मित्रों की संगति में या अकेले कामर्शियल मनोरंजनगृह को जाता है।

परिवार का भविष्य (The Future of the Family)

यद्यपि परिवार के अधिकांश कार्य अन्य संस्थाओं ने ले लिये हैं, दिन प्रति दिन उसका महत्व कम हो रहा है, फिर भी परिवार का पूर्ण लोप अविचारणीय है। परिवार के सन्तानोत्पत्ति, स्नेह और देखभाल के कार्य किसी अन्य संस्था में होने सम्भव नहीं हैं। विभिन्न कालों में परिवार का स्वरूप बदलता रहा है, अनेक सामाजिक परिवर्तनों ने पारिवारिक दृढ़ता पर प्रहार किये हैं फिर भी परिवार अपने स्थान में दृढ़ खड़ा है। उसने नयी परिस्थितियों के अनुकूल कार्य करने का सदैव प्रयास किया है। बर्जेस और लॉक ने कहा है : "बदलती हुई दशाओं से अनुकूलन करने के इस लम्बे इतिहास और इसके स्नेह के कार्य को देखते हुए यह भविष्यवाणी करना सुरक्षित है कि परिवार जीवित रहेगा—व्यक्तिगत सन्तोष और व्यक्तित्व के विकास में देता और लेता रहेगा।" * रे बेबर (Ray Baber) ने कहा है : "परिवार के दुर्दिन अवश्य हैं, परन्तु इसके लोप का कोई खतरा नहीं है। व्यक्तिगत परिवार इतने अधिक टूट जायेंगे कि उनकी कभी मरम्मत नहीं की जा सकेगी परन्तु उनका स्थान लेने के लिये नये परिवार उत्पन्न हो जायेंगे। अनेक बाधाओं और प्रहारों के बावजूद भी विवाह लोकप्रिय रहेगा; युवा लोगों का यह दृढ़ विश्वास है कि वे सफल होंगे चाहे दूसरे लोग उसमें असफल हों। सामाजिक कार्य की वृद्धि, शिक्षा की विधियों में सुधार, अच्छी पैतृक शिक्षा और पारिवारिक विषयों पर सलाह देने वाली अनगिनती संस्थाओं के होने से पारिवारिक लोप असम्भव है।"

---

* "It seems safe to predict the family will survive, both because of its long history of adaptability to changing conditions and because of the importance of its function of affection—giving and receiving in personal satisfaction and in personality development."
—Burges and Locke, *The Family* p. 745.

† Ray E. Baber, *Marriage and the Family after the War*. p 191

३ सामाजिक नियंत्रण में धर्म (Religion in Social Control)

धर्म (Religion)

धर्म से साधारणतया उन शक्तियों से अर्थ लगाया जाता है, जो विश्वास किया जाता है, देवताओं या अन्य उत्प्राकृतिक(supernatural)प्राणियों में होती हैं। इसमें इन शक्तियों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध भी शामिल हैं। इसमें अन्य बातें भी शामिल हैं जैसे ईश्वर, देवताओं, या अन्य उत्प्राकृतिक शक्तियों के बारे में मनुष्य का ज्ञान और उनकी कृपा प्राप्त करने या कोप से बचने के लिये उसकी क्रियायें, और इन सब बातों का व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव।

सभी समाजों में किसी न किसी रूप में धर्म रहा है। यह आदि काल से पाया जाता है। अनेक विद्वानों का कहना है कि आधुनिक मनुष्य के पूर्वज, नियनडरथल (Neanderthals) या पश्चादुषो मानव, भी किसी धर्म का पालन करते थे क्योंकि इस बात का सबूत है कि वे अपने मृत लोगों को एक खास स्थिति में दफ़नाते थे और उनके औज़ारों को उनके पास रख देते थे जिससे यह जाहिर है कि वे मृत्यु के बाद किसी अन्य जीवन में भी विश्वास रखते थे। फिर, धर्म उतना पुराना नहीं है जितना कि परिवार जो वनमानुषों और अन्य पशुओं में भी पाया जाता है।

जैसा कि रूथ बैनेडिक्ट ने कहा है, धर्म एक अनोखी संस्था है क्योंकि बाकी सब संस्थायें मनुष्य की जैविक आवश्यकताओं और शारीरिक विशेषताओं पर आधारित हैं। इस प्रकार, मनुष्य के सामाजिक संगठन, चाहे वे आपस में कितने भिन्न क्यों न हों, यौन, शैशव, और समूह में जीवन के शारीरिक तथ्यों पर आधारित हैं। आर्थिक संस्थायें भी भोजन और आश्रय की मनुष्य की खोज पर आधारित हैं। यह बताना कठिन होगा कि धर्म का शारीरिक आधार क्या है और यह भी स्पष्ट नहीं है कि यह किस मानव गुण पर बना है।

समनर और कैलर का कथन है कि अन्य संस्थाओं की भाँति धर्म भी एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य करने का प्रयत्न करता है। उन्होंने प्राकृतिक, सामाजिक और उत्प्राकृतिक (supernatural) पर्यावरण में भेद किया। उत्प्राकृतिक पर्यावरण काल्पनिक, मिथ्या, भ्रमपूर्ण (illusory) है परन्तु उसके साथ सामञ्जस्य करने के लिये भी मनुष्य अपने को उतना ही बाध्य पाता है जितना अन्य दो पर्यावरणों के साथ करने के लिये। समनर और कैलर ने लिखा : "यह निश्चय मालूम पड़ता है कि जिस माया भ्रम के आधीन होकर युगों से मनुष्य परिश्रम करता आया है वह भूतों और प्रेतात्माओं के संसार का अस्तित्व है। उस संसार ने प्राकृतिक और सामाजिक के साथ एक तीसरे पर्यावरण का निर्माण किया है जिसके साथ सामञ्जस्य करना उतना ही मानव कल्याण के लिये आवश्यक समझा जाता है जितना प्रकृति और साथ के मनुष्यों के अधिक मूर्त पर्यावरण के साथ।.........यह अन्य जीवन दशा के साथ ही एक जीवन-दशा है जिसका सामना जीवन-संघर्ष में मनुष्य को करना पड़ता है।"*

धर्म की प्रकृति के बारे में समाजशास्त्रियों में ऐकमत्य नहीं है। धर्म उन दशाओं और परिस्थितियों के एक विशेष कुलक (set) के साथ सामञ्जस्य है जिनके अधीन समाज रहता और कार्य करता है, और यह दशायें और परिस्थितियाँ हर समाज में भिन्न होती हैं, इसलिये धर्म के अनगिनती स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। समनर और कैलर ने कहा है कि धर्म को अन्य संस्थाओं के अनुकूल होना चाहिये क्योंकि वे सभी जीवन दशाओं के साथ मनुष्यों के सामञ्जस्य की चेष्टा की द्योतक हैं। इतने भिन्न प्रकार के स्वरूपों में धर्म प्रकट किया जाता है कि उन सबके लिये कोई एक सामान्य परिभाषा बनाना सरल नहीं है। फिर भी, अधिकतर विद्वान यह मानते हैं कि धर्म उत्प्राकृतिक या अज्ञात शक्तियों में विश्वास है, कि यह विश्वास त्रास, भय और भक्ति-आदर की भावनाओं से सम्बद्ध है, और यह उन वाह्य क्रियाओं में प्रकट होता है जो इन शक्तियों का सामना करने के लिये की जाती हैं। इसमें कुछ तत्व छूट गये हैं जिनको अनेक लेखक धर्म के लिये आवश्यक समझते हैं, जैसे आत्मा की अमरता में विश्वास और देवता और देवताओं में विश्वास।

---

* "It cannot but have appeared that the grand illusion under which mankind has laboured throughout the ages is that of the existence of a world of ghosts and spirits. That world has constituted a third environment, along with the natural and the social, adjustment to which has been believed to be fully as essential to well-being as adaptation to the mere surroundings of nature and fellow-men......It is simply another life-condition along with the rest for man to meet in the struggle for existence."

फिर भी, ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिसमें आत्मा की अमरता या मृत्यु के बाद के जीवन में विश्वास जैसी बातें नहीं मिलतीं। प्राचीन हीब्रू आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं करते थे। बौद्ध लोग न केवल आत्मा की अमरता और मृत्यु के बाद के जीवन में अविश्वास करते हैं बल्कि ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करते। जैसा कि अमेरिकन मानवशास्त्रीय डी. जी. ब्रिटन ने कहा है, आत्मा में विश्वास का अर्थ आवश्यक रूप से ईश्वर में विश्वास नहीं है। आदिवासियों में इस संसार की किसी दैवी सरकार में विश्वास जैसी कोई बात नहीं रही।

दूसरी ओर, कुछ मानवशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने धर्म को एक अत्यन्त पार्थिव (earthly) और भौतिकवादी वस्तु माना है जो कुछ व्यावहारिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखता है। इस संदर्भ में **समनर और कैलर** ने कहा है : "इतिहास में आदिकाल से हाल के वर्षों तक, कभी भी धर्म नैतिकता की बात नहीं रहा है बल्कि रीतियों, संस्कार पालन और अनुष्ठान का विषय रहा है।" रूथ **बैनेडिक्ट** ने भी लिखा है : "यदि धर्म आध्यात्मिक प्रकृति का लगता है, गुण, नैतिकता, और अच्छे जीवन का स्रोत मालूम पड़ता है, तो इसका कारण यह है कि इसने उन गुणों को उन धारणाओं से ग्रहण कर लिया जो उस समय समाज में प्रचलित थीं और जिनको इसने सामाजिक जीवन की प्रक्रिया में विकसित किया। **हैरी बार्न्स** का भी यह विचार है। उसने कहा कि धर्म को सामाजिक शिष्टता (decency) और न्याय से सम्बद्ध करना ग़लत होगा क्योंकि न तो भूत काल में और न वर्तमान काल में संगठित धर्म की प्रकृति और प्रकटन (पूजा पाठ आदि) में हमें यह बात मिलती है।

समनर और कैलर ने धर्म को 'अपने को बनाये रखने का एक तरीका बताया जिस प्रकार उद्योग, युद्ध और नियम है।'* इन समाजशास्त्रियों की दृष्टि में धर्म जीवन की अनिश्चितता के विरुद्ध एक व्यावहारिक बीमा है। इन अनिश्चितताओं का कारण उत्प्राकृतिक, अज्ञात शक्तियों को समझा जाता है। उन्होंने कहा कि सामाजिक जीवन के दौरान मनुष्य ने नैतिक मूल्यों और गुणों को विकसित किया और बाद में धर्म ने भी उनको अनुमोदन दिया और अपना लिया, न कि उत्पन्न किया।

उन्नीसवीं सदी के जर्मन संस्कृति के इतिहासकार **जूलियस लिपर्ट** ने भी धर्म को अस्तित्व के लिये संघर्ष (struggle for existence) माना है जो दफ़न होने के बाद भी चलता रहता है।

---

* "A mode of self-maintenance belonging with industry war and regulation." —Sumner and Keller

जेम्स फ्रेज़र ने धर्म को 'उन शक्तियों में विश्वास, जो मनुष्य से अधिक शक्तिशाली हैं और जो विश्वास किया जाता है, प्रकृति और मानव जीवन के क्रम को निर्देशित और नियन्त्रित करती हैं, कहा।* उसने कहा कि धर्म इन शक्तियों को शान्त करने और प्रसन्न रखने का एक प्रयत्न है।

दूसरी ओर, यहूदी विद्वान रॉबर्टसन स्मिथ ने कहा कि धर्म न अज्ञात शक्तियों का भय है, न आतंक की सन्तान है बल्कि समुदाय के सभी सदस्यों का ऐसी शक्ति के साथ सम्बन्ध है जिसके हृदय में समुदाय की भलाई करना है, और उसके क़ानून और नैतिक व्यवस्था की रक्षा करनी है"† इससे स्पष्ट है कि धर्म का उद्देश्य मनुष्यों में एक दूसरे के लिये भलाई की भावना विकसित करना है।

दुरखाइम ने धर्म को 'विश्वासों और रीतियों की ऐसी एकीकृत प्रणाली बताया जिसका सम्बन्ध पवित्र वस्तुओं से है जो अलग कर दी गई हैं और निषिद्ध हैं।‡ उसने कहा कि बिना किसी संगठन को दृष्टि में रखे हुये जैसे चर्च, धर्म को नहीं समझा जा सकता। इसलिये धर्म एक सामूहिक वस्तु है। दुरखाइम के विचार में धर्म समाज की उत्पत्ति है, उसमें समाज के सभी पहलू, यहाँ तक कि सबसे अश्लील और घृणित भी, प्रतिबिम्बित होते हैं। धर्म एक सामाजिक आवश्यकता है और किसी न किसी रूप में हमेशा रहेगा चाहे समाज के संगठन में कैसे ही परिवर्तन क्यों न हो जायें।

धर्म की परिभाषायें

टायलर ने संक्षेप में धर्म की परिभाषा देते हुये कहा है: "प्रेतात्माओं में विश्वास ही धर्म है।"††

मैलिनोस्की के शब्दों में: 'धर्म क्रिया का एक ढंग है और साथ ही विश्वासों की एक प्रणाली भी, और एक समाजशास्त्रीय घटना है और साथ ही एक वैयक्तिक अनुभव भी।"**

---

* a belief in powers superior to man which one believed to direct and control the course of nature and of human life.'-*James Frazer*

† 'religion is not a vague fear of unknown powers, nor the child terror but rather a relation of all the members of a community to a power that has the good of the community at heart, and protects its law and moral order." —Robertson Smith.

‡ " a unified system of beliefs and practices relative to sacred things, that is to say things set apart and forbidden."--Durkheim.

†† "Religion is the belief in spiritual beings." —E. T. Tylor.

** "Religion is a mode of action as well as a system of belief, and a sociological phenomenon as well as a personal experience."

सर जेम्स फ्रेजर के अनुसार : "धर्म से मैं उन शक्तियों को संतुष्ट करने या उनसे समझौता करना समझता हूँ जो मनुष्य से श्रेष्ठ हैं और जिनके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव जीवन की दिशा निश्चित करती और नियंत्रित करती हैं।"*

जॉनसन के अनुसार : "एक धर्म प्राणियों, शक्तियों, स्थानों अथवा अन्य वस्तुओं की उत्प्राकृतिक व्यवस्था से संबन्धित विश्वासों एवं व्यवहारों की अधिक या कम संगठित व्यवस्था है।"†

गिलिन और गिलिन के शब्दों में : "धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत एक समूह में उत्प्राकृतिक से सम्बन्धित वाह्य व्यवहार, भौतिक वस्तुयें और प्रतीक आते हैं।"††

हॉनिगशीम ने धर्म के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर बल दे कर उसको एक मनोवृत्ति माना है। उन्होंने कहा : "प्रत्येक मनोवृत्ति जो कि इस विश्वास पर आधारित या इस विश्वास से सम्बन्धित है कि अलौकिक शक्तियों का अस्तित्व है और उनसे सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव व महत्वपूर्ण है, धर्म कहलाती है।"‡

उत्प्राकृतिक क्या है ?
(What is supernatural ?)

हमने धर्म की परिभाषा देते हुये उसे उत्प्राकृतिक से सम्बन्धित बताया है। प्रश्न उठता है कि यह 'उत्प्राकृतिक' क्या है ? जॉनसन ने उत्प्राकृतिक की परिभाषा देते हुये कहा है : "कोई भी वस्तु उत्प्राकृतिक है यदि उसके अस्तित्व का आधार

---

* "By religion......I understand a propitiation or conciliation of powers superior to man which one believes to direct and control the course of nature and human life." —Sir James Frazer.

† "A religion is a more or less coherent system of beliefs and practices concerning a supernatural order of beings, forces, places, or entities." —H. M. Johnson : *Sociology*.

†† "The sociological field of religion may be regarded as including those emotionalized beliefs prevalent in a social group concerning the supernatural, plus the overt behaviour, material objects, symbols associated with such belief." – Gillin and Gillin.

‡ "The term religion will be used to denote every attitude based on and connected with, the conviction that supernatural forces exist and that relations with them are possible and significant." —P. Honigsheim.

कुछ ऐसा है जो विज्ञान पर आधारित न हो। इस अर्थ में उत्प्राकृतिक वस्तुयें अप्रमाणित होती हैं।"* विज्ञान न तो उत्प्राकृतिक वस्तुओं के अस्तित्व को प्रमाणित कर सकता है और न यह प्रमाणित कर सकता है कि वे नहीं होतीं। वे विज्ञान से परे हैं।

उत्प्राकृतिक प्राणियों में हम देवी, देवता, फ़रिश्तों को रख सकते हैं। उत्प्राकृतिक स्थानों में हम स्वर्ग और नरक को रख सकते हैं। अलौकिक शक्तियाँ स्वयं देवता या पवित्र आत्मायें, कर्म के सिद्धान्त, माना (mana) आदि हैं। यह सब हमारे विश्वासों पर आधारित हैं। यह आवश्यक नहीं है कि अलौकिक वस्तुयें या प्राणी इस संसार के ऊपर या बाहर हों, कभी-कभी सांसारिक वस्तुओं में उत्प्राकृतिक को ढूंढ़ा जाता है। उदाहरण के लिए श्रीकृष्ण एक व्यक्ति थे परन्तु लोग उनको उत्प्राकृतिक देवता मानते हैं। इसी प्रकार, मोहम्मद साहब, राम, बुद्ध, महावीर इत्यादि भी अपने अनुयाइयों द्वारा उत्प्राकृतिक माने जाते हैं। देवताओं की मूर्तियाँ पूजी जाती हैं और उन्हें उत्प्राकृतिक शक्ति से सुसज्जित किया जाता है। इसी प्रकार, कोई भी प्राणी, वस्तु, शक्ति उत्प्राकृतिक हो सकती है यदि लोग उसे ऐसा समझते हैं। यह तो एक मनोवैज्ञानिक बात है।

राडिन ने धर्म के दो भाग बताये हैं: (१) भाव (feeling) और (२) भाव से सम्बन्धित क्रियायें, प्रथायें और विश्वास। धार्मिक भाव कोई साधारण बात नहीं है। इसके शरीरशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक पहलू होते हैं। शरीरशास्त्रीय पहलू हमें ऐसी क्रियाओं में मिलता है जैसे हाथ जोड़ना, घुटनों के बल झुकना, आँखों को मूंदना, और मनोवैज्ञानिक पहलू कुछ विश्वासों और परम्पराओं के प्रति अत्यधिक संवेदना (sensitivity) जैसे रोमाँच, अत्यधिक प्रशंसा और भय में मिलता है। राडिन के विचार में शारीरिक और सामाजिक असुरक्षा की दशाओं में अस्तित्व के लिये संघर्ष में धार्मिक भावना का जन्म हुआ। उत्प्राकृतिक जीवों का रूप समूह के विशेष भौतिक और सामाजिक-आर्थिक पर्यावरण पर निर्भर करता है।

उत्प्राकृतिक वस्तुओं में विशेष शक्ति मानी जाती है। **गिलिन और गिलिन** के शब्दों में: "उत्प्राकृतिक क्षेत्र शक्ति से पूर्ण होता है" (The supernatural area is believed to be charged with power)। उत्प्राकृतिक वस्तु बिजली की भाँति लाभदायक या हानिकारक हो सकती है। इसके प्रति एक आदर का भाव रखना पड़ता है। इस भाव को पवित्रता (sacredness) कहते हैं। धर्म का सम्बन्ध

* Any thing is 'supernatural' if its existence is believed on some basis other than the kind of evidence acceptable in science. In this sense, Supernatural entities are non-empirical."

—Johnson, *Sociology.*

पवित्र और अपवित्र से है। वे सब वस्तुयें पवित्र हैं जिनके प्रति ऐसा दृष्टिकोण रखा जाता है। किंग्सले डेविस ने कहा है: "किसी वस्तु के मौलिक गुण के कारण कोई वस्तु पवित्र या अपवित्र या साधारण नहीं होती, यह तो उसके प्रति दृष्टिकोण पर आधारित होता है।"‡

धर्म की सामान्य विशेषतायें
(General characteristics of Religion)

(१) धर्म उत्प्राकृतिक, अलौकिक या अज्ञात शक्तियों के विषय में विश्वास होता है। लगभग सभी समाज में ऐसी घटनायें घटित होती हैं जो मनुष्य की समझ के बाहर होती हैं और जिनका कारण अज्ञात शक्तियों का अस्तित्व बताया जाता है।

(२) इन अलौकिक शक्तियों में विश्वास त्रास, भय, श्रद्धा, भक्ति और आदर की भावनाओं से जुड़ा है। विश्वास किया जाता है कि प्रसन्न होने पर यह शक्तियाँ व्यक्ति और समूह का भला कर सकती हैं और रुष्ट होने पर विपत्ति ला सकती हैं। इस कारण आदर और भय दोनों ही भावनाओं का सम्बन्ध इन शक्तियों में विश्वास से है।

(३) यह विश्वास अनेक बाह्य क्रियाओं में प्रकट होता है जिनका उद्देश्य इन शक्तियों को शान्त या प्रसन्न करना होता है। उदाहरण के लिये, पूजा, यज्ञ, बलि आदि अनेक बाह्य क्रियायें हैं जो इन शक्तियों में समूह के विश्वास को प्रकट करती हैं।

(४) धर्म अन्ततः (ultimate) समस्याओं के विषय में विचार प्रस्तुत करता है। अधिकतर धर्म आत्मा की अमरता और परलोक में विश्वास करते हैं। मृत्यु के बाद कैसा जीवन व्यक्ति को प्राप्त होगा यह धर्म का विषय है।

(५) धर्म से सम्बन्धित वस्तुयें, प्राणी एवं स्थान पवित्र माने जाते हैं और उनके प्रति आदर और भय मिश्रित व्यवहार किया जाता है।

(६) धर्म विज्ञान से ऊपर या परे है। विज्ञान न इसको सिद्ध कर सकता है, न असिद्ध।

(७) प्रार्थना, पूजा या आराधना भी धर्म की एक मौलिक विशेषता है। धर्म में लोग जिस शक्ति में विश्वास करते हैं उससे लाभ उठाने के लिये और उसके क्रोध से बचने के लिये प्रार्थना, पूजा या आराधना की जाती है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, वन्यजाति के लोगों के अपने अलग तरीके होते है।

---

‡ "But the criterion of the sacred is clearly an attitude, not the intrinsic property of the objects towards which this attitude is fortuitously directed." —K. Davis, *Human Society*.

(८) धर्म की एक विशेषता यह है कि अलग-अलग धर्म के अनुयायी धार्मिक क्रियाओं के लिये अलग धार्मिक वस्तुओं, प्रतीकों, जादू टोनों और गाथाओं का उपयोग करते हैं।

(९) धर्म अवलोकन से परे है।

(१०) धर्म मानव को वह शक्ति प्रदान करता है जिससे मानव अपने ज्ञान से परे के पर्यावरण से सामंजस्य स्थापित करता है।

(११) धर्म का आधार विश्वास है, तर्क से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

धर्म के प्रमुख तत्व
(Elements of Religion)

ब्रूम और सैल्ज़निक ने अपनी Sociology नामक पुस्तक में धर्म के चार तत्व बताये हैं। यह ऐसे तत्व हैं जिनसे मिल कर धर्म बनता है।

(१) **अनुष्ठान (Ritual)**—सभी धर्म अनुष्ठानों का पालन करते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों में ऐसी विहित (prescribed) क्रियायें हैं जो स्वयं पवित्र हैं और साथ ही साथ पवित्र वस्तुओं का प्रतीक हैं। ईसाइयों में कम्यूनियन सर्विस पवित्र होती है और साथ ही ईसा मसीह के बलिदान का प्रतीक भी है। व्यवहार को अनुष्ठान का रूप देना एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा पवित्रता उत्पन्न की जाती है और कायम रखी जाती है। किसी विशेष विधि से चरणामृत बनाना, पारिवारिक बैठक या जमघट या कोई भी सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण रीति को अनुष्ठान का रूप देकर पवित्र बनाया जा सकता है। साथ ही, जो कुछ भी पवित्र होता है अनुष्ठान बना दिया जाता है।

(२) **अनुभूति (Feeling)**—अनुष्ठान का एक कार्य उचित भावनाओं को जागृत करना है। देशभक्ति से सम्बन्धित संस्कार देशभक्ति, गर्व और अपने हम-वतन लोगों के प्रति निकटता की भावना उत्पन्न करती है। इस प्रकार राष्ट्र की पवित्रता बनी रहती है। नम्रता, आदर और भय सामान्य धार्मिक भावनायें हैं, परन्तु कभी कभी रोमाँच या आतंक भी प्रदर्शित किया जाता है। चाहे कोई भी भावना क्यों न जागृत हो उसे उचित कहा जाता है, और उसे धर्म के साधनों और प्रविधियों का समर्थन प्राप्त होता है।

(३) **विश्वास (Belief)**—धार्मिक विचारों से पहले और उनसे स्वतन्त्र, धार्मिक अनुष्ठान और भावनायें होती हैं। फिर भी, सभी समाजों में स्पष्ट रूप से ऐसे विश्वासों का अभ्युदय होता है जो धार्मिक अनुष्ठानों और भावनाओं का औचित्य ठहराते हैं और उनका समर्थन करते हैं। इसके अतिरिक्त, पवित्रता के निर्माण में और अनेक समस्याओं के सुलझाने में विश्वास महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। भूतकाल में धार्मिक विश्वासों का सम्बन्ध हमेशा अलौकिक शक्तियों के साथ रहा है। **देवता इस संसार के जीव नहीं हैं, वे इसके बाहर या ऊपर रहते हैं।**

(४) **संगठन (Organization)**—धार्मिक क्रियायें धार्मिक अनुयायियों के संगठन का आधार बनती हैं। विश्वासों और परम्पराओं को कायम रखने के लिए, धार्मिक मजलिस इकट्ठा करने के लिए, धार्मिक अनुष्ठानों और सिद्धान्तों में विशेषज्ञों को भरती करने और पारङ्गत करने के लिये, और समाज के अन्य समूहों के साथ धार्मिक समूह के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए संगठन की आवश्यकता होती है।

धर्म के आधार
(Foundation of Religions)

(१) **भय और चिन्ता से मुक्त होना (Overcoming fear and anxiety)**—मनुष्य का प्राकृतिक पर्यावरण ऐसा होता है कि उसको भय और चिन्ता ग्रस लेती हैं। मनुष्य अपनी कमजोरियों और प्राकृतिक शक्तियों की शक्ति से चेतन होता है। साथ ही मृत्यु का उसे सदा भय बना रहता है— कब वह आयेगी और उसका अर्थ क्या है। मनुष्य अपनी सामाजिक परिस्थितियों और भौतिक पर्यावरण दोनों से चिन्तित रहता है। साथ ही उसकी चिन्ताओं के कुछ अन्य कारण भी होते हैं: उसकी सीमित शक्ति, उसकी निर्भरता, जीवन पर उसके वश का अनिश्चित होना।

(२) **अपने कार्यों का औचित्य और नैतिक समर्थन की खोज (Self-justification and the quest for a moral identity)**—सभी समाजों में व्यक्ति नैतिक अर्थ की खोज करते रहे हैं। उसे ऐसे सिद्धान्त की खोज रही है जो उसकी महत्वपूर्ण इच्छाओं को उचित ठहराये और उसको प्राप्त होने वाले कष्टों का अर्थ समझाये। इन आवश्यकताओं की पूर्ति करके धर्म उसके व्यक्तित्व को संतुलित बनाने में मदद करता है। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन को उच्च उद्देश्यों से सम्बन्धित कर सकता है, निराशा को अधिक धैर्य के साथ वहन कर सकता है। इसी से सम्बन्धित मनुष्य की एक आवश्यकता है नैतिक समुदाय में भाग लेना। ऐसे समूह के सदस्यों में एक गहरा सामान्य बन्धन होता है क्योंकि वे सामान्य रूप से इस बात में विश्वास करते हैं कि नैतिक दृष्टि से क्या सच है।

(३) **मानव शक्तियों और उपलब्धियों का समारोह मनाना (Celebration of human powers and achievements)**— अनेक धार्मिक क्रियायें और विश्वासों में हमें आत्म-विश्वास और गर्व की झलक मिलती है, न कि भय या चिन्ता की। वे विश्वास करते हैं कि अपनी शक्तियों और सफलताओं का समारोह करके और उनको विशेष अर्थ प्रदान करके मानव-कल्याण में वृद्धि कर सकते हैं। विजय-नृत्य, राजाओं का देवत्व (divinity), किसी दैवी कार्य के लिये विशेष रूप से चुने जाने में विश्वास— यह और ऐसी अनेक क्रियायें और प्रतीक मनुष्य और उसके समूह को प्रसिद्ध करती हैं।

(४) **संसार को समझने योग्य बनाना (Making the world comperhensible)**—सभी समाजों में मनुष्य के पर्यावरण की व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है। यह ब्रह्माण्डशास्त्र (cosmology) का रूप ले सकता है जो पृथ्वी और स्वर्ग की उत्पत्ति बताये; विभिन्न पशुओं को रहस्यमय जीवों के रूप में देखा जा सकता है जिनकी अद्वितीय फुर्ती और चतुरता की व्याख्या करने की आवश्यकता हो; भूमि का उपजाऊ या बंजर होना, जन्म और मृत्यु का चक्र, जाड़ा और गर्मी आदि को किसी भी पुराण के द्वारा समझाया जा सकता है। यह इस बात का प्रयत्न है कि मनुष्य अपने पर्यावरण के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त करना चाहता है। यह चिन्ता से मुक्त होने का भी एक तरीका है।

(५) **सामाजिक व्यवहार-आदर्श और मूल्यों का समर्थन (Supporting social norms and values)**—समाज अपने सदस्यों द्वारा स्वेच्छा से दिये जाने वाले सहयोग पर निर्भर करता है। आम तौर पर, यह सहयोग समाजीकरण की प्रक्रियाओं के द्वारा प्राप्त किया जाता है। परन्तु कुछ मानों में समाजीकरण अप्रभावकारी होता है। सामाजीकरण करने वालों को जो कुछ भी मदद मिल सके उन्हें उसकी आवश्यकता होती है, विशेषकर जब बड़ी मात्रा में आत्म-अनुशासन (self-discipline) की जरूरत हो। मानव मूल्यों के साथ दैवी अनुमोदन को जोड़ कर समाज अपने सदस्यों को व्यवहार-आदर्शों का पालन करने के लिये आसानी से प्रेरित कर सकता है।

धर्म का सार्वभौमिक कार्य
(Religion's universal function)

धर्म का सार्वभौमिक कार्य मनुष्य के उसके सामाजिक और भौतिक पर्यावरण की शक्तियों के साथ के सम्बन्धों की व्याख्या और नियंत्रण करना है। विश्वास किया जाता है कि स्वयं यह शक्तियाँ किसी उत्प्राकृतिक शक्ति के अधीन हैं।

उपरोक्त बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म की उत्पत्ति मनुष्य की बौद्धिक शक्तियों से होती है। मूलप्रवृत्तियों से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म के साथ जो उद्वेग जुड़े हैं वे ऐसी महत्वपूर्ण जीवन-प्रक्रियाओं से सम्बन्धित हैं जिनमें भोजन, रक्षा और यौन की आवश्यकतायें शामिल हैं। पर्यावरण की शक्तियों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध और अनुभव की व्याख्या और नियंत्रण करके धर्म इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने का तरीका बताता है। जब शत्रु आक्रमण की धमकी देते हैं तो वन्य जातियों में उद्वेग उत्तेजित करने और देवता की कृपा पाने के लिये युद्ध-नृत्य किया जाता है। जब अकाल पड़ता है तो वर्षा के देवता की पूजा की जाती है और उन्हें बलि अर्पित की जाती है। इन अनुष्ठानों के साथ प्रबल उद्वेग जुड़े होते हैं और इनमें बाधा उत्पन्न करने वालों को दण्ड दिया जाता है।

प्रभावशाली ढंग के कार्य करने के लिये धर्म और मनुष्य के अनुभव के अन्य स्वरूपों का संस्थाकरण (institutionalize) हो जाता है। संस्कार, अनुष्ठान, प्रार्थना, बलि, और पुजारियों और धर्म के अफ़सरों की अधिकार-शक्ति का विकास होता है जो मनुष्य के विचार और व्यवहार को नियंत्रित करते हैं।

आरम्भ में धर्म केवल एक ऐसा साधन था जिनके द्वारा केवल अदृश्य शक्तियों को सन्तुष्ट किया जाता था। मनुष्यों को इस बात का तनिक भी विचार नहीं था कि उनके अच्छे सामाजिक कार्यों से भी वे शक्तियाँ सन्तुष्ट हो सकेंगी। धीरे-धीरे पूर्वजों की आत्मा के कोप का भय तथा उनकी कृपा की इच्छा वन्यजाति के रीतिरिवाज व सामाजिक नैतिकता की स्थिरता का एक साधन बन गई। शासक, कुलपति (patriarch), तथा साधु सन्तों ने मनुष्यों के मन में अपने और क्रोधित देवताओं के रोष का भय बनाया और सत्कार्यों के फल की आशा बँधायी। जब तक कि चर्च और स्टेट एक दूसरे से अलग न हो गये, इसी प्रकार सामाजिक नियंत्रण स्थापित किया जाता था। अब भी जहाँ कहीं सरकार चर्च का प्रबन्ध करती हैं वहाँ प्रार्थना के बाद राज्य के प्रति वफादारी भी स्वीकार की जाती है जैसी कि पहले रूस में जार के समय में होता था और इंग्लैंड में अब भी थोड़ा बहुत पाया जाता है।

सामाजिक विकास के प्रारम्भिक काल में धर्म के प्रभाव का केवल इसी जीवन में अनुमान लगाया जाता था। धार्मिक मनुष्य धन-धान्य से सम्पन्न रहते थे, उनके पशुओं को कोई बीमारी नहीं होती थी—ऐसा मनुष्यों को विश्वास दिलाया गया। ईसाई इतवार के दिन खेत पर काम नहीं करते थे क्योंकि उन्हें भय था कि ऐसा करने से उनकी फसल नष्ट हो जायेगी।

अमरता (immortality) में धीरे-धीरे विश्वास दिलाया गया। इस विश्वास ने भी मनुष्य के कार्यों पर नियन्त्रण रखा कि केवल मृत्युलोक में ही नहीं बल्कि परलोक में भी पापी को अपने बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है। इनमें कोई संशय नहीं कि इस भय ने समाज का बहुत भला किया क्योंकि इसके कारण अनेक शराबियों ने शराब पीना छोड़ दिया, क्रूरता और जालसाजी कम हो गई और आयरलैण्ड के निर्धन और अशिक्षितों में अवैध सन्तानों के जन्म की घटना पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई।* धर्म का धनी और निर्धन दोनों पर समान रूप से प्रभाव पड़ा है क्योंकि 'स्वर्ग की कचहरी" (court at heaven) पर शक्तिशाली, धनी और चालाक व्यक्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जहाँ 'भय का धर्म' (religion of fear) हमको पाप करने से रोकता है वहाँ 'प्रेम और विश्वास का

---

* Hayes, *Sociology*.

धर्म' (religion of love and trust) हमारी आत्मा को शुद्ध कर समाज सेवा की ओर हमें झुकाता है।

धर्म का आधार 'विश्वास' है। किसी व्यक्ति की अथवा सामाजिक विपदा का कारण दैवी शक्तियों की अप्रसन्नता और क्रोध है, ऐसा अनेक लोगों का विश्वास है। इसलिये यद्यपि कि सात्रेटीज (Socrates) पर राज विप्लव (anarchy) के लिये ही सन्देह किया गया था, परन्तु उस पर ग्रीक देवताओं के प्रति अविश्वास के लिये भी मुकदमा चलाया गया था। एथेन्स की सैनिक पराजय का कारण सात्रेटीज की नास्तिकता बतलाया गया था।

बौद्ध धर्म ने अहिंसा पर विशेष बल देकर, जैन धर्म ने अहिंसा, सत्य बोलने, चोरी न करने, धन-संग्रह न करने, और यौन में आत्मसंयम (temperance) पर बल देकर और ईसाई धर्म ने अपने 'दस आदेशों' (Ten Commandments) के द्वारा मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन पर ही नियन्त्रण करने की चेष्टा नहीं की बल्कि स्वस्थ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की भी चेष्टा की। इस्लाम ने जिसका अर्थ 'शान्ति' है अपने विश्वास—मनुष्य सबसे सुन्दर वस्त्रों से बना हुआ है (man is made of the goodliest fabric) और जो कुछ भी स्वर्ग और पृथ्वी पर है वह मनुष्य की सेवा के लिये है (Whatever is in the heaven and whatever is on the earth are made to do service for man)—के द्वारा मुसलमानों की 'सुख सम्बन्धी भाग्यवाद' (hedonistic fatalism) के प्रति मनोवृत्ति को निश्चित किया। सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में इस्लाम 'अल्लाह' में विश्वास करने वालों में भ्रातृ-भाव रखने का उपदेश देता है जिनमें रंग, रक्त और सामाजिक पद के अन्तर का कोई महत्व नहीं है। मस्जिदों में राजकुमार और किसान; धनी और निर्धन, शासक और शासित एक साथ खड़े होते हैं। 'कुरान' उधार दिये गये धन पर ब्याज वसूल करने की आज्ञा नहीं देता जैसी कि कहावत है कि 'कंजूसों के लिये कोई स्वर्ग नहीं है' (there is no paradise for misers)—इस प्रकार इस्लाम अपने धर्म को मानने वालों में प्रेम और समानता का भाव उत्पन्न कर असामाजिक कार्यों को रोकता है और सामाजिक नियंत्रण स्थापित करता है।

जॉनसन का कहना है कि जीवन से निराश व्यक्ति सामाजिक नियमों की सबसे कम परवाह करता है। ऐसी हालत में धर्म ही अकेला साधन है जो व्यक्ति के सामने नैतिक मूल्यों के महत्व को स्पष्ट करता है और उसको बतलाता है कि समाज को उससे किस प्रकार के व्यवहार की आशा है। यद्यपि आज के भौतिक-वादी समाज में जिसमें धन और ऐशोआराम सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो गये हैं और धर्म का महत्व बहुत कम हो गया है, फिर भी धर्म के प्रभाव की अवहेलना

नहीं की जा सकती। इसीलिये, डेविस ने कहा है कि हमारा समाज चाहे जितना भौतिकवादी क्यों न हो गया हो, हम आज भी धार्मिक कार्यकर्ताओं, पुरोहितों और दिव्य दृष्टि रखने वाले व्यक्तियों की सेवाओं को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं।

थॉमस ओ डी (Thomas O' Dea) ने कहा है: "धर्म व्यक्ति का समूह से परिचय कराता है, अनिश्चितता में मदद करता है, निराशा में ढ़ांढस बंधाता है, समाज के लक्ष्यों के प्रति लगाव उत्पन्न करता है, आत्मबल में वृद्धि करता है, और समाज के अन्य सदस्यों के निकट आने का आधार देता है।"*

धर्म के द्वारा सामाजिक नियन्त्रण करने की विधियाँ

बौद्धिक शक्तियों द्वारा वैयक्तिक और सामाजिक व्यवहार का नियंत्रण आदतों, मनोवृत्तियों, और सूचना पर निर्भर करना है। यह सब बदले में स्वयं सामाजिक पर्यावरण की संस्थाओं पर निर्भर करते हैं जिनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क को एक सा व्यवहार करने के लिये प्रशिक्षित किया जाता है। सब सदस्यों के व्यवहार में समानता लाना ही सामाजिक नियंत्रण का उद्देश्य होता है। धार्मिक या अन्य संस्थायें किस प्रकार की होंगी यह एक काल से दूसरे काल में, और एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न होता है। इसी प्रकार, जिस ढंग या विधियों से यह संस्थायें सामाजिक नियंत्रण करती हैं वे भी भिन्न होते हैं। यह सब समाज के सदस्यों के ज्ञान और सूचना की मात्रा और यथार्थता (accuracy) पर निर्भर करता है।

आदिवासी समाजों में प्राकृतिक शक्तियों के सही ज्ञान की कमी और उनके साथ सामाजिक सम्बन्धों की वास्तविकता के बारे में अज्ञानता के कारण इन सब बातों की व्याख्या उस रूप में होने लगी जिसको हम अन्धविश्वास कहते हैं। शिकार करने, युद्ध, विवाह, या किसी प्रकार की आर्थिक या राजनीतिक क्रिया शुरू करने से पहले पुजारी की सलाह ली जाती थी।

जैसे-जैसे सभ्यता का उद्विकास हुआ अन्य व्यक्तियों जैसे वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, और राजनीतिक नेताओं ने प्राकृतिक शक्तियों और उनके साथ मनुष्य के सम्बन्ध के बारे में ज्ञान विकसित किया जिसको विभिन्न मात्रा में धार्मिक नेताओं ने स्वीकार अथवा अस्वीकार किया। इसके फलस्वरूप धार्मिक संस्थाओं का संगठन हुआ जिन्होंने पुराने ढंग से सामाजिक और प्राकृतिक शक्तियों के साथ

* "Religion identifies the individual with his groups, supports him in uncertainty, consoles him in disappointment, attaches him to society's goals, enhances morale; and provides him with elements of identity."—*Thomas O' Dea.*

मनुष्य के सम्बन्ध को उस ढंग से नियन्त्रित करना चाहा था जो आधुनिक विद्यार्थियों को मान्य है।

पूर्व-वैज्ञानिक सभ्यताओं के विपरीत, आधुनिक सभ्यताओं के लोग प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण को नियन्त्रित करने के लिये न तो धार्मिक नेताओं की सलाह लेते हैं और न धार्मिक अनुष्ठान करते हैं बल्कि इसके स्थान में वैज्ञानिकों, मिस्त्रियों, आर्थिक नेताओं या राजनीतिज्ञों की सलाह लेते हैं। फिर भी, जब समाज में उपलब्ध तमाम साधनों का प्रयोग स्वयं को और दूसरों को हानि पहुँचाने या लाभ पहुँचाने की दृष्टि से किया जाता है, वे धर्म के क्षेत्र में पदार्पण करते हैं।

धर्म की अधिकार-शक्ति (Authority of Religion)

जिस हद तक धर्म व्यक्तियों के व्यवहार को नियन्त्रित करता है वह इस बात पर निर्भर करता है कि कहाँ तक उसके उपदेशों को वांछित व्यवहार की सही और वैध व्याख्या समझा जाता है। जब पर्यावरण की शक्तियों के साथ मनुष्य के व्यवहार की कोई अन्य व्याख्या मौजूद नहीं होती, व्यवहार धर्म से अधिक नियन्त्रित होता है। उदाहरण के तौर पर, जब तक बीमारियों के प्राकृतिक कारणों की जानकारी नहीं थी कोई धार्मिक या राजनीतिक नेता लोगों को यह विश्वास दिलाता था कि किसी देवता या प्रेतात्मा को अप्रसन्न करने से ऐसा होता था। पुजारी की इस प्रकार की बातों को कोई सन्देहपूर्ण दृष्टि से नहीं देखता था। आधुनिक जीवन में भी जिस हद तक व्यक्ति धार्मिक उपदेशों और रीतियों को एकदम सही और अधिकारपूर्ण मानते हैं, वहीं तक उनका वैयक्तिक और सामाजिक व्यवहार धार्मिक संस्थाओं द्वारा नियन्त्रित होता है।

धर्म और राजनीतिक अधिकार-शक्ति (Religion and Political Authority)—सभ्यता के विकास के दरम्यान अनेक स्थितियों में, विशेषकर जब राजनीतिक शक्ति राज्य में केन्द्रित हो गई, धार्मिक संस्थायें राज्य के साथ मिलकर सामाजिक व्यवहार को नियन्त्रित करती थीं या धार्मिक नियमों और आज्ञाओं का पालन करवाने के लिये राज्य की सहायता लेती थीं। अनेक आदिवासी समाजों में धार्मिक और राजनीतिक संस्थाओं में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है। मध्य युग के आखीर भाग में कुछ राज्यों में धार्मिक संस्थाओं ने राज्य सरकारों के ऊपर अपनी सत्ता स्थापित कर ली और अपनी अधिकार-शक्ति का पालन करने में राज्य सरकारों की मदद लेने लगीं। इन स्थितियों में मानव व्यवहार को नियन्त्रित करने में धार्मिक उपदेशों के साथ राज्य की दण्ड देने की शक्ति भी धार्मिक संस्थाओं में मिल गयी, और राज्य भी अपना नियन्त्रण बनाये रखने में धार्मिक अनुशंसा का प्रयोग करने लगे।

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता है, सूचना और अधिकार-शक्ति के अन्य साधनों के विकास के साथ ही धार्मिक संस्थाओं की अधिकार-शक्ति कम हो जाती है और उनके द्वारा होने वाले सामाजिक नियन्त्रण में भी कमी आ जाती है। अपने प्रभाव में गिरावट को रोकने के लिये धार्मिक संस्थायें संस्कार, अनुष्ठान और अनेक प्रकार के विश्वास, प्रचार और प्रशिक्षण विकसित करते हैं।

संस्कार और अनुष्ठान (**Ritual and ceremony**)—संस्कार और अनुष्ठान—विशेषकर यदि वे विस्तृत होते हैं, बारम्बार दोहराये जाते हैं और उनका सम्बन्ध अज्ञात शक्तियों के साथ जोड़ा जाता है—के साथ प्रबल उद्वेग जुड़े रहते हैं। प्रसन्नता, भय और प्रशंसा के वह उद्वेग धार्मिक उपदेशों के प्रभाव को बढ़ाते हैं जिसके फलस्वरूप धर्म के अनुयायी धार्मिक नियन्त्रणों की आर्थिक-शक्ति और औचित्य पर सन्देह नहीं प्रकट करते अथवा आदत और प्रथा के कारण उनका पालन करते हैं, चाहे उनकी तर्क-शक्ति उन उपदेशों के औचित्य के बारे में सन्देह रखती हो।

विश्वास और ज्ञान (**Beliefs and Knowledge**)—अपने सदस्यों पर प्रभाव डालने के लिये सभी धार्मिक संस्थायें विश्वासों, ज्ञान और प्रशिक्षण पर निर्भर करती हैं। धार्मिक विश्वासों का विरोध करने के लिये जब तक वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव रहा, यह विश्वास सहज ही सामाजिक व्यवहार को नियन्त्रित करते थे। धार्मिक समूहों ने सदा ही अपने सदस्यों को अपने उपदेश और नियन्त्रण को स्वीकार करने के लिये शिक्षा और प्रचार के प्रोग्राम का प्रयोग किया है। आधुनिक समय में जिन धार्मिक संस्थाओं ने पर्यावरण के साथ व्यक्ति के सम्बन्ध की व्याख्या करने और नियन्त्रण करने में विज्ञान के साथ सामंजस्य कर लिया है उनका प्रभाव अब भी अपने सदस्यों पर कायम है।

धर्म द्वारा नियन्त्रित जीवन के पहलू

(Aspects of Life controlled through Religion)

पर्यावरण के साथ मनुष्य के सम्बन्ध के लगभग सभी पहलुओं पर धर्म का प्रभाव है।

ईश्वर के साथ सम्बन्ध : धार्मिक क्रियाओं के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी सामाजिक नियन्त्रण की सफलता बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि धर्म के अनुयायियों में ईश्वर या देवताओं के बारे में क्या धारणा है। वह धर्म समाज में परिवर्तन और संस्कृति के विकास को रोकता है जो इस सिद्धान्त पर आधारित है कि या तो देवता धर्म के जीवित सदस्यों के पूर्वज थे अथवा देवता ऐसे व्यक्तियों को दण्ड देते हैं जो पुरानी प्रथाओं और पूर्वजों के उपदेशों के विरुद्ध कार्य

करते हैं। ऐसी स्थिति में पूर्वजों की पूजा धार्मिक संस्थाओं का एक अनिवार्य अंग बन जाती है और उन लोगों की संस्कृति स्थिर हो जाती है। चीनी संस्कृति की स्थिरता का एक कारण पूर्वजों की पूजा बताया जाता है। वन्यजातियों के देवता वन्यजातियों की दृढ़ता को बनाये रखते हैं और अनेक वन्यजातियों को मिल कर एक विशाल राजनीतिक और धार्मिक समूह में गठबन्धन करने से रोकते हैं क्योंकि उनमें अलग अलग देवताओं की पूजा होती है। यद्यपि अधिकतर धर्मों ने औपचारिक और स्थिर शिक्षा और रीतियों पर बल दिया है उनकी एक प्रमुख विशेषता यह रही है कि भौतिक और सामाजिक पर्यावरण की व्याख्या करने और इन शक्तियों के साथ मनुष्य के सम्बन्ध को बताने में सत्य की और उचित व्यवहार की खोज पर उन्होंने सदा बल दिया है। वैज्ञानिक खोजों को धार्मिक उपदेशों और रीतियों के विभिन्न पहलुओं ने कभी उत्साहित और कभी निरुत्साहित किया है।

धार्मिक समूहों के लिए प्रशिक्षण : किसी धर्म के अधिक दिन तक प्रभावशाली बने रहने के लिए यह आवश्यक है कि अनेक अनुयायियों को धार्मिक नेता बनने के लिये विशेष प्रशिक्षण दिया जाये। यदि ऐसा नहीं होता है तो धर्म का विघटन हो जाता है। इसलिये, भारत में पहले ऋषि मुनियों के आश्रम में भावी ऋषि मुनियों को प्रशिक्षण दिया जाता था और सर्वसाधारण भी धार्मिक शिक्षा वहाँ प्राप्त करते थे। शुरू की हेब्रू संस्कृति की धार्मिक संस्थायें पुजारी और अन्य प्रकार के नेताओं के पद के लिये लेवाइट्स (Levites) को चुनती थीं। उनके द्वारा और अन्य पैगम्बरों के द्वारा लोगों को उपदेश दिये जाते थे। सभी परिवार के पिताओं को आदेश थे कि वे अपने बच्चों को धार्मिक सिद्धान्त और रीतियाँ सिखायें। मध्य युग में स्कूलों और कॉलेजों का विकास धार्मिक संस्थाओं के तत्त्वावधान में हुआ।

जब तक औपचारिक शिक्षा धार्मिक संस्थाओं के अधीन रही, धार्मिक और अन्य क्रियाओं के नियन्त्रण पर धर्म का प्रत्यक्ष प्रभाव रहा। प्रशासन और शिक्षा देना ऐसे स्त्री-पुरुषों के हाथ में था जिन्हें धर्म-निरपेक्ष (secular) और धार्मिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा देने के लिये विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाता था। आजकल पब्लिक स्कूलों द्वारा औपचारिक शिक्षा के दिये जाने से आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं पर धार्मिक संस्थाओं का नियन्त्रण अप्रत्यक्ष रह गया है।

धार्मिक और धर्म-निरपेक्ष शिक्षा—धार्मिक और धर्म निरपेक्ष शिक्षा के बीच में खाई बन्द करने के लिए धार्मिक संस्थाओं और पब्लिक स्कूलों के बीच सहयोग होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में कई योजनायें बनाई जा सकती हैं। एक योजना यह हो सकती है कि स्कूल से कुछ घण्टों के लिये बच्चों को छुट्टी दे दी जाये और उस समय प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा धार्मिक प्रशिक्षण दिलाने का प्रयत्न धार्मिक

समूह करें। दूसरी योजना यह हो सकती है कि स्वयं स्कूल धार्मिक प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध करें।

भौतिक शक्तियों का नियन्त्रण—जब तक मनुष्य ने पर्यावरण की भौतिक शक्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया था और भौतिकी (physics), रसायन-शास्त्र, जीवशास्त्र और ज्योतिष के नियमों का विकास नहीं किया था तब तक वह प्राकृतिक घटनाओं को आकस्मिक बातें समझता था। बाद में सूर्य, चन्द्रमा और तारों से देवताओं का सम्बन्ध जोड़ा जाने लगा और मानव कल्याण के लिये उनकी पूजा की जाने लगी। सामाजिक और भौतिक पर्यावरण की वैज्ञानिक व्याख्या होने के बाद से सभ्य समाजों में धार्मिक संस्थायें इस बात का पता लगाने लगीं कि किस प्रकार इन शक्तियों का प्रयोग व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिये किया जाये। जिस हद तक धार्मिक समूह अपने सदस्यों को विज्ञान और कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिये और वैयक्तिक और सामूहिक कल्याण के लिये इस ज्ञान का प्रयोग करने के लिये प्रेरित करते हैं, धर्म सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है।

स्वास्थ्य और रोग—विज्ञान की खोजों को रोग और स्वास्थ्य के ही क्षेत्र में धर्म ने सबसे पहले स्वीकार किया। धार्मिक संस्थाओं के नेता स्वास्थ्य बनाये रखने और उसमें उन्नति करने के लिए आधुनिक ज्ञान का प्रयोग करने के लिये उत्साहित करते हैं। इसके साथ ही ऐसी क्रियाओं, जैसे मद्यपान करना, के औचित्य अथवा अनौचित्य को मनुष्य के शारीरिक और मानसिक कल्याण पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर निश्चित करते हैं। धार्मिक संस्थाओं ने अपने कार्यक्रम में रोगों के उपचार और स्वास्थ्य रक्षा से सम्बन्धित अनेक क्रियाओं को भी शामिल किया है। मिश्नरियों द्वारा पिछड़ी हुई जातियों में दवाओं के वितरण और प्रचार ने न केवल इन समूहों के स्वास्थ्य में वृद्धि की बल्कि उनके जीवन-स्तर को भी उठाने में मदद की। अनेक योरोपीय देशों में धार्मिक संस्थायें अस्पतालों और नर्सिङ्ग सर्विस की स्थापना और कार्य करने के प्रबन्ध करती हैं।

विवाह और पारिवारिक जीवन—हमारे समाज के अनेक हिन्दू देवी और देवता और प्राचीन रोमन सभ्यता के घरेलू देवी देवता धर्म और विवाह की संस्था के बीच में होने वाले निकट सम्बन्ध के उदाहरण हैं। यौन और सन्तानोत्पत्ति का मनुष्य के कल्याण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस कारण धार्मिक संस्थायें इनके नियन्त्रण और व्याख्या पर विशेष बल देती हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा। आधुनिक ईसाई धार्मिक नेता भी यौन, विवाह और बच्चों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित वैज्ञानिक तथ्यों को स्वीकार करने लगे हैं और यौन, विवाह और पारिवारिक जीवन को अधिक अच्छे ढंग से नियन्त्रण करने

में अपने सदस्यों और नेताओं को शिक्षित करने के लिये धार्मिक संस्थायें योजनायें बना रही हैं।

राजनीतिक और आर्थिक क्रियायें—पहले ज़माने में किसी भी प्रकार की राजनीतिक और आर्थिक क्रिया करने से पहले धार्मिक नेताओं की अक्सर सलाह ली जाती थी। पहले धार्मिक और राजनीतिक संस्थायें दोनों ही आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित करने और केवल ऐसी ही आर्थिक क्रियाओं को बनाये रखने का प्रयास करती थीं जो उनके हित में हों, चाहे अन्य व्यक्तियों पर उनका प्रभाव कैसा ही क्यों न पड़ता हो।

योरोप में चर्च और स्टेट के अलग हो जाने के बाद राजनीतिक और आर्थिक क्रियाओं पर धार्मिक संस्थाओं का प्रत्यक्ष नियन्त्रण न रहा। अब दोनों ही क्षेत्रों में धार्मिक संस्थायें केवल उन सदस्यों द्वारा अपना प्रभाव डालती हैं जो राजनीतिक और आर्थिक क्रियाओं में भाग लेते हैं। धार्मिक संस्थाओं के इस अप्रत्यक्ष प्रभाव की मात्रा और प्रकृति दो महत्वपूर्ण बातों पर निर्भर करती है। पहले, यदि धार्मिक संस्थाओं के अनुयायी शिक्षा के प्रति निष्ठा रखते हैं, और आज्ञाकारी हैं, उनकी आर्थिक और राजनीतिक क्रियायें अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से नियन्त्रित की जा सकेंगी। दूसरे, यदि धार्मिक संस्थाओं के नेता राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं के तथ्यों और दशाओं का अध्ययन करके अपनी शिक्षा को उसके अनुरूप बनाते हैं तो धार्मिक नियन्त्रण अधिक सफल हो सकता है।

धर्म और व्यक्तित्व—धर्म न केवल समाज के एकीकरण में मदद करता है बल्कि व्यक्तित्व के एकीकरण में भी। मानव मस्तिष्क बहुत हद तक एक सामाजिक उपज है। अन्य लोगों के मस्तिष्कों के साथ संचार के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अनेक लक्ष्य प्राप्त करता है। इस लक्ष्य-प्रणाली में कुछ अंततः (ultimate) लक्ष्य भी शामिल हैं जैसे मोक्ष, दैवी कृपा, अमरता। यह वास्तविक अनुभव से परे हैं इसलिए इनका सम्बन्ध धार्मिक विश्वास से है। दूसरे लक्ष्य—राष्ट्रीय यश, ज्ञान-वृद्धि, कष्ट से मुक्ति इसी संसार की बातें हैं परन्तु व्यक्ति की समझ के बाहर हैं। जहाँ तक इस संसार से सम्बन्धित लक्ष्यों का सम्बन्ध है, निराशा सम्भव है। अनेक लक्ष्यों के होने के कारण कभी न कभी व्यक्ति को निराशा मिलती ही है। इस जीवन में जितनी अधिक असफलतायें उसे मिलेंगी उतनी ही अधिक आशा उसे दूसरे जीवन में होंगी। परलोक के लक्ष्यों का अस्तित्व व्यक्ति के इहलोक की निराशाओं की क्षतिपूर्ति करता है। इससे व्यक्ति हिंसक कार्य करने से रोका जाता है। धर्म दुःख और भय से मुक्त करता है। वह पातक (guilt) से मुक्ति दिलाता है जो स्वयं धर्म की देन है। पातक को दूर करने के लिये अनुष्ठान किये जाते हैं और व्यक्ति दैवी कृपा प्राप्त करता है।

धर्म और रूढ़ियाँ—प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी रीतियाँ होती हैं जो बहुत लम्बे अर्से से चली आ रही हैं और जिन्हें समाज के कल्याण के लिये अनिवार्य समझा जाता है। इन रूढ़ियों को धर्म द्वारा अनुमोदन या स्वीकृति प्रदान की जाती है, उनका अर्थ स्पष्ट किया जाता है और स्थायी बनाया जाता है। जॉनसन ने ठीक ही कहा है : "धर्म का एक महत्वपूर्ण कार्य सामान्य मूल्यों और व्यवहार-आदर्शों को स्पष्ट करना, प्रतीक प्रदान करना और लागू करना है।"*

धर्म और समाजिक एकीकरण—धर्म को सामाजिक एकीकरण का एक साधन कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में स्वार्थ, लालसा, हिंसा, लोभ, ईर्ष्या जैसी बातें होती हैं। वह अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर अन्य लोगों और सम्पूर्ण समाज के हितों की उपेक्षा कर सकता है। इस प्रकार की संख्या बढ़ जाने पर समाज का संगठन छिन्न भिन्न हो सकता है। व्यक्ति कानून से तब डरता है जब समझता कि उसके गलत कार्य को अन्य व्यक्ति देख रहे हैं परन्तु धर्म व्यक्ति को यह विश्वास दिलाता है कि ईश्वर सर्वव्यापी है और चाहे व्यक्ति अकेला हो और उसके कार्य को कोई अन्य व्यक्ति न देख रहा हो परन्तु ईश्वर अवश्य देखता है। उसका भय, इहलोक और परलोक बिगड़ने की चिन्ता, उसे समाज-विरोधी कार्य करने से रोकता है। धर्म व्यक्ति में कर्तव्यपरायणता विकसित करके सामाजिक एकीकरण में सहायता करता है। धर्म सहनशीलता की शिक्षा देता है, क्रोध और प्रतिशोध की निन्दा करता है। यह सब बातें सामाजिक एकीकरण में महत्व रखती हैं। धर्म अनेक सामाजिक निषेध लगाकर भी सामाजिक एकीकरण में सहायक होता है। बेईमानी, छल-कपट, व्यभिचार, धन के प्रति अत्यधिक लगाव का निषेध कर धर्म समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दान की भावना व्यक्ति में विकसित करके उसने असहायों की समस्या का हल सुझाया है अन्यथा यह असहाय लोग मजबूर होकर चोरी आदि करते।

धर्म और स्वस्थ मनोरंजन—प्रत्येक धर्म के अनुयायी अनेक अनुष्ठान् धार्मिक त्यौहार, समारोह, उत्सव आदि में भाग लेते हैं। बहुत से लोग नित्य यज्ञ करते हैं, मन्दिर जाते हैं, धार्मिक प्रवचन सुनते हैं। ऐसे समय में व्यक्ति का ध्यान सांसारिक बातों से हट जाता है और वह अपने को हल्का अनुभव करता है। सामूहिक रूप से कीर्तन करना, भजन गाना, धार्मिक नृत्य आदि व्यक्ति का अच्छा मनोरंजन करते हैं। रामलीला, कृष्ण लीला आदि हमारे समाज में मनोरंजन और शिक्षा दोनों के साधन हैं।

---

* All but universally, it (religion) has an important part in crystallizing, symbolizing and reinforcing common values and norms."
—Johnson, *Sociology*.

४ सामाजिक नियंत्रण में राज्य
(State in Social Control)

राज्य (State)

द्वैतीयक सामाजिक समूहों में, विशेष रूप से, सामाजिक नियंत्रण के माध्यम के रूप में राज्य का अत्यधिक महत्व है। राज्य सरकार के द्वारा, और सरकार कानून बना कर और उसका पालन कराकर सामाजिक नियंत्रण स्थापित करती है। इस अध्याय में हम राज्य, सरकार और कानून तीनों ही के सामाजिक नियंत्रण में होने वाले योगदान पर विचार करेंगे।

राज्य—मैकाइवर ने कहा है : "राज्य एक संगठन है जो एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र पर एक सर्वशक्तिमान सरकार के माध्यम से शासन करता है।"* यह सामान्य कानून के द्वारा व्यवस्था स्थापित करता है। अक्सर राज्य से अर्थ सरकार से लगाया जाता है।

गिलिन और गिलिन के शब्दों में "राज्य मनुष्यों का एक ऐसा प्रभुता-सम्पन्न राजनैतिक संगठन है जो कि एक निश्चित भू-भाग में बसा हो।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि राज्य में हमें मनुष्यों का एक ऐसा समुदाय समझना चाहिये जिसका एक निश्चित भू-भाग हो, जिसकी व्यवस्था एक संगठित शासन के अन्तर्गत होती हो, एवं जो वाह्य नियंत्रण से पूर्ण रूप से मुक्त तथा स्वतंत्र हो। गार्नर ने बाहरी नियंत्रण से मुक्त होना भी राज्य के लिये आवश्यक बताया है यद्यपि अन्य लेखकों ने इसकी कोई चर्चा नहीं की है। लास्की ने अन्य संस्थाओं पर राज्य के प्रभुत्व पर विशेष बल दिया है। इस प्रकार, हमें राज्य के चार आवश्यक तत्व ज्ञात होते हैं। जनसंख्या, निश्चित भू-भाग, सरकार और प्रभुसत्ता (sovereignity)। प्रभुसत्ता के कारण राज्य के आन्तरिक

* "A state is an organization which rules by means of supreme government over a definite territory. It maintains order through common law. The word state is generally used for government." —R.M. MacIver, *The Modern State*.

मामलों में बाहरी राष्ट्र हस्तक्षेप नहीं कर सकते और राज्य समाज की अन्य संस्थाओं से श्रेष्ठ होता है। राज्य पुलिस, सेना व अन्य सरकारी कर्मचारी के माध्यम से नियंत्रण करता है। इन साधनों को नौकरशाही (bureaucracy) कहते हैं।

लास्की और डेवी (Dewey) ने कहा है कि राज्य के राजनीतिक मामले वास्तव में कुछ अफसरों के हाथ में होते हैं जो विभिन्न साधनों से नियुक्त होते हैं परन्तु जो अपने व्यक्तिगत और समूह स्वार्थों के योग (combination) का प्रतिनिधित्व करते हैं। क्योंकि सरकार की सभी शक्तियाँ व्यक्तियों के हाथ में होती हैं जो उनका उपयोग करते हैं इसलिये राज्य से मतलब सरकार की संस्थाओं से ही होता है।

दूसरी ओर, समाजशास्त्रियों ने राजनीतिक संस्थाओं और राजनीतिक शक्ति के प्रयोग के बारे में तथ्य एकत्रित करने शुरू किये। इससे यह प्रकट हुआ कि सामाजिक नियन्त्रण करने में राजनीतिक संस्थायें ही समाज का प्रमुख साधन नहीं थीं। पहले जमाने में प्रथा, परिवार, वन्य जाति और धर्म कहीं अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। इससे इस सिद्धान्त का भी खण्डन हुआ कि राजनैतिक रूप से संगठित समूहों को एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में बसना आवश्यक है या राजनीतिक संगठन के लिये निश्चित भू-भाग होना आवश्यक है। राजनैतिक शक्ति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी समाजशास्त्रियों ने कहा कि प्रभुसत्ता किसी अज्ञात शक्ति से नहीं आती, जैसा कि बोजान्के आदि लेखकों ने कहा था, बल्कि नेतृत्व, युद्ध, प्रतिष्ठा सम्बन्धी कारकों और किन्हीं विशेष कार्यों में विशेषीकरण के कारण उत्पन्न होती है।

अधिकतर समाजशास्त्रियों का विचार रहा है कि समाज में नियन्त्रण स्थापित करने में अनेक संस्थाओं में से राज्य केवल एक संस्था है और सम्पूर्ण समाज के साथ के सम्बन्ध को देखते हुये यह राजनैतिक उद्देश्यों के लिए बनायी गयी एक समिति है। समिति के रूप में क्रियात्मक रूप से यह एक विशेषीकरण प्राप्त संगठन है जो कुछ आवश्यक सामाजिक कार्य करता है और सार्वभौमिक (universal) होने के कारण अन्य समितियों से भिन्न है। अन्य समितियों की अपेक्षा इसका अधिकार-क्षेत्र किसी एक निश्चित स्थान के सभी व्यक्तियों पर लागू होता है, इसकी सदस्यता अनिवार्य है, और यह शारीरिक शक्ति का प्रयोग करता है जिसके आगे अन्य सभी समितियों को झुकना पड़ता है।

उपर्युक्त बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक क्रियाओं के राजनीतिक पहलू का जहाँ तक सम्बन्ध है राज्य समाज का सामाजिक कल्याण बढ़ाने का एक साधन है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि सामाजिक कल्याण क्या है?

आधुनिक समाजशास्त्री यह कहते हैं कि सामाजिक कल्याण की परिभाषा प्रायोगिक रूप में उन व्यक्तियों पर निर्भर करती है जिनके हाथ में राजनीतिक शक्ति है और वे अपने और अपने दल के स्वार्थ से सामाजिक कल्याण को जोड़ते हैं। इसलिये राज्य के कार्य सामान्य जनता के कल्याण के विरोधी भी हो सकते हैं। वास्तव में राज्य को सरकार से अलग करके नहीं समझा जा सकता है।

मैकाइवर ने कहा है कि राज्य अनिवार्यत: व्यवस्था स्थापित करने वाला एक संगठन है।* मैकाइवर ने आगे कहा कि राज्य केवल व्यवस्था की ही दृष्टि से व्यवस्था नहीं स्थापित करता है बल्कि जीवन की उन सभी शक्तियों के लिये व्यवस्था करता है जिन्हें व्यवस्था की आवश्यकता होती है।†

बिना व्यवस्था के सामाजिक जीवन सम्भव नहीं है। यदि प्रत्येक व्यक्ति मनमाने ढंग से व्यवहार करने लगे तो समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाये। राज्य नियम बना कर और बल का प्रयोग करके सबको नियमानुसार आचरण करने के लिये बाध्य करता है और, इस प्रकार, व्यवस्था बनाये रखता है। इन्हीं कारणों से राज्य ने सेना, पुलिस, न्यायालय और जेल की व्यवस्था की है। इन्हीं के माध्यम से राज्य सामाजिक नियन्त्रण स्थापति रखता है।

राज्य की परिभाषा देते हुये फेयरचाइल्ड ने राज्य की सामाजिक नियन्त्रण के लिये बल प्रयोग करने की विशेषता पर बल दिया। उन्होंने कहा : राज्य समाज का वह साधन, पहलू अथवा संस्था है जो कि बल का प्रयोग करने के लिये मान्य एवं उससे सज्जित है। इस बल का प्रयोग वह समाज के सदस्यों को नियन्त्रण में रखने या अन्य समाजों के विरुद्ध कर सकता है।

कानून (Law)—मैकाइवर ने कहा है कि कानून राज्य द्वारा पोषित वे नियम हैं जो अपनी सम्मिलित अनुकूलता के कारण स्वयं समाज के भी रक्षक हैं। यह नियम नागरिकों पर न्यायालय के माध्यम से लागू होते हैं।

सामाजिक जीवन में कानून दो कार्य करता है। वितरण सम्बन्धी (distributive) और संगठनात्मक (organizational)। पहले प्रकार के कार्य में कानून व्यक्तियों को कर्त्तव्य और अधिकार बाँटता है तथा उनके मानवीय सम्बन्धों को परिभाषित और निश्चित करता है। व्यक्ति को कब, कहाँ और कैसे व्यवहार

* "The state is essentially an order creating organization."
—R. M. MacIver *The Modern State.*

† "It exists to establish order, not of course, merely for the sake of orders but for the sake of all the potentialities of life which require that basis of orders."

करना है यह बहुत हद तक कानून द्वारा निश्चित होता है। दूसरे प्रकार के अर्थात् संगठनात्मक कार्य कानून ऊँचे पैमाने पर करता है। राज्य के समर्थन के कारण और उसके बल से सज्जित होकर वह हमारी राजनीतिक, आर्थिक प्रणालियों, सामाजिक वर्ग और संविधान को स्वरूप प्रदान करता है। अदालतें एवं जज कानून के वितरण सम्बन्धी कार्यों के साधन मात्र हैं।

सोरनसिंह: इनके अतिरिक्त कानून विरोधजन्य स्थितियों में नियन्त्रण स्थापित करने में सहायता करता है, जैसे

१. जब समूह की सुरक्षा खतरे में हो, तब यह सुरक्षा की सामान्य स्थितियों को, दमनकारी उपायों द्वारा, उत्पन्न करता है।

२. जब व्यक्तियों और समूहों के बीच पारस्परिक हितों का विरोध हो रहा हो और समाधान दुर्लभ हो गया हो और एक दूसरे के हितों के अतिक्रमण करने की भी नौबत आ गई हो, तो कानून व्यक्तियों की पाशविकता पर आक्रमण करके बलपूर्वक सामंजस्य की स्थिति कायम करता है।" *

पेटराज़ित ज़िस्की ने कहा है कि कानून मानव व्यवहारों को कई प्रकार से प्रभावित करता है जैसे

१. कानून मानव व्यवहार को विशिष्ट रूप में कोई व्यवहार करने को प्रेरित करता है;

२. क़ानून मानव व्यवहारों में नियमों की पुनरावृत्ति करता है,

३. व्यवहारों के नियमन हेतु शारीरिक दण्ड की व्यवस्था करता है।

सोरनसिंह ने कहा है कि जहाँ तक कानून की पहली भूमिका का प्रश्न है, सचमुच यह हमें अपने कर्त्तव्यों के लिए प्रेरित करता है और अपने अधिकारों की माँग करने के लिये शक्ति प्रदान करता है। जब हमारे अधिकार समाप्त होने को होते हैं तब क़ानून हमें लड़ने के लिये तैयार करता है। इस प्रकार क़ानून ऊर्जा (energy) है जो मनुष्य को गति देता है और उसकी गतिविधियों को नियन्त्रित करता है।

रॉस ने कहा है कि कानून समाज द्वारा लगाया गया सामाजिक नियन्त्रण का सबसे विशिष्ट और पूर्ण साधन है।† जहाँ नियन्त्रण रीति-रिवाज व परम्पराओं के द्वारा नहीं होता वहाँ कानून ही नियन्त्रण का औपचारिक (formal) तरीका है जिसके द्वारा व्यक्तियों का जीवन नियमित (regulate) किया जाता है, उनके

* सोरन सिंह : सामाजिक नियन्त्रण और परिवर्तन

† "Law is the most specialised and highly finished engine of social control employed by society." —Ross, *Social Control*.

अधिकारों व कर्त्तव्यों की व्याख्या की जाती है, अपराधों का निश्चय होता है और अपराधियों के दण्ड की व्यवस्था होती है।

पीनल लॉ (Penal law) समाज के सदस्यों को कुछ विशेष प्रकार के व्यवहार करने से रोकता है और कुछ दूसरे प्रकार के व्यवहार करने को बाध्य भी करता है। यह दो प्रकार से सामाजिक नियन्त्रण करता है: (अ) समाज के अपराधियों का कार्यक्षेत्र सीमित करके, चाहे वह समाज से थोड़े दिनों के लिए अथवा हमेशा के लिए बहिष्कार करना हो, (ब) अन्य व्यक्तियों को कष्ट का भय दिलाकर उन्हें अपराध करने से रोककर।

सरकार जो कि कानून लागू करने के लिए बनायी जाती है, पुलिस की सहायता से समुदाय पर नियन्त्रण रखती है। इसके लिये विधान सभा आदि की सहायता ली जाती है। कानून का उद्देश्य सामाजिक कल्याण की व्यवस्था करना है। शक्तिशाली और वैषयिक साधनों से वह गैर कानूनी कार्य करने वालों को भी सामाजिक नियमों के अनुकूल रहने को बाध्य करता है। इस प्रकार समूह की रक्षा भी हो जाती है और व्यक्ति सामूहिक कल्याण के ऊपर आधारित व्यवहार-आदर्शों को सीख लेता है।

कानून उन लोगों के लिये नहीं बनाये गये हैं जिनकी कानूनपूर्ण प्रवृत्तियाँ होती हैं। यह उन लोगों के लिये है जिनका व्यवहार समूह कल्याण के विरुद्ध है। आज के अधिक गूढ़ होते हुये सामूहिक जीवन में राज्य द्वारा व्यक्ति का नियन्त्रण अधिक आवश्यक हो गया है। उदाहरण के लिए, पहले जब व्यक्ति बैलगाड़ियों में सफर करते थे, उस समय ट्रैफिक आर्डिनेन्स आवश्यक नहीं थे। आज के मोटर गाड़ियों के युग में व्यक्तियों को रोकने के लिए कानून का होना दो कारणों से आवश्यक हो गया है: (अ) कानून का पालन करने वाले की लापरवाह व्यक्ति से रक्षा करने के लिए; (ब) प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों के मार्ग में जाने से रोकने के लिये।

रॉस (Ross) ने कानून के दो कार्य बतलाये हैं। (अ) व्यक्तियों के कुछ हिंसात्मक कार्यों का कानून दमन करता है; (ब) दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखने के लिए, सहयोगपूर्ण कार्य करने के लिए व्यक्ति को बाध्य करता है।

सरकार (Government)

राजनीति के दो सबसे अधिक मौलिक कारक हैं: आर्थिक पदार्थों के लिये संघर्ष और शक्ति के साधनों के लिये संघर्ष। शक्ति होने पर सरकारी संस्थाओं पर नियन्त्रण करके आमदनी बढ़ायी जा सकती है अथवा आमदनी बढ़ने पर भौतिक सुख बढ़ने के साथ ही प्रतिष्ठा और सामाजिक प्रस्थिति (status) और दूसरों पर

शासन करने की योग्यता में भी वृद्धि होती है। क्योंकि राज्य पर नियन्त्रण करके शक्ति और सम्पत्ति दोनों को बढ़ाया जा सकता है इसलिये राजनीतिक संस्थाओं पर अधिकार करने के लिए विभिन्न राजनीतिक दलों में भीषण होड़ रहती है। अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये व्यक्ति राजनीतिक दलों पर निर्भर और विश्वास करते हैं। क्योंकि व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न उद्देश्य होते है इसलिये वे अलग-अलग राजनीतिक समूहों के सदस्य बनते हैं। इन भिन्न-भिन्न समूहों के अपने अलग उद्देश्य होते हैं। प्रत्येक समूह का अपना एक संगठन होता है जिस पर नेताओं का बेहद प्रभाव होता है। इन नेताओं के हाथ में संगठन का नियन्त्रण होता है परन्तु साथ ही वे अपनी कार्यवाहियों के परिणामों के लिये समूह के प्रति उत्तरदायी होते हैं। यह दल शिक्षा और प्रचार के द्वारा जनमत को अपने पक्ष में लाने और उनके वोट प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं।

सरकार पर नियन्त्रण करके, चुनाव में जीत कर, प्रभावशाली समूह सरकार को अपने उद्देश्यों के लिये प्रयोग करते हैं। रूचक ने Social Control नामक अपनी पुस्तक में उन साधनों की चर्चा की है जिनके द्वारा बहुमत वाले दल नियन्त्रण करते हैं :

(१) सरकार के भिन्न विभागों की कानूनी, परम्परागत और राजनीतिक शक्तियाँ : यह शक्तियाँ बहुत प्रबल होती हैं और समाज के सभी पहलुओं को प्रभावित करती हैं और शासक दल के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रयोग की जा सकती हैं। वह निम्न प्रकार से सम्भव है : (i) विवेक-शक्ति (discretionary power) का प्रयोग करके अर्थात् अनगिनती परिनियमों (statutes) में से केवल उनको लागू करना जो वे चाहते हैं; (ii) अपने हित और उन समूहों के हितों के अनुसार जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं अपने को प्राप्त शक्तियों की परिभाषा और व्याख्या करके; (iii) पहले से विद्यमान शक्तियों को नये अधिनियम (legislation) बना कर या संविधानों में इच्छानुसार संशोधन (amendment) कराके; (iv) जिन कानूनों को उन्होंने चुना है उनको सही तरीकों द्वारा लागू कराके जैसे शारीरिक दण्ड, जुर्माना, सम्पत्ति को जब्त करके, अनेक प्रकार के विशेष अधिकारों को वापस लेकर, धमकी, डराकर या यहाँ तक कि किन्हीं विशेष स्थितियों में तमाम लोगों की हत्या करा कर; (v) युद्ध छेड़ कर या युद्ध की धमकी देकर अन्य राज्यों से अनेक सुविधायें प्राप्त करना या घरेलू नीतियों की ओर से लोगों का ध्यान हटा कर; (vi) सरकार की कर-निर्धारित करने की शक्ति का इस प्रकार से प्रयोग करना कि वह शासक दल के माफ़िक हो और दूसरों के लिये बोझ हो या जनता से विशाल मात्रा में चन्दे एकत्रित करके जिन्हें कानूनी या गैर-कानूनी ढंग से अपनी जेब में और अपने समर्थकों की जेब में डाल के; (vii)

अदालतों के प्रति आदर प्रकट करने और उनके निर्णयों का पालन करवाने के लिये अदालतों द्वारा अपमान (contempt) की शक्ति का प्रयोग करा कर; (viii) स्कूलों का इस प्रकार प्रशासन करके जिससे शासक दलों की विचारधारा (ideology) बढ़े और सर्वसाधारण में लोकप्रिय हो; (ix) शासक दल की विचारधारा से सबको प्रभावित करने के लिये सरकारी साहित्य, रेडियो-समाचार आदि द्वारा प्रचार करके; (x) धार्मिक संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करके जिससे प्रोग्राम के लिये धार्मिक लोगों का समर्थन प्राप्त हो सके; (xi) सरकार का समर्थन करने वाले प्रमुख समूहों के साथ विशेष पक्षपात करके और उन्हें लाभ पहुँचा कर, जैसे पूंजीवादी समाज में व्यापारी समूह को और साम्यवादी (communist) समाज में मजदूर समूहों को लाभ पहुँचा कर।

संचार (communication) के साधनों द्वारा जनता का समर्थन प्राप्त करने की निम्नलिखित विधियों का प्रयोग होता है : (i) देशभक्ति की भावनाओं और राष्ट्रवादी भावना की अपील करके; (ii) ऐसे नारों और मुहावरों का प्रयोग करके जो स्वीकृत प्रथाओं और परम्पराओं या गहरे पक्षपातों (prejudices) को अपील करें; (iii) भूतकाल या वर्तमान काल के श्रेष्ठ दिखने वाले आदर्शों से प्रोग्राम को सम्बद्ध करके; (iv) झूठ और दो तरफ़ी बातों का प्रयोग करके जनता को यह सोचने के लिए प्रेरित करना कि प्रोग्राम वास्तव में अच्छा है। इस सम्बन्ध में नेतृत्व भी महत्वपूर्ण है क्योंकि लोगों में नेता को यश प्रदान करने और उसका अनुसरण करने की प्रवृत्ति होती है। शक्ति में आने के लिए प्रयत्न करने वाला प्रत्येक समूह अपने नेताओं को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न करता है और अतिरिक्त समर्थन प्राप्त करने के लिये उनकी प्रतिष्ठा का उपयोग करता है।

समाज द्वारा सरकार पर रोक-थाम

क्योंकि यह स्पष्ट है कि सरकारी संस्थाओं का उपयोग वे समूह अपने स्वार्थी उद्देश्यों के लिए करते हैं जो उन पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेते हैं, प्रमुख सरकारी पदों पर आरूढ़ हो जाते हैं, इसलिये यह सम्पूर्ण समाज के हित में आवश्यक है कि पदों पर आरूढ़ इन व्यक्तियों पर अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न कर सकने के लिए रोक-थाम लगायी जाये। कुछ अधिक महत्वपूर्ण रोक-थाम निम्नलिखित हैं : (i) **प्रथा और परम्परा की शक्ति**— यह बहुत शक्तिशाली है और काफी दिनों तक लगातार इनका उल्लंघन विद्रोह उत्पन्न कर सकता है। (ii) **जनमत**— यह समाज की रूढ़ियों और परम्परा पर आधारित होने के साथ-साथ उन व्यक्तियों और समूहों के स्वार्थों पर भी आधारित होता है जो सरकार में शामिल नहीं है। इसको अत्यन्त बलपूर्वक सरकार में गलत कार्य करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध भड़काया जा सकता

हैं। (iii) **चुनाव**—प्रजातांत्रिक राज्यों में चुनाव के द्वारा राजनीतिक दलों और उनके प्रतिनिधियों को हटाया जा सकता है और उनके स्थान में अन्य व्यक्तियों और समूहों के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करने वालों को चुना जा सकता है। (iv) **अन्य राजनीतिक दलों द्वारा विरोध**—पदाधिकारियों की ग़लतियों और व्यभिचार का भण्डा फोड़ करके विरोधी राजनीतिक दल जनता का समर्थन प्राप्त कर सकते हैं। (v) **विधान सभायें और लोकप्रिय विधायक**—सत्ता में आरूढ़-समूहों के विरोधी अपनी स्थिति का उपयोग करके विधान सभाओं में सरकारी अफ़सरों का कच्चा चिट्ठा खोल सकते हैं और सम्पूर्ण विरोधी दलों को आन्दोलित कर सकते हैं। बहुत से देशों में जनता विद्रोह करके कुछ कानूनों को पास होने से रोक सकती है और व्यभिचारी अफसरों को निलम्बित या तबादला करने के लिये मजबूर कर सकती है। (vi) **जूरी प्रणाली**—यह अदालतों पर रोक-थाम लगा सकती है। (vii) **शस्त्रों द्वारा क्रान्ति**—यदि शासक दल अत्यधिक शोषण करने लगते हैं तो विरोधी दल हथियारों द्वारा उनके विरुद्ध क्रान्ति ला सकते हैं। हाल में इण्डोनेशिया में हुई क्रान्ति इसका उदाहरण है।

राज्य के कार्य
(Functions of the State)

मैक आइवर और पेज के अनुसार राज्य के कार्यों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) **राज्य के लिए विशिष्ट कार्य** (**Functions peculiar to the State**)—इस प्रकार के कार्यों में हम समुदाय में शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने जैसी बातों को शामिल करते हैं। आज का जटिल समाज ऐसा है कि राज्य के अलावा कोई और संस्था समाज में शान्ति और सुव्यवस्था नहीं बनाये रख सकती। राज्य के पास कानून, अदालत, सेना और पुलिस का संगठन होता है, इसलिये वह अन्य संस्थाओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है। राज्य का कानून उन सब लोगों को लागू होता है जो एक समूचे भौगोलिक क्षेत्र के भीतर निवास करते हैं।

समुदाय में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने के अतिरिक्त नागरिकों के लिये न्याय की व्यवस्था करना, बाहरी शक्तियों या शत्रुओं से उनकी रक्षा करना, नागरिकों में होने वाले समझौतों की शर्तों को निश्चित करना, नाप तौल के पैमाने को निर्धारित करना, भूमि की व्यवस्था करना, मुद्रा (currency) का निर्माण तथा प्रचलन करना आदि कार्य भी केवल राज्य ही कर सकता है।

(२) **वे कार्य जिनके लिये राज्य अधिक उपयुक्त है** (**Functions for which the state is well adapted**)—इस श्रेणी के अन्तर्गत प्राकृतिक साधनों (resources) का लक्षण आ जाता है। समुदाय के वनों, वन्य-जीवों, तेल संसाधन

और खनिज पदार्थों की देख भाल राज्य अधिक उपयुक्त ढंग से कर सकता है। निजी एकाधिकार (monopoly) को रोकने का कार्य भी राज्य करता है। जहाँ कहीं विशिष्ट वर्गों के हित सामान्य हितों पर आघात करते हैं, राज्य सामान्य हित की रक्षा के लिए आता है। सामाजिक अधिनियम, औद्योगिक संरक्षा और बीमा के विविध प्रकार के कानून इस श्रेणी में आते हैं।

समुदाय के आर्थिक ही नहीं, निजी साधनों की रक्षा व विकास बहुत हद तक राज्य के हाथ में होता है। इस कार्य के अन्तर्गत शिक्षा की सामान्य व्यवस्था आ जाती है। सार्वजनिक उद्यानों, अजायबघरों, क्रीड़ास्थलों, गाँवों के सुख साधनों की समृद्धि व संरक्षा आदि की व्यवस्था भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। सामाजिक नीति के अध्ययन, जनगणना, समाज कल्याण से सम्बन्धित जानकारी आदि कार्य भी राज्य के क्षेत्राधिकार में आ जाते हैं। अन्य संस्थायें भी यह कार्य कर सकती हैं परन्तु इतने बड़े पैमाने पर, इस प्रभावशाली ढंग से और इतने अधिकार के साथ कोई अन्य संस्था नहीं कर सकती।

(३) कार्य जिनके लिए राज्य अनुपयुक्त होता है (Functions for which the state is ill-adapted) —कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें अन्य संस्थाओं की तुलना में राज्य कम अच्छी तरह से ही कर सकता है। समाज में छोटे छोटे अनेक उपसमूह होते हैं जिनके अपने धार्मिक, साँस्कृतिक स्वार्थ होते हैं। क्योंकि यह कार्य सम्पूर्ण समाज में सामान्य नहीं हैं, प्रत्येक स्वार्थ-समूह की अपनी अलग विशेषतायें और समस्यायें होती हैं, इसलिए राज्य इन कार्यों को ठीक से नहीं कर पाता। मध्यस्थ का कार्य करने के लिये भी राज्य अनुपयुक्त है। कलात्मक, साहित्यिक, वैज्ञानिक प्रयत्न या धार्मिक विवादों की मध्यस्थता करने के लिये भी राज्य उपयुक्त नहीं है।

(४) वे कार्य जिन्हें करने में राज्य असमर्थ होता है (Functions which the state is incapable of performing)— राज्य की असीम शक्ति के बावजूद भी कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिन्हें वह नहीं कर सकता। उदाहरण के लिये राज्य जनता के मत का नियन्त्रण नहीं कर सकता। अधिक से अधिक वह जनमत को प्रकट करने से विरोधी समूहों को कुछ समय के लिये रोक सकता है परन्तु उनके विश्वासों की हत्या नहीं कर सकता। वे तो रहेंगे और अवसर पा कर प्रकट किये जायेंगे। इसी प्रकार, राज्य नैतिकता का नियन्त्रण भी नहीं कर सकता। राज्य तो नैतिकता के बाहरी पहलुओं पर नियन्त्रण कर सकता है, परन्तु यदि नैतिकता का अर्थ हमारे साथियों और जीवन के प्रति मनोवृत्ति है, तो इनको नियन्त्रित करना राज्य के लिये सम्भव न होगा। फैशन आदि पर यदि राज्य हस्तक्षेप करे तो जनता

उसका तीव्र विरोध करे। पारिवारिक परम्पराओं, प्रथाओं, आचार-विचारों पर भी राज्य पूर्णतया नियंत्रण नहीं कर सकता।

सामाजिक नियंत्रण में राज्य की भूमिका
(Role of the State in Social Control)

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि राज्य सामाजिक नियंत्रण की एक अत्यन्त प्रभावकारी संस्था है। इसके कानून सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र के निवासियों पर सामान्य रूप से लागू होते हैं। इसके पास दमनकारी शक्ति भी होती है, पुलिस, अदालत, कानून, जेल आदि के द्वारा वह नियंत्रण करता है; सुधारगृहों में अपराधियों का सुधार करवा कर उन्हें योग्य नागरिक बनाता है; मद्य-निषेध, जुआ, वेश्यावृत्ति सम्बन्धी अधिनियम बना कर दुराचारों को रोकता है। फ़ेयरचाइल्ड ने इसीलिये कहा है: "राज्य समाज का वह अभिकरण, पहलू या संस्था है जो कि शक्ति का प्रयोग करने के लिये मान्य एवं उससे सुसज्जित है, अर्थात् वह दमनकारी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। इस शक्ति का प्रयोग वह किसी समाज के सदस्यों का नियंत्रण करने अथवा किसी अन्य समाजों के विरुद्ध कर सकता है।"*

(१) **प्रत्यक्ष कार्यों द्वारा नियंत्रण (Control through direct functions)**—प्रजातन्त्रीय समाजों में राज्य की एक विशेषता यह होती है कि वे अपने प्रत्यक्ष कार्यों द्वारा समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नियन्त्रण रखते हैं। उदाहरण के लिये, उद्योगों, खनिज पदार्थों, सोना, हीरा, रेलवे आदि पर राज्य के प्रत्यक्ष नियन्त्रण हैं। भारत में तो अनेक उद्योग पब्लिक सेक्टर में खोले गये हैं। अनाज, शक्कर आदि अपने भण्डारों में रखवा कर कमी के अवसरों पर सरकार सरकारी दूकानों के माध्यम से जनता को कम दाम पर उपलब्ध कराती है जिससे कालाधन पैदा करने वाले व्यावसायियों को जनता का शोषण करने का अवसर न मिले।

(२) **परिवार पर नियन्त्रण करके (Through control of the family)**—परिवार सामाजिक नियंत्रण का एक साधन है। आज की बदली हुई आर्थिक स्थिति में यदि परिवार के आकार, विवाह के स्वरूप आदि पर राज्य नियन्त्रण न रखे तो परिवार सामाजिक विघटन का एक कारक हो जाये। पारिवारिक योजना के द्वारा, सरकारी नौकरों को तीन से अधिक सन्तानें उत्पन्न करने से हतोत्साहित करने के लिये तरक्की सम्बन्धी शर्तें लगा कर, आय कर में केवल दो बच्चों तक ही कुछ छूट देकर सरकार जनसंख्या को अत्यधिक बढ़ाने से

* "State is that agency, aspect or institution of society authorized and equipped to use force that is to exercise coercive control. This force may be exerted in the way of control of the members of society or against other societies." —Fairchild.

रोकती है। मैकआइवर ने ठीक ही कहा कि परिवार का जितना नियन्त्रण राज्य करता है उतना कोई अन्य संस्था नहीं करती। अनेक प्रकार के अधिनियम बना कर राज्य एक-विवाह (monogamy) के पक्ष में, विवाह की आयु, दहेज, उत्तराधिकार-नियम, तलाक के सम्बन्ध में परिवार पर नियन्त्रण रखता है। इन सब कानूनों का पालन करने से परिवार में शान्ति और व्यवस्था रहती है। इसी कारण, पारिवारिक नियंत्रण सामाजिक नियंत्रण का एक रूप है क्योंकि परिवार समाज की सबसे प्राथमिक इकाई है। इसका विघटन समाज का विघटन ला सकता है।

(३) **मौलिक अधिकारों का संरक्षण (Protection of fundamental rights)**—सामाजिक नियंत्रण के सम्बन्ध में राज्य का एक महत्वपूर्ण कार्य नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करना है। मौलिक अधिकारों से तात्पर्य उन अधिकारों से है जो सभी जाति, वर्ग, और धर्म के लोगों की उन्नति के लिये आवश्यक हैं। विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता, उन्नति करने के समान अवसर प्राप्त करना, सम्पत्ति अर्जित करना, अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति और शोषण के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त करना हमारे समाज में राज्य द्वारा दिये गये मौलिक अधिकारों के उदाहरण हैं। हमारे देश में स्वतन्त्रता का अधिकार, समानता का अधिकार भी संविधान में दिये गये हैं। राज्य का महत्व इन मौलिक अधिकारों को देने में उतना नहीं है जितना इनकी रक्षा करने में। प्रत्येक राज्य अपने नागरिकों के इन मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिये पुलिस, अदालत, जेल का उपयोग करता है।

(३) **आन्तरिक सुव्यवस्था और शान्ति कायम करना (Maintenance of internal order and peace)**—राज्य का एक महत्वपूर्ण कार्य समाज में आन्तरिक सुव्यवस्था और शान्ति कायम रखना है। प्रत्येक समाज में भिन्न प्रजाति, वर्ग, जाति, धर्म आदि के लोग होते हैं। इनमें अक्सर संघर्ष होते हैं और यदि उनको दबाया न जाये तो वे विकराल रूप धारण कर सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को नष्ट कर सकते हैं। हमारे देश में हिन्दू और मुसलमानों के बीच, शिया और सुन्नी मुसलमानों के बीच अक्सर दंगे होते हैं। अक्सर सरकार पहले से ही सावधान रहकर ऐसी व्यवस्था करती है कि यह दंगे होने न पायें और यदि शुरू हों भी तो फौरन उनका दमन कर दिया जाये। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय संशोधन बिल जो अभी हाल में पास हुआ है उसके विरोध में जो साम्प्रदायिक मुसलमान दल हैं उनके दंगे कराने के प्रयास को सरकार ने विफल कर दिया। अनिवार्य क्षेत्रों में हड़तालें, दूसरे देशों से सहायता प्राप्त विध्वंसकारी (saboteurs) तत्वों की गतिविधियों पर नियंत्रण रख कर, बाढ़ आदि अवसरों पर जान माल की रक्षा करके राज्य सामाजिक नियन्त्रण करता है। गुण्डों के विरुद्ध कानून बनाकर और लागू

करके, चोरों और अन्य अराजक तत्वों से सामाजिक रक्षा करके राज्य समाज में नियन्त्रण रखता है।

(५) **सामाजिक क्रियाओं का निर्देशन एवं नियंत्रण (Direction and control of social activities)**—राज्य समाज में व्यक्तियों और समूहों की सामाजिक क्रियाओं का नियंत्रण एवं निर्देशन भी करता है। अनेक कुरीतियाँ जो बहुत दिनों से चली आ रही हैं उनको कानून बनाकर राज्य बन्द करवा सकता है यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है: उदाहरण के लिये, सन् १८८९ में सती-प्रथा पर रोक लगायी गयी। पहले अनेक विधवायें स्वेच्छा से और अधिकतर जबर-दस्ती मृत पति के साथ जला दी जाती थीं। इसी प्रकार, यहां अस्पृश्यता समाज का कलंक थी। अस्पृश्यों की अनेक सामाजिक निर्योग्यतायें थीं। राज्य ने कानून के द्वारा इनका भी अन्त कराया। विधवा-विवाह सम्बन्धी, बाल-विवाह और अन्तर्जाति विवाह सम्बन्धी अधिनियम बनाकर राज्य-सरकार ने समाज की बुरी रीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। राज्य अनेक ऐसी सामाजिक क्रियाओं के विरुद्ध प्रचार करके सामाजिक नियंत्रण करता है जो सामाजिक एकता के लिये हानिकारक हैं जैसे भाषावाद, साम्प्रदायिकतावाद, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद, प्रान्तीयतावाद आदि।

(६) **कल्याणकारी व्यवस्था का निर्माण (Provision of welfare measures)**—आजकल कल्याण-राज्यों को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त है। संसार के सभी देशों में निर्धनता, बेकारी, अज्ञानता, अशिक्षा आदि सामाजिक रोग मौजूद हैं। राज्य इन बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करता है। अपंग, बीमार, वृद्ध, बच्चों, स्त्रियों की सहायता के लिये आवश्यक प्रबन्ध करके राज्य समाज से अव्यवस्था दूर करता है। श्रमिकों के सम्बन्ध में, फैक्टरियों में काम करने वाले बच्चों की आयु निश्चित करके, स्त्री मजदूरों को विशेष छुट्टियाँ मय वेतन को दिला कर, अस्पताल आदि खुलवा कर राज्य दलित और निर्धन वर्गों को ऐसी सुविधायें दिलाता है जिनके बगैर उनका जीवन दूभर हो जाये। इस प्रकार, सभी वर्गों के हितों का ध्यान रखकर राज्य विप्लव रोकता है।

(७) **आर्थिक व्यवस्था पर नियंत्रण (Control over economic system)**— राज्य में अव्यवस्था रोकने के लिये आर्थिक प्रणाली में राज्य का हस्तक्षेप और नियन्त्रण आवश्यक है। मनुष्य की आवश्यकताओं में आर्थिक आवश्यकतायें प्रमुख हैं। राज्य का कर्तव्य है कि वह देखे कि कोई व्यक्ति भूखा न रहे। हर व्यक्ति के लिए नौकरी का प्रबन्ध करना राज्य का कर्तव्य है। हमारे देश में जो पंचवर्षीय योजनायें बनीं उनका प्रमुख उद्देश्य देश की आर्थिक उन्नति है। यदि राज्य समझता है कि कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना सामान्य हित में होगा तो वह ऐसा करता है। वह श्रम-अधिनियम बनाकर मजदूरों और मिल-मालिकों के सम्बन्ध ठीक करता

है। हड़तालों और ताले बन्दी का आर्थिक व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है, इस लिये इनका निपटारा करना राज्य का एक प्रमुख कार्य है। राष्ट्रीय सम्पत्ति का समान वितरण कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उद्देश्य होता है। हमारे देश में ग्रामीण और शहरी सम्पत्ति की हद बन्दी होने जा रही है, सम्पत्ति कर लग गया है, उच्च आय वर्गों पर अधिक आय कर लगना, इन सबका उद्देश्य आर्थिक असमानता को दूर करना है। यदि इन प्रयासों से आर्थिक समस्यायें दूर हो जायें तो समाज में चोरी, डकैती, जाल साजी, गबन आदि की घटनायें भी कम हो जायें। ऐसी स्थिति सामाजिक नियंत्रण में सहायक हो।

(८) **बाहरी आक्रमण से रक्षा (Protection from external invasion)**– राज्य का एक प्रमुख कार्य, जो कोई अन्य संस्था नहीं कर सकती, बाहरी आक्रमण से रक्षा करना है। बड़ी शक्तियों के अतिरिक्त लगभग सभी देश पड़ोसी राज्यों के द्वारा आक्रमण की आशंका करते रहते हैं और उसके लिये तैयारी करते रहते हैं। यहां तक कि चीन और रूस जैसी बड़ी शक्तियों में भी तनाव रहता है, भौगोलिक सीमा को लेकर छोटी मोटी लड़ाई होती रहती है। बाहरी आक्रमण से न केवल भौगोलिक क्षेत्र के खोने का डर रहता है बल्कि जान, माल का खतरा रहता है। इसका सभी सामाजिक, आर्थिक संस्थाओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है। राज्य अपने नागरिकों का भी मनोबल ऊँचा रखने का प्रयत्न करता है।

(९) **कानून द्वारा नियंत्रण (Control through law)**—यह हम पहले कह चुके हैं कि क़ानून सामाजिक नियंत्रण का सबसे विशिष्ट और प्रभावकारी साधन है। यदि समाज में क़ानून न हो तो जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ हो। जान, सम्पत्ति, स्त्री आदि कोई भी वस्तु सुरक्षित न रह जाये। इसलिये राज्य क़ानून बनाकर और उसको लागू करके, अपराधियों को दण्ड देकर सामाजिक नियंत्रण करता है। वैसे तो प्रथायें भी सामाजिक नियंत्रण करती हैं। परन्तु एक तो उनमें बाध्य करने की शक्ति कम है, सभी समूहों पर समान रूप से लागू नहीं होती और समाज में होने वाले परिवर्तनों के कारण प्रभावहीन हो जाती हैं। दूसरी ओर, राज्य बदली हुइ स्थितियों के अनुरूप क़ानूनों में संशोधन कर सकता है या नये कानून बना सकता है, सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र पर समान रूप से कानून लागू कर सकता है। सभी लोगों द्वारा सामान्य कानून का पालन करने से उनके व्यवहार में एकरूपता आती है जो सामाजिक नियंत्रण में मदद करती है।

(१०) **दण्ड के द्वारा नियंत्रण (Control by punishment)**—राज्य के लिये केवल कानून बनाना ही काफ़ी नहीं है। हर समाज में ऐसे व्यक्ति होते हैं

जो कानून का उल्लंघन करना चाहते हैं और अन्य लोगों का अहित कर अपने स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते हैं। राज्य ऐसे लोगों को अदालतों द्वारा दण्ड दिलाता है। इससे कानून का पालन करने वालों की कानून के प्रति श्रद्धा बढ़ती है। प्रत्येक राज्य में एक पीनल कोड या दण्ड विधान होता है जो दण्ड के द्वारा दो प्रकार से नियंत्रण करता है; (i) समाज में अपराधियों पर कड़ी निगाह रख कर, उन्हें जेल में बन्द रख कर, और उन्हें समाज से हमेशा के लिये या थोड़े दिनों के लिये निकाल कर, और (ii) अन्य व्यक्तियों को दण्ड का भय दिखाकर वैसे ही अपराध करने से रोक कर।

(११) **शिक्षा के प्रसार के द्वारा नियंत्रण (Control by means of education)**—शिक्षा व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। शिक्षा व्यक्ति को अन्धकार से बाहर लाकर वास्तविकता से उसे परिचित कराती है। शिक्षा के द्वारा वह उचित और अनुचित, कानून और अपराध का अन्तर समझता है। साधुओं के रूप में ठगी, साम्प्रदायिकता आदि बुराइयों के सम्बन्ध में शिक्षा, राष्ट्रीय एकता की शिक्षा, जीविका अर्जन से सम्बन्धित शिक्षा देकर राज्य सामाजिक व्यवस्था बढ़ाने में कार्य करता है।

(१२) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के नियमन के द्वारा नियंत्रण (Control through regulation of international order)**—सामाजिक नियंत्रण स्थापित करने के लिये राज्य केवल अपने भौगोलिक क्षेत्र के अन्दर ही कार्यवाही नहीं करता बल्कि Interpol जैसी संस्थाओं के माध्यम से विदेश को भागे हुये अपराधियों को भी पकड़ मंगवाता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, स्मगलिंग, विदेश यात्रा पर नियंत्रण रख कर वह देश के पैसे को बाहर जाने से रोक कर आर्थिक व्यवस्था बनाये रखता है। संयुक्त राष्ट्र में दूसरे देशों से चलने वाले विरोधों की शिकायत करके, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं से सहायता लेकर, विदेशों से प्रतिरक्षा के लिये हथियार खरीद करके, उनके साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान करके, विदेशी उद्योगपतियों को अपने देश में उद्योग लगाने को उत्साहित कर, अपनी आर्थिक समस्या हल करके राज्य सामाजिक नियंत्रण करता है।

———

५ सामाजिक नियन्त्रण में प्रथायें (Customs in Social Control)

प्रथा (Custom) एक व्यापक शब्द है जिसके अन्दर वे सब व्यवहार आदर्श आ जाते हैं जिनको लोकरीतियों और रूढ़ियों के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। इसका अर्थ बहुत दिनों में प्रचलित रीति से लगाया जाता है और इस लिए उन बातों के विपरीत बतलाया जाता है जो नयी हैं, जैसे कि जब हम कहते हैं कि ऐसा करने की रीति है 'या कोई बात प्रथा के विरुद्ध' है। प्रथा से मुख्यत: उन रीतियों से अर्थ लगाया जाता है जो अनेक पीढ़ियों द्वारा अक्सर दोहराई गई हैं, जिनका पालन केवल इसलिए होता है क्योंकि भूतकाल में ऐसा होता रहा है। इस प्रकार, यह शब्द रूढ़ि की अपेक्षा लोकरीति के अधिक नजदीक है, परन्तु साथ ही लोकरीति और रूढ़ि दोनों की ही परम्परागत, स्वत:, सामूहिक प्रकृति को बतलाता है।*

किंग्सले डेविस के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रथा' के अन्तर्गत हम लोकरीतियों और रूढ़ियों को रखते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से

---

* Custom is a broad term embracing all of the norms classified as folkways and mores. It connotes long established usage and is therefore frequently contrasted with what is new, as when we speak of 'the customary way of doing things' or say that a given innovation is 'contrary to custom'. Custom refers primarily to practices that have been oft-repeated by a multitude of generations, practices that tend to be followed simply because they have been followed in the past. The term is therefore closer to folkways than the mores, but it tends to convey the traditional, automatic, mass character of both of them."

—Kingsley Davis, *Human Society*,

प्रथा बहुत कुछ सामूहिक आदत के समान होती है। प्रथाओं से तात्पर्य ऐसे सामूहिक व्यवहार से होता है जिन्हें समाज ने मान्यता प्रदान की है, जिन्हें एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता है, और जिनका बिना सोचे विचारे पालन किया जाता है। ऐसा करने का एक मनोवैज्ञानिक कारण है। यह व्यवहार करने के ढंग पीढ़ियों से आजमाये हुए हैं, हमारे पूर्वज हमेशा से ऐसा ही करते आये हैं, उन्हें इससे लाभ हुआ है, इसलिये यही व्यवहार करने के सही ढंग हैं। इस उपयोगिता की भावना के साथ उन्हें यह भी भय रहता है कि यदि इन्हीं व्यवहार आदर्शों के अनुसार कार्य न किया गया तो इससे पूर्वजों का अपमान होगा और समाज को उनका कोपभाजन बनना पड़ेगा।

परिभाषायें

मैकआइवर और पेज : "समाज से मान्यता प्राप्त कार्य करने की विधियाँ ही समाज की प्रथायें हैं।"*

मीरा कोमारोवस्की : "प्रथा व्यवहार करने की समाज द्वारा विहित पद्धति है जो कि परम्परा के द्वारा संचालित होती है और अवहेलना करने पर सामाजिक अस्वीकृति के भय के द्वारा लागू की जाती है।"†

बोगार्डस : "प्रथायें और परम्परायें समूह के द्वारा स्वीकृत नियन्त्रण की वे पद्धतियाँ हैं जो सुव्यवस्थित हो जाती हैं, जिन्हें बिना सोचे विचारे मान्यता दे दी जाती है और जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती हैं।"‡

प्रथा की विशेषतायें

(१) प्रथायें किसी विशेष सामुदायिक परिस्थिति में व्यवहार करने के तरीकों को कहते हैं।

(२) प्रथाओं का आधार समाज है परन्तु सामाजिक अन्तःक्रिया के दौरान यह विकसित होती हैं, न कि जानबूझकर बनायी जाती हैं।

(३) प्रथा समूह द्वारा व्यवहार करने के ऐसे ढंग हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी

---

* "The socially accredited ways of acting are the customs of society." —MacIver and Page

† "Custom is a socially prescribed mode of behaviour, carried by tradition and enforced by social disapproval of its violation." —Mira Komarovasky.

‡ "Customs and traditions are group accepted techniques of control that have become well established, that are taken for granted and that are passed along from generation to generation" —E. S. Bogardus.

हस्तांतरित होते रहते हैं। इनका पालन करने का कारण यह है कि एक लम्बे अर्से से ऐसा होता आया है।

(४) लम्बे अर्से से चली आने और समाज द्वारा अभिमति (sanction) प्राप्त करने के कारण वे समूह में स्थायित्व प्राप्त कर लेती हैं। इन तरीक़ों से व्यवहार करने से क्योंकि हमेशा सफलता मिली है इसलिये यह समाज की स्थायी विशेषता बन जाती हैं।

(५) प्रत्येक समुदाय अपने सदस्यों से यह आशा करता है कि वे प्रथाओं का पालन करेंगे। अनेक प्रथायें बाध्य करने की शक्ति रखती हैं।

(६) प्रथायें केवल अपेक्षित एवं सामान्य व्यवहार ही नहीं होतीं बल्कि इनमें समाज का एक अव्यक्त निर्णय भी छुपा होता है और इन्हें उपयुक्त व्यवहार समझा जाता है।

(७) प्रथायें रूढ़िवादी होती हैं, इन्हें आसानी से बदला नहीं जाता।

(८) प्रथाओं का व्यक्तित्व पर इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि यदि कानून से उनका संघर्ष हो तो उन्हीं की सामान्यतः विजय होती है।

(९) प्रथाओं को बनाने, लागू करने तथा उल्लंघन करने वालों को दण्ड देने के लिये कोई संगठन नहीं होता।

(१०) प्रथायें व्यक्ति के हर प्रकार के व्यवहारों को नियन्त्रित करने की क्षमता रखती हैं। बचपन से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति प्रथाओं से घिरा रहता है।

(११) 'प्रथा' की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिये सामूहिक 'आदत' के साथ उसका अन्तर स्पष्ट करना भी आवश्यक है। गिन्सबर्ग के अनुसार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रथा कुछ बातों में आदत की तरह होती है। प्रथा में एक आदर्श नियम होता है और साथ ही बाध्यता भी होती है। आदर्श नियम से प्रथा के दो महत्वपूर्ण लक्षण प्रकट होते हैं : (i) प्रथा कार्य या व्यवहार की एक व्यापक आदत मात्र नहीं है बल्कि उसमें भलाई बुराई का भी निर्णय छिपा रहता है; (ii) यह निर्णय सामान्य तथा अवैयक्तिक होता है।

लोकरीतियाँ (Folkways)

"Folkways" शब्द का प्रयोग सबसे पहले विलियम समनर ने सन् १९०६ में किया था। इसके शाब्दिक अर्थ हैं : लोगों के ढंग, वे ढंग जो लोगों ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, आपस में अन्तःक्रिया करने के लिये बनाये हैं। प्रत्येक समाज की अपनी अलग लोकरीतियाँ होती हैं। समनर के अनुसार लोकरीतियाँ मनुष्यों के किसी समूह की, सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के सामान्य,

अपरिवर्तनशील, और अनिवार्य ढंग थीं।* इनका उन ढंगों से तात्पर्य नहीं है जो जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए जानबूझ कर तर्क पूर्वक सोच कर निकाले गये हैं। यह वास्तव में प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये मनुष्यों के "blind trial-and-error" प्रयत्नों से निकले हैं। यह केवल किसी एक व्यक्ति की आदत न होकर सम्पूर्ण समूह की आदतें हैं।

दैनिक व्यवहार के अधिकतर प्रतिमान (patterns) लोकरीतियाँ कहलाते हैं। यह अपेक्षाकृत अधिक दिन तक चलने वाली, प्रमापित रीतियाँ होती हैं जिनका पालन उचित स्थिति में आवश्यक समझा जाता है परन्तु पूरी तौर पर अनिवार्य नहीं, जो अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रणों (कानाफूसी, उपहास, बहिष्कार) के द्वारा लागू की जाती हैं न कि औपचारिक शिकायत या दबाव के द्वारा, और जिनकी उत्पत्ति एक अनियोजित और अस्पष्ट ढंग से होती है, न कि जानबूझकर बनाकर।† उदाहरण के लिए, किसी भाषा की व्याकरण और शब्द-संग्रह (vocabulary) शाब्दिक लोकरीतियों (verbal folkway) की प्रणाली बनाती हैं, यद्यपि उनमें से अधिकतर को हम नहीं जानते हैं। इसी प्रकार, ऐसी बातें या वस्तुयें जैसे प्रति-दिन कितनी बार भोजन करना है, भोजन बनाने का ढंग, खाने में प्रयोग होने वाले पदार्थ, दाँतों को नियम से साफ करना, मेज, कुर्सी, पलंग आदि का प्रयोग यह सब लोकरीतियाँ हैं।

लोकरीतियों के ही द्वारा सामाजिक साँस्कृतिक पर्यावरण में रहने का कार्य सम्भव होता है। उनका बिना सोचे विचारे पालन करने के कारण वे अधिक दक्षतापूर्वक सम्पादित होती हैं और मस्तिष्क चिन्ता से मुक्त रहता है। यदि हर छोटी-छोटी बात के बारे में हमें सोचना पड़े तो हम परे-शान हो जायें। जिन लोकरीतियों का हम अक्सर पालन करते हैं वे आदत बन जाती हैं—सोचने और करने की आदतें और हमारे मानसिक जीवन में एक निश्चित स्थान बना लेती हैं। इनके कारण हम अपने और दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार की भविष्यवाणी कर सकते हैं जिसके कारण हम जीवन में कुछ सुरक्षा और व्यवस्था

* "......the uniform, invariable, and imperative ways of a group of man for meeting common needs." —Sumner.

† "These are relatively durable, standardized practices regarded as obligatory in the proper situation but not absolutely obligatory, enforced by informal social controls (gossips, ridicule, ostracism) rather than by formal complaint or coercion, and originating in an unplanned and obscure manner rather than by deliberate inauguration." —Kingsley Davis.

अनुभव करते हैं। किन्हीं लोकरीतियों का उल्लंघन करना तो सम्भव होता है, परन्तु सब लोकरीतियों का उल्लंघन करना असम्भव होगा क्योंकि ऐसा करने से उस व्यक्ति के साथ कोई अन्य व्यक्ति सामाजिक सम्पर्क नहीं रखेगा। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के लिए जीवित रहना मुश्किल हो जायेगा, न केवल शारीरिक (सुरक्षा, आर्थिक आवश्यकताओं की दृष्टि से) तौर पर बल्कि मानसिक तौर पर भी। यदि मानव अस्तित्व का आदि और अन्त कहीं मिलता है तो वह लोकरीतियों में है क्योंकि हम उन्हीं से शुरू करते हैं और हमेशा वहीं लौट आते हैं।*

लोकरीतियों और रूढ़ियों के लिए यह कहा जाता है कि वे समूहगत व्यवहार की आदतें हैं जो समूह के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण हैं। अपने को जीवित रखने के लिए अपने पर्यावरण से सामंजस्य करने की मनुष्य की वास्तविक आवश्यकता के कारण इनका जन्म हुआ है। जैसे कि समनर ने कहा है मनुष्य का पहला कार्य अपने को जीवित रखना था और है। समनर का यह विश्वास है कि मनुष्य को सुख की और कष्ट से बचने की, इच्छा थी और इस सम्बन्ध में उसने "trial-and-error" पद्धति का प्रयोग किया। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसने बिना किसी तर्क के अनेक प्रयोग किये और विश्वास किया कि जिस प्रकार पिंजड़े में बन्द कोई जानवर निकलने के लिये अनेक प्रकार के प्रयत्न करता है वैसे ही अनेक प्रकार के प्रयत्न मनुष्य ने भी किये और सोचा कि किसी न किसी प्रयोग से उसे संतोषप्रद फल प्राप्त होंगे। सुख और दुख और अनुभव से लाभ उठाने और एक दूसरे से सीखने की योग्यता जीवन के मौलिक पथ-प्रदर्शक हैं। अनुकरण (imitation) के द्वारा यह आदतें सर्वत्र फैलती हैं और लोकरीतियाँ बन जाती हैं। यह लोकरीतियाँ तब तक कायम रहती हैं जब तक उनसे सुख और संतोष प्राप्त होता है। वे बच्चों को सिखाई जाती हैं और इस प्रकार उनका विकास होता है।

एक बार लोकरीति बन जाने पर यह आदतें स्थायी बन जाती हैं और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त कर लेती हैं। समनर कहते हैं कि समय के साथ ही यह अधिक शक्तिशाली नियंत्रण और अनिवार्य बन जाती हैं और इनका पालन करना आवश्यक हो जाता है। हम उनका पालन इसलिये करते हैं क्योंकि हमारे पूर्वज ऐसा ही करते थे।

लोकरीतियाँ वे व्यवहार-आदर्श हैं जिनका पालन हम इसलिये करते हैं क्योंकि ऐसा हमेशा से होता आया है। लोकरीतियों का पालन करना न कानून की दृष्टि से अनिवार्य है, और न समाज की कोई विशेष संस्था इसलिये बनाई गई है। बहुत सी

---

* If the alpha and omega of human existence are to be found anywhere it is in the folkways, for we begin with them and always come back to them." —Davis.

लोकरीतियों का तो वास्तव में बहुत कम पालन होता है। उदाहरण के लिए, ईसाइयों में सोमवार का दिन कपड़े धोने का दिन है परन्तु बहुत थोड़े लोग ऐसा करते हैं। अन्य लोकरीतियाँ कुछ अधिक अनिवार्य होती हैं, जैसे कुछ स्कूलों में एक विशेष प्रकार के वस्त्र पहन कर जाना छात्र और छात्राओं के लिये अनिवार्य होता है।

लोकरीतियों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को कोई शारीरिक या आर्थिक दण्ड नहीं दिया जाता है। वास्तव में, इनका उल्लंघन करने वाले व्यक्ति दूसरों की हँसी और उपहास के पात्र बन जाते हैं जिस भय के कारण अधिकतर व्यक्ति लोकरीतियों का पालन करते हैं।

परिभाषायें

मैकाइवर और पेज : "लोकरीतियाँ समाज में व्यवहार करने के मान्य या स्वीकृत ढंग हैं।"*

ग्रीन : "लोकरीतियाँ व्यवहार करने के ऐसे ढंगों को कहते हैं जो किसी समाज या समूह में सामान्य होते हैं और एक पीढ़ी द्वारा अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित किये गये हैं।"†

गिलिन और गिलिन : "लोकरीतियाँ दैनिक जीवन के व्यवहार-प्रतिमान हैं, जो सामान्यतः समूह में अचेतन रूप से विकसित होते हैं ··· बग़ैर योजनाबद्ध या तार्किक विचारों के।"‡

मार्टिन्डेल और मोनैकसी : "लोकरीतियाँ कार्य करने के वे आदतन ढंग हैं जो व्यक्ति के व्यक्ति के साथ और व्यक्ति के स्थान के साथ सामंजस्य के कारण उत्पन्न होते हैं।"**

रूढ़ियाँ

'Mores' एक लैटिन शब्द है जो प्रथाओं (customs) के लिये प्रयोग होता है। यह सार्वभौमिक प्रथायें हैं जिनका जनमत के भय के कारण पालन किया

* "The folkways are the recognized or accepted ways of behaving in society." —MacIver and Page.

† "Those ways of acting that are common to a society or group and that are handed down from one generation to the next, are known as folkways." —A. W. Green.

‡ "Folkways are behaviour patterns of everyday life, which generally arise unconsciouly in group ...without planned or rational thoughts." —Gillin and Gillin

** "Folkways are habitual ways of doing things that arise out of the adjustment of person to person and of person to place."
—Martindale and Monachesi.

जाता है। समनर का विश्वास है कि रूढ़ियाँ लोकरीतियों से निकली हैं और लोकरीतियाँ उस समय रूढ़ियाँ बन गई जब उनमें सामाजिक कल्याण का दर्शन (philosophy) भी जुड़ गया। गिडिंग्स और होल्ड का कहना है कि लोकरीतियों और रूढ़ियों का अन्तर यह है कि रूढ़ियों का उल्लंघन करने पर सख्त सजा मिलती है जब कि लोकरीतियों का उल्लंघन करने पर केवल उपहास प्राप्त होता है जो कि समाज से बहिष्कार किये जाने की अपेक्षा कम सख्त दण्ड हैं जो दण्ड रूढ़ियों का उल्लंघन करने वालों को प्रायः दिया जाता है।

व्यवहार आदर्श (norms), जिनका रूढ़ियों और लोकरीतियों में वर्गीकरण किया जाता है, महत्व में इस आधार पर एक दूसरे से भिन्न होते हैं कि किस हद तक वे समाज की भलाई से सम्बन्धित हैं। जैसा कि समनर ने कहा है : "जब सच्चाई और उचित के तत्वों का कल्याण के सिद्धान्तों में विकास होता है, हम उन्हें रूढ़ियाँ कहते हैं।" * लैटिन शब्द mores को चुनते समय समनर ने कहा : "रोमन लोग प्रथाओं के लिये उसके बहुत व्यापक अर्थ में mores शब्द का प्रयोग करते थे जिसमें यह धारणा भी छिपी थी कि प्रथायें कल्याणकारी होती थीं और उनको परम्परागत और रहस्यमय अनुमोदन प्राप्त था जिसके कारण वे उचित रूप से अधिक शक्ति-सम्पन्न और पवित्र थे।" † इससे स्पष्ट है कि पहले न केवल यह विश्वास था कि प्रथाओं या रूढ़ियों का उल्लंघन करने से न केवल किसी का अकल्याण होगा बल्कि अज्ञात शक्तियों का कोप भी होगा क्योंकि उनका अनुमोदन रूढ़ियों को प्राप्त था।

रूढ़ियाँ अक्सर प्रमुख व्यवहार-आदर्श होती हैं क्योंकि वे समाज की एकता और सुचारु रूप से उसके कार्य करने के लिये महत्वपूर्ण हैं। इनके उल्लंघन से महत्वपूर्ण सामाजिक मूल्यों को खतरा उत्पन्न होता है। एक-विवाह (monogamy) इस प्रकार का मूल्य है। दो स्त्रियाँ रखने वाला व्यक्ति व्यभिचारी कहा जाता है जो बेईमान, अनैतिक या असन्तुलित मस्तिष्क वाला होता है। ऐसे अपराध के लिये कानूनी दण्ड की व्यवस्था है परन्तु साथ ही कुछ अतिरिक्त कानूनी दण्ड भी दिये जाते हैं जैसे कि बहिष्कार या उसको नौकरी न देना चाहे वह नौकरी के

---

* "When the elements of truth and right are developed into doctrines of welfare..we call them mores." —Sumner.

† "The Roman used *Mores* for customs in the broadest and richest sense of the word, including the notion that customs served welfare and had tradition and mystic sanction so that they were properly authoritative and sacred." —Sumner.

लिये कितना ही प्रशिक्षित और होशियार क्यों न हो। फिर भी, जिन समाजों में बहु-विवाह प्रचलित है वहाँ एक विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उदाहरण के लिये, पहले तिब्बत की स्त्रियाँ एक-वैवाहिक जीवन को अत्यन्त नीरस समझती थीं।

जिन रूढ़ियों को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता है और जिनके साथ प्रबल उद्वेग जुड़े होते हैं उनको सभ्य समाजों में कानून बना दिया जाता है। निकट रक्त-सम्बन्धी के साथ यौन सम्बन्ध-निषेध, हत्या या मनुष्य माँसभक्षी होने का निषेध, और प्राइवेट सम्पत्ति की रक्षा पहले रूढ़ियाँ थे जिन्हें सभ्य समाजों में कानून का रूप दिया गया। वन्यजातियों में यह अब भी रूढ़ियाँ हैं। इनका उल्लंघन सामाजिक व्यवस्था की नींव पर आक्रमण है और इसके प्रति तीव्र उद्वेगात्मक प्रतिक्रिया होती है।

सिसरो (Cicero) ने अपनी पुस्तक 'Moral Ends' (De Finibus) में रूढ़ियों को 'doctrina bene vivendi' अर्थात् आदर्श जीवन व्यतीत करने की कला (the art of living virtuously) के रूप में परिभाषित किया है। समनर ने इन्हें वे रूढ़ियाँ बताया है जो एक उच्च स्तर पर उठा दी गई हैं। जब लोकरीतियाँ सही जीवन का दर्शन और जन कल्याण की नीति अपना लेती हैं तो वे रूढ़ियाँ बन जाती हैं। * मैकाइवर ने इसके व्यवहार नियंत्रित और नियमबद्ध करने के पहलू पर बल देते हुए रूढ़ियों के सम्बन्ध में कहा है: "यदि हम किसी समूह के व्यवहार प्रतिमानों की सम्पूर्ण प्रणाली को लोकरीतियाँ कह सकते हैं, तो व्यवहार नियमित करने वाली प्रणाली को हम रूढ़ियाँ कहेंगे।" †

ऊपर हमने कहा है कि लोकरीतियाँ आगे चलकर रूढ़ियों का रूप ले लेती हैं। अब हम इस प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन करेंगे। किसी समूह में किसी एक लोकरीति का कुछ समय तक पालन होने के बाद कुछ सदस्य यह धारणा बना लेते हैं कि वह लोकरीति समूह-कल्याण के लिये अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त, यह सदस्य यह भी विश्वास कर लेते हैं कि वही सही ढंग या रीति है और उसका पालन न करना समाज के लिये खतरनाक होगा। इस प्रकार, उसमें कल्याण का पहलू जुड़ जाने पर लोकरीति रूढ़ि बन जाती है।

---

* "When the folkways take on a philosophy of right living and a life policy of welfare, then they become mores." —Sumner.

† "If we name the whole system of behaviour patterns characteristic of a group its folkways, the system regarded as a regulator of conduct may be termed the mores."

—R.M. MacIver, *Society: I Its Structure and Changes* p. 17

हम अनेक लोकरीतियों से परिचित हैं। उदाहरण के लिये, सड़क पर दायें या बायें चलना; काँटे, छुरी और चम्मच से खाना, स्त्रियों को अभिवादन करते समय अपना हैट छूना; मिलने पर हाथ मिलाना। हम यह जानते हैं कि यह रीतियाँ सरल होते हुए भी हमारे कल्याण के लिये अनिवार्य नहीं हैं। अंग्रेज बायें चल कर जिस प्रकार आराम से रहते हैं उसी प्रकार अमेरिकन दायें चल कर, जिस प्रकार चीनी लोग चाप स्टिक प्रयोग कर स्वस्थ रहते हैं, उसी प्रकार हम काँटे, छुरी और चम्मच का प्रयोग करके स्वस्थ रहते हैं। यदि हम हाथ मिलाना बन्द करदें तो हम पर कोई विपत्ति नहीं आयेगी। इसका अर्थ यह है कि ऐसी लाखों लोकरीतियाँ हैं जिनको सरलता से बदला जा सकता है या जिनको हम बिना किसी विशेष कष्ट या असुविधा के भूल सकते हैं। अधिकतर लोकरीतियों के बारे में हम ऐसा ही सोचते और अनुभव करते हैं।

परन्तु कुछ लोकरीतियों के विषय में हम भिन्न प्रकार से सीखते हैं, उनके प्रति हमारी मनोवृत्ति निश्चय ही भिन्न होती है। उदाहरण के लिये, यह उदासीनता हम एक-विवाह (monogamy) के प्रति नहीं रखते हैं। इसके बारे में हमारे विचार दृढ़ हैं। हममें से औसत आदमी यही कहेगा कि यह सबसे अच्छा ढंग है और हमारे कल्याण के लिये अनिवार्य है, वह अन्य रीतियों और उनका पालन करने वाले व्यक्तियों को अपने से हीन और बराबर खतरे में समझेगा। यही बात हम प्रजातंत्र (democracy) के बारे में भी कह सकते हैं। हम प्रजातंत्र में दृढ़ विश्वास करते हैं; हमें सर्वसाधारण की वृद्धि में विश्वास है; हमें उसके जीवन-अवसर की वृद्धि में विश्वास है; हमें विश्वास है कि जनता की आवाज भगवान् की आवाज है। इसलिये यह विश्वास किया जाता है कि प्रजातंत्रीय रीतियों और विश्वासों को छोड़ना हमारे लिये खतरनाक होगा।

लम्ले (Lumley) कहते हैं कि जब हम अपने दिमाग में लोकरीतियों को खतरे से बचाने की भावना से जोड़ देते हैं लोकरीति रूढ़ि का रूप ले लेती है; हमें दूसरी लोकरीतियों की अपेक्षा कुछ लोकरीतियों में समाज को जीवित और सुखी रखने की शक्ति दिखाई देती हैं। लम्ले के विचार में स्त्रियों को अभिवादन करते समय हैट छूने की रीति का सम्बन्ध यदि आने वाली विपत्ति से रक्षा करने के साथ जोड़ दिया जाये तो यह लोकरीति भी रूढ़ि बन जायेगी। इस प्रकार, जन कल्याण का विचार जुड़ जाने पर लोकरीति रूढ़ि बन जाती है।

बियरस्टैड के शब्दों में रूढ़ियाँ अनिवार्य व्यवहार हैं, लोगों के विचारों और कार्यों के मौलिक और महत्वपूर्ण प्रतिमान हैं। * एक-विवाह, वस्त्र पहनना, और सरकार के प्रति निष्ठा रूढ़ियों के उदाहरण हैं। यदि कोई व्यक्ति चाहता है कि वह

* "Mores are usually defined as the must-behaviours, the basic and important patterns of ideas and acts of people." —Biersted,

समाज में अपना पद, सम्मान खोये बगैर रखे तो उसके लिये इन रूढ़ियों का पालन करना अनिवार्य है।

कुछ रूढ़ियाँ लिखी जाने पर क़ानून का रूप धारण कर लेती हैं। अनेक रूढ़ियाँ इस प्रकार विधिवत् (formally) नहीं लागू की जाती हैं। परन्तु उनका पालन भी उतना ही आवश्यक होता है जितना कि क़ानून का पालन। रूढ़ियाँ उप-हास, कानाफूसी, और समाज-बहिष्कार की शक्ति के कारण लागू होती हैं। अनेक व्यक्ति क़ानूनी दण्ड के भय के कारण नहीं बल्कि सामाजिक बहिष्कार के भय के कारण रूढ़ियों का पालन करते हैं। यह सामाजिक दण्ड क़ानूनी दण्ड की अपेक्षा अधिक गम्भीर और स्थायी हो सकता है। उदाहरण के लिये, बदनामी किसी डाक्टर के लिये, व्यावसायिक दृष्टि से, कहीं अधिक नुकसानदेय है बनिस्बत किसी जुर्माने के जो उस क़ानून द्वारा लगाया जाता है।

इस प्रकार, रूढ़ियाँ वे लोकरीतियाँ हैं जो व्यवहार नियमित और नियंत्रित करने वाली समझी जाती हैं। उनमें एक मूल्य-निर्णय (value judgement) निहित होता है अर्थात् समाज की दृष्टि में वे अत्यन्त मूल्यवान हैं। रूढ़ियाँ वास्तव में व्यव-हार के अलिखित नियम हैं। इसलिये, बियरस्टैड के विचार में व्यक्ति पर रूढ़ियों का नियंत्रण प्रत्यक्ष (direct), स्वत: (spontaneous), अनौपचारिक (informal) और असंठित (unorganised) होता है।

रूढ़ियाँ व्यवहार के लिये बाध्य भी करती हैं और निषेध भी करती हैं, निषेध करनेवाले के रूप में वे 'taboos' कही जाती हैं। रूढ़ियाँ समूह की दृष्टि में हमेशा उचित होती हैं। इसका एक कारण यह है कि वे समूह के वृहत् अनुभवों का फल हैं। यह एक ऐसा अनुभव है जो परम्परा में परिवर्तित हो गया है, प्रबल स्वार्थों द्वारा जिसका रूप बदल दिया गया है, और जो गैर-प्रयोग की गई वस्तु के प्रति भय से बल प्राप्त करता है।* क्योंकि व्यक्ति में नयी वस्तु के प्रयोग के प्रति शंका और भय रहता है कि वह सफल हो या न हो और पुरानी चीज सैकड़ों वर्षों से प्रयोग होती रहने के कारण उचित है, इसलिये रूढ़ियों को सनातनता (conservatism) का प्रतिनिधि कहा जाता है। रूढ़ियों के पीछे जो वास्तविक शक्ति होती है वह स्वयं समूह है। इसमें केवल समूह के जीवित सदस्य ही नहीं सम्मिलित हैं बल्कि जो लोग मर चुके हैं उनकी यादगार भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है।

सामाजिक जीवन के तीन कारणों से रूढ़ियों की महत्ता अत्यधिक है। पहले, यह हमारे अधिकतर व्यवहार को निश्चित करती है। बचपन से रूढ़ियों के अनुसार

---

* "It is experience transformed and stereotyped into tradition, distorted by dominant interest. and reinforced by fear or disike of the untried." —Biersted.

कार्य करने की शिक्षा प्राप्त होने के कारण हमारा व्यवहार रूढ़ियों के अनुकूल होता है। दूसरे, रूढ़ियाँ व्यक्ति का उसके समूह से तादात्म्य (identify) कराती हैं। प्रत्येक समूह की अपनी अलग रूढ़ियाँ होती हैं जो अन्य समूहों की रूढ़ियों से भिन्न हो सकती हैं। इसलिये जो अधिक सामान्य रूढ़ियों का पालन करते हैं वेउसी समूह के सदस्यों के रूप में पहचाने जा सकते हैं। इस प्रकार, वह उन सामाजिक बन्धनों को कायम रखता है जो संतोषजनक जीवन व्यतीत करने के लिये आवश्यक हैं। तीसरे, रूढ़ियाँ सामूहिक दृढ़ता की रक्षक हैं। प्रत्येक समूह में हर योनि, आयु-समूह, वर्गों आदि के लिये अलग-अलग रूढ़ियाँ होती हैं। जब प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक रूढ़ियों का पालन करता रहता है तो निश्चय ही वह स्वतः सामाजिक नियमों का भी पालन करता है क्योंकि रूढ़ियाँ सामाजिक नियम हैं। इससे समाज में दृढ़ता बनी रहती है।

व्यक्ति हमेशा रूढ़ियों का पालन करने के लिये तैयार रहते हैं। बेजहाट नामक समाजशास्त्री ने उसको 'cake of custom' कहा है जिसको काटना यदि असम्भव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। ओटो क्लाइनबर्ग ने इस बात के चार कारण बताये हैं कि व्यक्ति रूढ़ियों का पालन क्यों करते हैं। इसका पहला कारण प्रतिष्ठा-संकेत (prestige suggestion) है जो यहाँ इस बात से सम्बद्ध है कि समूह के पास शक्ति और महत्व होते हैं और इसलिए जो भी विचार उससे प्राप्त होते हैं उनका पालन करना आवश्यक होता है। दूसरे, व्यक्ति अपने समुदाय की रूढ़ियों के अतिरिक्त किन्हीं अन्य रूढ़ियों को नहीं जानता; वास्तव में यह बात अपेक्षाकृत छोटे और विलग समूहों के लिए अधिक सत्य है। तीसरे, जो व्यक्ति समूह के आर्थिक और सामाजिक जीवन से सम्बन्धित परम्परागत रीतियों का पालन नहीं करता उसे पारस्परिक अधिकार और कर्तव्यों की उस प्रणाली के बाहर समझा जाता है जिस पर समुदाय का जीवन निर्भर करता है; उदाहरण के लिए, यदि समुदाय में भेंट (gifts) की अदल-बदल या आदान-प्रदान की प्रणाली है और वह प्राप्त हुई भेंट के बराबर के मूल्यों की भेंट बदले में स्वयं नहीं देता है तो वह इस कार्य में भविष्य में सम्मिलित नहीं किया जायेगा और वह वस्तु वह प्राप्त नहीं कर सकेगा जो विनिमय (exchange) में वह प्राप्त करना चाहता है। चौथे, रूढ़ियों का उल्लंघन करने पर उसे दण्ड दिया जाता है। यह दण्ड सख्त भी हो सकता है परन्तु छोटे समुदायों में उपहास का रूप ले लेता है।

प्रथाओं (लोकरीतियों और रूढ़ियों का महत्व)

'प्रथा' शब्द का प्रयोग उन व्यवहार प्रतिमानों के लिए किया जाता है जो परम्परा से चले आते हैं और समूह में स्थित रहते हैं और जो व्यक्ति के आकस्मिक व्यक्तिगत कार्यों से भिन्न होते हैं।* यह समूह के कार्यों के उन पहलुओं को लागू नहीं

---

* "The word custom is used to apply to the totality of behaviour

होती जो कि जैवकीय विचार से निश्चित होते हैं। भुना हुआ मुर्गा खाना एक प्रथा है परन्तु जैवकीय रूप से निश्चित खाने की आदत प्रथा नहीं है।

जैवकीय दृष्टिकोण से सभी प्रथायें वैयक्तिक आदतों से जन्मी हैं जो व्यक्तियों के बीच अन्त:क्रिया होने से समाज में फैल गई हैं। यह सामान्य रूप से फैली हुई (diffused) या सामाजिक आदतें पीढ़ी-दर-पीढ़ी की प्रक्रिया की निरन्तरता के कारण कायम रहती हैं। अधिकतर हम यही देखते हैं कि प्रथायें वैयक्तिक आदतों का रूप धारण कर लेती हैं जब व्यक्ति प्रथाओं के अनुसार कार्य करने की आदत डाल लेते हैं—बजाय इसके कि वैयक्तिक आदतों को प्रथायें बनते हुये हम देखें। इस प्रकार, समूह मनोविज्ञान वैयक्तिक मनोविज्ञान के आगे-आगे चलता है। कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें उसके सदस्यों की अन्त:क्रियायें प्रथा के गूढ़ जाल के द्वारा नियंत्रित न होती हों।

प्रथायें भी परिवर्तन से परे नहीं हैं। उपकरणों, अन्तर्दृष्टि आदि के कारण धीरे-धीरे बढ़ने वाली अशान्ति प्राय: प्रथा को बदलने का कारण होती है। मोटर गाड़ी का आविष्कार होने पर आरम्भ में यह किसी ने न सोचा था कि वह प्रथाओं में परिवर्तन लायेगा, परन्तु आगे चलकर दूसरों के घरों में आजाने और आराम का समय बिताने से सम्बन्धित प्रथाओं में परिवर्तन हुआ। नए सामाजिक मूल्यों से उत्पन्न होने वाली अशान्ति भी प्रथा को बदलने का कारण होती है। उदाहरण के लिए आधुनिक स्त्रियों को हर बात में, पहले की अपेक्षा, अधिक स्वतन्त्रता मिलने का कारण यह है कि स्त्रियों और पुरुषों के साथ उनके सम्बन्ध के प्रति नई धारणायें उत्पन्न हुई हैं। विदेशियों के प्रभाव के कारण भी प्रथाओं में परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए पूर्वी देशों में चाय और काफी पीने की शुरुआत होने से और देशों में पार्लमिंटरी सरकार के प्रचार से इनसे सम्बन्धित प्रथाओं में परिवर्तन हुआ है। विदेशियों के प्रभाव के कारण हमारे खाने-पीने, विवाह आदि से सम्बन्धित प्रथाओं में विशेष परिवर्तन हुए हैं।

वे प्रथायें सबसे अधिक दिनों तक कायम रहती हैं जो या तो इतनी अधिक मौलिक मानव आवश्यकताओं से सम्बन्धित हों कि उनमें विशेष परिवर्तन न हो सकता हो या इस प्रकार की हों जिनकी व्याख्या समय और स्थान, या उपयोगिता या सम्भावना के अनुसार की जा सके। इसमें से पहले प्रकार की प्रथा का उदाहरण हमें बच्चे को माँ के स्तानपान करने में मिलता है। अनेक परिवारों में डिब्बे का दूध

---

patterns which are carried by tradition and lodged in the group, as contrasted with more random personal activities of the individual."

—Edward Sapir,
Encyclopedia of Social Sciences

आदि भी बच्चे को पिलाया जाता है, फिर भी, आधुनिक और आदिम दोनों ही समाजों में अधिकतर मां का ही दूध बच्चों को पिलाया जाता है, चाहे दूध पिलाने के ढंग में भले ही परिवर्तन हो गया हो। दूसरे प्रकार की प्रथा का उदाहरण हमें भाषा में मिलता है जिसके शब्द लुप्त नहीं होते परन्तु सभ्यता की माँग के कारण जिनका अर्थ बदलता रहता है। उदाहरण के लिए, जिस चिड़िया के लिये इंगलैण्ड में राबिन शब्द का प्रयोग होता है उससे भिन्न चिड़िया के लिये अमेरिका में राबिन शब्द का प्रयोग होता है।

आधुनिक सभ्य समाजों की अपेक्षा आदिम समाजों में प्रथायें अधिक शक्तिशाली और स्थायी होती हैं। आदिम समूह छोटा है, इसलिये उसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रथाओं का पालन करना आवश्यक होता है। इनमें समूह की दृढ़ता बनी रहती है। सभ्य समाजों में समूह इतने विशाल होते हैं कि कुछ थोड़े से व्यक्तियों का प्रथाओं के प्रतिकूल कार्य करने से समूह की दृढ़ता में कोई अन्तर नहीं आता। आदिम समुदायों में लिखित परम्परा न होने से भी इस बात पर परिश्रम अधिक किया जाता है कि कार्यों और जुबानी परम्परा के द्वारा प्रथाओं को कायम रखा जाये। लिखित वस्तुओं के होने से व्यक्ति प्रथाओं के प्रचार का उत्तरदायित्व अनुभव नहीं करते।

आदिम समाजों में जादू और धर्म के साथ सम्बन्ध जोड़ने के कारण प्रथा एक अधिक पवित्र वस्तु समझी जाती है। जब कि किसी प्रकार के कार्य का सम्बन्ध अनुष्ठान (ritual) से जोड़ा जाता है जो स्वयं किसी पुराण (legend) से सम्बन्धित है, परम्परागत व्यवहार आदर्शों के अनुसार कार्य न करना समूह की रक्षा में बाधक और बिपत्ति का कारण समझा जाता है। इसी कारण, आदिम समुदायों में कम श्रम-विभाजन पाया जाता है। आधुनिक संसार में प्रथाओं का प्रभाव गाँवों में अधिक पाया जाता है बनिस्बत शहरों के। इसके भी वही कारण हैं जो आदिम समाज के सम्बन्ध में दिये गये हैं।

प्रथाओं में एक नियम, उचित व अनुचित का विचार, छुपा होता है। प्रथाओं का पालन अनिवार्य समझा जाता है। इनकी शक्ति इतनी अधिक होती है कि शेक्सपियर ने 'अन्यायी प्रथा' (tyrant custom) कहा; मान्टेन (Montaigne) ने 'हिंसात्मक और विश्वासघाती स्कूल मिस्ट्रैस' (violent and treacherous school mistress) कहा; बेकन (Bacon) ने मनुष्य के जीवन का प्रमुख दण्डाधिकारी (the principal magistrate of man's life) कहा; और लाक (Locke) इसे प्रकृति से भी बड़ी शक्ति (greater power than nature) मानता है। हमारे जीवन पर प्रथाओं का जितना प्रभाव रहता है उससे हम चेतन नहीं होते।

प्रथाओं की उत्पत्ति भूतकालीन उपयोगिता में छिपी है। प्रथा एक प्रकार की

सामाजिक आवश्यकता है। उदाहरण के लिये गुजरात में आतिथ्य सत्कार का पहला कार्य अतिथि को जल पिलाना है। गर्मियों में गुजरात जाने से ही प्रत्येक व्यक्ति इस प्रथा के महत्व को समझ सकता है। शोक प्रकटन की सार्वभौमिक प्रथा की उपयोगिता है क्योंकि इससे दुःखी परिवार यह अनुभव करता है कि उसका दुःख हल्का हो गया है और उसके दुःख में सबने भाग लिया।

प्रथाओं का महत्व इस बात में है कि इसके कारण लोग एक दूसरे के निकट आते हैं और एक से अवसरों, त्योहारों, आदि में भाग लेने से एक दूसरे की सामाजिक चेतना को उत्तेजित करते हैं। ऐसे अनेक उद्वेग होते हैं जिनकी पूर्ण सन्तुष्टि के लिये एक सामाजिक घेरा और अन्य लोगों का भाग लेना आवश्यक होता है। यह आवश्यकता नृत्य, पूजा-पाठ, सामाजिक खेलकूदों के अवसरों पर पूरी हो सकती है।

प्रथाओं का पालन न करने वाला व्यक्ति दूसरों के व्यंग और उपहास का पात्र बनता है। किन्हीं समाजों में उसे समूह से बहिष्कृत भी कर दिया जाता है। प्रथायें समूह के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता लाती हैं जो हम-भावना, सहयोग और सहानुभूति के लिये आवश्यक है। बेजहाट ने ठीक ही कहा है कि सामाजिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में इस बात का बहुत ही महत्व रहा होगा कि कुछ सामान्य नियम ऐसे बनाये जायें जो लोगों को एक सूत्र में बाँधें, उनको एक ही ढंग से व्यवहार करने को प्रेरित करें और उन्हें यह बतायें कि उन्हें एक दूसरे से किस प्रकार की आशायें रखना चाहिये। प्रथायें व्यक्ति की व्यवहार के नये ढंग निकालने के कष्ट से और असफलता के भय से रक्षा करती हैं। नई और बदलने वाली चीज का कोई भरोसा नहीं रहता और इसलिये वह आतंक से भरपूर होती हैं। जो प्रथा की बात है, जो हमेशा किया जाता रहा है, उसमें सुरक्षा रहती है इसीलिये प्रथा के प्रति श्रद्धा होती है। आदिम लोगों को सदा अज्ञात का भय रहता था। इसलिये उन्होंने प्रथा पर पवित्रता का रंग चढ़ाया और उनको तोड़ने वालों को कठोर दण्ड दिया।

(१) **व्यवहार में एकरूपता और किस्म की चेतना (Uniformity of behaviour and consciousness of kind)** —प्रथायें समाज के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता उत्पन्न करती हैं। जब विभिन्न स्थितियों में समाज के सभी सदस्य एक से ही ढंग से व्यवहार करते हैं तो इसको एकरूपता कहते हैं। एक से ही वस्त्र पहनने, एक सी भाषा बोलने, खाने-पीने, अभिवादन, विवाह-निषेधों का पालन करने से लोगों में "किस्म की चेतनता" उत्पन्न होती है, 'हम-भावना' (we-feeling) जागृत होती है; वे सब आपस में सहानुभूति, स्नेह, सहयोग प्रदर्शित करने लगते हैं।

(२) **सामाजिक दृढ़ता (Social solidarity)**—'क़िस्म की चेतनता' उत्पन्न होने से एक दूसरे के साथ सहयोग और सहानुभूति से समूह की दृढ़ता बढ़ती

है। सहयोग और सहानुभूति के ही स्तम्भों पर समाज की व्यवस्था खड़ी होती है। इनके बग़ैर समाज में शान्ति, प्राइवेट सम्पत्ति आदि कुछ भी सम्भव नहीं है।

(३) **सामाजिक प्रत्याशायें (Social expectations)**—समाज के सदस्य यह जानते हैं कि किन स्थितियों में अन्य व्यक्ति किस प्रकार से व्यवहार करते हैं। प्रथा यह निश्चित करती है कि किस स्थिति में व्यक्ति किसका और किस प्रकार से अभिवादन करेगा, किस प्रकार और क्या खायेगा, किन निषेधों का पालन करेगा, आदि। इससे नियोजन (planning) सम्भव होता है।

(४) **भविष्यवाणी (Prediction)**—प्रथाओं से सम्पूर्ण जीवन के बंधे होने से भविष्य में होने वाले कार्यों की भविष्यवाणी की जा सकती है। इसमे अनिश्चितता नहीं रहती है।

(५) **विचारने के झंझट से मुक्ति (No problem of reasoning)**—प्रथाओं से दैनिक जीवन के संचालित होने से हमें हर समय आगे के कार्य के लिये चिन्तन नहीं करना पड़ता। हम जानते हैं कि सुबह उठने से लेकर रात तक हमें क्या कार्य करने हैं, किस स्थिति में किस प्रकार व्यवहार करना है। ऐल्फ्रेड व्हाइटहेड ने ठीक ही कहा है कि जितने अधिक कार्य हम बग़ैर सोचे विचारे कर सकते हैं उतने ही मज़े में हम होते हैं। (The more things we can do without thinking the better off we are)। यदि किसी स्टोर, क्लासरूम, जलपानगृह, टिकट लाइन में प्रवेश करने और किसी शिक्षक, क्लर्क या टिकट बेचने वाले से मिलने पर हमें सोचना, विचारना और तर्क करना पड़े कि हमें क्या करना चाहिये तो हम दिन भर में बहुत थोड़े ही कार्य कर सकें। इन व्यवहार-आदर्शों का मुख्य कार्य उन अनगिनती सामाजिक स्थितियों में निर्णय लेने की आवश्यकता को कम करना है जिसमें वह भाग लेता है और जिनका वह सामना करता है। मैकाइवर ने कहा है, "इनके बग़ैर निर्णय लेने का बोझ असह्य हो जायेगा और व्यवहार के अन्तर अत्यन्त भ्रमात्मक हो जायेंगे।"*

(६) **कल्याण (Welfare)**—रूढ़ियाँ कल्याणकारी होती हैं। यदि सब सदस्य रूढ़ियों का पालन करते रहें तो समाज के सदस्यों का खूब कल्याण हो। यही कारण है कि इनका उल्लंघन करने पर बहिष्कार जैसा कठोर दण्ड भी दिया जाता है।

(७) **सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन में मदद (Help in adapting to social situations)**—यह कहा ही जा चुका है कि प्रथायें पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती हैं। यह हमारे पूर्वजों द्वारा विशेष स्थितियों में व्यवहार करने के

* "Without them the burden of decision would be intolerable and the vagaries of conduct utterly distracting." —Mac Iver.

बनाये गये ढंग हैं। जब कभी भी व्यक्ति किसी विषम परिस्थिति में अपने को पाता है इस बात का ज्ञान कि उसके घर के लोग, मित्र आदि ऐसी दशा में क्या करते हैं उसको अनुकूलन में मदद करता है।

(८) **अन्य नियमों का आधार (Basis of other rules)**—जो रूढ़ियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं उन्हीं को विधान-सभा द्वारा पारित करने से कानून बनते हैं। अधिकतर क़ानूनों का आधार रूढ़ियाँ रही हैं। प्रचार, राजनीति आदि में भी प्रथाओं का ध्यान रखना पड़ता है अन्यथा सफलता के स्थान में असफ़लता हाथ लगे।

(९) **व्यक्तित्व-निर्माण में महत्वपूर्ण (Important in development of personality)**—जहाँ व्यक्तित्व शरीर और मस्तिष्क की बनावट और सामाजिक समूहों से प्रभावित होता है वहाँ प्रथायें भी व्यक्तित्व-निर्माण में विशेष महत्व रखती हैं। यह व्यक्ति की द्वितीय प्रकृति (second nature) बन जाती हैं। व्यक्ति को इन्हें आत्मसात करना पड़ता है और अपनी आदतों, मनोवृत्तियों और स्वभाव को इनके अनुसार ढालना पड़ता है।

व्यक्ति प्रथाओं का क्यों पालन करता है, इस सम्बन्ध में बियरस्टैंड (Bierstedt) ने चार बातें बतायी हैं।

(१) **शिक्षा या ट्रेनिंग (Indoctrination)**—बचपन से हमें समाज की प्रथाओं का पालन करना सिखाया जाता है। उदाहरण के लिये, हमें सिखाया जाता है कि हम किस प्रकार से अभिवादन करें, भोजन करें, गुरुजनों के प्रति आदर भाव प्रदर्शित करें, अश्लील शब्दों का प्रयोग न करें, बायें से दायें लिखें और पढ़ें, अपने से छोटों को न मारें, खाने पीने में किस प्रकार के बर्तनों का प्रयोग करें आदि। किसी बच्चे का समाजीकरण वास्तव में समाज की प्रथाओं को सीखने की प्रक्रिया है। थोड़े दिनों के बाद यही प्रथायें व्यवहार करने के उचित, बल्कि कभी-कभी एकमात्र, ढंग मालूम पड़ने लगते हैं।

(२) **आदत (Habituation)**—प्रथाओं के पालन करने का दूसरा कारण यह कि हम इसके आदी हो जाते हैं। खाना खाने, बोलने चालने, मास्टर के प्रवेश करने पर क्लास में खड़े हो जाने, आदि, की शुरू में शिक्षा दी जाती है जो आगे चलकर आदत पड़ जाती है। लोगों को, विशेषकर विदेशियों को, काँटे, छुरी, चम्मच का प्रयोग सिखाया जाता है और कुछ दिनों बाद उनका प्रयोग एक आदत बन जाता है। उदाहरण के लिए, बच्चों के लिये काँटे और छुरी का सही ढंग से प्रयोग सीखना सरल नहीं है क्योंकि विभिन्न समाजों में जैसे अमेरिकन और इंगलिश, इनको भिन्न ढंग से प्रयोग किया जाता है। क्या 'सही' है, यह समाज की प्रथाओं द्वारा परिभाषित होता है परन्तु, एक बार सही ढंग से सीख लेने पर, गलत ढंग से प्रयोग करना सरल नहीं रहता। बारम्बार दोहराने से आदत पड़ जाती है।

(३) **उपयोगिता (Utility)**—प्रथाओं के पालन करने का तीसरा कारण उसकी उपयोगिता है। इनके कारण हम एक दूसरे के साथ ऐसे ढंग से अन्तःक्रिया करते हैं जो सबके हित में हो और इससे आपस में सामाजिक सम्बन्ध बनाने में सरलता होती है क्योंकि हम एक दूसरे को और आदतों को अच्छी तरह से जानते हैं। उदाहरण के लिए, हम यह जानते हैं कि किसी सिनेमा की सीमित सीटों के लिए टिकटों का उचित वितरण करने का ढंग यह होगा कि पहले आने वालों को पहले टिकट दिया जाये। हम जानते हैं कि भीड़ लगाने और धक्का देने से लाइन या क्यू (queue) लगाना अच्छा है क्योंकि इसमें कुचल जाने की सम्भावना नहीं रहती।

(४) **समूह-समीकरण (Group Identification)**—प्रथाओं के पालन करने का चौथा कारण यह है कि यह समूह-समीकरण का साधन है। हम अपने समूह की प्रथाओं का केवल इसलिए पालन नहीं करते कि हम समझते हैं कि हमारी प्रथायें दूसरे समूह की प्रथाओं से अच्छी हैं, या कि हमारी आदत पड़ गई है, बल्कि हम यह दिखाना चाहते हैं कि हम उसी समूह के सदस्य हैं। चप्पल पहनना अधिक आरामदेह हो सकता है परन्तु सूट के साथ हम चप्पल नहीं पहनते हैं। प्रथायें बहुधा तर्क की दृष्टि से असंगत भी हो सकती हैं परन्तु फिर भी हम उनके अनुरूप कार्य करते हैं, क्योंकि वे हमारे समाज और हमारे सामाजिक समूहों में हमें समीकरण (identify) करती हैं। फैक्टरी में कार्य करने वाला मजदूर अपना भोजन टिफिन कैरियर में ले जाता है यद्यपि कुछ की घरेलू स्थिति को देखते हुए उनके लिए रेस्टारेन्ट में खाना अधिक सरल होगा। परन्तु सरल कार्य करने से वे अपने सह कार्यकर्त्ताओं से दूर हो सकते हैं, जो सब अपना खाना अपने साथ घर से लाते हैं।

आज हमारे जीवन में प्रथाओं का प्रभाव धीरे-धीरे कम हो रहा है। प्रथाओं को क्षीण करने वाले चार कारक हैं : श्रम-विभाजन में वृद्धि जिससे समाज की एकरूपता (homogeneity) कम हो रही हैं; बुद्धिवाद (rationalism) का प्रभाव बढ़ रहा है जिसके फलस्वरूप प्रथायें असंगत प्रमाणित हो रही हैं; स्थानीय परम्परा से बच निकलने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति; और व्यक्तिवादिता पर बल।

प्रथा की कानून द्वारा शेष-पूर्ति होने की आवश्यकता
(Why custom must be supplemented by law?)

मैकाइवर ने चार कारण बताये हैं जिनकी वजह से कानून द्वारा प्रथा की शेष पूर्ति की आवश्यकता होती है। (१) एक विशिष्ट संस्था की आवश्यकता—प्रथा में झगड़ा या उल्लंघन की स्थिति में निर्णय करने की संस्था का अभाव होता है जिसके कारण व्यक्ति आपस में प्रतिशोध लेने या निर्णय करने का प्रयत्न कर सकते हैं जिससे शान्ति के स्थान में दिन प्रति-दिन अशान्ति ही बढ़ेगी।

(२) बदलती हुई दशाओं के साथ सामंजस्य करने की आवश्यकता—सड़क

पर दायें या बायें चलने का नियम पहले एक प्रथा था परन्तु मोटर गाड़ियों के आविष्कार के साथ ही नई दशायें उत्पन्न हुयीं जिनके कारण ट्रैफिक कानूनों को बनाने की आवश्यकता हुई।

(३) सबको समाविष्ट करने वाली संस्था की आवश्यकता :—गूढ़ समाज में, विभिन्न समूहों—विभिन्न वर्ग और समुदाय और प्रजातीय समूह की भिन्न-भिन्न प्रथायें हैं इसलिए, जहाँ एक एकल (single) नियम सुविधाजनक या उचित पाया जाता है जो सभी प्रकार के समूहों के सदस्यों को समान रूप से लागू हो, जैसे बोलने की स्वतन्त्रता और शिक्षा सम्बन्धी सुअवसरों की गारन्टी, वहाँ कानून अनिवार्य हो जाता है। कानून के बग़ैर विभिन्न समूहों की प्रथाओं में परस्पर संघर्ष होगा और ऐसे नियम का अभाव होगा जो सब व्यक्तियों पर समान रूप से लागू हों।

(४) जहाँ शक्ति संगठित है वहाँ निर्णायक की आवश्यकता :—किसी शक्ति प्रणाली (power system) के अन्दर होने वाले संघर्षों के सामने अपनी रक्षा करने की शक्ति प्रथाओं की कम होती है। जहाँ व्यक्ति शक्ति छीनने या अधिकृत करने के लिये संघर्ष करते हैं या इन संघर्षों के शिकार होते हैं जैसे सेक्रेटरी आदि, उन्हें एक जज या निर्णायक की आवश्यकता होती है जिसकी व्यवस्था केवल कानून कर सकता है।

---

६ सामाजिक नियन्त्रण के अन्य साधन (Other Means of Social Control)

(१) लोकभावना और लोकमत (Public sentiment and opinion)—सामाजिक नियन्त्रण का सबसे शक्तिशाली साधन हमें लोकभावना में मिलता है। समाज सुधारक, साधु, सन्त, पुजारी और सभी शासक हमेशा लोक भावना को अपने पक्ष में लाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। लोकमत के निर्देश दण्ड के साथ पुरस्कार भी देते हैं। इस प्रकार वे केवल बुरे कार्यों को ही नहीं दबाते बल्कि समाज के हित सम्बन्धी कार्यों को भी प्रोत्साहित करते हैं। लोक भावना की शक्ति इतनी अधिक है कि कानून को भी अपनी सरलता के लिए लोकमत की शक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है। लोकमत सामाजिक संगठन के लिए आवश्यक है क्योंकि इसके बिना केवल वही लोग समाज में सुरक्षित रह सकते हैं जिनके हाथ में कानून है या दूसरे शब्दों में शासक अपनी शक्ति का दुरुपयोग भी कर सकता है।

कानून की अपेक्षा लोकमत अधिक शीघ्र प्रभाव डालता है। रॉस ने कहा है कि कानून की अपेक्षा लोकमत कम यन्त्रतुल्य है, जीवन की गुप्त गहराइयों तक प्रवेश करता है; वह पूर्णरूप से व्यक्तिगत कार्यों पर अपना निर्णय देता है। यह नियन्त्रण का एक सस्ता साधन है। प्रशंसा या दोष का सस्ता होना अद्भुत है।* मानव व्यवहार सदा इस सत्य से प्रभावित रहता है कि लोकमत निर्दयतापूर्वक प्रकट किया जायेगा है। जनमत पर लिखे गये अध्याय में विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है।

(२) प्रचार (Propaganda)—संदेशवाहन (communication) के साधनों में आधुनिक काल में विशेष उन्नति होने से प्रोपेगैण्डा की शक्ति बहुत बढ़ गई है। अब यह आवश्यक नहीं रह गया है कि प्रोपेगैण्डा करने वाले में और जिनको

* "Public opinion is less mechanical than law and penetrates the hidden regions of life; it passes judgments upon purely private acts. It is an inexpensive means of control. The inexpensiveness of praise or blame is marvellous." —Ross, p. 95

वह प्रभावित करना चाहता है उनमें आमने-सामने का सम्बन्ध हो। शिक्षित वर्ग के लिये प्रिन्टिंग बहुत ही सुन्दर साधन है। रेडियो ने मनुष्य की आवाज को दूर तक पहुँचाने में सहायता की है। इनके द्वारा शिक्षक किसी समस्या से सम्बन्धित सत्य सब के सम्मुख रख सकते हैं। यद्यपि इसका दुरुपयोग भी किया जाता है और आज कल प्रोपेगैण्डा एक कुख्यात शब्द है, फिर भी बार-बार अपनी बात को दोहराने से प्रोपेगैण्डा करने वाला अनेक व्यक्तियों के कार्यों को प्रभावित करता है। प्रचार पर लिखे गये अगले अध्याय में इसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है।

(३) **शिक्षा द्वारा नियन्त्रण (Control by education)**—मनुष्य अपने मूल्य व अस्तित्व को भलीभाँति समझ सकें, इसके लिये यह आवश्यक है कि उसको उचित शिक्षा दी जाये। अन्य साधन केवल बाहर से ही हमारे कार्यों पर नियन्त्रण रखते हैं लेकिन शिक्षा विचारों और भावनाओं को विकसित करके हमें व्यवहार-कुशल बनाती है। मनुष्य को समाज में उच्च स्थान पाने की योग्यता और उसके जीवन का मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि उन्होंने जीवन में किन कार्यों को पसन्द और नापसन्द करना सीखा है। रस्किन (Ruskin) ने कहा है कि शिक्षा मनुष्य को नम्र बनाती है जो उन्हें होना चाहिए।*

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों को, विशेषकर युवा लोगों को, सत्यता की पहचान में ट्रेनिंग देना है। इसके द्वारा व्यक्ति सत्य और असत्य, उचित और अनुचित में भेद करना सीखता है। शिक्षा, सामाजिक नियन्त्रण के साधन के रूप में मनुष्यों को सत्य का मार्ग बतलाकर उन्हें इस योग्य बनाती है कि वे अपनी बुद्धिमत्ता का प्रयोग कर सकें और अपनी तर्क शक्ति का प्रयोग कर सकें।

(४) **खेल और सामाजिक नियन्त्रण (Play and social control)**—प्राथमिक समूहों में कुटुम्ब के पश्चात् पड़ोस सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जब बच्चा कच्ची उम्र में होता है, पड़ोस को ही साधारणतया क्रीड़ा समूह कहा जाता है। बच्चों में जो भी बुराइयाँ होती हैं वे साथियों से ही सीखी हुई होती हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि उनके समाज में पूर्णरूप से सामाजिक (thoroughly socialized) किसी व्यक्ति का प्रवेश करना चाहिए जो कि बच्चों को भी नियमों के अनुसार चलना सिखलाए।

सामाजिक जीवन के मौलिक पाठ खेल के मैदान पर ही सीखे जाते हैं। बिल्ली, तेंदुआ, भेड़िया आदि जीवन के रहस्य खेल से ही सीखते हैं। बच्चों को खेल में शिक्षा देनी चाहिये कि नियमों का पालन करते हुए खेलें और अपनी गलतियों को मानें। हेज ने कहा है कि पर्यवेक्षण किये हुऐ खेल के द्वारा बच्चे अनुभव से यह

* "Education consists in making people polite what they ought to be."
—Ruskin

सीखते हैं कि बर्बरता की अपेक्षा सभ्य जीवन सभी के लिए अत्यधिक सुखमय है।* स्कूल असेम्बली में भाग लेने से विद्यार्थी सामाजिक उत्तरदायित्व और सामाजिक गुणों को समझते हैं और राजनीति की गूढ़ताओं को समझते हैं।

खेल के नियन्त्रण के द्वारा बच्चे को अन्य बच्चों के कल्याण के लिए अपनी इच्छाओं को दबाने की आदत डलवाई जाती है। अक्सर लड़का अन्य लड़कों के द्वारा मार खा कर ही यह पाठ सीखता है। अक्सर लड़का बिना किसी विरोध के अपने से बड़े लड़कों के हाथ सख्त दण्ड स्वीकार कर लेता है जब कि माता-पिता द्वारा दिया गया हल्का दण्ड भी उसे क्रोधित कर सकता है। क्रीड़ा समूह में, बच्चे अपने द्वारा चुने गये नेता की आज्ञा का तत्काल पालन करते हैं क्योंकि उनके दृष्टिकोणों में विशेष अन्तर नहीं होता। दूसरे शब्दों में, क्रीड़ा समूह बच्चों में सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करने में परिवार की विशेष सहायता करता है।

(५) शिष्टता और धार्मिक कार्य और सामाजिक नियन्त्रण (Manners and ceremony and social control)—शिष्टता (manners) को 'छोटी नीतियाँ' (minor morals) और धार्मिक कार्य (ceremony) को 'सरकार का आदि रूप' कहा गया है। समनर (Sumner) का विश्वास है कि आदिवासियों का सम्पूर्ण जीवन एक अनुष्ठान है जिसके ऊपर देवताओं के क्रोध और लोकमत का प्रभाव पड़ा है। धार्मिक कार्य रुचि और भावना का विषय है और इसके विरुद्ध कार्य करना अत्यन्त दुःखदायक और भयानक हो सकता है।

सभ्य समाज में धार्मिक कार्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। वह हमारे वस्त्रों और नित्य के व्यवहार की शिष्टता के साथ ही विवाह, दाहसंस्कार आदि अनुष्ठानों को भी नियन्त्रित करता है। शिष्टाचार सामाजिक नियन्त्रण का एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा विभिन्न लिंगों के लोगों में, छोटे और बड़ों में आवश्यक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। विवाह, आदिवासियों में पुरुषोचित अथवा स्त्रियोचित उत्तरदायित्व सम्भालने से पहले दीक्षा, चर्च, गृह प्रवेश अथवा व्यवसाय प्रवेश, मृत व्यक्ति की क्रिया—यह सब ऐसे अवसर हैं जब कि समाज के कल्याण के लिये मनुष्यों को यह स्मरण कराया जाता है कि उनके लिए अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व हैं।

(६) कला और सामाजिक नियन्त्रण (Control by means of art)—कविता, प्रभावपूर्ण भाषण, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत और अपने अन्य साधनों के द्वारा मनुष्य की भावनाओं पर विजय प्राप्त करके कला उसके व्यवहार को

* "By supervised play children learn by experience that civilized life is far happier for all concerned than savagery."

—Hayes, *Sociology*.

नियन्त्रित करती है। कला सामाजिक सहानुभूति जागृत करती है। उसका प्रभाव सार्वभौमिक होता है क्योंकि जिन भावनाओं को वह जागृत करती है वे सब मनुष्यों में सामान्य होती हैं। युद्ध, धर्म आदि में इसका प्रयोग होता है। युद्ध के लिए बढ़ते हुए सैनिकों का संगीत इसका उदाहरण है। हर जगह समाज के हित के लिए सौन्दर्य के भाव का प्रयोग होता है। साधु और महावीर सुन्दर रूप में चित्रित किये जाते हैं जब कि दानव और उसके मानव अनुयायियों को अत्यन्त भयानक रूप दिया जाता है। युद्ध व जनता की सेवा के लिए किये गये व्यक्तिगत बलिदानों का कविता आदि में गौरव पूर्ण चित्रण किया जाता है।

कला सामाजिक नियन्त्रण का एक कुशल और प्रभावपूर्ण स्वरूप है क्योंकि वह अत्यन्त सुखमय होती है। उदाहरण के लिए जब कक्षा में सुखमय वातावरण उत्पन्न किया जाता है तब पढ़ाना अधिक सरल हो जाता है।

लोक गीत (folk songs) भी सामाजिक नियन्त्रण का एक साधन हैं। यह अपने समूह की प्रथाओं की प्रशंसा करते हैं और विरोधी पड़ोसियों की रीतियों का मजाक बनाते हैं। यह व्यक्तियों में आदतें बनाते हैं और समाज की पुरानी प्रथाओं को जन्म देते हैं। अमेरिकन नीग्रो के जीवन में लोक गीतों का इतना महत्व है कि वे उनके क्रोध को शान्त करते हैं और उनकी निम्न सामाजिक स्थिति में उन्हें सान्त्वना देते हैं। प्राचीन चीन में परम्परागत रीतियों और विश्वासों को प्रस्तुत करने में लोक गीत अत्यन्त सहायक होते थे।

संगीत (music) भी एक शक्तिशाली सामाजिक नियन्त्रण है क्योंकि यह व्यक्ति की भावना को प्रभावित करता है। यह ऐसी भाषा है जो सब मानव जाति से बोलती है; यह प्रजातीय और राष्ट्रीय सीमायें नहीं जानती है। समूह में एक साथ गाने से एकता का भाव उत्पन्न होता है।

नृत्य (dance) की हमेशा सामाजिक महत्ता रहती है। आदिवासियों के नृत्य साधारणतया सामूहिक नृत्य होते हैं और विजयोत्सव मनाने के लिये या युद्ध जैसे गम्भीर कार्यों के करने से पहले समूह के साहस को बढ़ाने के लिए होते हैं। नृत्य करता हुआ समूह अपने को एक व्यक्ति समझता है।

(७) सामाजिक आदर्शों द्वारा नियन्त्रण (Control by social ideals) लेनिन और स्टालिन ने रूसी किसानों और श्रमिकों के सामने समानता का आदर्श रख कर दलित जनता को ऐसे कार्यों और जीवन के ढंगों तक पहुँचाया जो उनके लिये पहले स्वप्नमात्र था। हिटलर ने थोड़े ही वर्षों में जर्मनी के संघर्ष करने वाले समूहों को संसार के विरुद्ध एकता के सूत्र में अपने इस आदर्श के आधार पर बाँध दिया कि जर्मन संसार की सर्वश्रेष्ठ प्रजाति है। परम्परा और स्वार्थपरता के बाव-

जूद भी सब मानवों की समानता का आदर्श अमेरिका में गोरों और कालों को एक दूसरे के प्रति अपनी मनोवृत्तियों को बदलने को बाध्य कर रहा है। मिल मालिकों और मजदूरों के सम्बन्धों में न्याय का आदर्श श्रमिकों की स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति को धीरे-धीरे बदल रहा है। यद्यपि कि यह सत्य है कि यह सब केवल आदर्शों के कारण नहीं हो रहा है फिर भी इन आदर्शों का बड़ा हाथ इन सब बातों में है।

(८) नेतृत्व के द्वारा नियन्त्रण (Control through leadership)—सम्भवत: सामाजिक नियन्त्रण में पहला कदम महान व्यक्तियों ने ही उठाया था। नेतृत्व और समर्पण पशु समाज में भी पाया जाता है। 'महापुरुष' अब भी समाज में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं, चाहे प्रजातन्त्रवाद ने उनको सेनाओं के अधिपति से उद्योग के अधिपति या शिक्षा, कला, दर्शन के नेताओं के रूप में बदल दिया हो।

किसी विशेष व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के द्वारा किसी समूह का नियन्त्रण होने के लिये ऐसी स्थितियाँ होती हैं जैसे विशेष उत्तेजना, व्यक्तियों का भीड़ आदि में इकट्ठा होना, और किसी भय या चिन्ता के समय। परन्तु उसकी अधिकार-शक्ति के कारक उसकी प्राकृतिक विशेषताओं में पाये जाते हैं। उसका स्वास्थ्य असाधारण रूप से अच्छा हो, या असाधारण मानसिक गुण हो। उदाहरण के लिए, इच्छा शक्ति और कल्पनाशक्ति प्रबल हो, अच्छा वक्ता हो, साधु प्रकृति हो, उसमें प्रेम की भावना हो। इन गुणों के बल के साथ वह प्रशंसा भी जुड़ जाती है जो एक नेता अपनी वंशानुसंक्रमणीय अथवा अपनी योग्यता से प्राप्त सामाजिक पद के कारण अन्य लोगों में जागृत करता है।

(९) फैशन (Fashion)—फैशन सामान्य व्यवहार में एक थोड़ा और महत्वहीन परिवर्तन है। वस्त्र, मकान के डिजाइन, गाड़ियों, बातचीत, कला और लोकप्रिय दर्शनशास्त्र में फैशन आते हैं और चले जाते हैं। फैशन का अध्ययन करने में समय-अनुक्रम (time sequence) पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रथा में भी परिवर्तन होते हैं परन्तु वे मन्द होते हैं जब कि फैशन में तीव्र वेग से परिवर्तन होते हैं। फैशन के परिवर्तनों का सम्बन्ध उन परिवर्तनों से है जिन्हें रूढ़ियों और कानून की अनुमति प्राप्त है।

फैशन को एक सामाजिक प्रतिमान कहा गया है। यह व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधता है। एक से फैशन का पालन करने वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति सहानुभूति, लगाव और आकर्षण अनुभव करते हैं। मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि समाज में भिन्न-भिन्न समूहों और व्यक्तियों के अलग-अलग स्वार्थ, रुचि और स्वभाव होते हैं जिससे वे एक दूसरे के प्रति उदासीन रहते हैं। ऐसे क्षेत्रों में फैशन व्यक्तियों के सामने समानता का रूप रखता है जिससे कि वे एक दूसरे से बराबरी के भाव से मिलें।

(१०) संस्कार (Ritual)

अब हम उस प्रक्रिया का वर्णन करेंगे जिसके द्वारा रूढ़ियाँ दृढ़ता और स्थायित्व प्राप्त करती हैं। इस प्रक्रिया को हम संस्कार कहते हैं। जब हम इतिहास की ओर देखते हैं हमें असंख्य संस्कारों का पता लगता है और इससे यह भी समझ में आता है कि सामाजिक परिवर्तन इतने धीरे-धीरे क्यों होता रहा है। लम्ले ने ठीक ही कहा है कि संस्कार क़वायद, और क़वायद करने से बनी हुई नियन्त्रित आदत, का उत्तम स्वरूप है।* वे क्रियायें जो अधिकारियों के द्वारा नियमित होती हैं और जो अनगिनती बार दोहराई जाती हैं और जो बिना विशेष सोच विचार के की जाती हैं संस्कार बन जाती हैं। बच्चों को जब इन क्रियाओं के पालन करने की, एक क़वायद की तरह, आदत डलवायी जाती है तो उसके प्रभाव से वे जीवन भर मुक्त नहीं हो पाते। प्रसिद्ध विद्वान सर फ्रांसिस गाल्टन ने कहा है कि जब वह युवा थे तब उनका सम्पर्क मुस्लिम संस्कारात्मक विचार से हुआ कि बाँया हाथ दाहिने हाथ की अपेक्षा कम पवित्र होता है और वैज्ञानिक होते हुये भी, वे इस विचार से कभी भी पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सके। जितनी ही सख्ती के साथ बचपन में संस्कारों का पालन करने की आदत डलवायी जाती है उतनी ही अधिक शक्ति और प्रभाव संस्कार का विचार-भावना और क्रिया पर होता है। संस्कार की शक्ति उस समय अधिक बढ़ जाती है जब वह लयपूर्ण (rhythmical) होता है।

संसार में हर जगह संस्कार का सम्बन्ध शिष्टाचार (etiquette), सौजन्यता (courtesy), नम्रता (politeness), संगीत, श्लोक, कविता, धार्मिक अनुष्ठानों (ceremony), और दैनिक जीवन की अनगिनती बातों से है। माता-पिता के सामने व्यवहार करने का एक सही ढंग होता है, कुछ शब्दों को कहने का एक सही ढंग होता है, बीमार आदमी का इलाज करने का एक सही ढंग होता है, पूजा करने का एक सही ढंग होता है; बिना किसी उद्देश्य को दृष्टि में रखे हुये अपने से बड़ों के सामने व्यवहार करने का एक सही ढंग होता है और यह सब सही ढंग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बच्चों के ऊपर लगाये जाते हैं। परन्तु जो कुछ सही है वह पहले से रूढ़ियों में मौजूद है। इसलिये संस्कार वह ढंग है जिसमें रूढ़ियाँ विकसित होती हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में फैलती हैं। लम्ले ने कहा है कि संस्कार रूपी मिल से होकर निकला हुआ व्यक्ति अपने वास्तविक रूप से भिन्न हो जाता है।†

---

* 'Ritual is the perfect form of drill and of the regulated habit which comes from drill." —Lumley, *Principles of Sociology*.

† "It is utterly impossible to be the same after having been put through the ritual mill." Ibid.

संस्कार से हमारा तात्पर्य दोहराये जाने वाली उन क्रियाओं से है जो कुछ ऐसी वस्तुओं या स्थितियों से सम्बन्धित हैं जो हमारे जीवित रहने के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।† यह गम्भीर और महत्वपूर्ण स्थितियों का सामना करने का एक स्थिर और आदतन साधन हैं। सामान्यतः संस्कार का सम्बन्ध धर्म से है। फिर भी, यह हमारी राजनीतिक', आर्थिक और नित्य की क्रियाओं का भी एक अंग है। संस्कार दोहराया जाने वाला एक ऐसा कार्य है जिसका किसी संकट (crises) के लिए एक प्रमाणिक (standardized) वाह्य क्रिया है। यह उद्वेगों की सन्तुष्टि करता है परन्तु कोई तर्कपूर्ण हल प्रस्तुत नहीं करता। इसलिए, इसका सम्बन्ध क्रियाओं से है, न कि विचारों से। यह क्रियायें प्रमाणिक होती हैं और इनका पालन समान रूप से समाज के प्रत्येक सदस्य द्वारा किया जाता है। इससे उनमें हम-भावना का जन्म होता है।

संस्कार समाज की सुचारु प्रक्रिया (orderly process) को बनाये रखने में सहायता करते हैं और साथ ही नित्य एक से ही कार्य करने से उत्पन्न थकावट (tedium of monotony) को दूर करते हैं। यह आदत निर्माण के सम्बन्ध में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रमाणिक व्यवहार का एक ऐसा प्रतिमान है जो बारम्बार दोहराया जाता है। इस बात का प्रमाण है कि समूह अपने सदस्यों के स्वार्थों में रुचि रखता है और इनका महत्व मानता है जैसा कि दाह संस्कार से स्पष्ट है। यह उद्वेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। मृत्यु, जन्म, विवाह के समय व्यक्ति अनेक उद्वेगों को अनुभव करता है और संस्कार इन उद्वेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है।

सारांश : यदि लोकरीतियाँ (folkways) अच्छी होती हैं तो कठोर दण्ड की बहुत कम आवश्यकता होती है। दूसरी तरह से हम कह सकते हैं कि यदि समाज में अधिक परिवर्तन नहीं होता है तो नियन्त्रण की कठोर विधियों की आवश्यकता नहीं होती है। आदिवासियों में प्रथायें स्वयं बहुत शक्तिशाली होती हैं और व्यक्तिगत पुरस्कार व दण्ड के साथ सामाजिक नियंत्रण करती हैं। आधुनिक गूढ़ सभ्यताओं में जहाँ समुदायों का स्थान पब्लिक ने ले लिया है वहाँ उच्च कोटि के नियंत्रण के संगठित समूहों की सहायता लेने की प्रवृत्ति पायी जाती है; जैसे कि चर्च, स्कूल तथा सरकार जैसी संस्थायें धार्मिकोत्सव, अनुष्ठान, कानून तथा प्रचार जैसे उपकरणों के द्वारा नियंत्रण करती हैं।

---

† By ritual we mean repeated acts related to certain objects or situations considered significant for our survival." Kimball Young.

———

७ भीड़ व्यवहार (Crowd Behaviour)

किम्बाल यंग ने कहा है : "भीड़ मनुष्यों के उस समूह को कहते हैं जो किसी केन्द्र या सामान्य ध्यान के विषय के चारों ओर हो।"* मनोवैज्ञानिक अर्थ में हम केवल मनुष्यों की संख्या को ही भीड़ नहीं कह सकते। उदाहरण के लिये किसी नेता के भाषण को सुनने को आये हुए हजारों व्यक्तियों को हम भीड़ नहीं कह सकते हैं क्योंकि उनमें अन्त:प्रेरणा और प्रतिक्रिया नहीं पायी जाती है। भीड़ मनुष्यों के उस समूह को कहते हैं जिसका ध्यान एक सामान्य विषय पर केन्द्रित हो और जिसके अनुसार वे अन्त:क्रिया करें। साधारणतया भीड़ अचानक ही किसी बात को या दुर्घटना को लेकर एकत्रित हो जाती है। उदाहरण के लिये, यदि अनेक आदमी सड़क पर दो आदमियों को लड़ते हुए देखते हैं तो वहीं से भीड़ का जन्म हो जाता है।

वास्तव में भीड़ से हमें बोध किसी एक स्थान में भारी संख्या में एकत्रित व्यक्तियों से होता है। यद्यपि कि भीड़ के लिये कम से कम आवश्यक व्यक्तियों की संख्या बतलाना कठिन है, फिर भी सख्या भीड़ की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण वस्तु अन्त:प्रेरणा और प्रभाव होती है। भीड़ में सदस्यों में काफी मात्रा में अन्त:क्रिया होती है। जहाँ यह अन्त:क्रिया नहीं होती, समूह केवल एक संगठन, व्यक्तियों का एक संग्रह होता है जिसका कोई सामाजिक महत्व नहीं होता। भीड़ की एक सामान्य विशेषता होते हुए भी शारीरिक निकटता इतनी महत्वपूर्ण नहीं होती जितनी कि अन्त:प्रेरणा और प्रभाव। भीड़ में सबसे अधिक महत्वपूर्ण चीज दूसरों की उपस्थिति से प्रत्येक सदस्य पर प्रभाव पड़ना है। यह प्रभाव उस समय नाटकीय हो जाता है जब कि उद्वेग उत्तेजित किये जाते हैं और जिस सरलता से यह उद्वेग उत्तेजित होते हैं वही भीड़ को इतना महत्वपूर्ण

* "A crowd is a gathering of a considerable number of persons around a center of or point of common attention."
—Kimball Young

बनाती है। इसलिये ढाँचे के बनिस्बत कार्यों को लेकर ही भीड़ की परिभाषा देना उचित होगा। उत्तेजना भीड़ की मुख्य विशेषता है।*

भीड़ की एक विशेषता यह है कि वह अज्ञात होती है, उसका कोई नाम नहीं होता और इसलिये, भीड़ में कानून-उल्लंघन करने वाला व्यक्ति पकड़ा नहीं जा सकता। इसके अतिरिक्त भीड़ की सदस्यता के लिये कोई परीक्षा नहीं होती। कोई भी चोर, बदमाश, शरीफ, वेश्या, भीड़ के सदस्य बन सकते हैं।

मैकाइवर के अनुसार : "भीड़ (ऐसे) मनुष्यों का शारीरिक रूप से घना संगठन है जो कि एक दूसरे के साथ प्रत्यक्ष, अस्थायी और असंगठित सम्बन्ध में लाये गये हैं।"† दूसरे लेखकों ने अपनी परिभाषा में सामान्य रुचियों और धारणाओं को भी सम्मिलित किया है। **कैट्रिल** कहता है, "भीड़ ऐसे व्यक्तियों का सम्मिलित समूह है जिन्होंने अस्थाई रूप से सामान्य मूल्यों से तादात्म्य किया है और जो सामान्य उद्वेग प्रदर्शित कर रहे हैं।"‡ उदाहरण के लिए, किसी इतवार की शाम को किसी पार्क में एकत्रित हुई भीड़ में यह विशेषतायें होती हैं, इसलिए हम उसे एक 'holiday crowd' कहते हैं। **थाउलस** ने भीड़ की परिभाषा दूसरे ही प्रकार से की है : "भीड़ एक अस्थिर, एक दूसरे को स्पर्श करता हुआ समूह है जो कि किसी सामान्य रुचि के फलस्वरूप स्वतः बन जाता है और यहाँ तक असंगठित होता है कि उसकी सीमायें अत्यधिक पारगम्य होती हैं।"**

वास्तव में भीड़ अपनी मानसता (mentality) के कारण अन्य समूहों से भिन्न होती है अर्थात् चैतन्यता और व्यवहार की वे विशेषतायें जो भीड़ के सदस्य प्रदर्शित करते हैं, असाधारण होती हैं। इसलिए मार्टिन ने कहा है : "भीड़ कोई वर्ग या समूह नहीं है परन्तु एक विशेष मानसिक दशा है जो किसी समूह या संघ में सब लोगों को एक साथ प्राप्त होती है।"†† जब कभी भी यह मानसिक दशा,

---

* "Excitement is the mark of the crowd" —Ogburn and Nimkoff.

† "Crowd is a physically compact organization of human beings brought into direct, temporary and unorganized contact, with one another." —MacIver

‡ "Crowd is a congregate group of individuals who have temporarily identified themselves with common values and who are expressing similar emotions." —Catril.

** "A crowd is a transitory contiguous group, unorganized with completely permeable boundaries, spontaneously formed as a result of some common interest." —Thouless

†† "The crowd is not......any class or gathering as such, but a certain mental condition which may occur simultaneously to people in any gathering of association." —E. D. Martin

आमने-सामने के समूहों या श्रोताओं में प्रकट होती है, वे भीड़ में परिणित हो जाते हैं। उस मानसिक दशा का सार यह है : सामान्य विषय पर ध्यान, उद्वेग और स्थिति पर बाधाहीन प्रतिक्रिया।

भीड़ हमारे असंगठित समूहों की श्रेणी में आती है। इसका अर्थ यह है कि भीड़ के सदस्यों के आपस के सम्बन्ध असंगठित होते हैं। भीड़ को जान-बूझ कर जन्म दिया जा सकता है, परन्तु कभी भी यह पूर्व निश्चित क्रम के अनुसार नहीं चलती। भीड़ की विलक्षण विशेषतायें वास्तव में इस बात की सूचक हैं कि यह केवल सामाजिक संगठन के विनाश के समय ही उत्पन्न होती है।"* उदाहरण के लिये, किसी बाजार में ग्राहक और दूकानदार में मारपीट हो जाने से वहाँ का सामाजिक संगठन नष्ट हो जाता है और उसी समय भीड़ भी इकट्ठा होती है।

भीड़ का निर्माण (Formation of crowds)

भीड़ के निर्माण में पहला कदम किसी उत्तेजनात्मक घटना का घटित होना है जो लोगों का ध्यान आकर्षित करे और उनमें दिलचस्पी पैदा करे। इस घटना में लीन होने और उत्तेजित होने के कारण व्यक्ति आत्म-नियन्त्रण खो सकता है और उत्तेजित करने वाली वस्तु से प्रभावित हो सकता है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार का अनुभव, व्यक्ति में भावनायें और प्रेरणाएँ जागृत करके, एक तनाव की स्थिति स्थापित करता है जो व्यक्ति को कुछ क्रिया करने के लिये प्रेरित करता है। इस प्रकार एक सी रोमाँचकारी घटना से उत्तेजित अनेक व्यक्ति भीड़ की तरह व्यवहार करने को तैयार हो जाते हैं।

यह बात भीड़ निर्माण के दूसरे कदम में—चारों ओर घूमना और दूसरे व्यक्तियों से बात करने (milling) की प्रक्रिया की शुरुआत—स्पष्ट हो जाती है। रोमांचकारी घटना के कारण उत्पन्न हुए तनावों के कारण व्यक्ति भीड़ में चारों ओर घूमता है और दूसरे से बात करता है जिससे उसकी उत्तेजना बढ़ जाती है। प्रत्येक व्यक्ति की उत्तेजना की सूचना दूसरों को मिल जाती है और उसकी उत्तेजित अवस्था में वृद्धि होती है। इस प्रकार घूम-घूम कर बात करने का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव एक सामान्य मूड, भावना या उद्वेगात्मक प्रवृत्ति को फैलाना और अधिक गहन करना है। इस स्थिति से व्यक्तियों में पारस्परिक घनिष्ठता और सद्भाव–विशेष उत्पन्न होता है जिससे व्यक्ति अत्यन्त भावुक और एक दूसरे के प्रति प्रतिक्रिया करने वाले बन जाते हैं और एक सामूहिक इकाई की भाँति कार्य करने लगते हैं।

घेरा बनाकर घूमने का एक दूसरा महत्वपूर्ण फल, जो कि भीड़-निर्माण में

---

* "The peculiar qualities of the crowd are in a large part attributable to this fact that it arises only in the crevices of social organizations."
—Mac Iver

तीसरा कदम होता है, ध्यान की सामान्य वस्तु का उत्पन्न होना है जिस पर लोगों की इच्छायें, भावनाएँ और कल्पना केन्द्रित हों। हरबर्ट ब्लूमर का कहना है कि सामान्यत: यह सामान्य वस्तु वह रोमांचकारी घटना ही होती है जिसने व्यक्तियों को उत्तेजित किया है, परन्तु इससे भी अधिकतर यह एक प्रतिमा (image) होती है जो व्यक्तियों के घूमने और आपस में बात करने के फलस्वरूप बनी हैं। यह प्रतिमा या वस्तु, उत्तेजना की भाँति ही, सामान्य होती है। इसका महत्व इस बात में है कि यह व्यक्तियों को क्रिया करने के लिये एक सामान्य उद्देश्य प्रदान करती है। सामान्य उद्देश्य हो जाने पर भीड़ एकता, स्थिरता और निश्चय के साथ कार्य कर सकती है।

इस का चौथा कदम भीड़ उद्देश्य से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को इतना अधिक बढ़ाना और उत्तेजित करना है जिससे सदस्य कार्य करने के लिये बिल्कुल तैयार हो जायें। प्रवृत्तियों की यह वेगता उस अन्त:प्रेरणा (interstimulation) का फल है जो घेरा बनाकर घूमने और नेता के प्रति प्रतिक्रिया करने मे उत्पन्न होती है। मुख्यत: तो यह उन प्रतिक्रियाओं का फल है जो संकेत और अनुसरण की प्रक्रिया से उत्पन्न होती हैं, और पारस्परिक स्वीकृति द्वारा सबल बनती हैं। जब भीड़ के सदस्यों में एक सामान्य प्रेरक होता है जो एक निश्चित प्रतिमा की ओर केन्द्रित होता है और जिसे गहरी सामूहिक भावना का समर्थन प्राप्त होता है, वे क्रियाशील भीड़ के अनुकूल हिंसात्मक ढंग से कार्य करने को तैयार हो जाते हैं।

भीड़ क्या नहीं है ? (What crowd is not ?)

केवल व्यक्तियों का जमघट या जमाव जो कि एक दूसरे की शारीरिक उपस्थिति के कारण होता है भीड़ नहीं है। उदाहरण के लिये, एक सह-कार्य करने वाला समूह, आमने-सामने का समूह, भोजन के समय परिवार, प्रयोगशाला में कार्य करते हुये विद्यार्थी या स्टाफ की कान्फ्रेन्स आदि भीड़ नहीं हैं। इन सब उदाहरणों में केवल कुछ व्यक्ति ही सम्बन्धित होते हैं और उनकी एक दूसरे पर प्रतिक्रिया भी निश्चित रहती है। एक खास विशेषता जो भीड़ और दूसरे प्रकार के जमघटों में भिन्न है वह यह है कि भीड़ के सदस्यों का ध्यान एक सामान्य ध्येय या घटना की ओर आकर्षित किया जाता है और प्रत्येक का व्यवहार उसकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के द्वारा होता है।

एक सह-कार्य करने वाले समूह में, उदाहरण के लिये, लेबोरेटरी में कार्य करते हुये विद्यार्थी या लाइब्रेरी में किताब पढ़ते हुये विद्यार्थी या जूट मिल के लूम आपरेटर—इन सभी अवस्थाओं में व्यक्ति का ध्यान अपने काम पर ही रहता है और वह उसी में रुचि लेता है। कोई दुर्घटना होती है या झगड़ा होने लगता है तो सहयोगी समूह के सदस्य भीड़ में बदल जाते हैं।

आमने-सामने के समूह के सदस्य एक दूसरे पर ध्यान देते हैं तथा एक दूसरे की उपस्थिति, हाव-भाव, शब्दों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। वे पूर्णरूप से एक दूसरे पर प्रतिक्रिया करते हैं। यह ठीक है कि भीड़ के सदस्य एक दूसरे की उपस्थिति, आवाज और शारीरिक सम्पर्कों पर प्रतिक्रिया तो करते हैं किन्तु यह प्रतिक्रिया अप्रत्यक्ष होती है क्योंकि भीड़ में कोई व्यक्ति आवश्यक रूप से सामान्य ध्येय पर प्रतिक्रिया करता है और भीड़ के दूसरे लोगों की प्रतिक्रिया उसके संवेगात्मक व्यवहार को तीव्र करती है।

भीड़ और जनता (Crowd and Public)

जनता मनुष्यों का एक ऐसा समूह है जो इधर-उधर छिटका हुआ होता है किन्तु सामान्य हितों, सामान्य उत्तेजकों और एक-सी प्रतिक्रियाओं से सम्बद्ध होता है। कभी-कभी यह समूह इतना बड़ा होता है, कि उसके सारे सदस्य एक दूसरे के शारीरिक सम्पर्क में नहीं होते हैं, एक दूसरे से काफी दूर रहते हैं किन्तु सामान्य मतों आदि में सम्बद्ध होते हैं। अतः संकीर्ण अर्थ में यह व्यक्तियों का फैला हुआ अस्थायी समूह है जिसका सामान्य ध्येय होता है। अतः उदाहरण के तौर पर हम कह सकते हैं कि प्रतिदिन एक ही समाचार पत्र पढ़ने वाले तथा एक ही रेडियो स्टेशन के प्रोग्राम सुनने वाले सारे व्यक्तियों को जनता कहा जाता है किन्तु भीड़ नहीं। गिलिन और गिलिन का कहना है कि जनता ऐसे लोगों का समूह है जिसमें सभी लोग एक दूसरे के प्राथमिक सम्पर्क में नहीं आते हैं और जो एक ही प्रश्न तथा एक मत के निर्माण में सामान्य रुचि रखते हों। पंडित नेहरू के प्रशंसकों को जनता कहा जा सकता है। इसी प्रकार स्टेट्स्मैन, हिन्दुस्तान टाइम्स, नेशनल हराल्ड या पत्रिका पढ़ने वाले सभी लोगों को जनता की संज्ञा दी जाती है। ऐसे समूह में प्रतिक्रिया बहुत कम होती है, केवल संकट इत्यादि के समय अधिक होती है। लेकिन इस समूह की वास्तविकता और उसके सामान्य हितों को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है अतः हम कह सकते हैं कि वास्तविक अर्थ में जनता एक मनोवैज्ञानिक समूह है।

टार्डे (Tarde) ने भीड़ और जनता के भेद को समझाने का प्रयत्न किया है। उसके अनुसार भीड़ संख्या में सीमित होती है तथा मनुष्य की आवाज की पहुँच के अन्दर होती है तथा जनता में ऐसा कोई सम्पर्क होना आवश्यक नहीं है। जनता में पूर्णतया मानसिक-सामूहिकता होती है।

जनता बिना किसी विशेष आकृति के (amorphous) होती है। उसके कार्य की विधि भी भिन्न होती है। जनता में आमने-सामने या कन्धे से कन्धे का सम्पर्क नहीं होता है क्योंकि उसके सदस्य छिटके हुए होते हैं और यह सम्पर्क व्यक्तिगत नहीं होता है तथा संदेशवाहन (communication) के यांत्रिक साधनों द्वारा होता है। इसलिये किम्बाल यंग का कथन है कि वास्तव में जनता स्थानगत विस्तृत

(spatially extended) तथा चंचल समूह है जो हमारे अद्वितीय संदेशवाहन के साधनों द्वारा निर्मित होता है। भीड़ या श्रोता समूह में हम लोग प्रत्यक्ष व्यक्तिगत उत्तेजकों के आधीन रहते हैं। हम दूसरे लोगों को देखते सुनते या दूसरे प्रकार से प्रत्यक्षीकरण करते हैं। शीघ्र ही हम लोगों में 'हम' (we) की भावना हो जाती है, जैसे 'हम विश्वास करते हैं,' 'हम करेंगे' आदि की भावना का उदय हो जाता है लेकिन जनता के सदस्य के रूप में हम में 'मैं' की भावना रहती है जैसे 'मैं वह पसंद करता हूँ,' 'मैं असहमत हूँ' आदि।

भीड़ की विशेषतायें
(The Characteristics of Crowd)

किम्बाल यंग ने भीड़ की चार मुख्य विशेषतायें बतलाई हैं :—(१) उसका अस्थाई रूप (its transitory nature), (२) उसका स्थायी वितरण (its spatial distribution), (३) ध्यान और कार्य का एक सामान्य केन्द्र (a common focus of attention and action), (४) नेता का आविर्भाव (emergence of a leader)।

भीड़ एक अस्थाई समूह है। जिस प्रकार वह अचानक एकत्रित होती है उसी प्रकार वह समाप्त भी हो जाती है। भीड़ का रूप देने के लिए आवश्यक संख्या कभी भी निश्चित नहीं हुई है, परन्तु साधारणतया उसमें इतने व्यक्ति अवश्य होते हैं कि निकट आमने-सामने के सम्बन्ध सम्भव नहीं होते। भीड़ में जो व्यक्ति-से व्यक्ति सम्बन्ध होते हैं वे कन्धे-से-कन्धे किस्म के होते हैं अर्थात् उनके कन्धे आपस में भिड़े होते हैं। वहाँ सदस्यों में काफी अन्त:प्रेरणा और सामूहिक शक्ति का भाव होता है।

ले बों (Le Bon) ने ही भीड़ पर सर्वप्रथम पुस्तक लिखी थी। उसने भीड़ की निम्नलिखित विशेषतायें बतलाई थीं :—

(अ) क्रूरता,

(ब) उत्तरदायित्व का अभाव,

(स) बौद्धिक सुझावों की अपेक्षा संवेगात्मक सुझावों से अधिक प्रभावित होना,

(द) सुझाव ग्रहण करने की अत्यन्त क्षमता जिसके द्वारा विचारों को भीड़ में फैलाया जाता है और सदस्यों को हिंसात्मक कार्य करने के लिये प्रेरित किया जाता है।

जब एक स्थान पर एकत्र व्यक्तियों का ध्यान एक ओर केन्द्रित हो जाता है, तो भीड़ को क्रियाशील बनाने के लिये अगला कदम आन्तरिक उद्वेगों को प्रवाहित करना है। एक क्रियाशील भीड़ में प्रेम, क्रोध, भय इस प्रकार के उद्वेगों की उत्पत्ति होती है।

किम्बाल यंग ने क्रियाशील भीड़ को दो भागों में विभाजित किया है—(१) क्रोध-आक्रमणकारी भीड़ (attack-rage crowd) जो कि क्रोधवश आक्रमण करने को तैयार है या आक्रमण करती है जैसे कि दंगा (riot) करने वाली भीड़; (२) भय से भागने वाली भीड़ (flight-fear-crowd) जो भय-भीत होने के कारण भाग रही हो जैसे कि जब किसी जुलूस पर पुलिस लाठी चार्ज करती है या किसी थियेटर में आग लग जाती है।

जो प्रेरणायें व्यक्तिगत रूप से उत्पन्न होती हैं, वे किसी प्रकार भी क्रियाशील भीड़ को जन्म नहीं दे सकतीं। भीड़ की सामूहिक क्रिया के लिये कुछ आधार होने चाहिए—एक सामान्य भाषा, एक सामान्य परम्परा और सामान्य सामाजिक मूल्य इसके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

क्रियाशील भीड़ की मानसिक विशेषतायें या मनोविज्ञान

(Mental characteristics or psychology of the Action Crowd)

ले बों (**Le Bon**) ने निम्नलिखित शब्दों में क्रान्तिकारी (revolutionary) भीड़ के व्यवहार का वर्णन किया है।

चाहे जो व्यक्ति क्यों न हो, उनके जीवन-यापन के ढंग, उनके व्यवसाय, उनके चरित्र अथवा उनकी बुद्धिमत्ता (एक दूसरे से) कितनी ही समान अथवा असमान क्यों न हो, यह सत्य कि वे एक समूह में परिणित हो गये हैं उनको उस अवस्था से भिन्न प्रकार अनुभव करने, विचार करने और कार्य करने योग्य बना देता है जो यदि वे एकान्त की अवस्था में होते, करते। वे उन मूलप्रवृत्तियों के अधीन हो जाते हैं जिनको वह अपने वश में रखते यदि वे अकेले होते। उत्तरदायित्व की भावना जो उन पर सदा नियन्त्रण रखती है पूर्णत: तिरोहित हो जाती है। सम्मोहित व्यक्ति की भाँति वे अब अपने कार्यों से चेतन नहीं होते। भीड़ का सदस्य सभ्यता की सीढ़ी से अनेक ज़ीने नीचे उतर जाता है, वह आदिवासियों की हिंसा, क्रूरता और उत्साह से युक्त होता है।"*

---

* Whoever be the individuals, however like or unlike be their modes of life, their occupations, their character or their intelligence, the fact that they have been transformed into a group ....makes them feel, think and act in a manner quite different from that in which each of them would..were they in a state of isolation. (They yield to) instincts which, had they been alone, they would have kept under restraint...The sentiment of responsibility which always controls individuals disappears entirely.(Like hypnotised persons) they are no longer conscious of their acts. A (crowd)man descends several rungs in the ladder of civilization,

मैकडूगल (Mc Dougall) ने भीड़-व्यवहार को निम्नलिखित शब्दों में चित्रित किया है :

"भीड़ अत्यन्त उद्वेगात्मक, आतुर, अस्थिर, असम्बद्ध, अनिश्चित और कार्य में उत्कट होती है, निम्न श्रेणी के उद्वेगों और भावनाओं को प्रदर्शित करती है, संकेत ग्रहण करने में अत्यन्त तेज, विचार-विमर्श में लापरवाह, निर्णय में जल्दबाज, सरल और दोषपूर्ण तर्कों को छोड़ किसी प्रकार का तर्क करने में असमर्थ होती है; आसानी से इधर-उधर ले जाई और नेतृत्व की जा सकती है, आत्म-चेतना में कम, आत्म-सम्मान और उत्तरदायित्व के भाव से हीन और अपनी शक्ति की चेतनता से प्रवाहित होती है जिससे कि वह किसी गैर-जिम्मेवार और निरंकुश शक्ति के सभी गुणों को प्रदर्शित करती है। इस प्रकार उसका व्यवहार किसी उद्दण्ड बच्चे या किसी विलक्षण स्थिति में किसी अनुशासनहीन संक्षोभी जंगली आदमी के व्यवहार की भाँति है और सबसे गिरी हुई घटना में यह जंगली पशु की भांति है।"†

ई० डी० मार्टिन ने निम्नलिखित व्यवहारों और विचारों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है जो लगभग सभी भीड़ें प्रदर्शित करती हैं: अहंभाव (egoism), घृणा और निरंकुशता (absolutism)। "प्रत्येक संगठित भीड़ अपनी प्रतिष्ठा व गौरव के प्रति ईर्ष्यालु होती है" (Every organized crowd is jealous of its dignity and honour)। भीड़ शक्ति, यश, प्रशंसा और प्रभुत्व की मांग करती है। प्रत्येक व्यक्ति में एक दबा अचेतन अहंभाव होता है जो कि भीड़ में सामूहिक रूप में प्रकट होता है। इस अचेतन अहंभाव का फल घृणा होता है। भीड़ के सदस्य यह सोचते हैं कि ऐसे अनेक आदमी हैं जो उनके समूह की महानता को

---

he possesses the violence, the ferocity and also the enthusiasm of primitive beings." —Le Bon, *The Crowd.*

† "A crowd is excessively emotional, impulsive, fickle, inconsistent, irresolute and extreme in action, displaying only the coarse emotions and the less refined sentiments, extremely suggestible. careless in deliberation, hasty in judgment, incapable of any but the simple, and imperfect forms of reasoning; easily swayed and led, lacking in self-consciousness, devoid of self-respect and a sense of responsibility, and apt to be carried away by the consciousness of its force, so that it tends to reproduce all the manifestations—of any irresponsible and absolute power. Hence its behaviour is like that of any unruly child or an untutored passionate savage in a strange situation..and in the worst cases it is like that of a wild beast," —Mc Dougall.

सहन नहीं कर सकते हैं और इसलिए उसके महत्व को कम करने का षड़यन्त्र रच रहे हैं। यह दूसरों के प्रति घृणा का बहाना हो जाता है। इसकी तीसरी विशेषता निरंकुशता है। मार्टिन (Martin) ने कहा है : "भीड़-मस्तिष्क के लिए कोई समस्यायें नहीं हैं : इसने पहले ही अपनी बहस बन्द कर दी है। भीड़ केवल वही विश्वास करती है जो वह विश्वास करना चाहती है और कुछ नहीं।"*

(१) **संकेत (Suggestion)**—संकेत उस समय आरम्भ होता है जब कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में, बगैर उसकी तर्क शक्ति का प्रयोग करने का अवसर दिये, अपने विचार, विश्वास या कार्य का समावेश करता है। वास्तव में संकेत का उद्देश्य दूसरे की आलोचनात्मक आदतों को रोक कर उससे कुछ कार्य करवाना होता है। ले बों (Le Bon) का कहना है कि भीड़ में व्यक्ति की संकेत ग्रहण करने की क्षमता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह ऐसे कार्य करने को बाध्य हो जाता है जो उसके चरित्र और आदतों के प्रतिकूल हैं। ले बों के विचार में थोड़ी देर तक भीड़ में रहने पर व्यक्ति अपने को ऐसी अवस्था में पाता है जिसमें कोई सम्मोहित व्यक्ति अपने को किसी सम्मोहन शास्त्री के हाथ में पाता है चाहे उसका कारण भीड़ का चुम्बकीय (magnetic) प्रभाव हो या कोई दूसरा कारण हो जिससे हम अनभिज्ञ हैं। संकेत के प्रभाव में वह कुछ कार्यों को दैवी वेग से करने का प्रयत्न करेगा। ले बों के शब्दों में एक व्यक्ति बालू के अनेक दानों में एक दाने की भाँति है जिसको हवा अपनी इच्छानुसार हिलाती डुलाती है (An individual in a crowd is a grain of sand among other grains of sand which the wind stirs up at will.)

भीड़ को कार्य करने के लिए प्रेरित करने में अफवाह विशेषरूप से प्रभावशाली होती है। अफवाह एक विशेष प्रकार का संकेत है, किसी वास्तविक या कल्पित व्यक्ति या घटना की एक कहानी होती है, जो फैलने के साथ बढ़ती भी है। साधारण सत्यों या कल्पनाओं से शुरू होकर, थोड़ी ही देर में अफ़वाहें उच्च उद्वेगात्मक कहानियों का रूप धारण कर लेती हैं। अफवाह फैलाने के ३ मुख्य तरीके हैं (क) झूठी बातों के द्वारा (by gossip), (ख) पत्र, टेलीफोन, संवाद अथवा तार के द्वारा और (ग) ऊँचे पैमाने पर समाचार-पत्रों, रेडियो, चलचित्र, मैगजीन पैम्फलेट और किताबों के द्वारा। भीड़ में इस सिद्धांत का पालन होता है : "हम वस्तुओं को जैसी वे हैं वैसे नहीं देखते, बल्कि जिस हालत में हम होते हैं उस प्रकार

* "To the crowd mind, as such, there are no problems. It has closed its case beforehand. The crowd believes what it wants to believe and nothing else."—E. D. Martin, *The behaviour of Crowd.*

देखते हैं" (We see things not as they are, but as we are) । इसका कारण अत्यधिक उद्वेगपूर्ण हमारी अवस्था होती है ।

(२) **सामाजिक सौकार्य (Social facilitation)**—सामाजिक सौकार्य से तात्पर्य दूसरों की उपस्थिति अथवा कार्य से अपनी कार्य-क्षमता का बढ़ना है। क्रियाशील भीड़ में व्यक्तियों के एकत्रित होने से उत्तेजना और कार्य की सहजता बढ़ती है। भीड़ में घेरा बनाकर घूमना, कन्धों को रगड़ना, गर्दन निकाल कर झाँकना और आंखों और कानों पर बल देना—यह सब बातें भीड़ के सदस्यों को उत्साह और शक्ति प्रदान करती है। ले बों के शब्दों में "भीड़ में प्रत्येक भावना और कार्य संक्रामक होता है और इतना अधिक संक्रामक कि व्यक्ति सामूहिक स्वार्थ के लिए सरलता से अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की बलि दे देता है (In a crowd every sentiment and act is contagious and contagious to such a degree that an individual readily sacrifices his personal interest to the collective interest) । यह योग्यता उसकी प्रकृति के विरुद्ध होती है और इसके लिए व्यक्ति केवल तभी समर्थ होता है जब कि वह किसी भीड़ का एक अंग होता है।

(३) **सामूहिक शक्ति का ज्ञान (A sense of mass power)**—भीड़ का सदस्य होने पर व्यक्ति, संख्या के विचार से, एक अजेय शक्ति की भावना प्राप्त करता है जिसके कारण वह उन उद्वेगों और मूल प्रवृत्तियों के वशीभूत हो जाता है जिनको वह अकेला होने पर बलपूर्वक अपने वश में रखता है। भीड़ के सदस्य को इस विचार से भी शक्ति आती है कि भीड़ अज्ञात होती है और उसे किसी भी कार्य के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता। प्रत्येक सदस्य केवल अपनी ही शक्ति का अनुभव नहीं करता बल्कि वह सम्पूर्ण भीड़ के सदस्यों की शक्ति को अपनी मान बैठता है। ले बों के शब्दों में : "भीड़ में मूर्ख, अज्ञानी और ईर्ष्यालु व्यक्ति अपनी महत्वहीनता और शक्तिहीनता के भाव से मुक्त हो जाते हैं और बदले में क्रूर, अस्थायी, जबरदस्त शक्ति से युक्त हो जाते हैं।" (In crowds the foolish, ignorant, and envious persons are freed from the sense of their insignificance and powerlessness and are possessed instead by the notion of brutal and temporary but immense strength.)

(४) **उत्तरदायित्व की भावना का अभाव (Lack of sense of responsibility)**—भीड़ में व्यक्ति उत्तरदायित्व की अपनी भावना खो बैठता है और भीड़ के अधिकतर सदस्य जिस प्रकार के कार्य करते हैं वैसा ही स्वयं भी करने लगता है यद्यपि उसका व्यक्तित्व उन कार्यों से सहमत नहीं होता। इस प्रकार भीड़ ऐसे अपराध भी करती है जो कि भीड़ के सदस्यों की आत्मा (conscience) के विरुद्ध

हैं। कालेज का लड़का, मामूली तौर पर, फुटबाल के गोल स्तम्भों (goal posts) को नहीं गिरा देता है या मोटरों को सड़क के नीचे नहीं ढकेल देता है, परन्तु विजयोत्सव में वह ऐसा करता है। अमेरिका में, साधारणतया, कोई सफेद चमड़ी का आदमी किसी हब्शी को मार नहीं डालता या उसके हाथ पैर नहीं काट डालता, परन्तु प्रजातीय दंगों में वह ऐसा करता है। भीड़ में उत्तरदायित्व की भावना का नाश होने का कारण सामूहिक शक्ति, उद्वेग और भीड़ का अज्ञात होना है। इस प्रकार हमें नेपोलियन के इस कथन में : "Collective crimes involve no body" सत्यता का आभास मिलता है।

उत्तरदायित्व में बौद्धिक तत्परता की आवश्यकता होती है जिसका भीड़ में सर्वथा अभाव रहता है। भीड़, और यदि वहाँ नेता हो तो वह, आन्तरिक स्थिति का नियन्त्रण अपने हाथ में लेता है। फ्रायड (Freud) का कहना है कि भीड़ में व्यक्ति ऐसी अवस्था में हो जाता है जिसमें उसकी दबी हुई इच्छायें उसके अचेतन से उभर आती हैं और उसको वह गैर जिम्मेदारी के साथ पूरा करना चाहता है। लेकिन एक मजे की बात यह होती है कि इतने गैर जिम्मेदार बर्ताव के बावजूद भी भीड़ के सदस्य यही सोचते हैं कि वे जो कर रहे हैं या सोच रहे हैं ठीक ही है। यह अपने विरोधियों को या जिनके विरुद्ध वह प्रदर्शन कर रहे होते हैं उनको ही दोषी ठहराते हैं।

(५) भीड़ अस्थिर होती है (The crowd is fickle)—भीड़ स्थिर होती है क्योंकि कभी भीड़ की उत्तेजना एक प्रवृत्ति को उत्तेजित करती है तो कभी दूसरी प्रवृत्ति को, कभी एक विचार के अनुसार कार्य करती है तो कभी दूसरे विचार के अनुसार। इस प्रकार कभी भीड़ क्रोधपूर्ण साहस प्रदर्शित करती है और कभी भयभीत है, कभी गौरवपूर्ण बलिदान देने की क्षमता रखती है और कभी भयानक क्रूरता प्रदर्शित कर रही होती है। आज अपने नेता को आकाश तक ऊँचा उठा देती है और कल, यदि अवसर मिले, पैरों तले रौंद डालती है। इसी प्रकार भीड़ के विचारों और कार्यों का प्रभाव कभी एक दिशा में नहीं होता। वह बदलता रहता है। रास (Ross) ने लिखा है : "एक क्षण जो उसका नायक है; दूसरे क्षण वही उसका शिकार हो सकता है (Its hero one moment may be its victim the next)।

(६) अन्तःप्रेरणा और भीड़ लय (Interstimulation and Crowd rhythm)—भय, क्रोध, प्रतिशोध और दया के उद्वेग, जो सब मनुष्यों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं, भीड़ व्यवहार के विषय हैं। सम्भवतः प्रत्येक युवक ने ऐसी स्थिति को अनुभव किया है जब कि व्यवहार का एक ढंग, जैसे कि सैनिकों को एकत्रित करने की चिल्लाहट या प्रशंसा की ध्वनि, अधिक गहरी और स्पष्ट होती जाती

है जैसे-जैसे वह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचती जाती है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति विचार, भावना के ध्वनिवर्धक यन्त्र (amplifier) की भाँति कार्य करता है।* अपनी शारीरिक निकटता के कारण भीड़ अन्त:प्रेरणा का अधिक अवसर देती है। एक बार भीड़ इकट्ठा हो जाने पर उत्तेजना और सहानुभूति का स्वतः संग्रह हो जाता है, एक दूसरे के उद्वेगों के भाव सदस्यों पर सामूहिक प्रभाव की भाँति आते हैं और प्रत्येक सदस्य की उत्तेजना को बढ़ाते हैं। जैसे-जैसे सबके मूड एक से होते जाते हैं वैसे-वैसे वे एक साथ लयपूर्ण हावभाव प्रदर्शित करते हैं। भीड़ ध्वनि की ऊँचाई (pitch of sounds) के अनुसार ही आगे पीछे उद्वेग में बढ़ती है। आदिवासियों में प्रचण्ड भावनाओं को जागृत करने के लिये नगाड़े आदि बजाये जाते हैं जिनकी आवाज उत्तेजना बढ़ाती है।

(७) **उद्वेग और अचेतन (Emotions and the Unconscious)** — भीड़ में संकेत ग्रहण करने की बढ़ती हुई क्षमता और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व की भावना की निम्नता एक दूसरे पर अन्त:क्रिया (interact) करती है। प्रत्येक दूसरे को प्रेरित करती हैं और दोनों उद्वेगों को प्रवाहित करने में सहायक होती हैं। वास्तविक दशाओं में जिनमें भीड़-भावना उत्पन्न होती है कोई ऐसा तत्व होता है जो किसी प्रबल उद्वेग को छूता हुआ सा होता है। भय-त्रस्त भीड़ में आत्म-रक्षा का भय एक मूलभूत भय को जगाता है। आदिवासियों के फ़सल सम्बन्धी उत्सवों तथा अन्य नृत्य उत्सवों में यौन उद्वेग उत्तेजित किया जाता है।

वास्तव मे भीड़ उन प्रेरणाओं के अनुसार कार्य करती है जिनको नित्य के सामाजिक सम्बन्धों में व्यक्तिगत व्यवहार और मनोवृत्ति के द्वारा दबा दिया जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि भीड़ के सदस्य यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रबल उद्देश्य उद्वेगात्मक होते हैं; उचित और अनुचित, दया और ईमानदारी के बौद्धिक तथा सामाजिक विचार दूसरे को चोट व हानि पहुँचाने की प्रेरणा के नीचे दब जाते हैं।

इस प्रकार की हिंसा से सम्बन्धित यह सत्य है कि भीड़-व्यवहार एक ही दिशा की ओर प्रभावित होता है। भीड़ का सदस्य किसी व्यक्ति, प्रजाति, अथवा वर्ग के बिल्कुल पक्ष में होता है अथवा बिल्कुल विरोध में, सदस्य किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति या तो मित्रतापूर्ण व्यवहार करते हैं या शत्रुतापूर्ण। भीड़ में कार्य करना शुरू करने के बाद व्यक्ति समझौता भूल जाता है। बर्नार्ड (Bernard) ने लिखा है: "यह प्रायः कोई शक्तिशाली उत्तेजना या कौतूहल की प्रेरणा होती है जो भीड़ को संगठित करती है।" (It is usually some strong emotion or curiosity impulse which integrates the crowd.)

---

* "Here each individual seems to function as an amplifier of a mood, of a feeling or merely of a verbal expression." —MacIver

इसके अतिरिक्त भीड़ में 'प्रक्षेपण' (projection) का व्यवहार भी होने लगता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि हम अक्सर वस्तुओं को उस रूप में नहीं देखते है जैसे कि वह होती हैं बल्कि उस रूप में देखते हैं जैसे हम स्वयं होते हैं (We often see things not as they are but as we are.)। इसी कारण भीड़ के सदस्य अपनी बुराइयों तथा कमियों का 'प्रक्षेपण' (projection) अपने विरोधियों में करते हैं।

भीड़ में संवेगों और अचेतनता के महत्व को रौस (Ross) ने भी काफी अच्छे ढंग से बताया है। उसका कहना है कि भीड़ में व्यक्तियों में यह भावना आ जाती है कि उन्हें कोई देख नहीं रहा है इस कारण दूसरों की आड़ में अपने संवेगों और भावनाओं को प्रदर्शित करते हैं। यही कारण है कि अपनी बात सुनाने के लिए व्यक्ति केवल बोलते ही नहीं बल्कि जोर से चिल्लाते हैं।* अपने आप को दिखाने के लिए वह न केवल दूसरों के सामने ही आते हैं बल्कि हाव-भाव भी प्रदर्शित करते हैं। इस कारण भीड़ में किया हुआ कार्य सामान्यतः संवेगात्मक होता है।

(८) असम्भावना के विचार का तिरोहित होना (Disappearance of the notion of impossibility)—भीड़ में नेता का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। ले बों (Le Bon) ने ठीक ही कहा है : भीड़ गुलामों का एक झुण्ड है जो बगैर स्वामी के कार्य करने में हमेशा ही असमर्थ है (A crowd is a servile flock that is incapable of ever doing without a master)। भीड़ के सदस्य नेता के ज्ञान और शक्ति से अपना तादात्म्य (identify) करते हैं और वह उनके ऊपर अपने स्वयं के मूल्यों और विचारों को प्रतिबिंबित करता है जिनको शीघ्र ही वे अपना समझ लेते हैं। नेता के प्रति आज्ञापालन स्वतः चालित होता है क्योंकि बचपन से ही अपने से अधिक बुद्धिमान या शक्ति वाले की बात का पालन करने की हमारी आदत पड़ जाती है।

नेता भीड़ को उन तर्कों द्वारा उत्तेजित करता है जिससे अकेला होने पर व्यक्ति कभी भी प्रवाहित नहीं हो सकता क्योंकि भीड़ का सदस्य होने पर उसमें सहज विश्वास की भावना जागृत हो जाती है। नेता भीड़ के सदस्यों को निम्न-लिखित प्रेरणा देता है :

(i) वह सबका ध्यान एक सामान्य स्थान और विषय की ओर केन्द्रित करता है।

---

* "Masked by their anonymity, people feel free to give reign to the expression of their feelings. To be heard, one does not speak, one shouts. To be seen, one does not simply show oneself, one gesticulates." : —Ross, *Social Psychology* Chapter III.

(ii) वह सदस्यों के अस्पष्ट विचारों को स्पष्ट रूप से प्रकट करता है।

(iii) वह उद्वेगों को जागृत करने और कार्य करने की प्रेरणा देने के लिये पौराणिक और दन्तकथाओं और हाल में घटित घटनाओं का वर्णन करता है अर्थात् घृणा, भय आदि उद्वेगों को और भड़काता है।

(iv) वह भीड़ के द्वारा किये जाने वाले कार्यों की दिशा बतलाता है। उदाहरण के लिए, वह लूटने, जलाने, मारने-पीटने आदि का सुझाव या आदेश देता है।

(v) कभी-कभी कार्य करने में भी अगुआ बन जाता है।

(९) **क्रियाशील भीड़ की नैतिकता (The morality of the crowd in action)**—उद्वेगात्मक भीड़ की एक विशेषता यह है कि उसके सदस्यों के नैतिक गुणों में परिवर्तन हो जाता है। भीड़-व्यवहार के सभी विद्यार्थियों ने इस बात पर गौर किया है कि जब व्यक्ति सामूहिक कार्य में, चाहे वह आक्रमणकारी या भय से पलायन करने वाली भीड़ हो, व्यस्त होते हैं तो उचित नैतिक गुणों का अभाव प्रदर्शित करते हैं। भीड़ में नैतिक बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। सामाजिक बन्धन को दूर किया जाता है और भीड़ स्वतन्त्रता और बाधाहीनता अनुभव करती है। सामान्य रूप से जिन व्यवहारों को हम नैतिक दृष्टिकोण से उचित नहीं समझते, उन्हीं को भीड़ में हम बुरा नहीं समझते हैं। भीड़ का सदस्य केवल यही नहीं देखता है कि सभी व्यक्ति वैसा ही कार्य कर रहे हैं, बल्कि उसको एक नैतिक अधिकार भी समझता है।

अनेक भीड़ों में नेता केवल सामूहिक कार्य ही उत्तेजित नहीं करता बल्कि उससे पूर्व भी सब को यह विश्वास दिला देता है कि उनके कार्य हर प्रकार से नैतिक दृष्टि से उचित हैं। प्रायः यह देखा गया है कि सैनिक विद्रोह या प्रजातीय दंगों के नेताओं ने अपने अनुयायियों को उनके कार्यों का नैतिक औचित्य पहले ही समझा दिया था। इस प्रकार की प्रारम्भिक प्रेरणायें उनको खुले आम हिंसात्मक कार्य करने को प्रेरित करती हैं। वास्तव में यह कहना गलत होगा कि सब भीड़ें अनैतिक होती हैं। सत्य तो यह है कि नेता के ऊपर निर्भर करता है कि वह उनसे नैतिक या अनैतिक कार्य करवायेगा।

(१०) **सहस विश्वास (Credulity)**—संकेत ग्रहण करने की क्षमता के बढ़ जाने पर और उद्वेगों के अत्यधिक उत्तेजित हो जाने पर भीड़ के सदस्य सुनी हुई सभी बातों का सहज विश्वास कर लेते हैं। वे बातें जिनको हम दैनिक जीवन में बिना तर्क के स्वीकार नहीं कर सकते उन्हीं पर हम भीड़ में सहज विश्वास कर लेते हैं। यही कारण है कि अफ़वाह पर सरलता से भीड़ में विश्वास कर लिया जाता है।

(११) **विचार शक्ति का अभाव (Lack of volition)**—भीड़ के सदस्य कभी भी विचारशील नहीं पाये जाते हैं। विचार करना तभी सम्भव होता है, जब

मनुष्य में आत्मचेतना बनी रहे। चूँकि भीड़ में आत्मचेतना समाप्त हो जाती है, इसलिये भीड़ में जैसा दूसरे व्यक्ति कहते हैं, वैसा ही बिना सोचे विचारे मान लिया जाता है।

(१२) **बुद्धि का निम्न स्तर (Low degree of intelligence)**—भीड़ की एक आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि उसके बुद्धिमान से बुद्धिमान सदस्य भी थोड़ी देर के लिए ऐसे कार्य करने लगते हैं जो निम्न बुद्धि के लोग ही साधारणतया करते हैं। इसका कारण उनका उद्वेगों द्वारा बह जाना है। वास्तव में भीड़ में संकेत और अनुकरण का प्रभाव इतना अधिक बढ़ जाता है कि व्यक्ति अपनी बुद्धि का प्रयोग करने का अवसर ही नहीं पाता है।

इसी कारण भीड़ में बुद्धि का स्तर निम्न कहा जाता है। रस्किन (Ruskin) ने भीड़ के सदस्यों की बुद्धि के बारे में बड़ा अच्छा वर्णन किया है। उसका कथन है कि भीड़ से कुछ भी करवाया जा सकता है। उसकी भावनायें अक्सर समग्ररूप से उदार और सही होती हैं। लेकिन इसके लिये उनका कोई आधार नहीं होता है। उन पर कोई नियंत्रण नहीं होता है, उन्हें उत्तेजित किया जा सकता है या अपनी इच्छा-नुसार जिस ओर चाहें ले जाया सकता है और उस पर उनका मत माँगा जा सकता है। जिस समय भीड़ के उत्साह का दौर होता है उस समय कुछ भी कहा जाये भीड़ में मान लिया जाता है। लेकिन दौर समाप्त हो जाने के एक घन्टे बाद सब कुछ भूल जाया जाता है।

भीड़ के सदस्यों की बुद्धि के निम्न स्तर की व्यवस्था निम्न प्रकार से की जा सकती है—

(**क**) वह विचार और तर्क जिन्हें भीड़ समझ सकती है निम्न कोटि के होते हैं और इन्हीं निम्नकोटि के विचारों और तर्कों का भीड़ में सम्मान होता है। एक नेता जो भीड़ को किसी बात के लिये विश्वास दिलाना चाहता है उसके लिये वह तर्क-वितर्क का प्रयोग नहीं करता है क्योंकि उन्हें केवल तार्किक मन के लोग समझ पाते हैं। चूँकि भीड़ में तर्क का कोई स्थान नहीं होता है इसलिये यदि कोई नेता भीड़ के संवेगों और उद्वेगों को उभाड़ता है तो उसे बहुत सफलता मिलती है। वह विचार जो अधिकाँश लोगों के द्वारा तुरन्त ही समझ लिये जावें अवश्य ही निम्न कोटि के होंगे। इसलिए भीड़ के विचारने की शक्ति का स्तर भी निम्न होता है। भीड़ में जो सबसे कम बुद्धि के लोग होते हैं वह सारे सदस्यों की बुद्धि का स्तर अपने समान बना लेते हैं।

(**ख**) भीड़ में सामूहिक विवेचना (collective deliberation) सम्भव नहीं होती है। सामूहिक विवेचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें विचारों का स्वतन्त्र आदान-प्रदान हो जाता है। असंगठित भीड़ में विचारों के स्वतन्त्र

आदान-प्रदान का होना मुमकिन नहीं है। इस कारण सोचने एवं विचारने का स्तर काफी नीचा होता है। सर मार्टिन कॉन्वे (Sir Martin Conway) ने ठीक ही कहा है कि वाद-विवाद का सारा जीवन समाप्त हो जाता है जैसे ही एक व्यक्ति बोलने लगता है और शेष व्यक्तियों को शान्त कर लेता है।

(ग) भीड़ में व्यक्तियों की संकेतात्मकता बढ़ जाती है। सम्मानित व्यक्ति द्वारा प्रकट किया हुआ कोई भी सुझाव तुरन्त ही स्वीकार कर लिया जाता है। इसी प्रकार अनेक लोगों के द्वारा दिया गया सुझाव भी फौरन मान लिया जाता है।

(घ) संवेगात्मक उत्तेजना से न केवल भीड़ की संकेतात्मकता में वृद्धि होती है बल्कि भीड़ की विचारने की शक्ति क्षीण भी हो जाती है।

भीड़ में अनुकरण करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ जाती है। इससे भी स्पष्ट है कि भीड़ की बुद्धि का स्तर निम्न होता है। जब व्यक्ति के स्वयं सोचने विचारने को बुद्धि का अभाव होता है तो वह अनुकरण करने लगता है। भीड़ के लिए भी यही बात लागू होती है।

भीड़ व्यवहार की व्याख्या
(The Bases and Interpretation of Crowd Behaviour)

न तो सामाजिक और मानसिक प्रक्रियायें जो भीड़ में पायी जाती हैं और न वे विधियाँ जो नेता प्रयोग करता है भीड़ व्यवहार की विचित्रता की व्याख्या करती है। भीड़ व्यवहार की व्याख्या करने के जो अभी तक प्रयास किये गए हैं उनमें से निम्नलिखित सिद्धान्त प्रमुख हैं :—

(१) समूह-बुद्धि का सिद्धान्त (The Group-Mind Thesis)—कुछ लेखकों का कहना है कि भीड़ में व्यक्तित्व का नाश हो जाने पर एक प्रकार की सामूहिक चेतना विकसित होती है, मस्तिष्क से मस्तिष्क का विलयन (fusion) होता है और समान उद्वेगों के कारण एक दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार भीड़ इतनी मस्त हो जाती है कि वह केवल सुझावों, नारों और ऐसे विचारों के अनुसार कार्य करती है जो इस व्यक्तित्वहीन मानसता (de-individualized mentality) के अनुकूल होती है। सामूहिक मस्तिष्क का विचार, भीड़ व्यवहार के शुरू के अनेक लेखकों के लेखों में पाया गया है जिनमें ले बों (Le Bon) तथा मैगडूगल (Mc Dougall) मुख्य हैं। ले बों (Le Bon) ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि जब मनुष्य भीड़ में होते हैं तो एक सामूहिक चेतना जागृत होती है जो उनकी व्यक्तिगत चेतना को दबा देती है। इसको ले बों (Le Bon) ने 'भीड़ की मानसिक एकता का नियम' (Law of the mental unity of crowds) कहा है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं भीड़ में किया गया व्यवहार अकेले में किये गये व्यवहार से भिन्न होता है। इसके कारण पर विचार करते हुए ले बों (Le Bon) ने लिखा है कि भीड़ में व्यक्तियों का वैयक्तिक मन क्रियाशील नहीं रहता है तथा भीड़ का मन उत्पन्न हो जाता है। ऐसी दशा में भीड़ का मन कार्य करता है न कि व्यक्ति का। शायद इसी कारण भीड़ में किये हुए व्यवहार और भीड़ के बाहर किये गये व्यवहार में भेद होता है। पहले लोग भीड़ के व्यवहार की तुलना जानवरों के व्यवहार से किया करते थे क्योंकि जिस प्रकार के उत्तेजकों पर भेड़, बकरियाँ आदि जानवर प्रतिक्रिया करते हैं उन्हीं उत्तेजकों पर भीड़ के सदस्य भी प्रतिक्रिया करते हैं।

ले बों का कथन है कि भीड़ में व्यक्ति के अन्दर वही हिंसा, क्रूरता एवं उत्साह रहता है जैसा कि आदिवासियों में हुआ करता था। उसका यह भी विचार है कि जब एक व्यक्ति भीड़ का सदस्य बन जाता है तो वह सभ्यता की नसेनी (ladder) पर कोई सीढ़ी नीचे उतर पड़ता है अर्थात् यह आधुनिक सभ्यता को छोड़कर प्राचीन सभ्यता का अनुसरण करने लगता है। अकेले में वह एक विवेकपूर्ण एवं अच्छे आचरण वाला व्यक्ति हो सकता है पर भीड़ में वह जंगली बन जाता है तथा अपनी मूलप्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करने लगता है। ले बों ने अपने मानसिक एकता के नियम (Law of mental unity) में बतलाया है कि भीड़ में चेतन व्यक्तित्व लुप्त हो जाता है तथा अचेतन व्यक्तित्व का बोलबाला हो जाता है। दिये हुए संकेतों एवं सुझावों को शीघ्र कार्यरूप में परिणित करने की भावना प्रबल हो जाती है।

तर्क आधुनिक समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त का विरोध किया है। उनके विचार में इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि कोई 'सामूहिक मस्तिष्क', जो कि भीड के अलग-अलग सदस्यों के मस्तिष्कों से भिन्न हो और व्यक्तियों के मस्तिष्कों का नियन्त्रण करता हो, होता भी हो।

ले बों ने सब से बड़ी गलती यह की है कि अपने सिद्धान्त को वैज्ञानिक ढंग से नहीं समझाया है। उसके अनेक उदाहरण समाचारपत्रों और उसके बचपन के अनुभवों से लिये गये हैं तथा पूरी किताब में उन्हीं उदाहरणों को अपने सिद्धान्त की प्रमाणिकता के रूप में प्रस्तुत किया है। ये उदाहरण वैज्ञानिक नहीं हैं। इस कारण सिद्धान्त को स्वीकार करने में संकोच होता है। इसके अतिरिक्त 'सामूहिक मन' (Group mind) के सिद्धान्त को भी आजकल स्वीकार नहीं किया जाता है। अतः ले बों के इस कथन में कि भीड़ में व्यक्ति के मन के स्थान पर भीड़ का मन क्रियाशील होता है, कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिलता है।

ले बों की इन गलतियों के बावजूद भी यह मानना पड़ेगा कि भीड़ की कुछ

विशेषताओं के निष्कर्ष निकालने में उसके सिद्धान्त से काफी सहायता मिली है। यह भी ठीक है कि भीड़ में 'सम्मान संकेत' (prestige suggestion) काफी क्रियाशील होता है और इस संकेतात्मकता के कारण वैयक्तिक मन कम क्रियाशील रहता है।

डाक्टर मैकडूगल का सिद्धान्त ले बॉन के सिद्धान्त से काफी मिलता-जुलता है। उसने भीड़ में संवेगात्मक व्यवहार को बहुत महत्व दिया है जैसा कि हम भीड़ की विशेषताओं में देख चुके हैं।

(२) **आलपोर्ट (Allport) का सिद्धान्त**—आलपोर्ट ने 'सामाजिक सुगमता' (social facilitation) को भीड़ के व्यवहार का कारक माना है। 'सामाजिक सुगमता के नियम' के अनुसार दो व्यक्ति एक से उत्तेजक पर एक सी ही प्रतिक्रिया करते हैं क्योंकि जब एक व्यक्ति प्रतिक्रिया करने की तैयारी करता है तो वह प्रतिक्रिया दूसरा व्यक्ति भी ग्रहण कर लेता है। आलपोर्ट का कहना है कि दूसरे को देखकर या उसकी आवाज सुनकर ही एक व्यक्ति की प्रतिक्रिया में वृद्धि हो जाती है। इसका उदाहरण दौड़ के मैदान में पाया जाता है। साइकिल की रेस के समय अधिकतर लोगों को यह अनुमान रहता है कि यदि दो साइकिल सवार एक ही क्षमता के हैं तो वह साइकिल सवार जो आगे निकल जाता है और काफी देर तक आगे रहता है हार जावेगा। इसका कारण यह होता है कि पीछे वाला सवार उसकी गतियों से प्रेरणा प्राप्त करता है तथा उसकी तेज रफ्तार से सुगमता महसूस करता है जिससे उसकी रफ्तार भी बढ़ जाती है और अन्त में वह आगे निकल जाता है। जब व्यक्ति कोई कार्य करने के लिये तैयार होता है और उस समय दूसरे को वही कार्य करते हुये देखता है तो उसे काफी सुगमता मिलती है। परीक्षा के हाल में यदि दो विद्यार्थियों की रफ्तार एक सी हो तो पीछे बैठा हुआ विद्यार्थी आगे वाले को लिखते हुये देख कर खुद भी और तेज लिखने लगता है।

आलपोर्ट का कहना है कि इसी कारण भीड में एक दूसरे के कार्य से लोगों को सुगमता मिलती है और दूसरों के व्यवहार का अनुकरण करने की सम्भावना बढ़ जाती है। आलपोर्ट यह भी कहता है कि दूसरे लोगों के शारीरिक दबाव और धक्के से एक व्यक्ति में यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि भीड़ बहुत शक्तिशाली है तथा सारे सदस्यों की इज्जत को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि वह वैसा ही व्यवहार करे।

सामाजिक सुगमता के नियम के साथ-साथ आलपोर्ट 'सामाजिक प्रक्षेपण' के नियम को भी महत्व प्रदान करता है। इस नियम के अनुसार आलपोर्ट का मत है कि यह जान कर कि सारी भीड़ एक सा कार्य कर रही है एक व्यक्ति अपनी

प्रतिक्रियाओं का प्रक्षेपण (projection) भी दूसरों की प्रतिक्रियाओं में करने लगता है।

(३) **निरुद्ध चालकों की मुक्ति का सिद्धान्त (Crowd behaviour as the release of repressed drives)**—फ्रायड (Freud) और उसके अनुयायियों ने भीड़ को दबी हुई इच्छाओं की मुक्ति का साधन बतलाया है। इस सिद्धांत के अनुसार, व्यक्तियों में प्रबल तनाव विकसित हो जाते हैं क्योंकि आधुनिक समाज प्राकृतिक मानव प्रवृत्तियों (impulses) के प्रकट करने पर बनावटी बन्धन लगा देता है जैसे कि, उदाहरण के लिये, यौन प्रवृत्ति। इसके विपरीत भीड़ें, अप्रत्यक्ष रूप में, छुपे तौर पर इन दबी हुई इच्छाओं की मुक्ति का अवसर प्रदान करती हैं। भीड़ न केवल उन इच्छाओं को मुक्त रूप से प्रकट करती है जिनको मनुष्य ने चेतन रूप से दबा रखा है बल्कि उन अचेतन और गुप्त इच्छाओं को भी मुक्त करती है जिनको सामाजिक जीवन के अनुशासन ने दबा रखा है। इसका कारण यह है कि भीड़ में हर प्रकार के सामाजिक बन्धनों से अस्थायी छुटकारा मिल जाता है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के अन्दर का "censor"—जो कि सामाजिक बन्धनों का फल है—अस्थाई रूप से हटा दिया जाता है और जंगली (primitive) अथवा शिशु तुल्य प्रवृत्तियाँ, जो कि व्यक्तित्व की आन्तरिक गहराइयों में बन्द हैं, प्रकट हो जाती हैं। भीड़ स्वप्न या ध्यान-मग्नता (day dreaming) के ढंग में दबी हुई इच्छाओं को क्षण भर के लिये मुक्त करती है।

इस सिद्धान्त के द्वारा बतलाना कठिन हो जायेगा कि निम्न श्रेणी के पशुओं में भीड़ व्यवहार क्यों होता है, जैसे कि उदाहरण के लिये, आकस्मिक पलायन करता हुआ पशु समूह (stamping herd), जब कि उनकी इच्छाओं को किसी भी प्रकार दबाया नहीं जाता है।

(४) **सामाजिक दशायें और भीड़ व्यवहार (Social conditions and crowd behaviour)**—इस प्रकार हम यह सोच सकते हैं कि भीड़ एक अस्थाई संग्रह होती है जिसमें असन्तुष्ट और निराश प्रवृत्तियों को भी प्रकट होने का अवसर मिलता है। परन्तु यदि हम भीड़ पर से ध्यान हटाकर विभिन्न स्थानों और समयों पर उनके भिन्न प्रकार के व्यवहार पर विचार करें तो हमें यह अवश्य मानना पड़ेगा कि किसी विशेष प्रकार के भीड़-व्यवहार के साथ किन्हीं विशेष सामाजिक और साँस्कृतिक दशाओं का सम्बन्ध अवश्य होता है। उदाहरण के लिये, कुछ ऐसे आदिवासी समाज होते हैं जो कि कभी-कभी सदस्यों को अपने उद्वेगों को खुले आम प्रकट करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं; कुछ ऐसे भी आदिवासी समाज होते हैं जिनमें कि थोड़े-थोड़े अर्से के बाद ऐसी सामूहिक क्रियायें, उत्सव आदि, होती हैं जिनमें नित्य के बन्धनों को मुक्त किया अथवा हटा दिया जाता है।

केवल सभ्य और आदिवासी समाजों के भीड़-व्यवहार में ही अन्तर नहीं होता बल्कि विभिन्न आधुनिक समाजों में भी यह अन्तर पाया जाता है। वे लोग जो कि अधिक नगरीय होते हैं सम्भवतः अधिक भीड़-व्यवहार प्रदर्शित करते हैं बनिस्बत उन लोगों के जो कि मुख्यतः ग्रामीण हैं। यहाँ तक कि उच्च कोटि की किन्हीं दो नगरीय संस्कृतियों में भी भीड़-व्यवहार में अन्तर पाया जाता है (उदाहरण के लिये अमेरिका और इंगलैंड की भीड़ें एक दूसरे के विपरीत व्यवहार प्रदर्शित करती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में साधारणतया भीड़ शोरगुल मचाने वाली, जन-सम्पत्ति के प्रति लापरवाह और कानून के प्रति अशिष्ट होती हैं। किसी अमेरिकन शहर में किसी पार्क में किसी उत्सव के बाद जमीन पुराने समाचार-पत्रों, खाली बोतलों या दूसरे प्रकार के कूड़ा-कर्कट से ढंकी हुई पायी जाती है। जन सम्पत्ति का नाश हो जाता है। इसके विपरीत इंगलैंड की भीड़ें अधिक संगठित और शान्तिप्रिय होती हैं। किंग जार्ज पंचम् (King George V) की सिल्वर जुबली के उत्सव में लाखों आदमी बकिंघम पैलेस के सामने के पार्क में कई दिनों तक तम्बू लगाये पड़े रहे और कहा जाता है कि जब उत्सव समाप्त हो गया तो न तो कहीं किसी प्रकार का कूड़ा-कर्कट दिखलाई दिया और न वहाँ की क्यारियों से एक भी फूल तोड़ा गया था।)

श्रोता समूह (The Audience)

श्रोता समूह एक प्रकार की सुसंगठित (institutionalized) भीड़ होता है। यह कुछ साँस्कृतिक नियमों और अनुष्ठान (ritual) और व्यवहार के यथाक्रमों (regularities) से नियन्त्रित होता है। श्रोतागण किसी विशेष उद्देश्य के लिये पूर्व-निश्चित समय और स्थान पर एकत्रित होते हैं। वक्ता और श्रोता समूह का सम्बन्ध अपनी चरम सीमा पर सब-से-एक (all-to-one) और एक-से-सब (one-to-all) किस्म का होता है।

अधिकतर, वक्ता और श्रोता समूह का सम्बन्ध प्रभुत्व (domination) तथा सहिष्णुता (submission) का होता है अथवा सक्रिय तथा निष्क्रिय कार्य का होता है। कम से कम अस्थाई रूप से ही वक्ता श्रेष्ठ समझा जाता है। दूसरी ओर श्रोता समूह के सदस्य भी वक्ता को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिये, यदि कोई वक्ता सुनने वालों की हिंसात्मक प्रवृत्तियों को उत्तेजित करना चाहता है और देखता है कि श्रोता समूह पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है तो उसे अपने शब्दों में हेर-फेर करना पड़ता है।

साधारणतया भीड़ को दो भागों में विभाजित किया जाता है—(१) औपचारिक भीड़ और (२) अनौपचारिक भीड़। पहले जिस भीड़ की मानसिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है उसे हम अनौपचारिक भीड़ भी कहते हैं।

औपचारिक भीड़ का दूसरा नाम श्रोता समूह है। किम्बाल यंग के शब्दों में, "श्रोतागण संस्था के सिद्धान्तों पर आधारित एक प्रकार की भीड़ है।"*

श्रोता समूह की विशेषताएँ (The Characteristics of Audience)

किम्बाल यंग ने श्रोता समूह की निम्नलिखित विशेषतायें बतलाई हैं—

(१) इसका एक विशेष उद्देश्य होता है।

(२) एक पूर्व-निश्चित समय और स्थान पर मिलता है।

(३) इसका अभिस्पंदन का एक निश्चित आदर्श स्वरूप होता है।

यद्यपि श्रोता समूह में भीड़ की ही तरह कन्धे से कन्धे मिलाने का सम्बन्ध होता है, फिर भी सीटों के बीच का अन्तर निकट सम्पर्क को रोकता है और इस प्रकार भीड़-प्रवृत्तियों को एक निश्चित सीमा से बढ़ने से रोकता है। कोई चतुर वक्ता किसी श्रोता समूह को अपने वाक्चातुर्य से क्रियाशील भीड़ में परिवर्तित कर सकता है, परन्तु शारीरिक सम्पर्क स्वयं इस प्रकार के विकास में सहायक नहीं होते। इसके विपरीत भीड़ में शारीरिक निकटता, कन्धों का रगड़ना उद्वेगों को उत्तेजित करता है।

आकस्मिक निरीक्षण और अनुभव ने यह दिखाया है कि श्रोता समूह की प्रतिक्रिया हॉल के आकार, सदस्य जो उपस्थित होते हैं और अनेक अन्य बातों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी को विरोध-मीटिंग बुलानी है तो उसके लिये यह उचित होगा कि वह ऐसे हॉल को चुने जो कि जितने सदस्यों की आशा हो उनके हिसाब से छोटा हो। इसका प्रभाव यह होता है कि गर्मी, कन्धों की रगड़ आदि से उत्तेजना और उद्वेग जागृत होते हैं। इसी प्रकार अन्य वस्तुयें भी महत्वपूर्ण होती हैं जैसे (क) तापक्रम, (ख) वायु की आर्द्रता, (ग) हवा का प्रबन्ध, (घ) रोशनी, (च) सीटों की बनावट और सजावट का ढंग।

गिलिन और गिलिन ने कहा है : 'श्रोता समूह एक प्रकार की भीड़ है जिसमें व्यक्ति के बीच अन्तःप्रेरणा निम्नतम स्तर पर होती है।"† सदस्य एक दूसरे की उपस्थिति से सचेत होते हैं और एक दूसरे के ध्यान और प्रशंसाध्वनि से प्रेरणा भी पाते हैं, परन्तु मुख्य अन्तःक्रिया श्रोता समूह के सदस्यों और स्टेज के नायक (performer) के बीच होती है। विशेषकर, थियेटर श्रोता समूह में जो नाटक खेला जाता है उसका उद्देश्य श्रोता समूह के सदस्यों के उद्वेगों और विचारों को स्टेज

* "The audience is a form of institutionalized crowd."
—Kimball Young.

† "The audience is a crowd in which interstimulation between the individuals of the group is reduced to a minimum."
—Gillin and Gillin

पर उत्पन्न दशा की ओर केन्द्रित करना होता है। यह स्वयं उस प्रेरणा से सदस्यों का ध्यान हटा देता है जो कि वे अपने साथियों से प्राप्त करते। इसके अतिरिक्त, एक प्रकार का संस्कार (ritual) साधारणतया कुर्सी, छज्जे आदि भौतिक वस्तुओं की सहायता से, जो श्रोता समूहों के सदस्यों को एक दूसरे से अलग करती हैं, श्रोता समूह के सदस्यों के व्यवहारों पर नियंत्रण रखता है।

श्रोता समूहों का वर्गीकरण
(Classification of Audience)

सन्तोषजनक ढंग से श्रोतासमूहों का वर्गीकरण करना कठिन है। हम श्रोतासमूह के विचार को ऐसे जनसमूहों तक सीमित रखेंगे जिनमें एक कर्ता या अनेक कर्ता (performer or performers) जैसे कि वक्ता, अभिनेता, गायक मुख्य भूमिका में और काफी संख्या में व्यक्ति, जो कि कर्ता के कार्यों को देखने सुनने आये हैं, होते हैं। कोई बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स श्रोतासमूह नहीं कहा जा सकता और न किसी मुकदमें को निपटाता हुआ जूरी। फिर भी जूरी उस समय कचहरी के कमरे के श्रोतासमूह का एक अंग हो सकता है जब वह विपरीत वकीलों की बहस और बयानों को सुनता है। इसी प्रकार कोई कमेटी, कांफ्रेन्स, डिबेटिंग सोसाइटी भी श्रोतासमूहों का कुछ रूप ले सकती है यदि काफी देर के लिये कोई एक सदस्य भाषण देता है और बाकी सदस्य केवल सुनते ही हैं। कार्य और ढाँचा व संगठन यह निश्चित करता है कि कोई समूह श्रोतासमूह है या नहीं।

श्रोतासमूहों को सक्रिय और निष्क्रिय दो भागों में बांटा जा सकता है। पहले प्रकार के श्रोतासमूह और कर्ता (performer) में तीव्र अन्तःक्रिया होती है। श्रोतासमूह वक्ता की बात को बिना तर्क के स्वीकार नहीं कर लेता। दूसरे प्रकार के श्रोतासमूह की विशेषता कर्ता (performer) के प्रति आत्मसमर्पण (submissiveness) है अर्थात् बिना किसी तर्क, संदेह या हिचक के वक्ता की बात स्वीकार कर ली जाती है।

इस प्रकार का वर्गीकरण किसी भी प्रकार सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि एक ही श्रोतासमूह के अन्दर अन्तःक्रिया की मात्रा में अन्तर हो सकता है। यह सम्भव है कि वादविवाद में एक या दो लोग ही भाग लें, बाकी सब उदासीन रहें। इसलिये हम समाजशास्त्र का आश्रय ले सकते हैं और जनता के स्वार्थ या संस्थाओं को दृष्टि में रखते हुये श्रोतासमूहों का (१) आर्थिक, (२) राजनैतिक, (३) धार्मिक और (४) मनोरंजनात्मक में वर्गीकरण कर सकते हैं।

किम्बाल यंग ने पहले दो ही प्रकार के श्रोतासमूह बतलाये थे—(१) सूचना की कामना करने वाला (information seeking) तथा (२) मनोरंजन की

कामना करने वाले (recreation seeking) श्रोतासमूह । इसमें उन्होंने एक तीसरे प्रकार का—परिवर्तन योग्य—श्रोतासमूह भी जोड़ दिया है अर्थात् वह श्रोतासमूह जो कि भीड़ (crowd) में परिवर्तित किया जा सकता है । ला पियर (La Pierre) ने (१) नाटकीय (dramatic) और (२) भाषण श्रोतासमूह (lecture audience) बतलाये हैं और परिवर्तन समूह को भाषण-श्रोतासमूह का उपभाग (sub-category) बतलाया है ।

भीड़ और श्रोता समूह में भेद
(Difference between the crowd and the audience)

भीड़	श्रोतासमूह
१. यह अचानक इकट्ठा हो जाती है ।	१. यह पूर्व निश्चय के अनुसार जान-बूझकर बुलाया जाता है ।
२. इसका कोई निश्चित समय और स्थान नहीं होता ।	२. यह पूर्व निश्चित समय और स्थान पर बुलाया जाता है ।
३. इसका कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता ।	३. इसका निश्चित उद्देश्य होता है ।
४. इसके अन्दर अभिस्पंदन (Polarization) तथा अन्त:क्रिया का कोई आदर्श स्वरूप नहीं होता । इसमें ध्यान घटना से हट सकता है और पारस्परिक अन्त:क्रिया का रूप निश्चित नहीं होता ।	४. इसके अन्दर अभिस्पंदन और अन्त:क्रिया का एक आदर्श रूप होता है ।
५. इनमें सदस्यों का ध्यान उसी स्थान पर घटित घटना पर केन्द्रित होता है ।	५. इसमें बहुधा ध्यान किसी बाहरी विषय पर केन्द्रित होता है । उदाहरण के लिए, हम अपने शहर में बैठ कर वीतनाम क्रांति (Vietnam crisis) के ऊपर वाद-विवाद कर सकते हैं ।
६. इसमें सदस्यों को एक दूसरे की उपस्थिति बल प्रदान करती है और उद्वेगों को उत्तेजित करती है ।	६. इसमें सदस्यों के ऊपर एक दूसरे की उपस्थिति का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता ।
७. इसमें उद्वेगात्मक सुझावों का अधिक प्रभाव पड़ता है ।	७. इसमें बौद्धिक सुझावों का अधिक प्रभाव पड़ता है ।

८.	इसके व्यवहार निश्चित संस्कारों से नियन्त्रित नहीं होते । यह असंगठित होती है ।	८.	इसके ऊपर निश्चित संस्कारों का नियन्त्रण रहता है । यह संगठित होता है ।
९.	इसमें बुद्धि का ह्रास हो जाता है ।	९.	इसमें बुद्धि का ह्रास नहीं होता ।
१०.	इसमें दूसरे के सुझावों को बिना हिचक के स्वीकार कर लिया जाता है ।	१०.	इसमें बिना तर्क के दूसरे के सुझावों को स्वीकार नहीं किया जाता ।

८ प्रचार (Propaganda)

अर्थ—'प्रोपेगैण्डा' शब्द लैटिन शब्द propagare से निकला है जिसका अर्थ है जन्मने के लिये पौधों की कलम या शाखाओं को लगाना। जब कि कलम स्वयं बढ़कर वृक्ष का रूप ले लेती है, प्रोपेगैण्डा अपने आप जन्म नहीं लेता बल्कि किन्हीं विशेष उद्देश्यों से व्यक्तियों या समूहों के द्वारा फैलाया जाता है। इस अन्तर पर प्रकाश डालते हुए लम्ले ने कहा है : "Propaganda is not a breeding that would take place of itself. It is a forced generation." प्रोपेगैण्डा का अर्थ मानवों या पौधों को बढ़ाना नहीं है बल्कि विचारों और सिद्धान्तों को बढ़ाना और फैलाना है। वास्तव में प्रोपेगैण्डा पूर्व निश्चित उद्देश्यों के अनुसार दूसरों के व्यवहारों को प्रभावित करने की एक विधि है। किम्बाल यंग ने कहा है कि पूर्व-निश्चित उद्देश्यों के अनुरूप पहले मतों, विचारों और मूल्यों को बदलने और नियन्त्रित करने और अन्त में वाह्य क्रियाओं को बदलने के लिए प्रोपेगैण्डा प्रतीकों का एक जानबूझकर आयोजित और क्रमबद्ध प्रयोग है जो मुख्यतः संकेतों और सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक विधियों द्वारा कार्य करता है।*

प्रचार के लिए कहा गया है कि इसके अन्तर्गत वे सब क्रियायें और समाचार, लिखित, जबानी या चित्र के रूप में, सच या झूठ आ जाते हैं जिनका उद्देश्य या फल दूसरों के विचारों या कार्यों को प्रभावित करना है। प्रचार एक समाचार है जो विश्वास किये जाने के लिये फैलाया जाता है।

महायुद्ध के पश्चात् प्रचार शब्द का बुरे अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा है। लम्ले कहता है कि प्रचार एक विकास है जो कि निम्नलिखित बातों में

* "Propaganda is the more or less deliberately planned and systematic use of symbols, chiefly through suggestions and related psychological techniques, with a view first to altering and controlling opinions, ideas and values and ultimately to changing overt action along predetermined lines" —Kimball Young.

से कुछ में या सब में अप्रकट रहता है—उत्पत्ति या सूत्र: व्यक्तियों के छुपे स्वार्थ; प्रयोग में लाई गई विधियाँ; फैलाई हुई बातें और उसका शिकार होने वाले व्यक्तियों पर उसके प्रभाव। इस प्रकार, लम्ले के विचार में, सभी प्रचार बुरा है। उसके विचार में, यह असामाजिक है क्योंकि यह आलोचनात्मक शक्तियों को कुंठित करता है, भय और सन्देह फैलाता है और बौद्धिक गुलामी उत्पन्न करता है।* इसके आगे लम्ले कहता है कि हमारे लिए यह कहना अधिक सही होगा कि प्रचार सामाजिक संगठन को भुतहा बनाता है और इस प्रकार समाज को एक विशाल, अनेक कमरों वाला, भुतहा घर बना देता है।† इसी प्रकार डूब कहता है कि प्रचार जनता के मस्तिष्क को बन्द करने की एक तरकीब है।‡ परन्तु सत्य तो यह है कि स्वयं में प्रचार न तो अच्छा होता है और न बुरा। यह तो प्रयोजन है, जिससे और जिसके लिए इसका प्रयोग होता है, जो इसे अच्छा या बुरा बनाता है। कैथरीन जिराउल्ड ने ठीक ही कहा है कि प्रचार एक अच्छा शब्द है जो बुरा बन गया है।**

प्रचार के सम्बन्ध में सामान्यत: यह कहा जाता है कि जिन विशिष्ट विश्वासों और मनोवृत्तियों को प्रचारक प्रेरित करना चाहता है वे न तो मूल्यवान, न सामाजिक दृष्टि से उचित होती हैं, परन्तु उनके पीछे प्रचार कर्ता का कोई छुपा हुआ उद्देश्य होता है जो कभी-कभी गैर-सामाजिक भी होता है। इसके अतिरिक्त प्रचार के प्रति व्यक्तियों की प्रतिक्रिया अतार्किक या अबौद्धिक होती है।

प्रजातन्त्र के विस्तार और वोट देने के अधिकारों में वृद्धि होने से, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार और शिक्षित व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होने से, प्राद्योगिक परिवर्तनों और सम्पत्ति के उत्पादन, वितरण और उपभोग में सुधार होने से, सामाजिक परिवर्तन की गति का वेग बढ़ने से और साथ में सामाजिक सहयोग की बढ़ती हुई आवश्यकता ने समाज में प्रचार के कार्य को बहुत प्रभावित किया है। प्रचार उस समय ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर लेता है जब कि वह लम्बे अर्से तक अच्छे ढंग से सुसंगठित समूहों द्वारा प्रयोग होता है।

* "It dwarfs the critical faculties, engenders fear and suspicion and produces intellectual slavery."
—Lumley, *The Propaganda Menace.*

† "Or it would be more correct to say that propaganda makes the social order spooky and thus makes society a vast many-roomed, haunted house." —Ibid

‡ "Propaganda is a device of closing people's mind." —Doob

** "Propaganda is a good word gone wrong."
—Katherine Gerould.

युद्धकाल में प्रचार का महत्व

आधुनिक युद्ध की प्रकृति ने प्रचार को एक महत्वपूर्ण अस्त्र बना दिया है। युद्ध की औद्योगिक और प्राद्योगिक गूढ़ता में वृद्धि होने से सम्पूर्ण राष्ट्र और राष्ट्रों के समूह उसमें शामिल हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में अपना मनोबल (morale) अपने देश और शत्रु के देश में भी महत्वपूर्ण विषय बन जाता है। इसलिये युद्ध में संलग्न राष्ट्रों द्वारा इस बात की पूरी चेष्टा होती है कि अपने लोगों का उत्साहपूर्ण समर्थन प्राप्त हो, और यदि संभव हो, शत्रु के साहस को मन्द किया जाय।

किम्बाल यंग का कथन है कि युद्ध काल में प्रचार का उद्देश्य अपने समूह को उसमें भाग लेने के लिये उत्साहित करना और शत्रु समूह के सदस्यों को निरुत्साहित करना है। क्योंकि आजकल के युद्ध में सम्पूर्ण राष्ट्र भाग लेता है, इसलिए यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि किस हद तक शत्रु समूह के सदस्यों को युद्ध में भाग लेने से निरुत्साहित और अपने समूह के सदस्यों को उत्साहित किया जाता है।

नाज़ी प्रचार कर्त्ता हरमैनफ्रैंक और फ्रीडरिच बडेकाउ ने १९३६ में मनोवैज्ञानिक युद्ध के तीन उद्देश्य बताये थे। पहला, संसार की दृष्टि में शत्रु की शक्ति को कम करना, शत्रु जनसंख्या को उनके उद्देश्यों के प्रति निराश करना, शत्रु देश में गृह युद्ध कराना और शत्रु जनसंख्या को यह विश्वास करने के लिए प्रेरित करना कि शान्ति सरलता से प्राप्त हो सकती है। दूसरा, तटस्थ (neutral) राष्ट्रों को शान्ति के लिये अपने प्रेम का विश्वास दिलाना और अपने उद्देश्य के औचित्य को समझाना और यह प्रचार करना कि शत्रु राष्ट्र ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून और शान्ति को भंग किया है और तटस्थ राष्ट्रों को यह विश्वास दिलाना कि शत्रु उनके लिये और राष्ट्रों के समाज के लिये एक खतरे से परिपूर्ण चुनौती है और उनकी सहायता से उनका नष्ट किया जाना आवश्यक है। तीसरा, यह विजय और उद्देश्य के औचित्य के सम्बन्ध में अपने राष्ट्र का विश्वास दृढ़ करेगा और जन समूह को विजय प्राप्त करने के लिये कस कर प्रयास करने के लिये प्रेरित करेगा।

शान्तिकाल में प्रचार का महत्व

जनमत-निर्माण में प्रचार का हाथ एकदम स्पष्ट हो जाता है और मौलिक जन-समस्याओं के प्रति विशाल जनसमूहों के मत की ओर संकेत करता है। राजनीतिक दल प्रचार की प्रविधियों का लगातार प्रयोग करते हैं और इस गुण से सम्पन्न व्यक्ति दल के लिये अमूल्य सिद्ध होता है। फिर भी, प्रचार किसी भी दल के प्रमुख सहायकों के मतों को बदलने में बहुत कम सफल होता है। फिर भी करोड़ों स्वतन्त्र मतदाताओं पर पार्टी प्रचार के युद्धकौशल का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अनेक कारकों, जैसे व्यापार चक्र की स्थिति, रोजगारी या बेकारी की

समस्या, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में राष्ट्रों की स्थिति को लेकर जनमत बदलने की कोशिश होती है। इसी प्रकार, छिपे हुये प्रयोजनों वाले व्यक्ति अनेक क्षेत्रों में,—जैसे कि व्यापार या वाणिज्य, धर्म, मैडिकल देख-रेख, टैक्स, सामाजिक कल्याण, मद्य-निषध,—जनमत को अपने पक्ष में लाने के लिये प्रचार का प्रयोग करते हैं।

राजनैतिक प्रचार

सभी राजनैतिक दल जनमत को प्रभावित करने के लिये अपने दल के उद्देश्यों और कार्यों का प्रचार करते हैं। आजकल सरकारों की सम्पूर्ण प्रणालियाँ प्रचार पर आधारित हैं। नाजी सरकार में एक मिनिस्ट्री आफ प्रोपेगैण्डा थी जिसका सभापति डा० जोसेफ गेवल था जो खुले तौर पर जनसमूह की बुद्धिमत्ता का उपहास करता था और जनमत प्राप्त करने में अद्वितीय था। उसका कहना था कि एक ही झूठ को सौ बार दोहराने से वह सच माना जाने लगता है। उसके प्रोपेगैण्डा के फलस्वरूप जर्मन लोगों की मानसिक एकता विकसित हुई और नाजी नीति के समर्थन में स्वदेश में और बाहर एक सामान्य संगठन बना।

सामाजिक विकारों को दूर करने और अपनी योजनाओं के महत्व को दिखाने के लिये प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारें प्रचार करती हैं। विदेश सम्बन्धी मामलों में भी प्रचार महत्वपूर्ण है। युद्धप्रिय राष्ट्रों और युद्ध-सामग्री बनाने वालों के द्वारा भी प्रचार ऊँचे पैमाने पर किया जाता है, परन्तु आज-कल अधिकतर प्रचार शान्ति के लिये किया जा रहा है।

व्यापार में प्रचार

व्यापार के विस्तृत क्षेत्र में सबसे अधिक प्रचार देखा जाता है। हर प्रकार के छपे, तस्वीर के रूप में, या जबानी विज्ञापन से हम खूब परिचित हैं। ऐसे अनेक कॉमर्शियल प्रोपेगैण्डा संगठन हैं जो विद्वेषपूर्ण अफवाह का आविष्कार और प्रचार करने में दक्ष हैं और दूसरे निर्माणकर्त्ताओं, उत्पादकों और उनकी वस्तुओं के विरुद्ध हर प्रकार की बात फैलाते हैं। इसी प्रकार, सड़कों पर, फिल्मों में, समाचार-पत्रों में, मैगजीन आदि में विज्ञापन देकर व्यापारी अपनी वस्तुओं का अच्छा प्रचार करते हैं। रेडियो सीलोन ने तो इसका एक अलग विभाग ही खोल दिया है जिसके द्वारा विभिन्न व्यापारियों से पैसा लेकर वे उनकी वस्तुओं का प्रचार करते हैं।

धर्म और शिक्षा में प्रचार

धर्म-विस्तार के लिये भी प्रचार का उपयोग किया जाता है। अपने देश के नगरों और गाँवों के मार्गों पर हम अनेक ईसाई मिश्नरियों को ईसाई धर्म का प्रचार करते हुये देखते हैं। 'टेन कमाण्डमेंट' जैसी फिल्म बनाकर और अन्य देशों में उनका प्रदर्शन करके भी धर्म का प्रचार होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रचार काफी दिखाई पड़ता है। अपनी सरकार ने डाक्यूमेंटरी फिल्में बनाकर शिक्षा की ओर अनपढ़ों की प्रवृत्ति बढ़ायी हैं। केरल की कम्यूनिस्ट सरकार ने पहले स्कूल-कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में कम्यूनिस्ट पार्टी के उद्देश्यों और कार्यों की प्रशंसा पर अध्याय रखे थे जिसका विशाल विरोध हुआ था।

प्रचार और प्रजातन्त्र

यह स्पष्ट है कि प्रचार प्रजातन्त्र राज्यों के लिये खतरनाक भी है। यहाँ तक कि जिस देश में बोलने और छापने की स्वतन्त्रता है, वहाँ भी प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता के समर्थक नुकसान में हैं। ऊँचे पैमाने पर प्रचार या प्रोपेगैण्डा करने के लिये बहुत खर्च की आवश्यकता होती है और धन उत्पन्न करने के ही स्वार्थ रखने वालों के पास प्रजातन्त्र और उन्नति के मित्रों की अपेक्षा अधिक साधन होते हैं। वे विज्ञापनों के लिए अखबारों में अधिक स्थान और रेडियो में अधिक समय प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, विज्ञापन देने और प्रचार करने में विशेषरूप से प्रवीण व्यक्तियों की सेवाओं को भी यह धनी व्यक्ति सरलता से प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरे प्रकार से भी प्रचार प्रजातन्त्र के लिये खतरनाक है। प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि औसत नागरिकों को भी सत्यताओं का ज्ञान हो जिससे वह बुद्धिमत्तापूर्वक वोट दे सकें। परन्तु वर्तमान प्रचार या तो सर्वसाधारण के पक्षपातों को उत्तेजित करता या नई शक्ति प्रदान करता है या उन्हें बिल्कुल भ्रम में डाल देता है। नाना प्रकार के विरोधात्मक प्रचार के बीच उसका मार्ग प्रदर्शन करने के लिए उसके पास कोई उपयुक्त ज्ञान तो होता नहीं और न वह प्रचार की प्रविधियों से भली-भाँति परिचित होता है जिससे वह उसे पहचान ले और उससे प्रभावित न हो।

प्रचार और शिक्षा

व्यापक अर्थ में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को पूर्णता (perfection) प्रदान करना और उसके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक गुणों का विकास करना है। शिक्षा के अन्तर्गत एक बौद्धिक ढंग से यथार्थता को प्रस्तुत किया जाता है और ज्ञान के संग्रह को प्राप्त किया जाता है जिससे व्यक्ति अपने पर नियन्त्रण रख सके।

लैसवेल ने कहा है कि "शिक्षा कौशल और स्वीकृत मनोवृत्तियों को हस्तान्तरित करने की एक प्रक्रिया है। प्रोपेगैण्डा ऐसी मनोवृत्तियों का हस्तान्तरण है जिनको उसी समुदाय में विवाद सम्बन्धी समझा जाता है।* वास्तव में शिक्षा स्वीकृत

* "Education is a process of transmitting skills and accepted attitudes. Propaganda is the transmission of attitudes that are recognized as controversial within a given community." —Laswell

विचारों के प्रसार से कहीं अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। हमारी महान शिक्षा प्रणालियाँ इसलिए हैं कि कुछ विचारों को स्वीकार नहीं किया गया है।

प्रचार और पक्षपात व अफवाह

प्रचार का पक्षपात और अफवाह से घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रचारकर्त्ता हमारी अबौद्धिक प्रवृत्तियों को अपील करता है। वह हमारे प्रेम, घृणा, भय और आशाओं को लक्ष्य बनाता है। उसका एक महत्वपूर्ण उद्देश्य पक्षपात (prejudice) और शत्रुता को भड़काना है। नाज़ी जर्मनी और रूस उन राष्ट्रों के उदाहरण हैं जिन्होंने प्रजातीय या अन्य प्रकार के पक्षपात बढ़ाने का कार्य किया है। बहुत सी झूठी अफवाहें (rumours) जो फैली होती हैं वे प्रचार-कर्त्ताओं द्वारा फैलाई जाती हैं जो भ्रांति फैलाने और आचार-भ्रष्ट करने के लिए दृढ़ होते हैं। वे सामान्यत: निम्न कोटि के निर्धन व्यक्तियों को अपील करते हैं जिनके पास न तो समय और न बुद्धि ही होती है कि वे सत्यता जान सकें। अफवाह प्रचार ऐसे व्यक्तियों के द्वारा बिना हिचक या तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है जिनके कठोर या सनातनी विचारों के वह अनुकूल होता है।

प्रचार और सेन्सरशिप

प्रचार सेन्सरशिप का उल्टा शब्द है। यह जनमत और व्यवहार के नियन्त्रण की एक यथार्थ (positive) विधि है। सेन्सरशिप सामाजिक नियन्त्रण का एक ऐसा स्वरूप है जो मतों, विश्वासों या विचारों के प्रकटीकरण के लिए बनाया गया है। यह एक प्रकार की बाधा है जो हमारे अन्दर असंतोष और व्याकुलता उत्पन्न करती है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि जहाँ प्रचार झूठी बातों को फैलाता है, सेन्सरशिप सच बातों को भी दबाता है।

पुराण और किंवदन्ति बनाने वाले के रूप में प्रचार

पुराण और किंवदन्ति बनाने की विशाल प्रक्रिया का एक अंग प्रचार भी है। प्रचार में किंवदन्तियों का जानबूझ कर निर्माण किया जाता है। प्रचारकर्त्ता नई कहानियों, घटनाओं की विवेचना और वर्णन प्रस्तुत करता है जिससे किसी वस्तु के प्रति हम में भय या क्रोध उत्पन्न हो और हम नई किंवदन्तियों को स्वीकार करें और आनन्द लें। हमारे अन्य व्यवहार की भाँति हमारे भय, क्रोध, चिड़चिड़ेपन, बहिष्कार, स्वीकृतियाँ, प्रेम और सहानुभूति किसी समूह के प्रति हमारे लगाव और दूसरे से अलगाव के द्योतक होते हैं। समूह के अस्तित्व और सामाजिक नियन्त्रण के लिए पौराणिक कथाओं और किंवदन्तियों का फैलना आवश्यक है और ऐसे समय में प्रचार बहुत सहायक होता है।

प्रचार-मनोविज्ञान

किम्बाल यंग ने कहा है कि संकेत ही प्रचार की सफलता की कुन्जी है

(Suggestion is the key to the operation of propaganda)। प्रचारकर्त्ता अपनी बात को स्वीकार कराने के लिये अनेक प्रकार की प्रविधियों का उपयोग करता है। प्रचार के विश्लेषण में हमें चार महत्वपूर्ण कारक मिलते हैं :—

(अ) प्रचारकर्त्ता का उद्देश्य।

(ब) प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तु--लोगों के मस्तिष्कों में बने हुये विचार और चित्र।

(स) किसी विशेष प्रकार का संकेत और दूसरी मनोवैज्ञानिक प्रविधियाँ जिनका वह प्रयोग करता है।

(द) विचार, मनोवृत्तियाँ, मूल्यों और क्रियाओं को बदलने में प्रचार का अभाव।

किम्बाल यंग के विचार में प्रचार के सम्बन्ध में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि पुराने प्रयोजनों (motivations) को अपील करना चाहिये जैसे कि आर्थिक सुरक्षा की इच्छा, वैयक्तिक और सामूहिक सुरक्षा की इच्छा, प्रतिष्ठा और विशेष योग्यता प्राप्त करने की इच्छा, प्रेम की इच्छापूर्ति, और परिवार के सदस्यों और घनिष्ठ लोगों के कल्याण की इच्छा। अक्सर नये साहसिक कार्य (adventure) और अनुभव की इच्छा भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण होती हैं। फिर भी, यह निश्चित है कि किसी भी प्रचार-उद्देश्य के अन्दर यह सभी प्रयोजन एक ही समय में सम्मिलित नहीं होते। सबसे अधिक प्रभावपूर्ण प्रचार वह होता है जो ऐसे मूलभूत एक या अधिक प्रयोजनों को अपील करता हो।

सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने इस बात की ओर संकेत किया है कि क्योंकि मनुष्य की सभी मौलिक इच्छायें उद्वेगों द्वारा अनुबन्धित (emotionally conditioned) होती हैं, इसलिए कुशल प्रचारकर्त्ता प्रेम, शत्रुता, भय, आशा, और अन्य भावनाओं और उद्वेगों का काफी प्रयोग करता है।

यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मौलिक इच्छायें और प्रयोजन उस समय अधिक प्रबल हो जाते हैं जब व्यक्ति निराशा के सागर में गोते लगा रहा होता है। प्रचारकर्त्ता उस समय अधिक सफल होता है जबकि भोजन, आश्रय, जन सुरक्षा, प्रतिष्ठा आदि की इच्छायें असन्तुष्ट रहती हैं या यदि वे असन्तुष्ट नहीं हैं तो यह विश्वास उत्पन्न करना कि आगे चलकर यह इच्छायें असन्तुष्ट रखी जायेंगी। व्यक्तियों की संकेत-ग्रहण-क्षमता (suggestibility) और विशेष प्रकार के कारणों (विशेष प्रकार के शब्दों, मुहावरों का प्रयोग, दोहराया जाना, इत्यादि) से व्यक्ति प्रचार से प्रभावित रहते हैं।

प्रचार स्वयं एक प्रकार का संकेत है जो दूसरों की मनोवृत्तियों और वाह्य व्यवहार को अपनी इच्छानुसार बदलने के लिए प्रचार-कर्त्ता प्रयोग करता है।

इसीलिये प्रचार की सफलता संकेत के सिद्धान्तों के पालन करने पर निर्भर करती है। संक्षेप में हम यहाँ कह सकते हैं कि संकेत की सफलता उस व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है जिसे संकेत दिया जा रहा है। यदि संकेत उस व्यक्तित्व के अनुकूल होता है तो वह तत्काल क्रियान्वित होता है। संकेत उस समय विशेषरूप से सफल होता है जब कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु की कामना करता है और संकेत उस वस्तु की प्राप्ति में सहायक होने की आशा बँधाता है।

संकेत की सफलता अथवा प्रभाव के लिये तीन बातें मुख्य हैं :—(१) उसका बारम्बार दोहराया जाना; (२) संकेत देते समय आवाज में आत्म-विश्वास की झलक होना और (३) संकेत देने वाले का प्रतिष्ठित होना। वे संकेत जो कि सामूहिक संकेत होते हैं, अनेक व्यक्तियों के द्वारा दिये गये होते हैं, उन संकेतों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं जो कि केवल एक व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। संकेत पर अत्यधिक बल देने का विपरीत फल भी हो सकता है।

संकेत ग्रहण करने की क्षमता बढ़ाने वाली वाह्य दशाओं में ऐसी वस्तुयें आती हैं जैसे कि भड़कीले रंग, मधुर स्वर, ताल सुरबद्ध और अभिन्न प्रेरणा (rhythmic and monotonous stimuli) जैसे कि किसी बात को बारम्बार दोहराना, और आदेश देने या वक्तव्य देने के गुण।

प्रतिष्ठा-संकेत ने प्रचार-विश्लेषण कर्ताओं का अधिकतर ध्यान आकर्षित किया है और इस बात के सम्बन्ध में उदाहरण के तौर पर पेश किया जाता है कि व्यक्ति बिना उचित कारण के किसी वस्तु के बारे में अपने मत या विश्वास को बदल देगा। क्रच और क्रचफील्ड ने इस बात पर बल दिया है कि विश्वास और मनोवृत्तियाँ अधिकारियों (authorities) द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के अनुरूप बदलती हैं परन्तु सभी अधिकारियों को एक सी स्वीकृति नहीं दी जाती। उदाहरण के लिये, हम यह आशा कर सकते हैं कि आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में किसी अर्थशास्त्री द्वारा दिये गये संकेत अधिक प्रभावशाली होंगे बनिस्बत किसी कवि द्वारा दिये गये आर्थिक संकेत के परन्तु यह बात भी तभी सही बैठेगी जब कि व्यक्ति अर्थशास्त्र और कविता का अन्तर स्पष्टरूप से समझे और जब उसे उन अधिकारियों (authorities) के अन्तर का भी ज्ञान हो।

इसी सम्बन्ध में हम बहुमत प्रतिष्ठा संकेत (majority prestige suggestion), वह संकेत जो कि बहुमत द्वारा दिये जाने के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, और विज्ञ प्रतिष्ठा संकेत (expert prestige suggestion) के सापेक्ष प्रभाव पर भी विचार करेंगे। कॉफिन ने कहा है : 'समूह मत का प्रभाव विज्ञ मत की तुलना में निर्णय किये जाने वाली समस्या पर निर्भर करता है। जितनी अधिक निकट रूप से समस्या सामाजिक व्यवहार-आदर्शों से सम्बन्धित होगी उतना अधिक प्रभावशाली समूह मत होगा, वैयक्तिक व्यवहार-आदर्शों से सम्बन्धित समस्यायें सामूहिक निर्णयों

से कम प्रभावित होती हैं। कुछ परिभाषिक (technical) समस्याओं के सम्बन्ध में विज्ञ मत अधिक प्रभावशाली हो सकता है। कुछ भी हो, विभिन्न विज्ञ स्रोतों का प्रतिष्ठा-मूल्य समस्या-विशेष पर निर्भर करता है।"

क्रच और क्रच फील्ड ने कहा है कि यद्यपि प्रतिष्ठा-संकेत ग्रहण करने के लिये देखी जाने वाली वस्तु की प्रकृति को बदल देता है (वह वस्तु उसी रूप में दिखाई पड़ने लगती है जैसा कि संकेत होता है), सभी प्रतिष्ठा संकेत इस प्रकार के नहीं होते। प्रतिष्ठा संकेत की कुछ धटनायें भिन्न अनुकरण का पालन करती हैं। कोई प्रतिष्ठा संकेत इसलिये भी स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति को संकेत देने वाले व्यक्ति से सहमत होने की आवश्यकता (गरज) है। इन घटनाओं में व्यक्ति पहले संकेत ग्रहण करता है, फिर उस वस्तु का रूप उसकी निगाह में बदलता है।

ऐनिस (Annis) ने कालेज और हाईस्कूल के छात्रों के विश्वास और मनोवृत्तियों को बदलने के सम्बन्ध में, मिलिट्रीवादी और शान्तिवादी कार्टून और सम्पादकीय लेखों के तुलनात्मक प्रभाव का, अध्ययन किया। उसके अध्ययनों से पता लगता है कि कालेज के छात्र सम्पादकीय लेखों से और हाईस्कूल के छात्र कार्टून से अधिक प्रभावित थे। इसी प्रकार केन्ट्रिल (Cantril) और आलपोर्ट (Allport) ने रेडियो सुनने, भाषण सुनने, और पढ़ने के तुलनात्मक प्रभाव का अध्ययन किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि (अ) जितना अधिक कठिन भाषण का विषय (matter) होगा उतना ही कम प्रभाव सुनने वालों पर पड़ेगा और (ब) रेडियो सुनना संकेत के अनुकूल प्रतिक्रिया अधिक सरलता से उत्पन्न कर सकता है जब कि वही बात पढ़ने से आलोचनात्मक (critical responses) प्रतिक्रिया उत्पन्न हो सकती है। इसी प्रकार, नोअर (Knower) ने कहा है कि वैयक्तिक और आमने-सामने दिये गये प्रचार-संकेत अधिक महत्वपूर्ण होते हैं बनस्बित उस स्थिति के जब वही तर्क वह व्यक्ति एक बड़े श्रोतासमूह के एक सदस्य मात्र के रूप में सुनता है। केन्ट्रिल और आलपोर्ट ने यह भी कहा है कि रेडियो ब्राडकास्ट में छोटे वाक्य उस समय अधिक प्रभावशील होते हैं जब विषय (material) यथार्थवादी (factual) और अरोचक (uninteresting) होता है, परन्तु वे उस समय प्रभाव खो देते हैं जब विषय अधिक रोचक होता है। उनके विचार में ब्राडकास्टिंग रफ्तार प्रति मिनट ११५ से १६० शब्दों के बीच हो, और दोहराना आवश्यक है।

क्रच और क्रचफील्ड ने प्रचार के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए निम्नलिखित ढंग से संकेत (suggestion) और प्रचार का सम्बन्ध बताया है :—

(१) संकेत जो किसी वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति का साधन मालूम पड़ता है अधिक जल्दी स्वीकार किया जायेगा बनिस्बत उस संकेत के जो आवश्यकता की

पूर्ति नहीं करता (A suggestion that seems to meet an existing need will be more readily accepted than one that does not meet a need)—सफल प्रचारक अपने प्रचार को किसी वर्तमान आवश्यकता से जोड़ने की कोशिश करता है, चाहे वह सम्बन्ध कितना ही युक्ति-विरुद्ध (illogical) क्यों न हो। जहाँ कोई ऐसी आवश्यकता नहीं हो जो सफलतापूर्वक संकेत के साथ जोड़ी जा सकती है प्रचारक पहले आवश्यकता उत्पन्न करने की कोशिश करेगा कि अखबार, रेडियो, जनता में कोई ऐसी आवश्यकता नहीं पायी जाती जिसका प्रयोग श्रम-विरोध में किया जा सके, प्रचारक सबसे पहले इस बात की कोशिश करेगा कि अखबार, रेडियो, और राजनीतिक वाद-विवाद प्रत्येक श्रम-घटना—विशेषकर हड़ताल और मारपीट की घटनाओं—पर बल दें चाहे वे घटनायें कितनी ही साधारण और कम क्यों न होती हों। इसमें सफल होने पर वह जनता में मिल बन्द होने का भय और श्रम-शान्ति की आवश्यकता उत्पन्न करेगा। इसके बाद ही प्रचारक श्रम-विधान विरोधी अपने विचार या संकेत दे सकेगा। इसको delayed propaganda भी कहते हैं।

(२) किसी अस्पष्ट स्थिति से सम्बन्धित संकेत अधिक सरलता से स्वीकार होगा बनिस्बत किसी स्पष्ट स्थिति से सम्बन्धित संकेत के (A suggestion concerning an ambiguous situation will be more readily accepted than one concerning clearly structured situation)—अच्छा प्रचारक ठीक मौका देख कर ही संकेत देगा। वह प्रत्येक नाजुक सामाजिक स्थिति का पूरा लाभ उठाने को तैयार होगा जब सामाजिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुए भ्रम और असमंजस के कारण व्यक्ति को इन स्थितियों के स्पष्ट और नये अर्थ की आवश्यकता हो। चतुर प्रचारक केवल शान्तिकाल में ही व्यक्तियों को हर प्रकार की सूचना प्राप्त करने दे सकता है, संकट काल में नहीं, अन्यथा भय रहता है कि कहीं किसी दूसरे प्रचारक के संकेत भी उतनी ही सरलता से न स्वीकार कर लिये जायें। पहले सिद्धान्त की भाँति, एक अच्छा प्रचारक अपने प्रचार का प्रभाव बढ़ाने के लिये पहले भ्रम और अस्पष्टता उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति प्रचारक के संकेतों को उस स्थिति में स्वीकार करने को अधिक तैयार रहते हैं जब वास्तविक बातों की उन्हें कोई सूचना न हो। क्रच और क्रचफील्ड ने कहा है: "He fishes in muddy water."

(३) वह संकेत अधिक सरलता से स्वीकार किया जायेगा जो दूसरों के विश्वासों, विचारधाराओं के अनुकूल है बनिस्बत उन संकेतों के जो ऐसे नहीं हैं (A suggestion that fits in with other systems of beliefs and frames of reference will be more readily accepted than one that does not)—एक अच्छा प्रचारक सबसे पहले अपने लक्ष्य (target), समूह के सामान्य विश्वासों,

मनोवृत्तियों (attitudes), भावना-शास्त्रों (ideologies), और जीवन-दर्शन (life philosophies) को जानने की कोशिश करेगा। वह अपने संकेतों का ढंग ऐसा बनायेगा जो इन विश्वासों आदि के अनुकूल हो। जहाँ ऐसा नहीं सम्भव होगा वहाँ विश्वास प्रणाली को बदलने की पहले कोशिश करेगा, और फिर अनुकूल संकेत देगा। इसको long range propaganda कहते हैं। उदाहरण के लिये, वह पहले स्कूलों में सामान्य वैज्ञानिक ट्रेनिंग शुरू करने के लिये प्रचार करे और फिर अपने विशिष्ट संकेतों को विश्वास-प्रणाली में फिट करने की कोशिश करे जो मौलिक रूप से वैज्ञानिक हो। वह भविष्य की ओर देखने वाला व्यक्ति होता है।

(४) वह संकेत अधिक सरलता से स्वीकार किया जायेगा जो व्यक्ति की दृष्टि में परिचित वस्तु की नयी विशेषतायें जोड़ सके, बनिस्बत उस संकेत के जो ऐसा नहीं कर सकता है (A suggestion that can readily induce new attributes in the perception of a familiar object will be more readily accepted than one than does not have that advantage)। एक अच्छा प्रचारक विश्वास की वस्तु के अनुसार अपने संकेत बनाने की कोशिश करेगा न कि स्वयं विश्वास पर चोट करेगा। वह उस वस्तु की विस्तारपूर्वक व्याख्या करेगा और उसकी उन विशेषताओं को इंगित (point out) करेगा जो वह चाहता है कि दूसरे व्यक्तियों को दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार, सेना में अनिवार्य रूप से भर्ती होने के सम्बन्ध के बिल (universal conscription bill) के लिये जनता के समर्थन की अपील करने के लिये प्रत्यक्ष संकेत देने के स्थान में प्रचारक सेना की नौकरी में प्राप्त शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं की चर्चा करेगा और बल देगा या सैनिक ट्रेनिंग से स्वास्थ्य-सम्बन्धी लाभों पर बल देगा या सैनिक अनुशासन के नैतिक मूल्य पर बल देगा। जहाँ तक सम्भव है, वह नागरिकों को अपने निष्कर्ष निकालने की भी आज्ञा देगा। इसको कभी-कभी अप्रत्यक्ष संकेत भी कहते हैं।

यदि व्यक्ति की दृष्टि में उस वस्तु की विशेषताओं को बढ़ाने में वह सफल न हो या कठिनाई का सामना करे, तो प्रचारक किसी नये संदर्भ (context) में उसको प्रस्तुत करके उस वस्तु का अर्थ बदल सकता है। उदाहरण के लिये वह मिलिट्री तैयारी और युद्ध के संदर्भ में भी संकेत देते हुए तर्क रख सकता है कि एटम बम के रहस्य को प्रकट न करके वह दूसरे राष्ट्रों को उसके प्रयोग से रोक सकेगा जिससे वे युद्ध छेड़ने में डरें और शान्ति स्थापित रहे।

(५) वह संकेत अधिक सरलता से स्वीकार किया जायेगा जो इस ढंग से प्रस्तुत किया जाये कि दूसरे व्यक्तियों को तादात्म्य (identify) करने की आवश्यकता अनुभव हो, बनिस्बत उस संकेत के जो ऐसा सामाजिक समर्थन प्राप्त नहीं कर पाता है (A suggestion that can be phrased so as to be congruent

with the need of the people to identify with or be in harmony with other people will be more readily accepted than one that does not draw upon such social support) । एक अच्छा प्रचारक अपने संकेतों को प्रतिष्ठित व्यक्तियों के द्वारा प्रकट करने की कोशिश करेगा या यह विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न करेगा कि अधिकतर व्यक्ति उससे सहमत हैं या सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ऐसा ही करते हैं ।

(६) वह संकेत अधिक सरलता से स्वीकार किया जायेगा जो उद्वेग उत्पन्न करने के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण प्रयोग करता है (A suggestion that makes effective use of the principles of stimulus presentation will be more readily accepted than one that neglects these conditions). एक अच्छा प्रचारक अपने शब्दों को भावनापूर्ण वाणी में प्रकट करेगा । वह ऐसे वक्ताओं और लेखकों को ढूंढ़ेगा जिनकी आवाज, शक्ल, वेशभूषा, शब्दों का प्रयोग, स्वर का उतार-चढ़ाव (intonation), उच्चारण, आदि लक्ष्य-(target) समूह को पसन्द हो । वह अपने संक्षिप्त, सरल, तीखे, और ध्यान आकर्षित करने वाले अन्तिम संकेत देगा । वह अपने संकेत को बारम्बार दोहरायेगा ।

(७) विरोधी प्रचार के द्वारा प्रचार का सामना किया जा सकता है । (Propaganda can be fought most effectively with counter-propaganda) । एक अच्छा प्रचारक अपने विरोधी प्रचारक की विधियों का भण्डाफोड़ करने में समय नष्ट करने के बजाय प्रभावपूर्ण विरोधी संकेत देगा । उसके विरोधी संकेत का प्रभाव ऊपर लिखे गये सिद्धान्तों के पालन पर निर्भर करेगा परन्तु विशेषकर प्रथम सिद्धान्त पर जिसके अनुसार व्यक्तियों की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में प्रकट किया गया संकेत अधिक सफल होता है । क्रचफील्ड ने कहा है कि सब से अच्छा विरोधी प्रचार वह सामाजिक और धार्मिक प्रणाली है जो ज्यादा से ज्यादा बार ज्यादा से ज्यादा लोगों की ज्यादा से ज्यादा आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है ।

प्रचारकर्त्ता मुख्यतः उद्वेगों की सहायता से कार्य करता है । इनमें उन्हीं उद्वेगों को जागृत किया जाता है जो हमें भीड़ में मिलते हैं । प्रचारकर्त्ता के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये घृणा, भय, पक्षपात और असहनशीलता उत्तेजित की जाती है । प्रचारकर्त्ता समूह के पवित्र प्रतीकों को अपील करता है और चतुरता से उनका प्रयोग करके अपने स्वार्थ में जनमत को मोड़ता है ।

प्रचार की विधियों में उद्वेगों का होना निश्चित है । इस सत्य पर प्रकाश डालते हुये मिलर ने प्रचारकर्त्ता के लिये कहा है कि उद्वेग के बिना वे निःसहाय हैं और उद्वेग के होने से अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हुये वे हमें गर्वोन्मत्त कर सकते हैं

या घृणा से जला सकते हैं ।* दूसरे शब्दों में, प्रचारकर्त्ता हमारे हृदयों को अपील करता है, न कि हमारे मस्तिष्कों को । जो अपील मस्तिष्कों को की जाती है वह अत्यन्त निम्नकोटि की होती है और उसका उद्देश्य जनसंख्या के सबसे मूर्ख और अशिक्षित तत्वों को भी आकर्षित करना होता है ।

रीजल (Riegel) ने प्रचार की एक और विधि बताई है जिसे उसने The Chamber of Horrors कहा है । इस विधि के अनुसार भय से उद्वेग और सुरक्षा की इच्छा को भड़काया जाता है । इस विधि के द्वारा, उदाहरण के लिये, सरकारी नीति विरोधी इस बात का प्रचार करते हैं कि यदि उस नीति का पालन हुआ तो जनता पर विपत्ति टूट पड़ेगी । अथवा चुनावों में यह कहा जा सकता है कि यदि कम्युनिस्ट पार्टी जीती जो उसका अत्यन्त भयानक फल होगा ।

अमेरिका के The Institute for Propaganda Analysis ने उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित ११ मानसिक प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है—(१) प्रथा (custom), (२) सरलीकरण (simplification), (३) निराशा (frustration), (४) स्थानान्तर (displacement), (५) निन्दा (anxiety), (६) पुष्ट करना (reinforcement), (७) सम्बन्ध जोड़ना (association), (८) सार्वभौमिकता (universality), (९) प्रतिबिम्ब (projection), (१०) तादात्म्य (identification), (११) युक्तिपूर्वक व्याख्या (rationalization)। इन सब मानसिक प्रक्रियाओं की हम नीचे संक्षेप में व्याख्या करेंगे ।

मन स्थिर कराने के लिये किये गये प्रयास उस समय अधिक प्रभावपूर्ण होते हैं जब कि वे चेतन अथवा अचेतन रूप से लोगों की विश्वास करने की इच्छा के अनुकूल होते हैं । मनुष्यों के पास विचारने के अपने प्रतिमान होते हैं । उनका यह विश्वास होता है कि कुछ वस्तुएँ अच्छी और वाँछनीय हैं जब कि दूसरी बुरी और हानिकारक होती हैं । वे अपने समाज के विचारों और आदर्शों को स्वीकार करते हैं । इसके फलस्वरूप, जो कोई भी व्यक्ति जानबूझ कर इन मनोवृत्तियों और क्रियाओं को प्रभावित करना और बदलना चाहता है उसे इन विचारों को जानना और चेतन रूप से उनका उपयोग करना चाहिये ।

चतुर प्रचारकर्त्ता अपने समाज की लोक रीतियों, प्रथाओं और आदतों के अनुरूप प्रचार करता है । उदाहरण के लिये, हिटलर ने लोकप्रिय विषयों—जैसे कि

* "Observe that in all these devices, our emotion is the stuff with which propagandists work. Without it they are helpless; with it, harnessing it to their purposes, they can make us glow with pride or burn with hatred, they can make us zealots in behalf of the programme they espouse." —Miller

देशभक्ति, अनुशासन, स्वामिभक्ति और नेतृत्व–पर अपना प्रचार आधारित किया था। अमेरिकन स्त्रियों में बहुत अधिक दिनों तक युवा और सुन्दर बने रहने की प्रबल इच्छा होती है। इसलिये, वहाँ के समाचारपत्र सौन्दर्य प्रसाधन, पेटेन्ट दवाइयों, व्यायाम-सम्बन्धी वस्तुओं आदि के विज्ञापन से भरे रहते हैं।

सरल, छोटे शब्दों, और सादे ढंग से लगाये गये आरोपों और नारों का अधिक प्रभाव पड़ता है बनिस्बत बड़े आडम्बरपूर्ण शब्दों और गूढ़ आरोपों और नारों के। अधिकतर यह देखा जाता है कि व्यापक रूप से दिये गये वक्तव्य हास्यास्पद होते हैं और उद्देश्यपूर्ति में सहायता करने की अपेक्षा हानि अधिक करते हैं। अपने संदेश को वास्तविक अनुभव का रूप देकर प्रस्तुत करो।

प्रचार सामाजिक अशान्ति, सामूहिक असुरक्षा और निराशा के काल में अधिक सफल होता है। प्रथम महायुद्ध के बाद रूस, जर्मनी और इटली के दलित जनसमूह की निराशाजनक स्थिति ने टोटैलिटेरियन प्रचारकर्त्ताओं को अच्छा अवसर प्रदान किया। हिटलर ने जर्मनों की निराशा के प्रतीक "Treaty of Versailles" को लेकर खूब प्रचार किया और उसके नाश का वादा किया।

स्थानान्तर-प्रक्रिया के अनुसार एक स्थान या वस्तु से हटाकर दोष दूसरे स्थान या वस्तु पर मढ़ा जाता है। हिटलर ने जर्मनों की दरिद्रता और दुखमय जीवन के लिये यहूदियों और कम्युनिस्टों को दोषी ठहराया। जब मई जून १९४० में ब्रिटिश और फ्रेंच सेना जर्मनों को आगे बढ़ने से नहीं रोक पायी तो उसके लिये राजा ल्योपोल्ड को दोषी ठहराया गया।

प्रचारक के उद्देश्य की पूर्ति चिन्ता जागृत और शान्त करके भी की जा सकती है। हिटलर ने Fifth Column Organization स्थापित करके शत्रु देशों में चिन्ता जागृत की जब कि अगस्त १९३९ में रूस के साथ सन्धि करके उसने स्वदेश में चिन्ता कम कर दी।

किसी भी प्रोग्राम या आन्दोलन को बहुत मनोवैज्ञानिक और नैतिक पुष्टि (reinforcement) की आवश्यकता होती है। राजनैतिक दल मीटिंग, जुलूसों, प्रदर्शनों (demonstration) आदि के द्वारा अपनी माँगों के औचित्य को बल प्रदान करने की कोशिश करते हैं।

प्रचार की सफलता के लिये विचारों का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जब चीनियों ने हिमालय सीमा प्रदेश में अनधिकार प्रवेश किया तो भारतीय कम्यूनिस्टों का सम्बन्ध कम्यूनिस्ट चीन के एजेन्टों के साथ जोड़ा गया।

सार्वभौमिक (universals) विचारों के प्रयोग का उदाहरण हमें हिटलर के इस बात पर बल देने से मिलता है कि आर्य प्रजाति और संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है।

प्रचार विशेषज्ञ अपने विचारों को दूसरों पर ऐसा थोपता है कि वे उन्हें अपने ही विचार समझने लगते हैं। हिटलर ने नाज़ी प्रोग्राम अपनी इच्छा और बुद्धि से बनाया और लगातार प्रचार के द्वारा उसे जर्मनी के ऊपर थोप दिया।

किसी विशेष रूप से प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ अपने प्रोग्राम का तादात्म्य स्थापित करने से अनुयायियों की विशाल संख्या बनायी जा सकती है और आन्दोलन की ख्याति बढ़ायी जा सकती है। प्रेसीडेंट रूजवेल्ट ने अपनी विदेश-सम्बन्धी नीति को ईश्वर की इच्छा का तादात्म्य देकर अत्यधिक प्रतिष्ठित बना दिया था।

युक्तिपूर्वक व्याख्या (rationalization) स्वयं को धोखा देने की एक प्रक्रिया है। हिटलर ने १९१८ की हार की यहूदी-कम्युनिस्ट देशद्रोह और विश्वासघात के रूप में व्याख्या की।

नाइट डनलप ने निम्नलिखित ५ विधियाँ बताई हैं जिनके द्वारा प्रचारकर्त्ता अन्य व्यक्तियों की मनोवृत्तियों को अपने स्वार्थ के अनुकूल बनाता है।

(१) 'दोहराया जाना आवश्यक है।' यदि तुम्हें कोई विचार स्वीकार कराना है, उसे बारम्बार प्रस्तुत किये जाओ। नियमपूर्वक और लगातार बोलते (या छापते) रहो।*

(२) इस बात को न स्वीकार करो, न सुझावो, कि प्रश्न का तुम्हारे द्वारा बताये गये जवाब के अतिरिक्त भी दूसरा जवाब या हल हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि प्रमाण को गलत रूप से प्रस्तुत (distort) करो। अमेरिका में मद्यपान विरोधी (Anti-Saloon League) ने इस बात पर जोर दिया कि वहाँ ६० या ७० फीसदी तलाक शराब के कारण होते हैं, जब कि सत्य यह है कि वैवाहिक जीवन के असामंजस्य में मद्यपान एक साधारण कारण है। साधारणतया तलाक गहरे झगड़ों का फल होता है।

(३) अपने उद्देश्य को नायक के रूप में, और अपने विरोधी के उद्देश्य को दुष्ट (Villain) के रूप में प्रस्तुत करो। सामान्यताओं (generalities), उद्वेगपूर्ण प्रतीकों और स्टीरियोटाइपों का आश्रय लेकर अपने नायक के लिये स्नेह और शत्रु के लिये घृणा की भावना उत्पन्न कराओ। Anti-Saloon League ने अमेरिका में ईश्वर का अपने उद्देश्य से और शराबखानों का शैतान से सम्बन्ध जोड़ा था।

अपने उद्देश्य के समर्थन में ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रमाण-सम्बन्धी वक्तव्य या पत्र दिलाओ जो प्रतिष्ठित हों और जिनका नाम प्रभाव डालता है।

---

* "If you have an idea to put over, keep presenting it incessantly. Keep talking (or printing) systematically and persistently."

—Knight Dunlop, *Civilized*, p. 360.

(५) 'अत्यन्त स्थायी और अन्तिम' परिणामों के लिये, अपने प्रचार का लक्ष्य बच्चों को बनाओ, उसे अपने प्रचार-विज्ञान में सम्मिलित करो।' † सर्वसत्तात्मक राज्य इस सिद्धान्त के उपयोग का बहुत सुन्दर उदाहरण है।

डूब के प्रचार-सम्बन्धी सिद्धान्त
(Doob's Principles of Propaganda)

डूब का प्रचार-सम्बन्धी पहला सिद्धान्त 'प्रचारकर्त्ता के इरादे का सिद्धान्त (principle of the intention of the propagandist) है। डूब कहता है कि जान बूझ कर किये गये प्रचार में प्रचारकर्त्ता अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से सचेत होता है जब कि बिना उद्देश्य या अनजाने में किये गये प्रचार में वह अपने कार्यों के सामाजिक परिणामों को पहले से नहीं देख या समझ सकता है। वास्तव में यह बात डूब की प्रचार की स्वयं दी गई परिभाषा, कि प्रचार मनोवृत्तियों को नियन्त्रित करने का यथाक्रम प्रयास है, के विरुद्ध है।

दूसरा सिद्धान्त 'बोध' (perception) का है। प्रचारकर्त्ता चाहता है कि उसका संदेश अन्य व्यक्तियों द्वारा देखा जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनेक सहायक विधियों का प्रयोग किया जा सकता है! उदाहरण के लिये, अनन्नास के शर्बत का विज्ञापन देने वाला उसे किसी सुन्दर लड़की द्वारा पिये जाते हुए दिखाता है; या प्रेरक को इतनी बार दोहराया जाता है कि उसके देखे जाने की सम्भावना बढ़ जाती है, जैसे कि रेडियो सीलोन से एक वस्तु (साबुन, मंजन आदि) का बारम्बार नाम लिया जाता है; या सरलीकरण (simplification) के सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है जिसमें प्रचारकर्त्ता अपनी बात को इतने सरल ढंग से कहता है कि औसत आदमी भी उसे समझ ले जैसे कि विटामिन की प्रकृति के सम्बन्ध में दिये गये विज्ञान सम्बन्धी वक्तव्य इतने सरल ढंग से समझाये जाते हैं कि उस वस्तु की बिक्री में सहायता करते हैं।

तीसरा सिद्धान्त 'प्रचार के प्रकार' (types of propaganda) का है। प्रचारकर्त्ता निम्नलिखित में से किसी एक या सब प्रकार के प्रचारों का प्रयोग करता है—प्रकट (revealed), देर से प्रकट किया हुआ (delayed revealed), और अप्रकट प्रचार (concealed propaganda)। पहले प्रकार के प्रचार में प्रत्यक्ष संकेत का प्रयोग होता है और प्रचारकर्त्ता का उद्देश्य शुरू से ही स्पष्ट रहता है, जैसे समाचार-पत्रों में विज्ञापन में। दूसरे प्रकार के प्रचार में प्रचारकर्त्ता का उद्देश्य देर से प्रकट होता है। उदाहरण के लिये, युद्धकाल में पहले देश-भक्ति की भावना जागृत करने का प्रयास होता है और फिर बाद में युवकों को सेना में भरती होने के लिए प्रेरित किया जाता है। यद्यपि शुरू में ही यह उद्देश्य रहता है परन्तु यह तब तक प्रकट

---

† "For the most permanent eventual result, aim your propaganda at the children, mix it in your pedagogy." —Ibid.

नहीं किया जाता जब तक इसके लिये पृष्ठभूमि नहीं तैयार हो जाती । तीसरे प्रकार का अप्रकट प्रचार अप्रत्यक्ष होता है और प्रचारकर्त्ता कभी भी अपने उद्देश्य को प्रकट नहीं करता । इसका उदाहरण हमें एडिसन (Edison) के सम्मान में बिजली कम्पनियों द्वारा मनाये गए जलसों में मिलता है जिसमें लोगों के विद्युत-शक्ति प्रयोग करने का प्राथमिक उद्देश्य अप्रत्यक्ष संकेत पर छोड़ दिया गया ।

चौथा सम्बन्धित मनोवृत्तियों का सिद्धान्त (principle of related attitudes) है । संकेत की प्रक्रिया में प्रचारकर्त्ता अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये सम्बन्धित मनोवृत्तियों को उत्तेजित करता है । उदाहरण के लिए, वकीलों के किसी समूह का समर्थन प्राप्त करने के लिए कोई राजनीतिज्ञ यह कह सकता है कि उनका पेशा सभ्यता के विकास में एक महत्वपूर्ण कारक है या किसी जलपानगृह में व्यक्तियों को आकर्षित्त करने के लिए संगीत का प्रबन्ध भी किया जाता है ।

पाँचवां 'वाँछित क्रिया' (desired integration) का सिद्धान्त है । प्रचारकर्त्ता वाँछित क्रिया करता है जिससे लोग उसके लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होते हैं । वास्तव में इसे विधि न कहकर एक आशा कहना अधिक उचित होगा क्योंकि प्रचार के फलस्वरूप वाँछित फल या क्रिया हमेशा ही नहीं प्राप्त होती । इस सम्बन्ध में डूब का सुझाव है कि मनोवाँछित फ़ल या क्रिया उद्वेगदशा (emotional conditioning) द्वारा प्राप्त हो सकती है । उदाहरण के लिये यदि फूल बेचने वाले अपने फूलों की बिक्री बढ़ाना चाहते हैं तो वे एक माँ-दिवस मनाते हैं और माताओं के सामान्य उद्वेग, बच्चों की माँ के प्रति कृतज्ञता का उससे सम्बन्ध जोड़ते हैं ।

छठा 'भविष्यवाणी न कर सकने के क्षेत्र' का सिद्धान्त (sphere of unpredictability) है । जब तक मनोवाँछित फल प्राप्त नहीं हो जाता तब तक प्रचार की अस्थायी प्रकृति, अन्य प्रतियोगी प्रचारकर्त्ताओं और समूह में विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की उपस्थिति के कारण यह भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है कि वाँछित फल मिलेगा भी या नहीं । इस अनिश्चितता को कम करने के लिए और वाँछित क्रिया की सम्भावना के लिए विभिन्न विधियां बनायी जाती हैं । प्रतिष्ठा-संकेत इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है । इसी प्रकार, जिन समूहों का प्रचार के साधनों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है वे अन्य व्यक्तियों को इससे सम्बन्धित आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने में असमर्थ कर सकते हैं । उदाहरण के लिए, कम्यूनिस्ट देशों में अपने समाचार पत्रों और रेडियो को ही सेन्सर नहीं किया जाता बल्कि समाचार-सम्बन्धी विदेशी सूत्रों को भी सेन्सर किया जाता है । इसी प्रकार शुरू से बच्चों को उस विषय के सम्बन्ध में शिक्षा देकर इस असम्भावना को कम किया जा सकता है, जैसा कि अब कम्यूनिस्ट चीन में होता है ।

डूब का सातवाँ सिद्धान्त 'प्रतिकारात्मक प्रचार' (counter propaganda) है। जब विरोधात्मक मनोवृत्तियां वाँछित फल की प्राप्ति में बाधा पहुँचाती हैं तब प्रचारकर्त्ता प्रतिकारात्मक प्रचार करता है। उदाहरण के लिए, हिटलर के समय में इतना ही काफ़ी नहीं समझा जाता था कि प्रचार नाजी-समर्थक (pro-Nazi) हो, बल्कि वह कम्युनिस्ट-विरोधी, यहूदी-विरोधी, प्रजातंत्रवाद विरोधी भी था।

अन्त में, डूब ने 'उकसाने के सिद्धान्त' (principle of persuasion) का उल्लेख किया है। 'उकसाने' का यह अर्थ है कि किसी प्रतिष्ठित या विख्यात व्यक्ति को विशिष्ट प्रोग्राम या वस्तु के समर्थन में कुछ कहने के लिए प्रेरित किया जाए जिससे यह आशा की जा सके कि प्रतिष्ठा-संकेत समर्थकों या अनुयायियों की संख्या बढ़ायेगा। सौन्दर्य-प्रसाधन की किसी विशेष ब्राण्ड की वस्तु के समर्थन में कहने वाली किसी विख्यात सिने-तारिका को ऐसा करने के लिये प्रत्यक्ष भौतिक लाभ कराकर उकसाया जाता है।

प्रचार के प्रकार (Types of Propaganda)

किम्बाल यंग ने प्रचार को तीन वर्गों में रखा है—रूपान्तर करने वाला (conversionary); साधनात्मक (devisive) और एकीकरण सम्बन्धी (consolidation type)।

आजकल का अधिकतर व्यापार-सम्बन्धी विज्ञान पहले प्रकार का प्रचार होता है। व्यक्ति को यह कहकर वस्तुयें खरीदने के लिए प्रेरित किया जाता है कि वे गुणों में श्रेष्ठ हैं, सस्ती हैं, बाजार में सर्वत्र और हमेशा उपलब्ध हैं। इसी प्रकार, मिशनरी क्रियायें और तटस्थ राष्ट्रों को प्रभावित करने के लिये किया गया युद्धकाल में प्रचार इसके उदाहरण हैं। मिशनरी जो किसी व्यक्ति का धर्म-परिवर्तन कराने की इच्छा करता है वह समझाकर और तर्क द्वारा ही ऐसा करने में सफल हो सकता है और उस व्यक्ति की मनोवृत्तियों, मूल्यों और अन्त में उसके कार्यों को बदल सकता है।

दूसरे प्रकार के प्रचार में 'बाँटो और विजय प्राप्त करो' (divide and conquer) वाली प्रविधि का प्रयोग होता है। यह राजनीतिक प्रचार में बहुधा प्रयोग होता है और युद्धकाल में शत्रुओं को प्रभावित करने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिये, प्रथम महायुद्ध के दिनों में मित्र राष्ट्रों (Allied Nations) ने जर्मनों को प्रभावित करने के लिये बारम्बार इस बात का प्रचार किया कि मित्र राष्ट्रों का युद्ध जर्मन लोगों से नहीं बल्कि कैसर और उन साम्राज्यवादियों से था जो उसे घेरे रहते थे।

एकीकरण सम्बन्धी प्रचार का उद्देश्य अपने लोगों के वर्तमान मूल्यों, मनोवृत्तियों और आदतों को दृढ़ बनाना है। युद्धकाल में स्वदेशियों की नैतिक स्थिति

(morale) को शक्ति प्रदान करने के लिये इसका प्रयोग होता है। यह इस धारणा पर आधारित होता है कि व्यक्ति की मौलिक आदतें और मनोवृत्तियाँ पुरानी और गहरी व मजबूत हैं और यदि उनको उत्तेजित किया जाये तो उनकी वर्तमान स्थिति को बनाये रखने और अस्तित्व की रक्षा के रूप में किया जाने वाला प्रचार सफल हो सकता है।

प्रचार की सीमायें (Limitations of Propaganda)

देशभक्ति जागृत करने में, युद्ध के लिए उत्साह की भावना को जन्म देने में, व्यापारी वस्तुओं के ग्राहकों की संख्या बढ़ाने में प्रचार जादू की भाँति कार्य करता है। ऊपर दिये गये विवरण से ऐसा मालूम होता है कि दुरुपयोगी प्रचार के अभाव की कोई सीमा नहीं है और कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार अन्य व्यक्तियों के विचारों और भावनाओं को नियन्त्रित कर सकता है। वास्तव में यह अतिशयोक्ति है; प्रचार के प्रभावों की भी सीमायें हैं।

पहले, प्रचार की जड़ें वास्तविक दशाओं में पायी जाती हैं। देखने में विरोधाभास (paradoxical) लगाने पर भी यह सत्य है कि व्यापक रूप में प्रचार का होना अक्सर व्यक्तियों की चेतना (awareness) के स्तर में विकास होने का एक चिह्न होता है। प्रचार एक आश्रित प्रमेय है; यह न तो समस्या उत्पन्न करता है, न उसको हल करता है। प्रचार न तो औद्योगिक संघर्ष उत्पन्न करता है, न प्रजातीय मतभेद; यह मजदूरों को हड़ताल करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकता यदि उनकी परिस्थितियाँ सन्तोषजनक हैं। यह विशेष स्थितियों में ही विकसित होता है।

जिन क्षेत्रों में दुरुपयोगी (exploitative) प्रचार सफल होता है, वे सीमित हैं। वह उस समय सबसे अधिक सफल होता है जब लोगों को किसी वस्तु या स्थिति विशेष का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता या प्रत्यक्ष निरीक्षण का अवसर नहीं मिलता। कोई भी विधि लोगों को यह विश्वास नहीं दिला सकती है कि वे सम्पन्न हैं जब कि वे भूखे मर रहे हैं या कि शत्रु पराजित हो रहा है जबकि वह उन्हीं के घरों पर बम वर्षा कर रहा होता है। अपने नित्य के विषयों में मनुष्य के लिये वास्तविकता के सम्बन्ध में बुद्धिमान और सूक्ष्म धारणा रखना सरल होता है और वे सही और गलत को खूब समझते हैं। इन क्षेत्रों में प्रचार को सत्य पर आधारित होना चाहिये। किसी भी प्रकार का प्रचार सफल नहीं हो सकता यदि वह इस बात को ध्यान में नहीं रखता कि सामान्य धारणाओं या व्यक्तियों के नित्य के अनुभवों के विरुद्ध होने पर उसे बाधा मिलेगी। प्रचार सोचने और प्रश्न करने की सम्भावना को नष्ट नहीं कर सकता।

प्रचारकर्त्ता शेखी बघारते हैं कि लोगों को वे यह विश्वास करा सकते हैं कि सफ़ेद काला है और काला सफेद है। वास्तव में यह अतिशयोक्ति है और ऐसा करना सम्भव नहीं है। प्रचार का प्रभाव उस घटना में निश्चित रूप से सीमित होता है जिसमें लोगों को वास्तविकता का ज्ञान होता है और उस समय बढ़ जाता है जब लोग इस सम्बन्ध में अज्ञानी होते हैं। प्रचार ऐसे क्षेत्रों में फलता-फूलता है जहाँ अज्ञान का प्रकोप हो।

जब कोई गवैया यह कहता है कि विशेष ब्राण्ड की सिगरेट उसकी आवाज को मधुरता प्रदान करती है, तो बहुत कम लोगों की इस बात से प्रभावित होने की सम्भावना है। यह सामान्य रूप से ज्ञात है कि ऐसा करने के लिए उनको पैसा दिया जाता है और गवैयों के लिए सिगरेट पीना हानिकारक है। यदि विज्ञापन में ऐसी बात देखने या सुनने से लोग उस ब्राण्ड की सिगरेट खरीदते हैं तो वह इसलिये नहीं कि वे उस बात को सच मानते हैं बल्कि उस गवैये के प्रति सहानुभूति के कारण कि उसकी रोजी का प्रबन्ध हुआ है या इसलिये कि वे पहले से ही सिगरेट पीते थे और ब्राण्ड बदलना उनके लिये महत्वपूर्ण बात नहीं है।

मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि वर्तमान स्वार्थ, पक्षपात (prejudices) और सामाजिक झुकाव (trends) प्रचार के प्रभाव को सीमित कर देते हैं। प्रचार उस समय अधिक सफल होता है जबकि वह वर्तमान सामाजिक झुकाव के अनुकूल होता है और उसे उन परिणामों के लिये भी प्रशंसा मिलती है जो उसके बगैर भी, अन्य विशाल सामाजिक शक्तियों के कार्य के द्वारा प्रकट होते। इस प्रकार, बहुत से अमेरिकन लोगों का आज यह विश्वास है कि अमेरिका में गुलामी अपनी अन्तिम साँसें ले रही थी क्योंकि वह विकसित होते हुए नये औद्योगिक समाज के प्रतिकूल थी और विलियम ल्वायड गैरिसन की सहायता के बगैर भी समाप्त हो जाती, यद्यपि गैरिसन के प्रयत्न से समाप्ति की प्रक्रिया ने वेग अवश्य पकड़ लिया।

अन्त में, हम यह भी कह सकते हैं कि प्रचार का प्रभाव विरोधी प्रचार (counter propaganda) के द्वारा भी सीमित रहता है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि प्रचार का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि प्रचार क्षेत्र कितना साफ है। तानाशाही में प्रचार इसलिये विशेषरूप से सफ़ल होता है क्योंकि सरकार का कोई विरोध नहीं होता। वहाँ प्रचार की केवल एक एजेन्सी होती है और वह सरकार द्वारा संचालित होती है। प्रजातन्त्रवादी देशों जैसे भारत, ब्रिटेन, अमेरिका में राजनीतिक जनता को अनेक प्रकार के विरोधी सुझाव दिये जा सकते हैं और इसलिये उन्हें एक दूसरे को रोकने का मौका रहता है।

युद्ध सम्बन्धी प्रचार की चर्चा करते हुए जिलबूर्ग ने प्रचार की सीमाओं पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने कहा "कुछ ऐसी स्थितियाँ होती हैं जिनमें कोई

भी प्रचार किसी काम का नहीं होता……हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जहाँ सामाजिक परिवर्तनों का सम्बन्ध है, सामान्यत: प्रचार एक द्वैतीयक प्रमेय है, न कि वास्तविक औजार। युद्ध प्रचार उस समय बिल्कुल निरर्थक होता है जब लोगों के पास खाने के लिये काफी होता है और जब उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता और जब उन्हें सामाजिक रूप से क्रुद्ध होने की इजाजत होती है।"*

ग्रहण करने वाले पर प्रचार का प्रभाव
(Effects of propaganda on recipients)

सुनने वालों पर प्रचार का भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। जानबूझ कर जनमत स्थापित कराने की प्रक्रिया सामान्यत: उस समय सरल होती है जबकि व्यक्ति विशेष रूप से पूर्वाग्रही (prejudiced), अपेक्षाकृत अशिक्षित और व्यक्तिगत रूप से निराश हो। यह भी सामान्यीकरण कुछ अंश में सत्य मालूम होता है क्योंकि जर्मनी उस समय संसार का सबसे अधिक शिक्षित राष्ट्र था जब हिटलर ने शक्ति ग्रहण की। फिर भी, वे यहूदियों के विरुद्ध पूर्वाग्रही थे और प्रथम महायुद्ध की पराजय के कारण निराश अवश्य थे। दूसरी ओर, संयुक्त राज्य अमेरिका में जनमत निर्माण के अध्ययन से पता लगता है कि निम्नस्तर की शिक्षा, अशिक्षा, कम बुद्धि और वृहत् पक्षपात की स्थितियाँ हैं जिनमें प्रचार अधिक सफल होता है। जो व्यक्ति किसी विषय के प्रति उदासीन होते हैं उन पर उससे सम्बन्धित प्रचार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता जब कि किसी विषय में रुचि लेने वाला व्यक्ति उससे सम्बन्धित किसी भी प्रकार की खबर का स्वागत करता है।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न अध्ययनों से यह पता लगता है कि किसी विषय की एक ही तरह की तस्वीर प्रस्तुत करने का उतना अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता जितना दोनों ही तरफ की तस्वीरें प्रकट करने का। इसका अर्थ यह है कि अपने विषय के समर्थन के साथ ही यह भी आवश्यक है कि विरोधियों के तर्कों को भी साथ में प्रस्तुत करो परन्तु उनको ऐसे तर्कपूर्ण ढंग से काटो कि बेकार मालूम पड़ें।

अन्य प्रकार के प्रचार की भाँति, राजनीतिक प्रचार उस समय सफल होता है जब कि वह इच्छाओं और अस्पष्ट व दबे हुए रुझानों को जागृत करता है, या जनता के कष्ट और व्यग्रता के समय नये उद्देश्य या सुझाव प्रस्तुत करता है। रोजनथाल

* "There are situations in which no propaganda is of any avail.. We must conclude that where social changes are concerned, propaganda in general is a secondary phenomenon and not a real tool...War propaganda is somehow hopelessly inefficient when people have enough to eat and when they are not afraid and when they are permitted to be socially angry." —Gilboorg.

(Rosenthal) के अध्ययन से पता लगता है कि प्रचार के प्रभाव की सीमा निश्चित करने में परिवार और वर्ग-स्थिति भी महत्वपूर्ण हैं। प्रचार के धीरे-धीरे पड़ने वाले प्रभाव से सभी लोग परिचित हैं। इस सम्बन्ध में दोहराने के महत्व को भी सभी जानते हैं। उदाहरण के लिये अपराध के समर्थन में दिखाये जाने वाले प्रथम चल-चित्र का प्रभाव थोड़ा होगा, परन्तु ऐसी दूसरी और तीसरी फिल्में लोगों को अपराध को अपनी जीवन-वृत्ति (career) बनाने के लिये प्रेरित करती हैं।

प्रचार के साधन (Media of Propaganda)

सामान्यत: निम्नलिखित साधनों के द्वारा प्रचार किया जाता है :

(१) **मंच (The Platform)**—मीटिंग बुलाई जाती है और विशाल श्रोता-समूहों के सम्मुख भाषण देने के लिये अच्छे वक्ताओं का चुनाव होता है। ऐसे अवसरों पर वक्ताओं के तर्क संगत होते हैं।

(२) **प्रेस (The Press)**—दैनिक समाचारपत्रों में पत्र, संक्षिप्त लेख और कार्टून प्रचार के महत्वपूर्ण साधन हैं और प्रचारकर्त्ता के विचारों को समाचारपत्र पढ़ने वाले विशाल जनसमूह को तत्काल पहुँचाते हैं। पत्रक (leaflets), पैम्फलेट आदि भी प्रचार के अन्य साधन हैं जो प्रेस की सहायता से सफल होते हैं।

(३) **रेडियो (The radio)**—क्योंकि पूरी तौर पर यह सरकार के नियं-त्रण में रहता है, संसार की विभिन्न सरकारें अपने प्रचार के लिये इस साधन का सफलतापूर्वक प्रयोग करती हैं। व्यापार-सम्बन्धी प्रचार के लिये भी रेडियो का उपयोग किया जाता है।

(४) **चलचित्र (The Film)**—सावधानी से तैयार की हुई कथावस्तु और सुन्दर दृश्यों से परिपूर्ण कुछ फिल्में प्रचार के लिये ही विशेषरूप से बनाई जाती हैं और प्रभावशाली होती हैं।

(५) **ड्रामा और उपन्यास (The drama and the novel)**—शिक्षित समाजों में जहाँ बहुधा नाटकों का आयोजन और प्रदर्शन होता है और उपन्यास विशाल जनसंख्या द्वारा पढ़े जाते हैं वहाँ वह प्रचार के महत्वपूर्ण साधन हैं।

सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में प्रचार (Propaganda as a means of social control)

आजकल 'प्रचार' शब्द से सामान्यत: कोई बुरा अर्थ ही लगाया जाता है। परन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं प्रत्येक प्रचार न तो अच्छा होता है, न बुरा। प्रचार करने वाले के उद्देश्य पर निर्भर करता है कि वह जनता की भलाई या बुराई के लिए प्रचार कर रहा है। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए कुप्पूस्वामी ने लिखा है : "हमको प्रचार को एक प्रविधि के रूप में मानने में अत्यन्त स्पष्ट होना चाहिये,

एक ऐसी प्रविधि जिसका प्रयोग व्यक्ति तथा समग्र रूप में समूह के कल्याण के लिये अथवा, व्यक्ति और समग्र रूप में दलों को पथ-भ्रष्ट करने तथा उनका शोषण करने के लिए किया जा सकता है। अतः दोष प्रचार के तरीके में नहीं है बल्कि उस तरीके में है जिससे कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह सामाजिक प्रगति के लिए नहीं, बल्कि अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिये इस प्रविधि का प्रयोग करते हैं।"* वास्तव में, हमारे भारत जैसे देश में जहाँ कुरीतियों की भरमार रही है, अशिक्षा और अन्धविश्वास का राज्य रहा है, जहाँ ठगी और अपराध की घटनायें अनगिनती होती रही हैं, वहाँ प्रचार सामाजिक उन्नति के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। आज अछूतों, स्त्रियों आदि के प्रति जो हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है उसका एकमात्र कारण क़ानून नहीं है। इसमें प्रचार का भी बहुत हाथ है।

(१) **प्रचार और युद्ध (Propaganda and war)**—युद्धकाल में सामाजिक नियन्त्रण करने के लिये प्रचार का एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐसे समय में इस बात की बड़ी आवश्यकता रहती है कि देश के निवासियों का मनोबल ऊँचा रहे, वे शत्रुओं से न घबड़ायें और देश में पूर्ण एकता रहे। युद्धकाल में प्रचार का एक उद्देश्य शत्रु के देश में गृहयुद्ध कराना और उनके निवासियों के मनोबल को नीचा गिराना भी होता है। इन दिनों अनेक अराजक तत्व देश में तोड़-फोड़, लूटमार, हत्या करने का प्रयत्न करते हैं। सरकार प्रचार के द्वारा जनता को उनसे सतर्क कर देती है और उनको पकड़वाने में मदद करने के लिये जनता से अपील करती है। युद्धकाल में मुनाफाख़ोर लोग आवश्यक वस्तुओं को छुपाकर उनके दाम बढ़ाकर कालाधन पैदा करने का प्रयत्न करते हैं। सरकार उनके विरुद्ध भी प्रचार करती है और उन्हें जेल में बन्द करने का भय दिखाती है। समाचार-पत्र भी उनके विरुद्ध प्रचार करते हैं जिससे डरकर वे अक्सर वस्तुओं के मूल्य घटा देते हैं। क्रच और क्रचफ़ील्ड ने प्रचार के महत्व पर प्रकाश डालते हुये लिखा है : "युद्धकाल में प्रचार कल्याण के हथियार के रूप में एटम बम से अधिक शक्तिशाली साधन के रूप में देखा गया है और शांति में संयुक्त राष्ट्र से भी अधिक

* "...We should be very clear in looking upon propaganda as a technique, a technique which could be used for the good of the individuals and the group as a whole or to mislead and exploit the individuals and the group as a whole. So the fault is not with the techniques of propaganda but with the way which certain individuals or groups of individuals use these techniques for their own ends and not for social progress."

—B. Kuppuswamy

प्रभावशाली साधन के रूप में।"† भारत में चीन और पाकिस्तान के विरुद्ध युद्ध-काल के समय भारतीय जनता का मनोबल ऊँचा बनाये रखने में प्रचार का विशेष हाथ रहा है। साथ ही, प्रचार के द्वारा अन्य देशों की जनता की सहानुभूति और वहाँ की सरकारों का नैतिक सहयोग प्राप्त करना भी सम्भव होता है।

(२) **प्रचार और शांति (Propaganda and Peace)**—केवल युद्ध-काल में ही नहीं, शान्तिकाल में भी प्रचार का बड़ा महत्व रहता है। प्रचार के द्वारा सही ढंग का जनमत तैयार किया जाता है। देश में अनेक कुरीतियाँ और समस्यायें होती हैं। उनके प्रति सही मनोवृत्ति बनाने में सामाजिक नेताओं और सरकार द्वारा किया गया प्रचार प्रभावशाली होता है।*

(i) **सामाजिक कुरीतियाँ और प्रचार**—हमारे देश में बाल-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, स्त्रियों की अशिक्षा, दहेज प्रथा, अस्पृश्यता, सती-प्रथा, देवदासी प्रथा, जैसी अनेक कुरीतियाँ रही हैं। इनके कारण देश उन्नति नहीं कर पा रहा था, स्त्रियों और अछूतों के साथ अत्याचार होता रहा है। देश में इन कुरीतियों को दूर करने के लिए अनेक सामाजिक आंदोलन चले और वे प्रचार के द्वारा ही सफल हो पाये। समाचार-पत्रों ने नेताओं के भाषणों को छापकर दूर-दूर लोगों को उनके विचारों से परिचित कराया। इस प्रचार से प्रभावित होकर इन कुरीतियों के उन्मूलन के लिए सरकार ने भी आवश्यक क़ानून बनाये। इसका फल आज यह है कि स्त्रियाँ और अछूत भी राष्ट्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

(ii) **स्वास्थ्य और प्रचार**—भारत जैसे देश में जहाँ की अधिकतर जन-संख्या अशिक्षित और निर्धन है वहाँ स्वास्थ्य के बारे में सामान्य ज्ञान बहुत नीचा है। यहाँ क्षयरोग, कोढ़, अन्धापन, आदि अनेक रोग बड़े पैमाने पर पाये जाते हैं और इनका कारण काफी हद तक अज्ञानता है। अच्छे डॉक्टरों का इलाज न कराकर नकली डाक्टरों, झाड़फ़ूंक वालों का इलाज करने से रोग बढ़ जाता है। गाँवों में शिशु मृत्यु का प्रतिशत बहुत ऊँचा है। प्रचार के द्वारा जनता को स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान कराया जाता है। अनेक डॉक्यूमेंटरी फिल्में बनाकर जनता को शिक्षित किया जाता है। कौन सी बीमारी में सांप काटने पर, हैज़ा होने पर, लू लगने पर क्या करना चाहिये, इस सम्बन्ध में समाचार-पत्रों आदि के द्वारा जनता को साव-धान किया जाता है। इन बीमारियों से बचने और उनके उपचार की विधि बतला कर उनकी स्वास्थ्य-रक्षा में मदद की जाती है। मद्यपान, सिगरेट के विरुद्ध प्रचार स्वास्थ्य बनाये रखने में सहायक होता है।

---

† "It has been seen as a weapon of welfare more deadly than the atom bomb and as an instrument of peace more effective than the United Nations." —Krech and Crutchfield.

* इस अध्याय के आरम्भ को देखिए।

(iii) **जनसंख्या और प्रचार**—आज सभी देश जनसंख्या की वृद्धि से होने वाले खतरे से सतर्क हैं। संयुक्त राष्ट्र भी संसार भर को चेतावनी दे रहा है कि यदि जनसंख्या की इस वृद्धि को नहीं रोका गया तो आगे चलकर खाद्यान्न का अभाव हो जायेगा। सरकार पारिवारिक नियोजन का बड़ा ज़ोरों से प्रचार कर रही है। सरकार ने इसका एक अलग विभाग खोल दिया है और गांवों और शहरों में बड़े-बड़े पारिवारिक नियोजन कैम्प लगाये जा रहे हैं। अत्यधिक जनसंख्या देश की आर्थिक स्थिति को नीचा गिराती है, बेरोजगारी, निर्धनता, अपराध का कारण होती है जो सामाजिक विघटन उत्पन्न करते हैं। इसलिये, प्रचार के द्वारा जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण सामाजिक नियंत्रण में अप्रत्यक्ष रूप से मदद करता है।

(iv) **धर्म और प्रचार**—प्रत्येक देश में भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के लोग रहते हैं और उनमें संघर्ष होने की सम्भावना रहती है। यह बहुत हद तक धार्मिक नेताओं और सरकार के ऊपर निर्भर करता है कि यह संघर्ष होते हैं कि नहीं। धार्मिक सहनशीलता के सम्बन्ध में किया जाने वाला प्रचार लोगों में दूसरे धर्मों के प्रति विरोध और घृणा की भावना को दूर करता है। जब हमारे देश में धार्मिक सम्प्रदायों के कुछ नेता अपने अनुयायियों को अशांति उत्पन्न करने के लिए भड़काते हैं तो अन्य नेता और सरकार विरोधी (counter) प्रचार के द्वारा उन्हें शांत करते हैं। हाल में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय विधेयक के विरोध में मुस्लिम मजलिस जैसे साम्प्रदायिक दलों ने देश में मुसलमानों को भड़काने का जबरदस्त प्रयत्न किया परन्तु अन्य मुस्लिम नेताओं द्वारा जनता को शांत रखने का प्रयत्न करने और सरकार द्वारा सख्त कदम उठाने से देश में शांति बनी रही। बाढ़, अकाल, महामारी आदि के समय में अनेक धार्मिक संगठन जनता की बेहद मदद करते हैं। इन धार्मिक संगठनों के पास धन और कार्यकर्ताओं की कमी नहीं होती और अक्सर यह विपत्ति काल में जनता की सच्ची सेवा करते हैं।

(v) **प्रचार के विविध कार्य**—देश में व्याप्त अज्ञानता और अन्धविश्वास के कारण अनेक ठग साधुओं का वेश धारण कर जनता को ठगते फिरते हैं। सरकार डॉक्टूमेंटरी फिल्मों और अन्य प्रकार के साधनों के द्वारा जनता को उनसे सावधान कर रही है। यही कारण है कि ठग बड़ी संख्या में पकड़े जा रहे हैं। देश में छिपे भेदिये और अन्य अवांछनीय तत्वों से जनता को सावधान कर और उनकी सहायता से इन तत्वों को गिरफ्तार कर सरकार देश में शांति और सामाजिक नियन्त्रण बनाये रखती है। लाउडस्पीकरों, समाचार-पत्रों, रेडियो, सिनेमा आदि के द्वारा देश में बने नये कानूनों से लोगों को परिचित कराया जा रहा है। अस्पृश्यता का पालन करने वालों को दण्ड का भय दिखाकर, स्त्रियों को दिये गये सम्पत्ति में अधि-

कार से उन्हें परिचित कराकर, रेन्ट कन्ट्रोल ऐक्ट में दी गई सुविधाओं से किराये-दारों को परिचित कराकर सरकार सभी वर्गों के शोषण को रोकने का प्रयत्न कर रही है। अमेरिका में सरकार ने यह अनिवार्य कर दिया है कि सिगरेट के प्रत्येक पैकेट पर यह छापा जाये कि वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इस प्रकार का प्रचार सामान्य स्वास्थ्य में सहायक होता है।

(३) **प्रचार और आर्थिक क्षेत्र (Propaganda and Economic field)**—आर्थिक क्षेत्र में प्रचार का महत्व बहुत है। यही कारण है कि सरकार ने रेडियो से कामर्शियल प्रचार की आज्ञा दे दी है। इससे सरकार को लाखों रुपए का लाभ हो रहा है। प्रचार के सभी साधन जैसे समाचार-पत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि विभिन्न आर्थिक वस्तुओं का प्रचार करते हैं। अख़बारों में छापे गए विज्ञापन, सड़कों पर लगे पोस्टर और बोर्ड, सिनेमा में दिखाई जाने वाली स्लाइड हमें नित्य नये आर्थिक पदार्थों से परिचित कराते हैं। प्रचार के द्वारा आर्थिक क्षेत्र में उन्नति होती है। केवल अपने ही देश में नहीं बल्कि अन्य देशों में भी प्रचार कर अपने देश में निर्मित वस्तुओं को विदेशों में भी बेचा जाता है और विदेशी मुद्रा प्राप्त की जाती है जो राष्ट्र की उन्नति में सहायक होती है। प्रचार वस्तुओं के मूल्यों को अधिक बढ़ने से रोक कर देश में शांति स्थापित करता है। प्रचार के द्वारा लोगों को अधिक अन्न उपजाने, किसी भी वस्तु का अपव्यय न करने, धन बचाने और राष्ट्रीय बचत योजना में लगाने को प्रेरित किया जा रहा है।

(४) **प्रचार और प्रजातन्त्र (Propaganda and Democracy)**—प्रजातन्त्र के स्वस्थ विकास के लिए प्रचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अशिक्षित समाज में जहाँ लोग एक राजनीतिक दल और दूसरे राजनीतिक दल में अन्तर नहीं कर पाते वहाँ प्रचार विशेष महत्व रखता है। प्रचार के द्वारा विभिन्न राजनीतिक दल अपनी नीतियों और उद्देश्यों से जनता को परिचित कराते हैं। प्रचार के माध्यम से विपक्षी दल अपने पक्ष में जनमत बनाने का प्रयत्न करते हैं। दूसरी ओर, सरकार भी प्रचार के द्वारा जनता को यह समझाती है कि जनतन्त्र को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि जनता अपने मताधिकार का पालन करे। साथ ही, समाचार-पत्र आदि अपनी प्रचार-शक्ति के द्वारा सरकारी अफ़सरों, नेताओं को रिश्वत लेने, अत्याचार करने, बेईमानी, पक्षपात करने से रोकते हैं। इससे सामाजिक नियन्त्रण में मदद मिलती है। मिनिस्टर आदि भी विरोधी दलों के द्वारा प्रचार किए जाने की सम्भावना से सावधान रहते हैं।

(५) **प्रचार और राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय शांति (Propaganda and National and International Peace)**—हमारे देश में प्रांतीयता, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयतावाद, साम्प्रदायिकतावाद आदि अनेक ऐसी समस्यायें हैं जिनके

कारण देश में तनाव रहता है। इन तनावों को दूर करने के लिए और राष्ट्रीय एकता बनाने के लिए ऊँचे पैमाने पर प्रचार किया जा रहा है। इस प्रकार के प्रचार में सरकार और समाज के नेता सभी शामिल हैं। प्रचार के द्वारा जनता को समझाया जाता है कि किस प्रकार अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए राजनैतिक और साम्प्रदायिक नेता जनता को पथभ्रष्ट करते हैं। इसी प्रकार, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रचार करके अन्य देशों में शांति स्थापना में मदद की जाती है। संयुक्त राष्ट्र अपनी उपलब्धियों का प्रचार करके राष्ट्रों को प्रेरित करता है कि वह शांतिमय ढंग से अपने झगड़ों को निपटायें और उन्हें संयुक्त राष्ट्र को सौंप दें। कम उन्नत देशों में खेती, उद्योग, दवा, पौष्टिक भोजन, शिक्षा, विज्ञान आदि के क्षेत्र में सहायता करके संयुक्त राष्ट्र राष्ट्रीय विकास में मदद करता है। अनेक देश दूसरे देशों में अपनी साख बनाने के लिए उनको आर्थिक और टेक्निकल मदद करते हैं। यह मदद स्वयं प्रचार का साधन है। आज इंगलैंड, रूस, भारत आदि अनेक देश बांगलादेश में विशाल स्तर पर आर्थिक सहायता भेज रहे हैं। यह वहाँ के निवासियों की मनोवृत्ति को अपने पक्ष में करने का एक प्रचार भी है।

———

६ जनमत (Public Opinion)

"जनता" शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। सामान्य समाज के सामूहिक सदस्यों को चाहे वे किसी समुदाय के हों, राज्य के हों, या राष्ट्र के हों जनता कहा जाता है। उदाहरण के लिए विज्ञापनकर्त्ता जनता को प्रभावित करना चाहते हैं या राजनीतिज्ञ जनता को शिक्षित करना चाहते हैं या एक वक्ता जनता को प्रभावित करना चाहता है या सरकार जनता के हित में कुछ करना चाहती है, इत्यादि। विशेषणात्मक धारणा के अनुसार जनता का अर्थ व्यक्तिगत के विपरीत सार्वजनिक शब्द से लगाया जाता है।

संकीर्ण अर्थ में, संज्ञा के रूप में जनता से लोगों के कुछ अव्यवस्थित समूह का बोध होता है। इन लोगों का एक सामान्य स्वार्थ होता है तथा वह अस्थिर और फैला हुआ समूह होता है। अल्फ्रेड मेक क्लंग ली (Alfred Mc-Clung Lee) ने जनता को अन्तःक्रिया का सामाजिक क्षेत्र माना है।

'Public' शब्द लैटिन शब्द 'Publicus' से निकला है जिसका अर्थ है 'जनता' (People)। "जनता को हम ऐसे व्यक्तियों का एक असंगठित और आकृतिरहित संग्रह कह सकते हैं जो सामान्य मतों और इच्छाओं से आपस में बँधे हैं, परन्तु जिसकी संख्या इतनी अधिक है कि उनके लिये एक दूसरे से व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाए रखना सम्भव नहीं है।"* इस प्रकार, जनता के सदस्यों के बीच होने वाली अन्तःक्रिया हमेशा प्रत्यक्ष प्रकार की नहीं होती। फिर भी, सामूहिक रूप से वे इस अर्थ में महत्वपूर्ण हैं कि उनकी मनोवृत्तियाँ, मत और व्यवहार महत्व रखते हैं। आजकल दूर के संदेशवाहन, जैसे पुस्तकें, समाचारपत्र, सिनेमा और रेडियो की सहायता से यह सम्भव

* "The public may be described as an unorganized and amorphous aggregation of individuals who are bound together by common personal relations with the others."

—Ginsberg, *Psychology of Society.*

हो गया है कि शारीरिक रूप से एक दूसरे से अलग और दूर रहने वाले व्यक्ति एक ही समूह के सदस्य हों। इसीलिये, जनता में भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना सदैव सम्भव नहीं है।

एल्ड्रेज (Eldridge) का कथन है कि 'public' से हमें उन व्यक्तियों का बोध होता है जो किसी एक विशेष समस्या या विषय पर विचार और वाद-विवाद करते हैं। जनता में बड़ी या छोटी संख्या दोनों में ही व्यक्ति हो सकते हैं; यह अल्प-कालीन या दीर्घकालीन दोनों ही हो सकती है; यह अत्यन्त विशिष्ट (specialized) विषयों या जन-साधारण के जीवन के सभी पहलुओं में महत्वपूर्ण विषयों में रुचि रख सकती है। जब तक व्यक्तियों में जीवन के राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, कला सम्बन्धी, वैज्ञानिक या सामाजिक पहलुओं से सम्बन्धित विषयों पर मतभेद होता है, और जब तक यह विषय विचार विनिमय का आधार है, तब तक जनता, बल्कि सत्य तो यह है, अनेक जनता रहेंगी। जितने ही प्रकार के विषय या समस्यायें होती हैं उतने ही प्रकार की जनता होती है। इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जाता है कि हमारे बदलते हुए समाज में एक या दूसरे प्रकार की अनेक अनगिनती जनता होती है। जैसे-जैसे नयी समस्यायें उत्पन्न होती हैं, नयी जनता उत्पन्न हो जाती है; जैसे-जैसे पुरानी समस्यायें हल होती जाती हैं उन समस्याओं से उत्पन्न जनता भी अन्तर्ध्यान होती जाती है।

साधारणतया, सामान्य (general) और विशिष्ट (special) जनता में भेद किया जाता है। वे व्यक्ति जो किसी एक विशेष समस्या में रुचि रखते हैं परन्तु जो उस सम्बन्ध में आवश्यक कौशल, सूचना या अनुभव न होने के कारण उस समस्या का हल बताने में अयोग्य हैं सामान्य जनता हैं। इसी सामान्य जनता के मध्य में कुछ ऐसे सदस्य भी होते हैं जो अपने विशेष ज्ञान, प्रविधियों (techniques) के ज्ञान या उच्च स्थिति के कारण उस समस्या को अधिक अच्छी तरह से समझते हैं और उसका हल करने के लिये अधिक योग्य हैं। यह विशिष्ट जनता है।

कुछ लेखकों का पहले मत था कि 'जनता' शब्द का प्रयोग एक समुदाय वाचक संज्ञा (collective noun) के रूप में हो जिसका अर्थ राजनैतिक समस्याओं से सम्बन्ध या रुचि रखने वाले वयस्क व्यक्तियों या नागरिकों से हो। यह भ्रान्ति इस कारण उत्पन्न हुई क्योंकि आधुनिक राजनीति के लेखकों के लिये राजनीतिक जनता और जनमत विवेचना के मुख्य विषय रहे हैं। परन्तु वास्तव में, जनता को राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित रखने का अर्थ इस सत्य की अवहेलना करना है कि राजनीतिक समस्याओं के अतिरिक्त सामुदायिक रुचि के अन्य क्षेत्र भी होते हैं। इस बात को दृष्टि में रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि हर जगह जनतायें (publics) होती हैं, न कि केवल एक जनता जो सरकार-सम्बन्धी विषयों में रुचि लेती हो। इस प्रकार, विभिन्न

समस्याओं में और रुचि की विभिन्न मात्राओं में, राजनीतिक जनता, आर्थिक जनता और कला, नैतिक सुधार या सामान्य रुचि की अन्य समस्या से सम्बन्धित जनता हो सकती है। इस प्रकार, हम कहते हैं कि समाज में एक जनता नहीं, बल्कि अनेक जनतायें होती हैं। वास्तव में, विस्तृत और अस्थायी होते हुये भी जनतायें आधुनिक समाजों के महत्वपूर्ण द्वैतीयक समूह हैं।

आजकल के आवागमन के साधनों इत्यादि की वजह से जनता का क्षेत्र विस्तृत हो गया है। आज के जटिल समाज में 'प्राथमिक समूहों' का स्थान 'द्वैतीयक समूहों' ने ले लिया है। इनमें से अनेक समूह विभिन्न क्षेत्रों में फैले हुए हैं। जैसा कि हम अभी कह चुके हैं कि जनता संदेश एवं आवागमन के अनेक साधनों की उत्पत्ति है। टेलीग्राफ, टेलीफोन, अखबार, रेडियो, टेलीविजन, हवाई जहाज, रेलवे इत्यादि आवागमन एवं संदेशवाहन के साधनों में से हैं और इनकी वजह से आधुनिक युग में जनता शब्द का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है।

जनता और भीड़ में भेद है। भीड़ की खास विशेषता यह है कि उसमें व्यक्तियों का एक जगह इकट्ठा होना जरूरी है। भीड़ के सदस्य एक दूसरे के पास होते हैं। जनता के लिए यह आवश्यक नहीं है। जनता भी एक व्यक्तियों का समूह तो है पर इस समूह के सदस्यों को एक दूसरे के समीप होना अनिवार्य नहीं है। किम्बाल यंग के अनुसार जनता की उत्पत्ति के लिए व्यक्तियों का एक स्थान पर एकत्रित होना आवश्यक नहीं है, उनका आमने-सामने का सम्पर्क तथा कन्धे-से-कन्धे का सम्पर्क जरूरी नहीं है। जनता के व्यक्ति इधर-उधर बिखरे हुए हो सकते हैं तथा ऐसा होने पर भी उनके मध्य अप्रत्यक्ष उत्तेजनाओं द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।*

जनता में भीड़ की भाँति इतनी अधिक संकेतात्मकता नहीं होती है। जनता का विस्तार भी भीड़ के विस्तार की अपेक्षा अधिक होता है। एक व्यक्ति एक ही समय में दो भीड़ों का सदस्य नहीं हो सकता है पर एक ही समय में कई जनताओं का सदस्य होना उसके लिए मुमकिन है। भीड़ का व्यवहार काफी हद तक संवेगात्मक होता है। पर जनता का व्यवहार बुद्धि-सम्पन्न भी होता है। जनता में भीड़ की तुलना में व्यवहार में विवेकशीलता अधिक होती है। भीड़ का व्यवहार काफी हिंसात्मक एवं विस्फोटकारी होता है। जनता का व्यवहार ऐसा नहीं होता यद्यपि क्रान्ति, विप्लव आदि के समय इस दृष्टि से भीड़ और जनता के व्यवहार में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता है।

* "The public is not held together by face-to- face or shoulder-to shoulder contacts, a number of people scattered in space react to common stimulus which is provided by indirect and mechanical means." —Kimball Young, *Handbook of Social Psychology*.

आल्पोर्ट (Allport) के अनुसार मनोवृत्ति एक मानसिक एवं स्नायुविक (mental and neural) तत्परता है जिसका सम्बन्ध एक विशेष परिस्थिति में होने वाली विशेष प्रक्रिया से है। यह प्रक्रिया सकारात्मक (positive) या नकारात्मक (negative) हो सकती है। 'मत' को जब हम 'जनता' के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं तब वास्तव में मत को बौद्धिक अर्थ में नहीं लेते हैं। बौद्धिक अर्थ में मत का उदाहरण हम वनस्पति-विज्ञान शास्त्री का मत या वैज्ञानिक का मत से देते हैं। ऐसे अर्थ में जब हम मत का प्रयोग करते हैं तब किसी विषय के पक्ष या विपक्ष में विचार से हमारा तात्पर्य होता है। यद्यपि मनोवृत्ति और मत की सीमा को निश्चित करने वाली कोई दृढ़ रेखा नहीं है पर मनोवृत्ति और मत में भेद है। जब व्यक्तियों के विचार काफी भावात्मक एवं संवेगात्मक होते हैं तब हम 'मनोवृत्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं। इसी कारण जनमत को हम उसके बौद्धिक अर्थ में नहीं प्रयुक्त करते क्योंकि जनमत में मनोवृत्तियों की भांति संवेगात्मकता एवं भावात्मकता अधिक होती है।

मैरिल और एलरिज का कथन है कि मत और मनोवृत्ति एक नहीं हैं, दोनों में अन्तर है। इसका कारण यह है कि मनोवृत्ति में तत्परता की धारणा का समावेश होता है जो कि मत की अपेक्षा कम वास्तविक है। यह सही है कि किसी जनसमूह की मनोवृत्तियों से जनमत अधिक प्रभावित होता है क्योंकि वह सामूहिक अन्त:क्रिया के फलस्वरूप होता है। भारत की जनता की चीन के प्रति मनोवृत्ति से भारत-चीन के सम्बन्ध के विषय में मत निर्धारण होने में सहायता मिलती है। जनमत कुछ विशेष विषयों तक ही सीमित रहता है जबकि मनोवृत्ति एक ऐसी तत्परता है जिसमें अनेक परिस्थितियों का समावेश होता है।

किम्बाल यंग का कहना है कि मत एक ऐसा विश्वास है जिसकी पूर्वनिश्चितता में कुछ कमी रहती है। मत की धारणा से ही यह स्पष्ट है कि व्यक्ति कोई मत निर्माण करने के पहले अनेक मतों को तौलता है व उन पर विचार करता है। व्यक्ति के दृष्टिकोण से ऐसा लगता है कि जैसे उसके अन्दर कोई मंच (forum) इत्यादि हो जहाँ पर यह अपने आप वाद-विवाद करता हो। व्यक्ति के बाहर भी वह मंच होता है जहां वह उस मत के बारे में दूसरे व्यक्तियों से वाद-विवाद करता है। जनता एक वाद-विवाद समूह है जहां एक ही विषय पर अनेकों मत होते हैं। सामूहिक रूप से जनता की प्राथमिक रुचि कार्य की अपेक्षा वाद-विवाद की ओर अधिक रहती है यद्यपि कार्य की सम्भावना बिल्कुल नहीं समाप्त हो जाती है।

विलियम अलबिग (William Albig) के अनुसार मत किसी विवादग्रस्त विषय पर विचार प्रकट करना है। ऐसा प्रतीत होता है कि अलबिग 'मत' शब्द के बौद्धिक पहलू से अधिक प्रभावित हुआ है। डब्लू० जे० एच० स्प्राट (W. J. H.

Sprott) किसी विषय पर विरोधहीन और विभक्त विचारों दोनों को ही मत शब्द के अन्दर शामिल कर लेते हैं।

जनमत (Public Opinion)—जनमत शब्द का प्रयोग अट्ठारहवीं सदी से होना शुरू हुआ है जब यह सुझाव दिया गया था कि प्रजातांत्रिक युग में नेताओं और राजनीतिज्ञों को जनता की इच्छाओं एवं मतों पर शीघ्र प्रतिक्रिया करनी चाहिये।

जेम्स यंग (James Young) का, जो कि एक राजनीतिक-वैज्ञानिक हैं, कथन है कि "जनमत आत्म चेतन समुदाय का सार्वजनिक विवेकपूर्ण वाद-विवाद के बाद किसी सामान्य महत्व के विषय पर सामाजिक निर्णय है।"*

दार्शनिक जान डीवी (John Dewey) का कथन है कि "सामाजिक जाँच पड़ताल के परिणाम या संदेश देना एवं जनमत का निर्माण एक ही चीज है...... । क्योंकि जनमत एक ऐसा निर्णय है जो जनता द्वारा निर्मित होता है एवं सार्वजनिक कार्यों से सम्बन्धित होता है।"†

समाजशास्त्री राबर्ट पार्क (Robert Park) ने जनमत के बारे में कहा है "वहाँ कोई जनमत नहीं होता है जहाँ ठोस सहमति नहीं होती है लेकिन वहाँ भी जनमत नहीं होता है जहाँ असहमति नहीं होती है। जनमत के लिये सार्वजनिक वाद-विवाद की पूर्णकल्पना कर ली जाती है।"‡

वाल्टर लिपमैन (Walter Lippmann), जिसने जनमत के अध्ययन में महत्वपूर्ण योग प्रदान किया है, का कहना है कि एक व्यक्ति के मन में दूसरे लोगों के, उनकी आवश्यकताओं के, उद्देश्यों के तथा सम्बन्ध के जो चित्र बने होते हैं उन्हें जनमत कहा जाता है।

सरसरी तौर पर उपर्युक्त कथनों पर विचार करने से मालूम होता है कि वे एक दूसरे के विरोधी हैं। यंग के कहने के अनुसार विवेकपूर्ण वाद-विवाद जनमत है।

---

* "Public opinion is the social judgment of a self-couscious community on a question of general importance after rational public discussion." —James T. Young.

† "Communicatian of the results of social enquiry is the same thing as the formation of public opinion ....For public opinion is judgment which is formed and entertained by those who constitute the public and is about public affairs." —John Dewey.

‡ "There is no public opinion where there is no substantial agreement. But there is no public opinion where there is no disagreement. · ·Public opinion presupposes public discussion," —Robert E. Park.

डीवी (Dewey) के अनुसार मत का निर्माण सम्पूर्ण विचारने की क्रिया से सम्बन्धित है। राबर्ट पार्क के अनुसार न केवल सहमतिपूर्ण वादविवाद बल्कि असहमतिपूर्ण वादविवाद जनमत के मुख्य तत्व हैं। लिपमैन के कथन में और भी कई चीजें शामिल हैं। उसके अनुसार विचारों एवं स्मृतियों की प्रतिमायें (images) जो कि मनुष्यों के मन में बनी होती हैं, जनमत कहलाती हैं। दूसरे शब्दों में, लिपमैन न केवल आन्तरिक एवं प्रेरणात्मक कारकों को महत्व प्रदान करता है बल्कि विवेकहीनता के महत्वपूर्ण कारक को भी।

मैरिल (Merill) और ऐलरिज (Elridge) के अनुसार जनमत वह दृष्टिकोण है जो वाद-विवाद के पश्चात् निश्चित हुआ हो और जो किसी विशेष समस्या अथवा स्थिति से सम्बन्धित अनेक व्यक्तियों की कार्य-विधि को निर्धारित करता है।

एल्फ्रैड मैक क्लन्ग ली (Alfred Mc Clung Lee) के अनुसार जनमत मत को प्रकाशित करने वाले विवाद-विषय की उत्पत्ति हैं (Public opinion is the product of the point eliciting an opinion)। यह जनता की सामान्य साँस्कृतिक पृष्ठभूमि (cultural background) और विवाद विषय (point) से एवं तत्कालीन स्थिति से सम्बन्धित होता है। सामाजिक मनोवृत्तियां एवं साँस्कृतिक पृष्ठभूमि स्थिर रहती हैं। जनमत स्थितियों के क्रमिक परिवर्तन को व्यक्त करता है; अत: गतिशील होता है; जनमत में परिवर्तन होता रहता है। जब नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तो जनमत भी बदल जाता है।

मैरिल और ऐलरिज का विचार है कि यद्यपि जनमत वाद-विवाद पर आधारित होता है इसके यह अर्थ नहीं हैं कि यह वाद-विवाद हमेशा पूरी तरह युक्तिसंगत एवं विवेकशील होता है, किसी अफवाह या गलत विषय पर भी जनमत का निर्माण हो सकना है। कभी-कभी समाचार सही भी हो सकते हैं, पर उनमें पक्षपात एवं पूर्व धारणा का ऐसा रंग चढ़ जाता है और जनमत इतना भावात्मक प्रतीत होता है कि सत्य नहीं मालूम होता है। यह आवश्यक नहीं है कि महत्वपूर्ण विषय पर निर्मित किया हुआ जनमत सही एवं वस्तुगत ही हो। कुछ भी हो, जनमत के लिए वाद-विवाद होना आवश्यक है चाहे वह कितना भी पक्षपातपूर्ण तथा अशुद्ध क्यों न हो।

हरबर्ट ब्लूमर (Herbert Blumer) ने अपने लेख "Public opinion and public opinion polling" जो अक्टूबर १९४८ के 'American Sociological Review' में प्रकाशित हुआ था, में जनमत की समाजशास्त्रीय प्रकृति पर कुछ निष्कर्ष निकाले हैं :—

(१) जनमत की सेटिंग किसी विशिष्ट समाज में होती है और उसका जन्म उस समाज के सदस्यों की पारस्परिक अन्त:क्रिया द्वारा होता है।

(२) समाज में समूहों, संस्थाओं एवं समितियों का संगठन होता है और इन संगठनों की क्रियाओं से सामूहिक सामाजिक जीवन का निर्माण होता है।

(३) यह समूह कुछ खास व्यक्तियों के, जिनका समूह में ऊँचा स्थान होता है और जो उस स्थान से सम्बन्धित कार्य को करते हैं, निर्णयों पर प्रतिक्रिया करते हैं।

(४) यह मुख्य व्यक्ति अपने समूह के सदस्यों द्वारा रखी हुई माँगों का निश्चय करते हैं तथा दूसरे समूहों के सदस्यों की माँगों से उनकी तुलना करते हैं।

(५) जनमत सामाजिक अन्त:क्रिया की प्रक्रिया की उत्पत्ति है।

ब्लूमर के इस विश्लेषण से पता चलता है व्यक्ति का समूह में कार्य काफी महत्व का होता है। केवल कुछ व्यक्ति ही समूह की नीतियों का निर्माण करने के योग्य होते हैं तथा दूसरे लोगों को काफी प्रभावित करते हैं।

आधुनिक समाज की एक विशेषता उसके अन्दर अनेक जनताओं की जटिलता है। "इस प्रकार जनता अनेक जनताओं का विशाल संग्रह या गूढ़ता है और जब हम कहते हैं कि यह 'जनता का मत' है तब हमारा अर्थ यह होता है कि समस्या-विशेष से सम्बन्धित अनेक जनमतों में जो प्रत्येक समूह या छोटी जनताओं में पाये जाते हैं, यह विशिष्ट मत सबसे अधिक प्रबल है।"*

गिन्सबर्ग के विचार में किसी भी मत को जनमत बनाने के लिए निम्नलिखित तीन बातें जरूरी हैं :—

(१) यह ऐसे समूह में अधिकतर सदस्यों का मत हो जिसमें 'किस्म की चेतनता' (consciousness of kind) हो, सामान्य रुचियों और स्वार्थों की भावना हो।

(२) यह सहयोग का फल, समुदाय के बहुत से मस्तिष्कों के मिलन का फल, या परस्पर विचार-विनिमय का फल होना चाहिये।

(३) इसके विस्तृत फैलाव की सामान्य स्वीकृति और चेतना होनी चाहिए, या प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की अनुभूति होना चाहिये कि यह सामान्य मत है।

बहुसंख्यकों के विचार (Views of the Majority)

समुदाय के हितों को प्रभावित करने वाले मसलों से सम्बन्धित विचारों के योग को जनमत की संज्ञा दी जाती है। अत: इसमें सब प्रकार के अभिप्रायों (notions), विश्वासों, धारणाओं, आकांक्षाओं, पक्षपातों आदि का समावेश होता है; यह स्पष्ट, बेमेल (incoherent) तथा आकृतिरहित (amorphous) होता है तथा दिन-प्रति-

* "The public is thus an agglomeration or complex of publics and when we say that an opinion is public we mean that among the several public opinions that exist within each of the groupings or minor publics, on the subject in question, this particular one dominates."
—Ginsberg.

दिन और सप्ताह-प्रति-सप्ताह बदला करता है। लेकिन इतनीअस्पष्टता एवं विभिन्नता के मध्य कोई भी प्रश्न जो महत्वपूर्ण बन जाता है स्पष्टता एवं एकीकरण (consolidation) की प्रक्रिया के कारण होता है जब तक कि नागरिकों के द्वारा कुछ विचार एवं अन्तर-सम्बन्धित-विचार नहीं निश्चित हो जाते हैं। यह एक विचार या विचारों के सेट की शक्ति होती है जो नागरिकों के बहुमत को प्रदर्शित करती है जिसे जनमत कहते हैं। यह नागरिक इन विचारों को चाहें स्वीकार करें या अस्वीकार करें पर बहुमत किस ओर है इस बात से जनमत निर्धारित होता है। कुछ विचारधारायें दूसरों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती हैं क्योंकि उनके पीछे बहुत अधिक लोगों का मत होता है।

इसके विपरीत कुछ सामाजिक मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि वास्तविक रूप से जनमत का निर्माण करने के लिये यह आवश्यक है कि सारे व्यक्तियों के विचार एवं स्थायी भाव (sentiments) सामान्य हों और उन व्यक्तियों में विचारों एवं स्थायी भावों की एकता को कायम रखने की इच्छा हो।

जनमत के लिये हमेशा यह आवश्यक नहीं है कि बहुमत उसके साथ हो। जनमत के लिये आवश्यक है कि मत एक ही प्रकार के (homogeneous) समूह का हो। यह उस समूह के द्वारा निर्मित हुआ होना चाहिये जहाँ के लोगों के हितों में तादात्म्य हो। इसकी उत्पत्ति सबके प्रयत्नों से होनी चाहिए। अनेक दिमागों की सलाह के पश्चात् उसका निर्माण होता है। इसके साथ लोगों को यह समझना चाहिये कि यह सामान्य मत है। इस विचार से निर्णय का एक मत होना ही जनमत है।

बर्ड और मेरविन (Bird and Merwin) के विचार से दो प्रकार के जनमत होते हैं--स्थिर एवं गतिशील। स्थिर जनमत के उदाहरण परम्पराओं, रूढ़ियों एवं प्रथाओं में मिलते हैं। इसके विपरीत गतिशील (dynamic) जनमत युक्तिसंगत होते हैं तथा ये क्रमबद्ध प्रचार पर आधारित होते हैं।

गिन्सबर्ग के अनुसार जनमत के अन्तर्गत समाज में कार्य करने वाले उन विचारों तथा निर्णयों के पुञ्जों का समावेश होता हैं। जो कम या अधिक रूप से निश्चित होते हैं तथा काफी देर तक स्थायी होते हैं जिन लोगों को विश्वास होता है वह उन्हें इस कारण सामाजिक कहते हैं कि उनका जन्म अनेकों व्यक्तियों के मन की सामान्य प्रतिक्रियाओं एवं क्रियाओं द्वारा होता है।

कुछ लेखकों ने जनमत के सम्बन्ध में बहुत ऊँची धारणा प्रकट की है जब कि दूसरे लेखकों ने उसकी निन्दा की है। सिसरो (Cicero) ने जनमत को गैरबुद्धिमान और गैरतार्किक कहा, और फ्लौबर्ट (Flaubert) के विचार में सामान्यरूप से जनता एक 'अनैतिक पशु' (immoral beast) है। दूसरी ओर, कुछ लेखकों का विचार है कि

समुदाय के सबसे महान् व्यक्ति के मत की अपेक्षा जनमत में नैतिकता और बुद्धिमत्ता के तत्व कहीं अधिक हैं। इस प्रकार के दो विरोधी विचारों पर विचार करते समय यह स्मरण रखना चाहिये कि जनता को अनैतिक और मूर्ख कहना उतना ही गलत और भ्रान्ति उत्पन्न करना है जितना कि इसे हमेशा सही और सर्वोच्च मत कहना गलत है। इस सम्बन्ध में हमें यह देखना चाहिये कि जनता-विशेष में किस प्रकार के व्यक्ति हैं, सामूहिक मतदान या क्रिया के लिये किस प्रकार का संगठन है और किस प्रकार के प्रश्न पर जनता के मत की आवश्यकता है। उदाहरण के लिये, उद्विकास (evolution) के सिद्धान्त के सम्बन्ध में जो जनमत जीवशास्त्रियों (biologists) के किसी समूह में पाया जाता है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी हो सकता है, परन्तु मिलों में काम करने वाले मजदूरों के हड़ताल करने के अधिकार के सम्बन्ध में इसका मत पक्षपातपूर्ण और गलत हो सकता है।

इस सम्बन्ध में यहाँ कह देना भी आवश्यक है कि बहुमत द्वारा किसी बात की स्वीकृति ही किसी मत को जनमत बनाने के लिये काफी नहीं है जैसा कि लावेल (Lowell) ने कहा है, यह भी आवश्यक है कि वहाँ सामुदायिक रुचि भी काफी हो। सभी व्यक्ति उस विषय में रुचि लेते हों, जिससे अल्पमत (minority) वाले समूह भी बहुमत को स्वीकार करने के लिये अपने को बाध्य समझें। इसके लिये यह आवश्यक है कि समूह एकरूपता (homogeneity) हो शत्रुता, का अभाव हो।

कुछ लेखकों ने इस बात की ओर संकेत किया है कि 'मत' शब्द अत्यन्त उचित है क्योंकि जनमत हमेशा बौद्धिक अथवा तार्किक निर्णय नहीं होता। अधिक समय तक स्थायी रहना जनमत की विशेषता नहीं है। इसलिए लेखकों का विचारहै कि, समाज की आत्मा' कह कर जनमत की प्रशंसा करना गलत है।

श्मौलर का कथन है कि जनमत लाखों तार वाली एक वीणा की तरह है जिसको सभी दिशाओं से आने वाली हवायें छेड़ती हैं।* इससे जो स्वर निकलते हैं वे सदैव आपस में एकता नहीं रखते, आपस में भिन्नता रखने वाली स्वर धारायें एक दूसरे को काटती हैं। जिन वस्तुओं को यह अपना विषय बनाता है उनकी दृष्टि से भी और जिन मानसिक तत्वों के द्वारा यह कार्य करता है उनकी दृष्टि से भी जनमत बदलता रहता है। अभी इसकी एक माँग रहती है, अभी दूसरी हो जाती है। आज यह उद्वेगों को उभारता है, कल धैर्य के साथ कार्य करने को कहता है। इस प्रकार 'मत' शब्द का चुनाव सही हुआ है क्योंकि चिन्तन के इतिहास में मत को हमेशा पर्याप्त ज्ञान से अलग माना गया है और इसकी विशेषता यह बतलाई गई है कि यह

---

* "Public opinion is like a harp of a million strings upon which there play winds from all direction."

—Schmoller, quoted by Ginsberg.

सुनी सुनाई बातों, खाली गिनती पर आधारित और मोटे निरीक्षण से प्राप्त सामान्य कथनों और स्वीकृत परम्पराओं और पक्षपातों पर आधारित होता है। इस प्रकार मत को एक ओर तर्क या ज्ञान से और दूसरी ओर मात्र क्षणिक कल्पना से अलग किया जा सकता है।

आधुनिक समाज में जनमत सुनी हुई बातों और प्रचार से प्रभावित होता है। हम जनमत को तभी बौद्धिक एवं तार्किक कह सकेंगे जब निम्नलिखित दशायें उपस्थित हों, (१) जनमत देने वाले व्यक्ति अपने सामने प्रस्तुत समस्या को समझने की योग्यता रखते हों; (२) वे बिना किसी उद्वेग और पक्षपात के उस समस्या पर वाद-विवाद करें और सभी सत्यों से भलीभाँति परिचित हों; (३) वे उचित रूप से शिक्षित हों और (४) उनकी मनोवृत्तियों और विचारों को प्रचार द्वारा नियन्त्रित करने का कोई प्रयत्न न हों।

जनमत की प्रक्रिया का स्वरूप

प्रजातान्त्रिक सरकार के पहले के रूप में जनमत का इतिहास प्राचीन यूनान में मिलता है। तब से लेकर अब तक जनमत के निम्नलिखित आधार हैं—

(१) यह समुदाय और राजनीतिक नियन्त्रण के जिम्मेदार वयस्क नागरिकों के हाथों में होता है।

(२) इन वयस्क नागरिकों को यह अधिकार होता है तथा उनका यह कर्त्तव्य भी होता है कि सार्वजनिक हित के विषयों पर समुदाय के कल्याण के लिए विवाद किया करें।

(३) इन वाद-विवादों से कुछ एकमत हासिल किया करें।

(४) सार्वजनिक कार्यों के आधार यही ऐकमत्य हों।

आधुनिक प्रजातन्त्रों के उत्थान में उपर्युक्त कल्पनाओं के आधार पर अन्य मूल्य एवं संस्थायें जैसे जूरियों द्वारा मुकदमें, स्वतन्त्र रूप से मिलने का अधिकार, कार्यकारिणी का चुनाव आदि भी जनमत से सम्बन्धित हो गयीं।

बहुमत के विचार नियन्त्रण करते हैं पर अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा की जाती है। प्रजातान्त्रिक सार्वजनिक वाद-विवादों से कुछ नैतिक मामलों पर सब की सहमति का बोध होता है। अल्पसंख्यकों से यह आशा की जाती है कि बहुसंख्यकों के निर्णयों को अपनायें और उनका पालन करें। अधिकारों को स्वाधिकार (privilege) समझा जाता है तथा सार्वजनिक वाद-विवादों को स्वीकृत किया जाता है। प्रजातन्त्र में स्वतन्त्रता (liberty) और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का संतुलन किया जाता है।

किम्बाल यंग के अनुसार जनमत के निर्माण में निम्नलिखित चार पहलू होते हैं—

(१) हमेशा कोई ऐसा विषय या समस्या रहती है जो समुदाय या उसके पर्याप्त भाग से सम्बन्धित रहती है। इस विषय या समस्या को कुछ व्यक्ति सार्वजनिक समस्या मान लेते हैं तथा उसके हल की माँग करते हैं। इस समस्या का विकास अदृश्य शक्तियों द्वारा भी हो सकता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रथम पहलू का प्रयत्न यह होता है कि समस्या को व्यक्तियों के वाद-विवाद के लिए स्वीकृत कराया जावे।

(२) इसके बाद प्राथमिक एवं हल ढूँढ़ने से सम्बन्धित विचारों का प्रारम्भ होता है। इस सम्बन्ध में निम्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं—

(क) समस्या कितनी गम्भीर है ? (ख) क्या समस्या का हल ढूँढ़ने का यह उचित समय है ? (ग) क्या इसका हल निकल सकता है ? इन प्रश्नों का अन्वेषण वाद-विवाद के पश्चात् होता है। समाचारपत्रों, सम्पादकीय लेखों, रेडियो, टेलीविजन या अन्य प्रदेश के संदेशवाहनों की सहायता से इन प्रश्नों पर विचार किया जाता है। इसके साथ-साथ इस दौरान में कुछ व्यक्तियों या समूहों द्वारा यह पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि इस समस्या के तथ्य क्या हैं तथा इसका सम्भव हल क्या हो सकता है। इस सिलसिले में किसी विशेषज्ञ का कार्य सार्वजनिक वाद-विवादों में भाग लेने वालों के ज्ञान को बढ़ाने में बड़ा महत्वपूर्ण हो सकता है। कभी-कभी तो अल्पसंख्यकों में से सम्बन्धित व्यक्ति या समूह जैसे श्रमिक समूह या व्यापारिक समूह या सुधार संगठन इत्यादि भी समस्या को बताने और उस पर ध्यान दिलवाने में अधिक सक्रिय भाग ले सकता है।

(३) इस प्रारम्भिक एवं हल ढूंढ़ने से सम्बन्धित वाद-विवादों के बाद हम सार्वजनिक विवाद के व्यवस्थित पहलू पर आते हैं। इसमें अनेक हलों के विकास का समावेश होता है। बाद में कुछ हलों की ओर लोग अधिक निश्चित होने लगते हैं। इसके बाद और अधिक वाद-विवाद प्रारम्भ हो सकता है जबकि लोग अधिक आरोपण और विरोध करने लग सकते हैं या किसी प्रदत्त हल के पक्ष में अपने विचार प्रकट कर सकते हैं। कभी-कभी भीड़ के व्यवहार की तरह का व्यवहार भी सामने आ सकता है और ऐसे में प्राय: विषय का विवेकपूर्ण एवं युक्तिसंगत पहलू विवेकहीन स्टीरियोटाइप्स (irrational stereotypes), नारों (slogans), भावात्मक अपीलों आदि के बहाव में बह भी सकता है। यह पहलू बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इस समय तक समस्या के बारे में काफी सोचा जा चुका होता है तथा अधिकाँश वाद-विवाद न केवल विवेकपूर्ण बल्कि विवेकहीन कारकों द्वारा भी नियन्त्रित हो चुका

होता है। दूसरे शब्दों में, प्रजातान्त्रिक समाजों में विवेकपूर्ण और विवेकहीन दोनों प्रकार के विचार मत-निर्माण में प्रवेश कर लेते हैं।

(४) इन विवादों, भाषणों, लेखों आदि से लोग कुछ निष्कर्ष एवं एक-मत की ओर आ जाते हैं। एक-मत से यह मतलब नहीं है कि इसमें पूर्ण सहमति हो। वास्तव में पूर्ण सहमति कभी नहीं होती है। प्रजातन्त्र में प्रायः समस्याओं का समाधान बहुमत द्वारा होता है। ऐसा नियम है कि एक मत पर आने के पश्चात् समस्या का समाधान करने के लिए किसी प्रकार की कार्यवाही शुरू हो जाती है। पर यह कार्यवाही जनमत-निर्माण के क्षेत्र के बाहर है अतः इसके अध्ययन की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है।

मत-निर्माण की प्रक्रिया प्राथमिक समूह एवं विशाल समाज (mass society) में अलग-अलग होती है।

प्राथमिक समाज में जनमत-निर्माण
(Opinion formation in primary society)

गाँवों में जनमत निर्माण की प्रक्रिया आधुनिक नगरों में जनमत निर्माण की प्रक्रिया से सर्वथा भिन्न है। सर्वप्रथम, गाँव के लोग प्रायः स्थानीय समस्याओं में ही अधिक रुचि रखते हैं। एक ग्रामीण समुदाय में जनमत निर्माण करने का मुख्य माध्यम वार्तालाप है। कुछ लोग जो किसी समस्या या विषय में रुचि रखते हैं या उससे किसी प्रकार सम्बन्धित होते हैं किसी चबूतरे या चौपाल पर बैठकर या जाड़े की शाम को अलाव के चारों ओर बैठकर या बाजार की ओर जाते समय रास्ते में या मन्दिर आदि में उस समस्या के बारे में बातचीत करते हैं। अन्त में गाँव पंचायत के सामने उस विषय पर अच्छा वार्तालाप होता है। भारतीय गाँव में नेता प्रायः उच्च जाति के एवं धनवान होते हैं। यहाँ की मुख्य समस्यायें सम्भवतः नैतिक आचरण, सम्पत्ति नियम, कर (taxation), कृषि, सिंचाई, सड़कों आदि से सम्बन्धित होती हैं। एक समुदाय का जनमत विशाल समाज के जनमत की अपेक्षा अधिक निश्चित एवं स्थिर होता है। प्रायः गाँवों के अल्पसंख्यक सदस्यों को बहुसंख्यक सदस्यों एवं सम्मानित व्यक्तियों के अनुकूल रहना पड़ता है। इसका कारण यह है कि वह सम्मानित व्यक्तियों एवं बहुमत पर आस्था रखते हैं।

विशाल समाज में जनमत निर्माण
(Opinion formation in mass society)

औद्योगिक क्रान्ति से मशीनों की उत्पत्ति, उच्च श्रम विभाजन, आवागमन एवं संदेशवाहन के साधनों, व्यापारिक संगठनों, घने एवं विशाल नगरों आदि की उत्पत्ति एवं वृद्धि हुई। नये औद्योगिक क्षेत्रों में द्वैतीयक समूह-सम्बन्ध का बोलबाला

होने लगा क्योंकि इसमें प्राचीन, आमने-सामने के प्रत्यक्ष सम्बन्ध सम्भव न थे। विशाल नगरों, लोगों की गतिशीलता और विशेषीकृत-समूहों (specialized groups) आदि से नई मनोवृत्ति तथा नये मूल्यों को प्रोत्साहन मिला।

शहरी जीवन अधिक गतिशील, लचीला एवं अधिक जटिल होता है। शहरों में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषय अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं और इन विषयों से सम्बन्धित अनेक समस्यायें जो कि सारे संसार से सम्बन्धित होती हैं उठ खड़ी होती हैं। विश्व और शाँति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विश्व संगठन आदि इन समस्याओं के उदाहरण हैं।

इसी स्थिति में पुराने और आमने-सामने के प्रत्यक्ष सम्पर्क का स्थान अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सम्पर्कों ने ले लिया तथा लोग सूचना एवं व्याख्या के लिये द्वैतीयक आधारों पर निर्भर रहने लगे। जो लोग समाचार पत्रों, चलचित्रों, रेडियो और टेलीविजन के द्वारा हमारे सामने तथ्यों को लाते हैं तो उनमें थोड़ा बहुत रद्दो-बदल भी कर देते हैं।

आधुनिक विशाल समाज में अफवाह तथा प्रचार का जनमत-निर्माण में बड़ा हाथ रहता है। इस कारण लोग संकेत से अधिक प्रभावित हो जाते हैं।

जनमत को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors influencing public opinion)

मतोवैज्ञानिकों का विचार है कि मत और निर्णय वास्तव में वैयक्तिक प्रतिक्रियायें हैं। किसी नये मत को स्थापित करने की इच्छा उस समय शुरू होती है जब कि अपने आदती संतोषों को प्राप्त करने में व्यक्ति निराशा अनुभव करता है और जब उसके पुराने मूल्य उसके दैनिक जीवन के अनुकूल नहीं होते। फिर भी, इन प्रकार के प्राइवेट विचार जनमत नहीं स्थापित करते। जनमत की शुरूआत तो तब होती है जब हम दूसरों से इस सम्बन्ध में बात करते हैं और यह पाते हैं कि उनके सामने भी ऐसी ही समस्यायें और सम्भाव्य हल हैं। समस्यायें उस समय जन-समस्यायें हो जाती हैं जब वे सम्पूर्ण समुदाय या कम से कम किसी महत्वपूर्ण द्वैतीयक समूह से सम्बन्ध रखती हैं। इन समस्याओं पर वाद-विवाद होने से जनमत उत्पन्न होता है।

क्रान्ति-काल में जनमत स्थापित करने में नेता या आन्दोलनकर्ता एक महत्वपूर्ण और अपूर्व कार्य करता है। राजनीतिक नेता प्रेस को और संदेशवाहन के अन्य साधनों के नियन्त्रित करने और अपने आदमियों को वहाँ लगाने का प्रयत्न करता है। विशिष्ट-स्वार्थ समूह के नेता विज्ञापन, प्रचार और प्रभावकारी सभी उपलब्ध साधनों का प्रयोग कर अपने समूह के लिये सहायता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

अनेक व्यक्तियों के विचार में जनमत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मापदण्ड प्रेस है। वास्तव में, प्रेस' और 'जनमत' शब्दों का अक्सर पर्यायवाची अर्थ में प्रयोग किया गया है। किसी भी देश के समाचारपत्र, निश्चय ही, व्यक्तियों की एक विशाल संख्या के मत को प्रतिबिम्बित करते हैं। परन्तु कठिनाई यह है कि हम यह नहीं जानते कि किन व्यक्तियों का मत ?

प्रेस जनता को प्रतिबिम्बित ही नहीं करता, प्रभावित भी करता है। फिर भी, संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेसीडेण्ट के सन् १९३६ के चुनाव ने इस बात को अत्यन्त नाटकीय ढंग से प्रकट किया कि समाचारपत्रों के सम्पादकीय मत (editorial opinion) तथा जनमत में कितना अन्तर हो सकता है जब कि देश के अधिकतर समाचारपत्रों के विरोध के बावजूद भी रूजवेल्ट दूसरी बार प्रेसीडेंट चुने गये।

लावेल के अनुसार जनमत प्रभावित करने में तीन बातें प्रमुख हैं—प्रस्तुत प्रमाण पर भिन्न-भिन्न प्रकार से बल देने का प्रभाव; समस्या पर जनता द्वारा दिये जाने वाले ध्यान की भिन्न मात्रायें और उद्वेग का प्रभाव। वाल्टर लिपमैन ने जनमत स्थापन में स्टीरियोटाइप के कार्य पर विशेष बल दिया है। उनके विचार में देखने, सुनने या अनुभव के कारण जो प्रतिमायें हमारे मस्तिष्कों में बन जाती हैं वे जनमत को प्रभावित करती हैं। अमेरिकन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक ओपीनियन के विचार में लिंग, आय, निवास-स्थान, आन और सम्भवतः प्रजाति, धर्म और पार्टी-सम्बन्ध हमारे मतों को बनाने में सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। हार्वुड चाइल्ड्स के विचार में हमारे जैवकीय घिराव, पशु और बनस्पति जीवन के विशिष्ट स्वरूपों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति, और उन लोगों का प्रजातीय चरित्र हमारी मनोवृत्तियों और मतों को प्रभावित करते हैं जिनके साथ हम रहते हैं। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक घिराव (surroundings) को भी उन्होंने महत्वपूर्ण कहा है--हमारे साथियों की मनोवृत्तियाँ और मत, जो उनके विचार हैं और जो वे प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक संगठन और संस्थात्मक जीवन के प्रतिमानों (patterns) पर भी इस सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक है। चाइल्ड्स के विचार में जिन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, और धार्मिक संस्थाओं से हम घिरे रहते हैं वे भी हमें विशेष रूप से प्रभावित करती हैं।*

किम्बल यंग ने जनमत को प्रभावित करने वाले कारकों को निम्नलिखित बतलाया है :—

(१) सम्बन्धित व्यक्तियों का सूचना स्तर।

(२) उनकी मानसिक प्रतिमायें, उनकी मनोवृत्तियाँ एवं मूल्य तथा उनके मस्तिष्क के चित्रों के प्रकार अथवा विषयगति (subjective determinant)।

---

* Hardwood Childs, *An Introduction to Public Opinion.*

(३) सामूहिक सदस्यता जिसमें सामाजिक वर्ग भी शामिल है।

(४) एक दूसरे का दबाव जिसमें समूह के विरोधी प्रभाव भी शामिल हैं।

(५) नेतृत्व।

(६) घटनाओं की प्रकृति (nature of events) जो सार्वजनिक विवादों की तीव्रता तथा निर्देश दोनों को प्रभावित करती है।

(७) जनमत-निर्माण के साधन अथवा माध्यम।

आधुनिक समाज में परम्परागत धारणायें लुप्त हो रही हैं क्योंकि सामाजिक परिस्थितियाँ बदल गई हैं और नई आवश्यकतायें उत्पन्न हो गई हैं। यह सब बातें हमें जीवन के धार्मिक, सामाजिक, नैतिक और राजनैतिक पहलुओं में दिखाई देती हैं। इसके अतिरिक्त, अप्रत्यक्ष संदेशवाहन के हमारे साधन, जैसे सिनेमा, समाचार पत्र, रेडियो ने लोगों की विचारशक्ति बढ़ाने का कार्य किया है जिससे जनमत बनाने की प्रक्रिया शुरू होती है। परिस्थितियाँ किस प्रकार लोगों के विचार को प्रभावित करती हैं, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हैं। लगभग पचीस वर्ष पहले तक हमारे देश में स्त्रियों द्वारा अपनी जीविका कमाने के सम्बन्ध में जनमत अनुकूल नहीं था परन्तु शिक्षा के प्रसार, योरोप से सम्पर्क और बदलती हुई आर्थिक दशाओं के कारण इस दिशा में जनमत में महान् परिवर्तन हुये हैं।

विधान (legislation) भी जनमत बदलने या निर्माण करने में एक महत्व-पूर्ण कारक है। जब कोई कानून पारित होता है तो धीरे-धीरे लोग उससे सामंजस्य करने लगते हैं और कुछ समय बाद वह कानून उचित समझा जाने लगता है। जनमत के ऊपर कानून का प्रभाव प्राइमरी शिक्षा, हरिजनों के प्रति व्यवहार, सम्पत्ति में स्त्रियों का अधिकार, एक-विवाह-प्रथा (monogamy) आदि की घटनाओं से, हमारे देश में, स्पष्ट है।

जनमत निर्माण के साधन अथवा माध्यम
(The agencies or media of public opinion formation)

जनता के पास कोई ऐसा साधन अवश्य होना चाहिये जिसके माध्यम से वाद-विवाद हो सके। जनता को तथ्यपूर्ण सूचना, अफवाह, गप्प, या और इसी प्रकार की खबरें चाहिये। जनता का चरित्रण संवेगों की अपेक्षा वाद-विवाद से अधिक होता है।

प्राद्योगिक प्रविधियों से जनमत के दायरे में परिवर्तन हो गया है। पहले यह दायरा या क्षेत्र प्राथमिक समुदाय तक सीमित था किन्तु अब सम्पूर्ण संसार तक फैल गया है। इस विस्तार में संदेशवाहनों की गति तथा यथार्थता (speed and accuracy) सबको अचंभे में डाल देती है।

छापेखाने की खोज से तथा बाद में टेलीग्राफ, टेलीफोन, रेडियो एवं टेलीविजन की खोज से जनमत निर्माण की प्रक्रिया बहुत अप्रत्यक्ष हो गई है तथा अनेक प्रकार से प्रभावित होती है। अतः आधुनिक समाज में जनमत अधिकतर प्रस, रेडियो, टेलीविजन तथा चलचित्रों पर आधारित है।

समाचार-पत्र—सामान्य तथा विशेष जनता को सूचना प्राप्त कराने का मुख्य माध्यम समाचार पत्र हैं। एक प्रमुख समाचारपत्र में अनेक प्रकार के विषयों के लिये थोड़े-थोड़ी जगह सुरक्षित रहती है। सट्टे बाजार की जनता को भी समाचारपत्रों द्वारा खबरें मिलती हैं, मिर्चों के बाजार, गल्ले के बाजार तथा वाणिज्य से सम्बन्धित जनता को वाजिज्य की पूरी खबरें मिलती हैं। जनता के मनोरंजन के लिये भी पर्याप्त स्थान रहता है। चलचित्रों आदि की समीक्षा, तथा नाटक मण्डली इत्यादि के प्रोग्राम वगैरह का हवाला भी रहता है।

स्पोर्ट्स तथा खेलकूद से सम्बन्धित खबरें भी स्पोर्ट्स पेज या कालम में दी हुई होती हैं। स्पोर्ट्स में भी सभी खेलों के बारे में समाचार दिये हुये रहते हैं। लोग अपनी रुचि के अनुसार इन्हें पढ़ते हैं। हाकी, क्रिकेट, बैडमिंटन, फुटबाल, बालीबाल, टेनिस आदि खेलों से लेकर ताश और शतरंज के बारे में भी समाचार प्रकाशित होते हैं। जो लोग सभी प्रकार के समाचार पढ़ने में रुचि रखते हैं उन्हें सामान्य जनता तथा जो किसी विशेष प्रकार के समाचार को पढ़ने में रुचि रखते हों उन्हें विशेष जनता कहा जाता है।

समाचार पत्रों में सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित खबरों के पेज भी निश्चित होते हैं। इसी तरह राजनीतिक घटनाओं, अन्तर्राष्ट्रीय खबरों तथा अन्य महत्वपूर्ण खबरों से समाचार-पत्र भरा रहता है।

सम्पादकीय कालम में सम्पादक के विचार दिये हुये होते हैं जो कि किसी समस्या से सम्बन्धित होते है तथा उसमें किसी लक्ष्य की ओर भी इशारा किया हुआ होता है। इन विचारों को पढ़ कर लोग तर्क वितर्क भी करते हैं तथा उन विचारों पर अपने दृष्टिकोण से निष्कर्ष निकालते हैं। कुछ बातों में वह सम्पादक से सहमत हो सकते हैं तथा कुछ में असहमत।

राष्ट्र के नेताओं के भाषण तथा अन्य समस्याओं से सम्बन्धित उनके विचारों का समावेश भी समाचारपत्रों में होता है। इन सबसे जनमत-निर्माण में बहुत सहायता मिलती है।

रेडियो—समाचारपत्र के बाद जनमत संग्रह करने का सबसे अधिक महत्वपूर्ण माध्यम रेडियो है। समाचारपत्र सदियों पहले से किसी न किसी रूप में थे पर रेडियो अभी हाल की ही खोज है। बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो समाचारपत्र पढ़ते तक नहीं हैं और रेड़ियो ब्राड़कास्ट से सारे समाचार जान लेते हैं। कुछ लोगों का ऐसा

भी विश्वास होता है कि समाचारपत्रों की भाँति रेडियो कम पक्षपातपूर्ण तथा कम पूर्व-धारणायुक्त रहता है। अतः समाचारपत्रों की सूचनाओं की अपेक्षा वह रेडियो से दी गई सूचनाओं पर अधिक विश्वास करते हैं।

समाचार प्रसारित करने के अलावा रेडियो मनोरंजन, साहित्यिक समीक्षाओं, खेल-कूदों का आँखों देखा हाल, किसी नेता के भाषण आदि कार्यक्रमों को भी प्रसारित करता है। अतः अनेक विषयों तथा समस्याओं से सम्बन्धित वाद-विवाद को रेडियो से भी सुना जा सकता है। इससे भी जनमत निर्माण में बहुत सुविधा मिलती है पर लोगों का ऐसा विश्वास है कि चूंकि रेडियो पर सरकार का नियन्त्रण रहता है इस कारण रेडियो से निष्पक्ष विचार नहीं ब्राडकास्ट किये जाते हैं। फिर भी जनमत के निर्धारण में रेडियो का महत्वपूर्ण हाथ है।

चल-चित्र (The Movies)—यह संदेशवाहन का ऐसा साधन है जिससे बिना पढ़े लिखे लोग भी जो अखबार आदि नहीं पढ़ पाते हैं लाभ उठा लेते हैं। भारत ऐसे देश में जहाँ शिक्षित व्यक्तियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है चलचित्रों द्वारा काफी लोग अपना मत निर्धारण करने में लाभ उठाते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से चलचित्रों में काफी रुपया लगाना पड़ता है, अतः निर्माता हमेशा इस बात का प्रयत्न करता है कि ऐसा चलचित्र बनाया जावे कि जो अधिकाँश जनता को रुचिकर प्रतीत होवे। इस बात को ध्यान में रखते हुये चलचित्रों के निर्माण से एक लाभ यह होता है कि जनमत का पता लगाने में काफी आसानी हो जाती है। एक चलचित्र को कितनी सफलता मिली इससे भी पता चल जाता है कि अमुक विचार वाले चित्र को लोगों ने कितना पसन्द किया है।

व्यक्तियों की मनोवृत्तियों एवं मूल्यों को निर्धारित करने एवं उनमें परिवर्तन करने का काफी श्रेय चलचित्रों को है। दहेज, छुआछूत, बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित अनेक चित्रों का निर्माण होता है जिससे मूल्यों एवं मनोवृत्तियों के परिवर्तन की काफी सम्भावना रहती है। यह बात अवश्य है कि तुरन्त महत्व की समस्या से सम्बन्धित समाचार तथा विचार चलचित्रों में समाचार पत्रों तथा रेडियो की भाँति शीघ्र एवं सफलतापूर्वक नहीं मिल पाते हैं। पर जहाँ तक स्थाई रूप से जनमत को बदल देने का प्रश्न है चलचित्र बहुत महत्वपूर्ण साबित हो चुके हैं। चलचित्रों से लोगों को प्रत्यक्ष संकेत प्राप्त होता है तथा उनकी भावनाओं एवं संवेगों को उभाड़ा जा सकता है जिससे उनके मतों एवं विचारों के परिवर्तन की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।

जनमत का महत्व (Importance of Public Opinion)

कुछ लोगों ने जनमत को बहुत महत्व दिया है तथा कुछ लोग जनमत को

निम्नकोटि का बताते हैं । सिसरो (Cicero) के अनुसार जनमत विवेकहीन तथा बुद्धिहीन है तथा फ्लौबर्ट (Flaubert) के अनुसार जनता साधारण रूप से पशु की तरह होती है जिसमें सूझ और समझ दोनों ही नहीं होती है । कुछ लोग इन विचारों से जरा सा भी सहमत नहीं हैं तथा जनमत को सबसे ऊँचा स्थान देते हैं । हम ऊपर देख चुके हैं कि मैकडूगल जनमत को व्यक्तिगत मत से भी ऊँचा मानता है । मैकडूगल की ही भाँति अनेक लोगों का विचार है । उनके अनुसार व्यक्तिगत मत नैतिक,बौद्धिक तथा सामाजिक दृष्टि से जनमत की अपेक्षा हीन है । वास्तव में देखा जावे तो दोनों ही विचार त्रुटिपूर्ण हैं , न तो हम जनमत को निकृष्ट कह सकते हैं और न यही कह सकते हैं कि यह व्यक्तिगत मत से भी श्रेष्ठ होता है । जैसा कि हम प्रारम्भ में ही देख चुके हैं जनमत विवेकपूर्ण भी हो सकता है तथा विवेकशून्य भी ।

इससे स्पष्ट है कि जनमत में तर्कपूर्ण तथा तर्कहीन दोनों तत्वों का मिश्रण होता है ।

जनमत तथा सरकार
(Public Opinion and Government)

जनमत को सफलतापूर्वक चलाने में भी जनमत का महत्व बहुत अधिक है । मारिस जिन्सबर्ग (Morris Ginsberg) ने अपनी पुस्तक The Psychology of Society' में इस बात को बहुत सुन्दर तरीके से समझाया है । उनके अनुसार जनमत सरकार के लिए चार निम्न कारणों की वजह से महत्वपूर्ण है ।

(१) सबसे पहली बात यह है कि जनमत का महत्व मत होने में नहीं बल्कि जनता का होने में है । जनता की स्वीकृति और अस्वीकृति एक जबरदस्त ताक़त है, और हालाँ कि यह हमेशा बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं होती, फिर भी जो लोग समाज में प्रभाव रखते हैं उनके इरादों पर लगाम लगाने का काम करती है । इस दृष्टि से जनमत का मूल्य नई बात पैदा करने में नहीं है बल्कि उसकी नियन्त्रण करने की शक्ति में है ।

(२) दूसरी बात यह है कि जनमत का सरकार के लिए महत्व इस आसान वजह से है कि यह एक बहुत बड़े आकार का जीवित तथ्य होता है और इसकी उपेक्षा करने से एक बड़ी दुर्घटना होने की आशंका रहती है । शासन सम्मति से होना चाहिये और जैसा कि अरस्तू ने बहुत पहले कहा था, जनता की एक भारी संख्या को शासन में हिस्सा लेने से अलग रखना बहुत ही अधिक खतरनाक होता है क्योंकि इसका मतलब राज्य में हमेशा असन्तुष्ट रहने वाले और सरकार का विरोध करने वाले तत्वों की उपस्थिति होगा । निश्चय ही इस दृष्टिकोण से जनमत के द्वारा शासन का मतलब आजकल के राज्यों में यह नहीं है कि हर एक नागरिक सरकार के निर्णयों में सीधा हिस्सा लेगा, बल्कि केवल यह है कि शासनकर्त्ता के वैध होने के बारे में सर्वसम्मति है,

जैसे कि बहुसंख्यकों का मत माना जायेगा। इसमें इतना और जोड़ देना चाहिये कि, जैसे लॉवेल ने कहा है, जनमत के द्वारा शासन के लिये जनमत को ऐसा होना चाहिये कि अल्पसंख्यक भी उसे तर्क से, न कि भय से, मानने को बाध्य हो जायें।

(३) तीसरी बात वह है जो इस प्रसंग में अरस्तू ने कही थी। अरस्तू ने यह कहा कि यद्यपि ज्ञान के मामलों में अज्ञानी बहुसंख्यकों का थोड़े से विशेषज्ञों से मुकाबला बहुत कमजोर होता है, फिर भी प्रायः किसी चीज का सबसे अच्छा निर्णायक वह विशेषज्ञ नहीं होता जिसने इसे बनाया है, बल्कि वे लोग होते हैं जिनको इस चीज का इस्तेमाल करना है। इस प्रकार, मेहमान किसी दावत के बारे में पकाने वाले की अपेक्षा अच्छा निर्णय दे सकता है, मकान में रहने वाला मकान के बारे में मिस्त्री के बजाय अच्छा निर्णय दे सकता है। इसी तरह यह भी माना जा सकता है कि शासित जनता ही यह अच्छी तरह जान सकती है कि सरकार रूपी जूता कहाँ काटता है या सरकार की कमजोरी कहाँ है।

(४) अन्त में जिन्सबर्ग का मत है कि जनमत के अनुकूल शासन का शैक्षिक मूल्य (educational value) भी बहुत अधिक होता है। कहा जाता है कि अधिकांश जनता मूर्ख एवं तर्कहीन होती है पर यदि उसको अवसर दिया जावे तो वह भी सरकार को ठीक चला सकती है। जैसे जनता सोचकर ही सोचना सीख सकती है उसी प्रकार अपने को शासित करके ही शासन करना सीख सकती है। (The public can only learn to think by thinking just as it can only learn to govern itself by governing itself. Ginsberg).

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार के लिये जनमत का बहुत महत्व है। पर आवश्यकता इस बात की है कि जनता सरकार के कार्यों एवं योजनाओं में सक्रिय भाग ले। इनसे जनमत में कहीं त्रुटि होगी तो पता चल जायेगा जिससे जनता अपना मत बदल सकेगी तथा सरकार भी अधिक से अधिक जनता के हित में कार्य कर सकेगी।

नेतृत्व तथा जनमत (Leadership and public opinion)

नेता जनता का प्रतिनिधित्व करता है इस कारण जनता तथा नेता की क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है। नेताओं का भी जनमत निर्माण में पर्याप्त योग रहता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(क) किसी भी विषय, समस्या या प्रश्न पर नेतागण ही सबसे पहले विचार करते हैं। जनता तो ऐसे समय प्रायः असहाय ही रहती हैं। ऐसे में नेता के प्रत्यक्ष या सम्मान संकेत द्वारा जनता नेता के मत को मानने के लिये प्रायः तत्पर ही रहती है। जनता का निर्माण नेताओं के योग से ही सम्भव होता है।

(ख) नेता लोग जनता की अस्पष्ट भावनाओं और विचारों को प्रकाशित करते हैं। जनता की भावनायें प्रायः उच्च तो होती हैं पर वह अस्पष्ट सी होती हैं। ऐसे समय पर नेता लोग ही जनता का मार्ग प्रदर्शन करते हैं तथा उनकी धुंधली भावनाओं को रोशनी में लाते हैं तथा उसके क्षेत्र को भी विकसित करते हैं।

(ग) नेता लोग जन साधारण की रूढ़ियों एवं मनोवृत्तियों का प्रयोग भी अपने व्यक्तिगत ध्येयों की पूर्ति के लिये कर लेते हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि जनमत के नेता और जनता के मत में घनिष्ठ सम्बन्ध है। नेता और मत दोनों जनता द्वारा निर्धारित होते हैं पर नेता जनता को अपना मत निर्धारित करने में अमूल्य सहयोग प्रदान करता है। अतः नेता एवं जनमत में एक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सामाजिक नियंत्रण में जनमत की भूमिका
(Role Of Public Opinion in Social Control)

आधुनिक समाज में प्राद्योगिकी के विकास के साथ ही जनता का महत्व बहुत बढ़ गया है। इसके सदस्यों की संख्या अत्यन्त विशाल हो गई है और अनेक समस्याओं को लेकर करोड़ों सदस्यों वाली जनता का निर्माण होता है। ऐसी जनता के मत के प्रति न सरकार, न कोई संगठन उदासीन रह सकता है। अनेक समस्याओं पर इतने बड़े पैमाने पर जनमत का होने का यह अर्थ है कि खबर फैल रही है और लोग अपने मस्तिष्क में तर्क-वितर्क कर रहे हैं जो सामान्य वाद-विवाद का रूप ले सकता है। आधुनिक समाज मुख्यतः जनमत और जनता के व्यवहार पर निर्भर करता है।

जनता द्वारा कोई सामान्य निर्णय का भीषण प्रभाव हो सकता है। जनता की रुचि में अन्तर किसी उद्योग को नष्ट कर दूसरे उद्योग को उन्नत कर सकता हैं। किसी बात के प्रति तीव्र जन-प्रतिक्रिया युद्ध करा सकती है या क्रान्ति उत्पन्न करा सकती हैं। प्रत्येक सरकार को अपने पक्ष में अनुकूल जनमत बनाना पड़ता है अन्यथा उसे पदच्युत होने का खतरा हमेशा बना रहता है।

जनमत व्यक्तियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है। जनमत व्यक्तियों के विश्वासों, आदर्शों, मनोवृत्तियों, मूल्यों आदि के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका अन्ततः परिणाम यह होता है कि जनमत के अनुकूल व्यक्ति को व्यवहार करना पड़ता है। इससे सर्व-साधारण के व्यवहार में एकरूपता आती है जो जनमत के निर्माण में सहायक है। प्रजातांत्रिक समाज में तो जनमत विशेष महत्व रखता है। ऐसे समाज में तो वही सही है जिसके पक्ष में जनमत है।

इतिहास में इस बात के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जिनसे पता लगता है कि जनमत के आगे राजाओं को भी झुकना पड़ा। उदाहरण के लिए राज्य के एक

धोबी के कहने पर रामचन्द्र जी ने सीता जी को त्याग दिया। आज के युग में तो जनमत की शक्ति असीम है। अख़बार, रेडियो, मेगज़ीन, पुस्तकों आदि के द्वारा जनता अपने मत को प्रकट करती है।

(१) **प्राथमिक समाज में सामाजिक नियंत्रण में जनमत की भूमिका**—प्राथमिक समाज जैसे कि गाँव में जनमत सामाजिक नियन्त्रण का एक महत्वपूर्ण साधन होता है। गांव में आबादी कम होने के कारण सब व्यक्ति एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं और एक दूसरे के कार्यों पर निगाह रखते हैं। प्राथमिक समाज में जनमत के प्रभाव का उदाहरण हमें ऐसी अनगिनती घटनाओं में मिलता है जिनमें अवैध यौन सम्बन्ध रखने वाले स्त्री-पुरुष सम्मिलित आत्महत्या कर लेते हैं। सामाजिक निन्दा और समाज से बहिष्कृत किये जाने का ख़तरा उन्हें प्राण त्याग करने के लिए विवश करता है। प्राथमिक समाज में यह सामान्य विश्वास रहता है कि जनमत सामाजिक कल्याण के लिये ही होता है इसलिये उसका विरोध करना ग़लत होगा। दूसरे, प्राथमिक समाज रूढ़िगत होता है और वहां अशिक्षा का जोरों से विरोध किया जाता है।

(२) **द्वैतीयक समूहों में सामाजिक नियन्त्रण में जनमत की भूमिका**—'द्वैतीयक समूहों में संचार के साधनों के विकास के साथ जनमत की शक्ति बेहद बढ़ गई है। एक शहर में हुई हड़ताल सारे देश में प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है क्योंकि अखबार, रेडियो आदि के द्वारा समाचार तत्काल फैल जाते हैं जो हम-पेशेवरों में सहानुभूति उत्पन्न करते हैं। द्वैतीयक समूह के ही द्वारा आधुनिक समाज में व्यक्ति की आवश्यकतायें पूरी होती हैं इसलिये उनको नाराज करके व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। आज का व्यक्ति राजनीतिक, साँस्कृतिक, सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेना चाहता है परन्तु उसके लिये यह आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में अन्य सदस्यों की नज़र में उसकी ख्याति अच्छी हो। आज का युग प्रतियोगिता का युग है जिसमें बग़ैर सद्भावना बनाये कोई भी व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता। बड़े बड़े मिनिस्टर जनमत ख़िलाफ़ होने पर हटा दिये जाते हैं। चीन के साथ युद्ध छिड़ने पर उस समय के प्रतिरक्षा मंत्री कृष्णामेनन के विरुद्ध जनमत इतना प्रबल हो उठा कि पं० नेहरू को उन्हें हटाना पड़ा।

(३) **कानून निर्माण में जनमत**—क़ानून निर्माण में आज के प्रजातन्त्र के युग में जनमत का विशेष महत्व है। आज मजदूरों के हितों, स्त्री कल्याण, बाल कल्याण आदि के लिये ऐसे अनेक क़ानून हमारे देश में हैं जिनको प्रबल जनमत के कारण बनाया गया। सम्पत्ति की हदबन्दी बहुत हद तक जनमत के कारण हो रही है। राजनीतिक चुनाव के समय काँग्रेस ने आर्थिक भेद को दूर करने का वचन दिया

था जिसके कारण अब आवश्यक हो गया है कि गाँव और शहरों में सम्पत्ति की हद-बन्दी सम्बन्धी कानून बनाये जायें अन्यथा काँग्रेस सरकार के विरुद्ध जनमत तैयार हो जायेगा और उन्हें पदच्युत होने का खतरा पैदा हो जायेगा। बैंकों का राष्ट्रीय-करण होने का एक प्रमुख कारण जनमत था।

(४) **क़ानून रद्द करने में जनमत**—जहाँ एक ओर जनमत क़ानून बनवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है वहाँ कुछ क़ानूनों को रद्द करवाने में भी जनमत का हाथ रहता है। उदाहरण के लिये हम हाल में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भूमि-भवन-कर सम्बन्धी बिल लाये जाने की घटना को ले सकते हैं। इसका जनता द्वारा इतना प्रबल विरोध किया गया कि सरकार को वह बिल वापस लेना पड़ा। इसी प्रकार पहले जब हिन्दू कोड बिल पार्लमिन्ट में पेश किया गया तो सारे देश में उसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई जिससे वह वास्तविक रूप में पास न हो सका। उसमें कुछ संशो-धन करने को सरकार को तैयार होना पड़ा।

(५) **सरकार पर नियंत्रण**—जनमत का सरकार पर नियंत्रण रहता है। रिश्वतखोरी, पक्षपात, सरकारी खर्च पर विलास, अकर्मण्यता आदि के मामलों में सरकारी पदाधिकारियों को हमेशा सावधान रहना पड़ता है। आज के प्रजातंत्र के युग में जरा जरा सी बात पर समाचार-पत्रों में आलोचना छपने लगती है, हड़तालें, प्रदर्शन, घिराव आदि होने लगते हैं। जनमत का ही यह प्रभाव है कि अनेक मिलों और कॉलेजों के प्रशासन में मजदूर-प्रतिनिधि और छात्र-प्रतिनिधि भी रखे जाने लगे हैं। मिल मालिकों या अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों और संगठनों के साथ पक्षपात करने पर जनमत की प्रतिक्रिया और प्रभाव का उदाहरण हमें उस घटना में मिलता है जिसमें केन्द्रीय सरकार ने लाला राम रतन गुप्त का ३१ लाख रुपया आय कर में माफ कर दिया था। इस कार्य के प्रति सारे देश में ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया हुई कि सरकार को अपना फैसला वापस लेना पड़ा।

(६) **शैक्षिक महत्व**—जनमत के द्वारा जनता के शासन की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा जनता को शिक्षा मिलती है। प्रजातंत्र में सभी समस्याओं पर व्यक्ति स्वयं विचार करते हैं। इससे उनकी विचार-शक्ति विकसित होती है। इस सम्बन्ध में गिन्सबर्ग ने कहा है: "जनता विचार करना केवल तभी सीख सकती है जब वह सोचे, जिस प्रकार कि वह अपने ऊपर शासन करना तभी सीख सकती है जब वह अपने ऊपर शासन करे।" क्योंकि प्रजातंत्र में सामान्य जनता सरकार के प्रत्येक कार्य पर प्रतिक्रिया करती है इसलिये वह देश के शासन में अप्र-त्यक्ष रूप से शामिल रहती है और अपने ऊपर शासन करना सीखती है।

---

१० नेतृत्व (Leadership)

यह एक सामाजिक सत्य है कि इस संसार में शायद ही कोई मानव संघ हों जिनमें तत्काल या थोड़ी देर से नेता का आविर्भाव न होता हो। जहाँ भी दो या दो से अधिक व्यक्ति एक सामान्य उद्देश्य के लिये एक दूसरे से अन्त:क्रिया करते हैं, नेता और अनुयायी का सम्बन्ध तत्काल स्थापित हो जाता है। सामान्यतः कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो आगे बढ़कर आदेश देते हैं, जबकि दूसरे व्यक्ति सुनते हैं, समर्पण करते हैं, और आदेश का पालन करते हैं। नेतृत्व एक प्रकार का प्रभुत्व (dominance) है। यह एक ऐसा नेतृत्व है जो अनुयायियों के द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है, या कम से कम इतने व्यक्तियों द्वारा स्वीकार किया जाता है कि उनकी देखा-देखी अन्य व्यक्ति भी उसका नेतृत्व स्वीकार कर लेते हैं। इसको हम व्यापक रूप में नेतृत्व कहते हैं यद्यपि यह प्रजातन्त्रीय और तानाशाही दोनों ही रूप ले सकता है।

लापियर और फार्न्सवर्थ ने कहा है कि कि नेतृत्व वह व्यवहार है जो दूसरों के व्यवहार को अधिक प्रभावित करता है बनिस्बत इसके कि दूसरों का व्यवहार नेता के व्यवहार को अधिक प्रभावित करे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नेता अग्रणी रहता है, स्वीकार किये जाने योग्य संकेत देता है, पथ प्रदर्शन करता है, दूसरों के लिये मॉडल का कार्य करता है, विचार प्रकट करता या आदेश देता है जिनका आदर और पालन किया जाता है। इन सब घटनाओं में, जो भी नेता करता है वह स्वयं को प्रभावित करने की अपेक्षा दूसरों को अधिक प्रभावित करता है।

इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि नेता पूर्ण (absolute) या निरंकुश प्रभुत्व (rigid domination) के लिये प्रयास करेगा तो दूसरों का सहयोग प्राप्त करने की अपेक्षा वह विरोध अधिक पावेगा। जो नेता इस बात का ध्यान नहीं रखता कि दूसरे व्यक्ति उससे क्या आशा रखते हैं वह अधिक दिन तक अपना नेतृत्व क़ायम नहीं रख सकता। एक सफल नेता अपने शब्दों और कार्यों की प्रतिक्रिया को ध्यान से देखता है और उसके अनुकूल सामंजस्य करता है। इस अर्थ

में यह ठीक ही कहा गया है कि नेता का स्वयं उन लोगों द्वारा नेतृत्व होता है जिनका वह नेतृत्व करना चाहता है।*

मानव-क्रिया के प्रत्येक संगठन में नेतृत्व को प्रारम्भ से ही यथेष्ठ महत्व प्रदान किया जाता रहा है। प्रत्येक संगठन में नेतृत्व और समूह मनोबल (group morale) में स्पष्ट रूप से यथार्थ (positive) सम्बन्ध रहा है। एक उद्योगपति, सैनिक, अधिकारी, क्रीड़ा स्थल का निर्देशक, दल का प्रमुख, धार्मिक नेता, राजनीतिक नेता, परिवार का पिता, विश्वविद्यालय का विभागीय अध्यक्ष अथवा किसी अन्य दूसरे सामाजिक समूह के नेता का सम्बन्ध अपने समूह की नैतिक स्थिति एवं मनोबल से रहता है। मनोबल का सम्बन्ध किसी समूह की कार्य प्रणाली के स्तर तथा समूह की एकता और परस्पर आधीनता से रहता है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि समूह का नेता ही प्रारम्भ से नैतिक स्थिति की समस्या से सम्बन्धित रहता है। समूह के हर अन्य सदस्य से अधिक अधिकार नेता को ही होता है और वही समूह की नैतिक स्थिति में वृद्धि के लिये उत्तरदायी होता है।

ऐसे योग्य और उचित व्यक्तियों का बहुत अभाव है जिनमें दूरदर्शिता हो और जो नेता पद के लिये सर्वगुण सम्पन्न हों। एक दूरदर्शी व्यक्ति के विचार से संसार की अधिकांश समस्याओं का हल उस समय तक नहीं हो सकता है जब तक कि ठीक प्रकार से नेतृत्व का विकास नहीं हो जाता है और जब तक कि आधुनिक नेताओं को उचित प्रशिक्षण नहीं मिलता है और उनका चुनाव तरुण पीढ़ी में से नहीं किया जा सकता है।

इतिहास, सामाजिक दर्शन और राजनीति आदि विषयों में नेतृत्व का अध्ययन वर्षों से होता आ रहा है। एक मत के अनुसार नेता वह व्यक्ति हो सकता है जिसने कला, विज्ञान, व्यापार या खेल-कूद में पूर्ण रूप से प्रवीणता प्राप्त कर ली हो। दूसरे के अनुसार नेता को केवल उसकी अपूर्व योग्यता एवं गुणों से समझा जा सकता है। तीसरे के विचार से नेता वह है जो कि अमुक तरह व्यापार करता हो, कुछ लोगों के विचार से नेता वह है जो दूसरे लोगों को प्रभावित कर लेता हो।

एक व्यक्ति जो नेता बन जाता है सामाजिक समूह का एक अंश हो जाता है। वह विशेष प्रकार का सम्बन्ध जो उसका अन्य व्यक्तियों से रहता है वह स्थिति (status) और कार्य (role) का सम्बन्ध है। समूह की स्थिति के अनुसार सर्वोच्च स्थान-प्राप्त व्यक्ति ही नेता है। वह समूह के पारस्परिक सम्बन्धों को मार्ग दिखलाता है और इन्हीं प्रत्याशाओं के समूह में उसके कार्य का निर्धारण होता है।

बोगार्डस (Bogardus) के शब्दों में नेतृत्व समूह की अवस्थाओं में व्यक्तित्व

---

* "Leadership increases in potency at the cost of decrease in freedom of leadership." —Brown

की क्रिया है। इनमें एक व्यक्तित्व के प्रभुत्वशाली गुण और अनेक व्यक्तियों के प्रभुत्वहीन गुण सम्मिलित रहते हैं। यह एक व्यक्ति के विशिष्ट गुणों और दूसरे के गुणों की पारस्परिक अन्त.क्रियाओं का द्योतक है। इसमें कई व्यक्तियों के कार्यों की प्रविधि को एक व्यक्ति के द्वारा बदला जा सकता है।

एक व्यक्ति में न केवल नेतृत्व के गुण होते हैं वरन् उसमें अनुसरणत्व (followership) के गुण भी होते हैं। वास्तव में व्यक्तित्व को नेतृत्व और अनुसरणत्व में बाँटा जा सकता है यद्यपि इन दोनों को विभक्त करने वाली रेखा न तो स्पष्ट है और न स्थायी ही है। सही तो यह है कि एक सामाजिक स्थिति में जो नेतृत्व के गुण हैं, दूसरी स्थिति में वही अनुसरणत्व के गुण हैं। सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व के अधिक सक्रिय, शारीरिक एवं मानसिक गुण नेतृत्व के द्योतक हैं और कम सक्रिय गुण अनुसरणत्व के द्योतक हैं।

नेतृत्व का व्यक्तित्व और उसके पूरक तत्व सामाजिकता से अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि व्यक्तित्व के गुणों के आधार पर एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से अन्तर स्पष्ट किया जाता है, तो सामाजिकता व्यवहार के ऐसे गुणों का मिश्रण है जिनके द्वारा एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति में पहचान की जाती है।

अपने व्यक्तित्व के आधार पर एक व्यक्ति अपने साथियों से भिन्न और उच्च प्रकार के कार्यों को करता है जिनके द्वारा वह नेतृत्व के लिये योग्य सिद्ध होता है। वास्तव में व्यक्तित्व का अधिकांश किसी प्रकार की उच्चता नहीं प्रदर्शित करता है। फिर भी उच्च व्यक्तित्व का प्रदर्शन उन दिशाओं में होना चाहिये जो किसी सामाजिक समूह के लिये प्रशंसनीय है अन्यथा ऐसे गुण-सम्पन्न व्यक्ति को लोग नेता नहीं कहेंगे।

अपनी सामाजिकता के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति अपने साथियों को समझने में, उनकी आवश्यकताओं को जानने में और कठिनाइयों में उनको उबारने के साधनों को बतलाने में समर्थ हो पाता है। सामाजिकता कभी-कभी सामान्य स्थान के व्यवहार में भी लुप्त हो सकती है और नेतृत्व को योग प्रदान करने में असमर्थ रहती है। यदि वह गुण मध्यम श्रेणी के स्तर पर किसी को सामाजिक मूल्य के अनुसार नवीन कार्य करने के लिये उत्तेजित नहीं करता है तो नेतृत्व का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

अब हम नेतृत्व को बिल्कुल दूसरे दृष्टिकोण से भी देख सकते हैं। नेतृत्व एक समूह का प्रमेय तत्व (group phenomenon) है। यह सामूहिक जीवन की उत्पत्ति है। यह एक अति-वृद्धि (out growth) है जिससे सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन प्रभावित होते हैं। जब कभी भी सामाजिक मूल्यों पर आक्रमण किया जाता है, उसका प्रमुख प्रतिद्वन्दी नेतृत्व के रूप में सामने आ जाता है। इस आक्रमण के

विरुद्ध सबसे योग्य रक्षक को भी नेता चुना जा सकता है। परन्तु यह चुनाव दूसरे समूह के लोगों द्वारा होता है। इस प्रकार वह व्यक्ति नेता बन जाता है जो सामाजिक मूल्य पर आक्रमण करने में दूसरों से अधिक दक्षता प्रदर्शित करता है अथवा उनकी रक्षा में अधिक दक्ष होता है। अत: कांग्रेसी, समाजवादी, साम्यवादी, और स्वतन्त्र पार्टी के नेता सामूहिक जीवन में एक ही काल में उत्पन्न हो जाते हैं।

चूंकि एक व्यक्ति एक ही समय में कई समूहों का सदस्य हो सकता है उसका इन समूहों से सम्बन्ध काफी विभिन्न हो जाता है। उदाहरण के लिये हम कह सकते हैं कि वह एक समूह का नेता हो सकता है और बाकी समूहों में प्रत्येक का अनुयायी हो सकता है। एक समूह के एक क्षेत्र में वह नेता हो सकता है तथा उसी समूह के दूसरे क्षेत्रों में वह अनुयायी हो सकता है। अपने सामान्य जीवन में उसको प्रतिदिन पीछे भी चलना पड़ता है और आगे भी चलना पड़ता है जैसा कि इस बात से स्पष्ट है कि वह विभिन्न समूहों में नेतृत्व और अनुसरणत्व का कार्य करता है। नेतृत्व के इतिहास में समूह का प्रभाव पड़ता है, इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। जब्र कला की प्रशंसा की जाती है तो बड़ा कलाकार सामने आ जाता है: युद्ध काल में वीर योद्धागण उत्पन्न हो जाते हैं। विज्ञान के युग में अद्भुत अन्वेषणों की संख्या बढ़ जाती है। व्यापारिक युग में उद्योग के सेनानियों की संख्या बढ़ने लगती है। जिस प्रकार समय-समय पर समूह की आवश्यकताओं और मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार नेतृत्व के प्रमुख प्रकारों में भी परिवर्तन होता रहता है। नेतृत्व न केवल व्यक्तित्व और समूह का प्रमेय है वरन् एक सामाजिक प्रक्रिया भी है जिसमें अनेक व्यक्ति एक दूसरे के प्रति मानसिक सम्पर्क में आते हैं; जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के ऊपर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनेक लोगों की क्रियायें संगठित होकर एक व्यक्ति के द्वारा किसी विशिष्ट दिशा की ओर ले जाई जाती हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनेक व्यक्तियों की धारणायें और मूल्यों को एक व्यक्ति के द्वारा परिवर्तित कर दिया जाता है। यह एक ऐसो प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक पग पर अनुयायी भी अपना प्रभाव दिखलाते हैं जिससे कि प्राय: नेता भी प्रभावित होता है।

नेतृत्व एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें नेता और अनुयायियों के बीच में एक आदान-प्रदान होता रहता है। नेता का कार्य प्राय: स्वत: स्पष्ट होता है जब कि अनुयायी का कार्य प्राय: अस्पष्ट रहता है। फिर भी अनुयायी अति आवश्यक होता है क्योंकि बिना उसके नेता भी नहीं हो सकता। वह महत्वपूर्ण है क्योंकि वह अपने को हटा कर कार्यों में भाग लेना बन्द कर सकता है। वह इस कारण भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह अनुसरण करने के स्थान पर आज्ञा की अवहेलना भी कर सकता है।

इसीलिये नेता को लगातार अनुयायियों की विभिन्न सम्भव प्रतिक्रियाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है।

नेतृत्व एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक असंतोष और अशान्ति को कम से कम अस्थायी रूप से अनुकूल किया जा सकता है। इसका जन्म संकट व असंगठित दशा में हो सकता है और अन्त संगठित अवस्था में होता है। कभी-कभी यह स्थिरता से असंगठन की ओर जाकर संगठन के नये स्तर को जन्म देता है। इसमें प्रायः एक लक्ष्य होता है जिसको प्राप्त कर लेने के बाद नये प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता होती है।

अब हमें इस नये विवेचन की आवश्यकता है कि **क्या प्रभुत्व और नेतृत्व एक ही वस्तु है।**

लापियर और फार्न्सवर्थ नेतृत्व की परिभाषा इस प्रकार करते हैं: "नेतृत्व वह व्यवहार है जो लोगों के व्यवहार को उससे अधिक प्रभावित करता है जितना कि उनका व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।"* ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें प्रायः वह सभी सामाजिक अन्तःक्रियायें शामिल हैं जिनके लिये 'नेतृत्व' शब्द का प्रयोग करते हैं। इसमें कुछ व्यक्तियों को किसी दूसरे व्यक्ति का अनुसरण करने के लिये बाध्य किया जाना भी शामिल रहेगा और इसमें व्यक्तियों को डरा धमका कर या दण्ड का भाव दिखला कर विवश कर देना भी शामिल रहता है। उदाहरण के लिये पिता अपने बच्चों को कोई कार्य करने के लिये कहता है और बच्चे भय के कारण उसकी आज्ञा मानते हैं। ऐसे सारे उदाहरण प्रभुत्व के हैं न कि नेतृत्व के। पिता का अपने बच्चों पर प्रभुत्व रहता है।

डब्लू० जे० एच० स्प्राट (W. J. H. Sprott) का कथन है कि वास्तव में नेतृत्व शब्द के अनुयायियों का नेता के प्रति अपनी इच्छानुसार समर्पण का बोध होता है। यद्यपि ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जब कि समर्पण बहुत ही कम होता है तथापि उस समय भी 'नेतृत्व' शब्द का प्रयोग होना चाहिये। किम्बल यंग (Kimball Young) का मत है कि नेतृत्व को अधिक अच्छे प्रकार से स्पष्ट करने के लिये प्रभुत्व के अर्थ में प्रयोग करना चाहिये। प्रभुत्व स्वतन्त्रतापूर्वक और इच्छानुसार अथवा युयुत्सा (Aggression) और दबाव के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। एक व्यक्ति जो उन लोगों से स्वतन्त्र और इच्छानुसार समर्थन प्राप्त करता है, जिन्हें वह निर्देश देता है या प्रभावित करता है, नेता कहलाता है। प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में यही मुख्य बात होती है।

---

* "Leadership is behaviour that affects the behaviour of other people more than their behaviour affects that of the leader."

—La Pierre and Farnsworth.

नेतृत्व को कभी-कभी हम अग्रणी (leading) के अर्थ में भी प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए हम प्राय: अग्रणी वैज्ञानिक, अग्रणी गायक, अग्रणी कलाकार या कक्षा का अग्रणी विद्यार्थी आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसको हम प्रसिद्धि के अर्थ में लेते हैं।

पिजर्स (Pigors) ने नेतृत्व और प्रभुत्व में निम्न प्रकार से अन्तर प्रकट किया है। नेतृत्व पारस्परिक उत्तेजना की प्रक्रिया है जब कि प्रभुत्व ऐसे नियन्त्रण की प्रक्रिया है जिसमें उच्चता के आधार पर एक व्यक्ति या एक समूह अपनी इच्छानुसार दूसरों की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। एच० एच० ऐन्डरसन (H. H. Anderson) का कथन है कि प्रभुत्वशील व्यवहार एक कठोर और दृढ़ व्यक्तित्व रचना (personality structure) है जो आन्तरिक तनाव को प्रकट करता है और वाह्य तनाव को उकसाता है। किम्बाल यंग के मतानुसार जब संस्कृति के आधार पर शक्ति निश्चित कर दी जाती है तब एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के ऊपर अधिकार हो जाता है। इसका उदाहरण पिता या माता का बच्चों के ऊपर नियन्त्रण है।

नेतृत्व और प्रधानत्व
(Leadership and Headship)

प्रभुत्व का वह स्वरूप जो एक समूह के सदस्यों पर प्रभाव डालता है प्रधानत्व कहलाता है। और वह स्वरूप जिसमें स्वतंत्रता एवं इच्छापूर्वक अनुसरण किया जाता है उसे 'ऐच्छिक नेतृत्व' (voluntary leadership) कहते हैं। इसमें प्राय: श्रेष्ठता के आधार पर शक्ति या स्थान का वितरण होता है। इसके अतिरिक्त इन स्थानों के साथ कार्यों (roles) का सम्बन्ध भी होता है। उदाहरण के लिये एक कालेज के प्रधानाचार्य, उपाचार्य और विभागीय अध्यक्ष विद्यालय की शक्ति वितरण को प्रदर्शित करते हैं।

ऐच्छिक नेतृत्व प्रभुत्व का वह स्वरूप है जिसमें समूह के सदस्य इच्छानुसार प्रभावित अथवा नियन्त्रित होते हैं। ऐच्छिक नेताओं के उदाहरण एक प्रजातन्त्र में चुने हुए पदाधिकारी हैं।

जिन तरीकों से व्यक्ति नेता बन जाते हैं उन तरीकों को आर्डवे टीड (Ordway Tead) ने अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। वह कहता है कि—

(१) स्वयं बना हुआ या स्वनियन्त्रित नेता (self constituted leader) वह व्यक्ति है जो प्रभुत्वशाली (assertive) अहं (ego) के कारण दृढ़ निश्चय करके अपने को स्वयं आगे की ओर बढ़ाता है और यह समझाता है कि जो कुछ वह सोचता है महत्वपूर्ण है।

(२) समूह के द्वारा चुना हुआ नेता भी होता है। प्रजातांत्रिक प्रणाली में

समूह के व्यक्ति मत प्रदान करके अपने नेता को चुनते हैं। प्रचारक तत्वों से कभी-कभी अप्रत्यक्ष रूप से समूह के व्यक्तियों द्वारा चुनाव प्रभावित भी हो जाता है।

(३) कुछ नेता ऐसे भी होते हैं जिन्हें संस्थापित शक्ति (constituted authority) के द्वारा नियुक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति करता है। यह सदस्य बाद में सरकार के विभिन्न विभागों के नेता बन जाते हैं।

नेताओं के प्रकार
(Types of leaders)

बोगार्डस ने संसार के सभी नेताओं को निम्नलिखित प्रकारों से बाँटा है—

(१) प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष (direct or indirect)

(२) सपक्षी अथवा वैज्ञानिक (partizan or scientific)

(३) सामाजिक, अधिशासी अथवा मानसिक (social, executive or mental)

(४) अनियन्त्रित अथवा निरंकुश, पैत्रिक अथवा प्रजातांत्रिक (autocratic, paternalistic or democratic) या

(५) नेतृत्व में विशेषज्ञ (specialistic in leadership) जैसे पैगम्बर, सन्त, विशेषज्ञ, और अफसर।

नेताओं के प्रकार उनके गुणों को प्रकट करते हैं जो उनमें (नेताओं) मुख्य रूप से पाये जाते हैं और जिनसे उनके अनुयायी सन्तोष प्राप्त करते हैं।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष (Direct or Indirect)

प्रत्यक्ष नेतृत्व का सम्बन्ध व्यक्तियों से होता है न कि वस्तुओं से। वह स्वयं प्रकट होता है तथा अनुनय करता है या आज्ञा देता है। यह मौखिक शब्दों द्वारा नेतृत्व करता है। यह या तो देखा जा सकता या सुना जा सकता है या देखा भी जा सकता है और सुना भी जा सकता है। यह व्यवहार की रूपरेखा तैयार करता है और अनुमति प्राप्त कर लेता है। वह समर्थन या विरोध या दोनों प्राप्त कर सकता है और वह भी एक ही अवसर पर।

प्रत्यक्ष नेतृत्व का ज्वलन्त उदाहरण कोलम्बस है जो साथियों के छोटे से नाविक बेड़े को लेकर प्रसन्नतापूर्वक निकल पड़ा था। रूजवेल्ट का उदाहरण भी दिया जा सकता है जो थोड़े से साथियों को लेकर सेन जुआन पहाड़ी पर घुड़सवारी के लिये निकल पड़े थे। सन्त या धार्मिक नेता जो लोगों को अपना मत बदलने के लिए प्रेरित करते हैं या अध्यापक जिसके निर्देशन पर कक्षा की कार्य-विधि निर्भर करती है आदि प्रत्यक्ष नेताओं के अन्तर्गत आ जाते हैं। प्रत्यक्ष नेतृत्व में व्यक्तित्व का कार्य बहुत महत्वपूर्ण होता है।

नेतृत्व अप्रत्यक्ष उस समय होता है जब कि जल्दी या देर से मानव क्रिया की तरंग में परिवर्तन आ जाता है। थामस ए० ऐडीसन ने "मैडिंग क्राउड" (The madding crowd) के अलावा एक के बाद अनेक भौतिक आविष्कार कर डाले। यह आविष्कार इस सीमा तक बढ़ गये कि मानव जीवन और संस्थायें उससे बहुत प्रभावित हो गई हैं। ऐडिसन ने 'महान नेता' का खिताब अस्वीकार कर दिया होता लेकिन फिर भी उसके आविष्कारों के फलस्वरूप जो मानव क्रियाओं और धारणाओं में परिवर्तन हुआ है उससे उसे अपूर्व ख्याति मिली।

प्रत्यक्ष नेता के सुनहरे दिन प्रायः उसके जीवन काल में होते हैं। अप्रत्यक्ष नेता के लिए यह अधिक सम्भावना रहती है कि उसकी मृत्यु के बाद ही उसकी ख्याति में वृद्धि होगी।

सपक्षी (Partizan) और वैज्ञानिक (Scientific) नेता :

सपक्षी नेता किसी वस्तु या व्यक्ति के पक्ष में कार्य करता है। प्रत्येक अच्छे कार्य को करने के लिये एक नेता होता है और प्रत्येक अभिनेता सपक्षी होता है। प्रत्येक नेता में एक विशेष गुण होता है कि वह अपने दल के अच्छे पहलुओं को प्रकाश में लाता है और कमजोर पहलुओं को मालूम नहीं होने देता है। यह प्रायः इच्छानुकूल चिन्तायुक्त मूर्तिमान (embodiment) है, इससे एकांगी चित्रण होने की भावना बन जाती है। अतः जब एक नेता किसी योजना का समर्थन करता है तब यह जानने की आवश्यकता रहती है कि वह किसी दल या मत का प्रतिनिधित्व करता है।

वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने वाला वकील और राजनैतिक नेता आदि सबल सपक्षी (strong partizan) नेता के दृष्टान्त हैं। व्यापारी, धार्मिक नेता व राष्ट्र वादी आदि भी सपक्षी नेताओं की श्रेणी में आ जाते हैं लेकिन उतने प्रत्यक्ष रूप से नहीं जितने वकील, राजनैतिक नेता आदि। सपक्षी नेताओं में कमियां होते हुए भी संसार उनके कृत्यों द्वारा अधिक मनोरंजक, दिलचस्प व सनसनीपूर्ण हो जाता है।

वैज्ञानिक नेता कम होते हैं। विज्ञान के क्षेत्र के बाहर तो विशेषतः और भी कम होते हैं। वैज्ञानिक नेता का ध्यान सत्य की ओर ही लगा रहता है। वह सत्य की खोज में ही लीन रहता है और अपने हितों आदि की ओर से उदासीन रहता है।

वैज्ञानिक नेता एक अच्छा कलाकार (actor) नहीं होता है। वह प्रत्यक्ष सामाजिक व अधिशासी नेता नहीं होता। वह अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अधिक लगा रहता है और उसे अपनी योजना को कार्यरूप में परिणित करने की अधिक चिन्ता लगी रहती है।

सामाजिक (Social), अधिशासी (Executive) और मानसिक (Mental) नेतृत्व :

सामाजिक नेता वह है जो समूह के सम्मुख अपना कार्य करता है। सामाजिक

नेतृत्व लगभग प्रत्यक्ष नेतृत्व का पर्यायवाची है। सामाजिक नेता ध्यान बनाये रखने, उत्पन्न करने, या प्रेरणाओं के सृजन करने आदि की कलाओं में बहुत दक्ष होता है।

इसके विपरीत मानसिक नेता अपना अच्छे से अच्छा कार्य भी एकान्त में करता है। उत्साही अनुयायियों के सामने तो सामाजिक नेतृत्व बहुत प्रेरक एवं उत्तेजक हो जाता है। मानसिक नेता के विकास के लिए शान्तिपूर्ण वातावरण व एकान्त स्थान का होना आवश्यक है। विचार ही उसकी मुख्य उत्पत्ति है। लेकिन उसे नेतृत्व पद पर आसीन रहने के लिये यह आवश्यक है कि उसके द्वारा प्रतिपादित विचार कार्यरूप में परिणित करने योग्य हों और वे जीवन की गहन आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों।

अधिशासी नेता में सामाजिक व मानसिक दोनों प्रकार के नेताओं के गुण होते हैं। वह जनता के साथ कार्य करने वाला होना चाहिये तथा उसमें नये विचारों का समावेश भी होना चाहिये। सामाजिक नेता की भाँति उसे भी समय और आवश्यकता के अनुसार कार्य करने वाला होना चाहिए। अधिशासी नेता संगठन की शक्ति से सम्पन्न होता है। अधिशासन प्राय: प्रकाश में नहीं रहता है और अधिशासी नेता सामाजिक और मानसिक नेताओं के मध्य का कार्य करता है।

अनियंत्रित अथवा निरंकुश (Autocratic), पैत्रिक (Paternalistic) और प्रजातांत्रिक (Democratic) नेतृत्व :

अनियंत्रित अथवा नियंत्रित नेता लोगों से बिना राय लिये हुये उन पर शासन करता है। नेता अपनी इच्छा, आवश्यकता और सुविधा के अनुसार दूसरे लोगों की कार्य-प्रणाली को बदल देता है। निरंकुश नेतृत्व वस्तुगत (objective), वाह्य (overt) एवं सकारात्मक (positive) होता है।

पैत्रिक नेतृत्व संभवता सबसे अधिक सामान्य एवं सार्वभौमिक होता है। इसमें नेता अपने समूह के सदस्यों के लिये पितृ-तुल्य होता है और उनके कल्याण को ध्यान में रखता है। यदि वह समझता है कि समूह के सदस्यों ने गलत सुझाव रखे हैं तो उसे अधिकार होता है वह उन सुझावों को न स्वीकार करे। निरंकुश एवं पैत्रिक दोनों प्रकार के नेतृत्व में सबसे बड़ा दोष यह है कि जब समूह से नेता निकल जाता है तो समूह असहाय अवस्था में रह जाता है।

प्रजातान्त्रिक नेतृत्व के विकास का आधार समूह की आवश्यकतायें हैं। इसमें नेता का कार्य यह होता है कि वह सदस्यों को उनकी आवश्यकतायें बतलाये और उनकी पूर्ति के तरीकों पर प्रकाश डाले। प्रजातांत्रिक नेता जनता को अच्छे से अच्छे स्तर पर ले जाने की भावना रखता है। अपने स्वार्थ के अनुसार उनकी कार्य-विधि को बदलना वह पसंद नहीं करता है। वह दूसरे लोगों को नेतृत्व की शिक्षा देता है।

आवश्यकता के समय अपने स्थान की उनके द्वारा पूर्ति कराने की भी शिक्षा देता है। वह लोगों से मंत्रणा लेने की अपेक्षा उन्हें मंत्रणा देता है। वह आदेश देने के स्थान पर सुझाव देता है।

पैगम्बर (Prophet), सन्त (Saint), विशेषज्ञ (Expert) और मालिक अफसर (Boss) :

पैंगम्बर वक्ता (spokesman) है। वह किसी शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है और वह इस प्रकार कार्य करता है जैसे कि सारी शक्ति उसमें हो। धार्मिक पैंगम्बर ईश्वर के दूत का कार्य करते हैं।

सन्त 'भावपूर्ण प्रवरता या श्रेष्ठता' (soulful goodness) से सम्पन्न होता है। वह अपना पवित्र जीवन व्यतीत करने के कारण अग्रणी का कार्य करता है। सन्त-सुलभ विशेषताओं के कारण बहुत से लोग उसकी ओर खिंच जाते हैं और उसका अनुसरण करने लगते हैं। चूँकि उसकी उदारता व महानता साधारण पुरुष से बहुत ही ऊँची होती है लोग बाध्य होकर उसका आदर एवं अनुसरण करने लगते हैं।

विशेषज्ञ में ऊँची श्रेणी के विशेषीकरण का गुण होता है। वह इसलिए नेतृत्व करने लगता है क्योंकि अपने क्षेत्र में और व्यक्तियों की अपेक्षा उसे अधिक ज्ञान व कुशलता प्राप्त होती है। वह अपने कार्य में पूर्णता प्राप्त कर लेता है।

अफसर या मालिक एक बहिर्मुखी व्यक्ति होता है, अपनी चतुराई से मानव भावनाओं या वेदनाओं पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत साधारण (coarse) और असभ्य (crude) प्रकार के कारनामे के निरंकुश नेता से लेकर विनीत और नम्र राजनीतिज्ञ आदि आ जाते हैं। वह एक प्रत्यक्ष, सपक्षी व निरंकुश नेता होता है।

ह्यूबर्ट बूनर (Hubert Booner) ने नेताओं को निम्नलिखित तीन भागों में बाटा है।

(१) निरंकुश नेतृत्व (Authoritarian Leadership)
(२) प्रजातांत्रिक नेतृत्व (Democratic Leadership)
(३) कैरेस्मैटिक नेतृत्व (Charismatic Leadership)

निरंकुश नेतृत्व (Authoritarian leadership)

सामान्यतः इस प्रकार के नेता अत्यन्त हिंसक (aggresssive), अपने अधिकार पर बल देने वाले (assertive) और बहिर्मुखी (extroverted) होते हैं। निरंकुश नेताओं का मुख्य उद्देश्य उन समस्याओं के सम्बन्ध में कोई क्रिया करना होता है जो समूह के सम्मुख उपस्थित हैं। वे शीघ्र निर्णय लेते हैं जिनका उद्देश्य

वर्तमान स्थितियों को बदलना होता है । यह नेता इस बात में विश्वास करते हैं कि केवल सोचने मात्र की अपेक्षा किसी भी प्रकार की कोई भी क्रिया अच्छी है ।

निरंकुश नेता जब तक गलती करने से नहीं डरते तब तक उनके पास अनुयायी रहते हैं जो अपने सामने रखी गई योजनाओं को क्रियान्वित कर सकते हैं । जब यह नेता शक्ति अधिकृत करते हैं तो सभी राजनीतिक दलों को दबाने (suppress) की कोशिश करते हैं और सम्पूर्ण समूह के सामने ऐसी योजनायें रखते हैं जो जनता के हृदय में उनके प्रति आदर और स्नेह उत्पन्न करें ।

इसके अतिरिक्त निरंकुश नेता ऐसे व्यक्तियों को पसन्द नहीं करते जो उन्हें सावधान होकर कार्य करने की सलाह देते हैं । वे योजनायें बनाते हैं । वे अपने नेतृत्व को दृढ़ और सबल बनाने के लिये समूह के सदस्यों को स्वयं निर्णय लेने से रोकता है जिससे वे लाचार और नेता के ऊपर निर्भर रहते हैं । निरंकुश नेता समूह को छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर देता है जिनमें आपस में संदेशों का कम से कम आदान-प्रदान होता है । वह इस बात के लिए उत्साहित करता है कि यह छोटे समूह केवल उसी के मारफत आपस में संदेशों का आदान-प्रदान करें । निरंकुश नेता स्वयं सम्पूर्ण समूह का ध्यान-केन्द्र बना रहना चाहता है ।

कैटिल ने कहा है कि निरंकुश नेता नई आवश्यकतायें उत्पन्न करता है, उदाहरण के लिये, समूह में भय, असुरक्षा, और नैराश्य (frustration) उत्पन्न करता है । इसके अतिरिक्त वह सदस्यों की आदिम (primitive), अचेतन, और पीछे हटने की (regressive) आवश्यकताओं को हटाने के बजाय बढ़ाता है; उदाहरण के लिए, उनमें आत्म-विश्वास खत्म कर देता है जिससे वे केवल उसी पर निर्भर रहते हैं । निरंकुश नेता इस बात की गारन्टी करता है कि उसका निर्देशन और नेतृत्व को भाग लेने से रोक कर और उनपर कुछ मूर्खतापूर्ण उपलक्ष्य (sub-goals) लागू करके निरंकुश नेता इस बात की गारन्टी करता है कि उसका निर्देशन और नेतृत्व सम्पूर्ण समूह के लिए अनिवार्य होगा । इसके अतिरिक्त समूह के सदस्यों में पारस्परिक संदेश को कम से कम स्तर पर लाकर वह नेतृत्व की अवधि बढ़ाने की चेष्टा करता है । इस प्रकार वह समूह के लिये अपनी अनिवार्यता निश्चित करता है जो समूह को नियन्त्रण करने के पीछे छुपे उसके व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति करता है परन्तु जिसका सम्पूर्ण समूह पर बुरा प्रभाव होता है । एक तो, समूह के सदस्यों को निकट अन्त:वैयक्तिक (interpersonal) सम्बन्धों के विकास के अवसर कम रहते हैं जिसके कारण समूह का मनोबल (morale) ऊँचा रहता है । दूसरे, समूह, नेता के हट जाने पर बहुत गड़बड़ी हो सकती है क्योंकि सभी सदस्य उस पर निर्भर रहते हैं और उसकी अनुपस्थिति में "क्या करें और क्या न करें" नहीं निश्चित कर पाते ।

क्रच और क्रचफील्ड ने निम्न शब्दों में निरंकुश नेता की विशेषतायें बताई हैं :—

"निरंकुश नेता प्रजातांत्रिक नेता की अपेक्षा अधिक पूर्ण शक्ति रखता है; वही अकेला समूह की नीतियों को निश्चित करता है; वही अकेला बड़ी योजनायें बनाता है; वही अकेला समूह में, आगे क्रम से, होने वाली क्रियाओं से परिचित होता है; वही अकेला सदस्यों की क्रियाओं और सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के ढंग को निश्चित करता है; वही अकेला अलग-अलग सदस्यों के लिये दण्ड और पुरस्कार के अन्तिम प्रतिनिधि और जज के रूप में कार्य करता है और इसीलिए समूह के ढाँचे के अन्दर प्रत्येक व्यक्ति के भाग्य का निर्णय करता है।"*

प्रजातांत्रिक नेतृत्व (Democratic leadership)

प्रजातांत्रिक नेतृत्व अनेक अर्थों में निरंकुश नेतृत्व से बिल्कुल विपरीत है। उसका सम्बन्ध ऐसे सम्बन्धों से है जिसमें सभी सदस्यों को समान'असन्तोष प्राप्त होता है और जिसमें नेता और अनुयायी दोनों ही एक दूसरे का आदर करते हैं। जैसा कि निरंकुश नेतृत्व में होता है, पर्याप्त पुरस्कारों के होते हुए भी व्यक्ति दूसरों के साध्य के साधन के रूप में प्रयोग किये जाने पर आपत्ति करते हैं क्योंकि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एक मौलिक आवश्यकता है और जिसका छिन जाना नैराश्य का कारण होता है।

प्रजातांत्रिक नेता के सामने प्रत्येक सदस्य को एक व्यक्ति के रूप में सन्तोष देने, सम्पूर्ण समूह की रक्षा करने, और अपनी आकांक्षाओं या नेक इरादों को सन्तुष्ट करने की जटिल समस्या रहती है। प्रजातांत्रिक नेता निरंकुश नेता से शक्ति की मात्रा में भिन्न नहीं है, परन्तु समूह के ढाँचे में उसके भिन्न कार्य या कार्यों के ढंग होते हैं।

क्रच और क्रचफील्ड ने कहा है, "प्रजातांत्रिक नेता सामूहिक क्रियाओं में और समूह के उद्देश्यों के निर्णय में प्रत्येक सदस्य को अधिक से अधिक भाग लेने के

---

* "The authoritarian leader wields more absolute power than the democratic leader; he alone determines policies of the group; he alone makes major plans; he alone is fully cognizant of the succession of future steps in the group's activities; he alone dictates the activities of the members and the pattern of interrelations among the members; he alone serves as the ultimate agent and judge of rewards and punishments for the individual members and hence of the fate of each individual within the group structure." —Krech and Crutchfield, p. 342.

लिये प्रेरित करता है। वह जिम्मेदारी को बाँटना चाहता है, न कि अपने में केन्द्रित रखना चाहता है; वह पूरे समूह-ढाँचे में अन्त:व्यक्तिगत सम्बन्धों और सम्पर्कों को बढ़ावा देना और दृढ़ बनाने की कोशिश करता है जिससे समूह की दृढ़ता भी बढ़े। वह समूह के अन्दर तनाव एवं संघर्ष कम करने का प्रयत्न करता है। वह श्रेणीबद्ध समूह ढाँचे से बचना चाहता है जिसमें विशेष अधिकार और पद-सम्बन्धी भेद विशेष महत्वपूर्ण होते हैं।"*

प्रजातांत्रिक नेता के मुख्य गुण समझौता (compromise), सहनशीलता और सामंजस्य के अन्य ढंग हैं। यह वैयक्तिक अन्तरों और मतभेदों को समझता है और उसमें सहानुभूति और समझदारी के मानव गुण होते हैं। वह कानून में दृढ़ विश्वास रखता है और जनसाधारण को स्वेच्छाचारी ढंग से प्रत्यक्ष आदेश नहीं देता है।

यह कहा जाता है कि तानाशाह (dictator) उस समय आवश्यक होता है जब कि सरकार में भ्रष्टाचार (corruption) या कुल-पक्षपात (nepotism) होता है, जब कीमतें बढ़ रही होती हैं और जब चोर बाजारी का जोर होता है। जब कोई आपाती (emergency) स्थिति होती है तो लोग तानाशाह के लिये माँग करते हैं। गिब ने कहा है : सामान्यत: कहा जा सकता है कि अस्थायी समूहों में प्रकट होने वाला नेतृत्व उस समय अधिक प्रजातांत्रिक, अधिक स्वतन्त्र, और कम निरंकुश होता है (१) जब स्थिति ऐसी हो कि जिसमें कोई सदस्य अपने को दूसरों से अधिक योग्य न समझ सके। (२) जब संदेशवाहन की सही विधियाँ अज्ञात हों या ठीक से न समझ में आती हों, और (३) जब स्थिति ऐसी हो कि समूह के सभी सदस्यों में अपने प्राइवेट अधिकारों के लिए प्रबल मनोवृत्तियाँ जागृत हों।

गिब कहते हैं कि प्रकट होने वाला नेतृत्व उस समय अधिक निरंकुश, अधिक तानाशाह, और अधिक प्रतिबन्ध लगाने वाला होता है जब (१) समूह में औपचारिकता (formalities) की अपेक्षा फुर्ती और योग्यता को अधिक महत्व दिया जाता है और (२) जब स्थिति की नवीनता प्रत्येक सदस्य के लिए उसके अहम् भाव को शामिल करने से रोकती है जिससे वह नेता के आदेशों को अपनी योग्यता की आलोचना के

* "The democratic leader seeks to evoke the maximum involvement and the participation of every member in the group activities and in the determination of objectives. He seeks to spread responsibility rather than to concentrate it. He seeks to encourage and reinforce interpersonal contacts and relation throughout the group structure so as to strengthen it. He seeks to reduce intragroup tensions and conflict. He seeks to avoid hierarchical group structure in which privilege and status differentials predominate." —Krech and Crutchfield, p. 426

रूप में नहीं देखता है। यदि समूह के सामने कोई आपाती (emergency) क्रिया की समस्या है, तब वह नेतृत्व अधिक प्रभावशाली होता है जो फुर्तीला और निर्णायक होता है और सदस्यों के विचार में उस स्थिति को शीघ्र दूर करने में असमर्थ है।

कुप्पूस्वामी ने कहा है कि नेतृत्व में इन दो भिन्न प्रकारों का अन्तर उनकी शक्ति के उद्गम (source) में निहित है। प्रजातांत्रिक नेतृत्व की शक्ति का उद्गम स्वयं समूह है जबकि निरंकुश नेतृत्व समूह के बाहर से शक्ति प्राप्त करता है। उदाहरण के लिए, कहा जाता है कि पाकिस्तान में मिलिट्री डिक्टेटरशिप अमेरिका के इशारे पर स्थापित हुई थी।

निरंकुश और प्रजातांत्रिक नेतृत्व की ऊपर कही गई विशेषताओं से उनके परस्पर अन्तर भी स्पष्ट हैं। क्रच और क्रचफ़ील्ड ने नेतृत्व सम्बन्धी विधियों को दृष्टि में रखते हुए दोनों में निम्न प्रकार से भेद किया है।

निरंकुश	प्रजातांत्रिक
१—नीति का पूर्ण निर्णय नेता करता है।	१—सभी नीतियाँ समूह द्वारा निर्धारित होती हैं यद्यपि नेता ही उनका नक्शा समूह के सामने रखता है।
२—लक्ष्य-प्राप्ति की विधियाँ और कदम नेता द्वारा, एक-एक करके, बताये और निश्चित किये जाते हैं। भविष्य में उठाये जाने वाले कदमों के बारे में सदस्य अज्ञानी रहते हैं जिसके कारणवश वे नेता पर ही पूरी तरह से निर्भर रहते हैं।	२—पहली मीटिंग में ही वाद-विवाद के समय लक्ष्य-प्राप्ति के सम्बन्ध में उठाये जाने वाले कदमों का विवरण दे दिया जाता है। जहाँ विशेष सलाह की आवश्यकता होती है, नेता दो या तीन वैकल्पिक (alternatives) रास्ते बताता है जिसमें से कोई एक चुन लिया जाता है।
३—नेता ही प्रायः सदस्यों के कार्य और कार्य के साथियों का निर्धारण करता है।	३—सदस्य अपने कार्य के साथियों को चुनने में स्वतन्त्र होते हैं और कार्यों का विभाजन भी समूह के हाथ में रहता है।
४—प्रत्येक सदस्य के कार्य की प्रशंसा और आलोचना करने में नेता व्यक्तिगत (personal) होता है और उसका कोई वैषयिक (objective) कारण नहीं बताता है। प्रदर्शन (demonstration) के अतिरिक्त वह समूह के कार्यों में विशेष भाग नहीं लेता है।	४—अपनी प्रशंसा और आलोचना में नेता वैषयिक और वास्तविक दृष्टिकोण (fact minded) का होता है और वास्तविक कार्य न करते हुए भी अपने उत्साह में वह समूह का एक पूर्ण (regular) सदस्य रहता है।

कैरेस्मैटिक नेतृत्व (Charismatic leadership)

जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वैबर ने सबसे पहले ग्रीक शब्द 'Charisma' का प्रयोग एक विशेष प्रकार के प्राकृतिक नेतृत्व के लिए किया था। 'Charisma' से तात्पर्य ऐसी शक्ति की एक विशेष और दैवी देन से था जो चुने हुए केवल थोड़े से व्यक्तियों तक सीमित थी, और जिसका सम्बन्ध कुछ उन नेताओं की उस विशेषता से था जिनकी अधिकार-शक्ति इस सामान्य विश्वास पर निर्भर करती थी कि जन-साधारण के सम्बन्ध में कार्य करने में वे देवताओं द्वारा प्रेरित और निर्देशित थे। इस प्रकार 'Charisma' का अर्थ कोई असाधारण गुण था चाहे यह गुण वास्तविक या काल्पनिक हो। कैरेस्मैटिक अधिकार-शक्ति से, मैक्स वैबर के अनुसार, तात्पर्य मनुष्यों के ऊपर उस शासन, जो चाहे मुख्यतः बाह्य या मुख्यता अन्दरूनी हो, से है जिसको शासित व्यक्ति उस व्यक्ति-विशेष की किसी असाधारण शक्ति में विश्वास करने के कारण स्वीकार करता है।* जादूगर, पैगम्बर (prophet), शिकार करने और लूट के अभियानों (expeditions) के नेता, युद्धकुशल मुखिया, तानाशाह या सीजा-रिस्ट शासक (Caesarist ruler) और, कुछ स्थितियों में, किसी दल का कोई मुखिया अपने शिष्यों, अनुयायियों, सैनिकों, दलों आदि के लिए इस प्रकार के शासक हैं।

यह प्राकृतिक नेता—मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक संकट के काल में रक्षक रहे हैं— न तो किसी पद पर आरूढ़ रहे हैं और न किसी व्यवसाय (occupation) में रहे हैं अर्थात् ऐसे व्यक्ति नहीं रहे हैं जिन्होंने कोई विशेष ज्ञान प्राप्त किया हो और जो आर्थिक लाभ के लिये (remuneration) कार्य करते रहे हैं। वे अनेक धार्मिक नेताओं, जैसे ईसा मसीह, मोहम्मद और बुद्ध और नैपोलियन की भाँति समूह के सदस्यों के भाग्य-निर्माता रहे हैं जो नेतृत्व करने की अपनी योग्यता और अधिकार में विश्वास करते थे और जिनके अनुयायियों को भी ऐसा ही विश्वास उनमें था।

कैरेस्मैटिक नेतृत्व को असाधारण शक्ति के कारण उचित समझा जाता है क्योंकि यह सामान्य मानव गुणों से बहुत ऊँची है और उसको शुरू में अलौकिक (supernatural) समझा जाता था। इस प्रकार, इस शासन की वैधता जादुई शक्ति,

---

* "Charismatic authority, hence, shall refer to a rule over men, whether predominantly external or predominantly internal, to which the governed submit; because of their belief in the extra-ordinary quality of the specific person."

—Max Weber, *From Max : Essays in Sociology*,

दैवी प्रेरणा से प्रकटित सत्य या धर्म, और नायक-पूजा पर निर्भर करती है।† इन विश्वासों का उद्‌गम (source) चमत्कार (miracle), युद्धों में विजय और अन्य सफलताओं द्वारा अपने कैरेस्मैटिक गुण को प्रमाणित करना है। जब तक व्यक्ति शासित व्यक्तियों या अनुयायियों के कल्याण का साधन है तभी तक वे उसकी इस विशेषता में विश्वास करेंगे। इसका यह भी अर्थ है कि जैसे ही वह अपनी दैवी शक्ति का उचित प्रमाण देने में असमर्थ हो जाता है और अपनी जादुई शक्ति से वंचित या देवताओं की कृपा से वंचित दिखाई पड़ता है लोगों का उस पर विश्वास भी उठ जाता है और उसे नेतृत्व से भी हाथ धोना पड़ता है। कैरेस्मैटिक शासन परम्परागत या बौद्धिक (rational) नहीं होता बल्कि प्रेरणाओं और दैवी प्रेरणा से प्रकटित सत्य या धर्म पर आधारित होने के कारण अबौद्धिक (irrational) होता है।

अपने समूह की रूढ़ियों (mores) के सम्बन्ध में प्राकृतिक नेता दो प्रकार के कार्य कर सकता है। वह परम्परागत मूल्यों और प्रथाओं का समर्थन करते हुए सामाजिक विरासत (heritage) को अधिक सबल बनाने और उनका विस्तार करने का कार्य करता है। परन्तु वह, लेनिन और हिटलर की तरह, अपने नेतृत्व की शक्ति को अपने समय की रूढ़ियों और संस्थात्मक ढाँचे को नष्ट करने या विशाल रूप से बदलने के लिए भी प्रयोग कर सकता है।

नेतृत्व के लक्षण (Traits) एवं विशेषतायें

आर्डवे टीड (Ordway Tead) के अनुसार नेतृत्व के निम्नलिखित दस लक्षण होते हैं।

(१) शारीरिक एवं स्नायुशक्ति।
(२) उद्देश्य और दिशा का ज्ञान।
(३) उत्साह।
(४) मित्रता एवं अनुराग।
(५) पवित्रता।
(६) टैकनिकल मास्टरी।
(७) निश्चय।
(८) बुद्धि।
(९) शिक्षा देने की कुशलता और
(१०) विश्वास।

इन सभी विशेषताओं में से प्रत्येक कई शक्तियों का मिश्रण है। उदाहरण के लिये, बुद्धि में निरीक्षण की शक्ति, दूरदर्शिता, कल्पना, निर्णय करने की शक्ति, तर्क

† "The legitimacy of charismatic rule thus rests upon the belief in magical power, revelations and hero worship." —Max Weber.

करने की शक्ति आदि का मिश्रण है। नेतृत्व की ये विशेषतायें नेतृत्व की स्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत नेतृत्व की सफलता की कुंजी विशिष्ट गुणों के मिश्रण में न होकर इन विशेषताओं के परस्पर सम्बन्ध में है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि नेतृत्व गुणों की पारस्परिक अन्तक्रियाओं से ही नेतृत्व को प्राप्त किया जा सकता हैं और खोया भी जा सकता है।

बोगार्डस ने महिलाओं के एक कालेज में नेतृत्व एवं नेतृत्व-विरोधी (anti-leadership) लक्षणों का अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणाम स्वरूप वह नेतृत्व-विरोधी लक्षणों को निम्नलिखित प्रकार से बाँटता है।

नेतृत्व के लक्षण अथवा गुण (**Leadership Traits**)	**नेतृत्व विरोधी लक्षण या गुण** (**Anti-Leadership Traits**)
प्रजातांत्रिक धारणायें	उदासीनता
चेतनता	संकीर्णता
यथार्थता	कायरता
मित्रता	अहंकार एवं आडम्बर
उत्साह	अहम्
सहानुभूति	निर्बुद्धि
विश्वसनीयता	अस्थिरता
धैर्य	हठ या जिद्

मर्फी, मर्फी एवं न्यूकोम्ब (Murphy, Murphy and Newcomb) का कथन है "एक समूह का प्रभावशाली एवं स्वीकृत नेता दूसरे समूह में अपने को अनेता (non leader) या अलग भी पा सकता है और कुछ ऐसे होते हैं जिनका अन्तर-मानसिक (intra-psychic) संघर्ष इतना अधिक होता है कि वह किसी प्रकार के सामाजिक उपगम (social approach) की पहुँच के बाहर होते हैं।*

लापियर (La Pierre) और फार्न्सवर्थ (Farnsworth) का विश्वास है कि यदि केवल दूसरों से अधिक तीव्र और शीघ्र बोलने की योग्यता है तो नेतृत्व के कुछ दूसरे गुण भी उसी योग्यता के अन्तर्गत आ जाते हैं। किन्तु कोई एक प्रकार की ऐसी कुशलता नहीं है जो एक व्यक्ति को हर प्रकार की परिस्थिति में और हर प्रकार के लोगों को नेता बना दे। शेरिफ (Sheriff) का कथन है "नेता के कार्य का निर्धारण

---

* "An effective, accepted leader in one group may find himself non-leader or even an isolate in another, and a few are they whose intra-psychic conflict is so great that they are inaccessible to all forms of social approach." —Murphy, Murphy and Newcomb.

सिर्फ लक्षणों और सामर्थ्य से नहीं होता वरन् उस समय की परिस्थिति की माँग से होता है।*

टर्मन (Terman) ने नेतृत्व की विशेषताओं का प्रयोगात्मक अध्ययन सन् १९०४ में प्रारम्भ किया। उसने छोटे-छोटे समूहों को लेकर यह निरीक्षण किया कि उनमें कौन से व्यक्ति नेता चुने गये थे। इसी प्रकार का निरीक्षण पैट्रीज (Patridge) द्वारा बालचरों (Boy Scouts) की एक टोली पर किया गया। टर्मन ने नेताओं में निम्नलिखित लक्षण पाये।

(१) कम स्वार्थी
(२) अधिक हिम्मती
(३) कम भावुक
(४) देखने में अधिक आकर्षक
(५) आकार में अधिक बड़े और
(६) दूसरी विशेषताओं में उत्कृष्ट

पैट्रीज ने अपने अध्ययन में नेताओं में निम्नलिखित लक्षण अथवा गुण पाये।

(१) बुद्धि, (२) शारीरिक पराक्रम, (३) अवलम्बन योग्यता और (४) आकृति।

फ्लेमिंग (Fleming) ने ७१ छात्रा नेताओं में लक्षणों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि उनके चार लक्षणों में अन्तः सह सम्बन्ध है जो नेतृत्व के लिये बहुत उपयुक्त हैं। वे लक्षण हैं—सुन्दरता अथवा उज्जवल रंग, मौलिकता, उत्साह एवं मधुर स्वर।

चार्ल्स बर्ड (Charles Bird) ने नेतृत्व की विशेषताओं से सम्बन्धित २० प्रश्नावलियों का निरीक्षण किया और उनमें ७९ लक्षण देखे। केवल चार लक्षण—सुन्दरता, आत्म-विश्वास, उत्साह और सहानुभूति, चार सूचियों में सामान्य थे और हास्य-प्रियता एवं बहिर्मुखता (extroversion) पाँच बार तथा पहलशक्ति (initiative) ६ बार प्रयुक्त हुआ था।

डब्लू० जे० एच० स्प्राट (W. J. H. Sprott) ने यह निष्कर्ष निकाला कि नेताओं के गुणों अथवा लक्षणों के विषय में असहमति होने का कारण यह है कि नेता की विशेषतायें अनुयायियों की आवश्यकताओं के अनुसार चुनी जाती हैं। अतः यह कहना कि एक जूनियर स्कूल के बालक नेता की और हड़तालियों के समूह के नेता की विशेषतायें समान होंगी एक हास्यप्रद बात है।

* "that the leader role is determined not by absolute traits and capacities but by the demands of the situation at hand"—Sherif.

क्रेच और क्रचफील्ड (Krech and Crutchfield) का मत है कि (१) नेताओं और अनेताओं में वास्तव में कोई भेद नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को यदि समूह और उचित परिस्थिति मिल जावे तो वह नेता हो सकता है (२) प्रत्येक प्रकार के समूहों और परिस्थितियों के नेताओं की सम्भावनाओं (potentialities) में पूर्ण सह-सम्बन्ध नहीं है। एक व्यक्ति जो कुछ समूहों और परिस्थितियों में नेता है वह दूसरी परिस्थितियों और दूसरे समूहों में नेता नहीं हो सकता है। फिर भी यह सही है कि इसमें कुछ सहसम्बन्ध अवश्य है। वह व्यक्ति जो एक समूह और परिस्थिति में नेता है औसत व्यक्तियों की अपेक्षा दूसरे समूह व परिस्थिति में नेता बनने की उसकी सम्भावना अधिक होती है। अतः नेतृत्व के आधार पर भेद में कुछ व्यक्तिगत विशेषताओं के होने की सम्भावना (potentiality) मालूम होती है।

नेता की विदित विशेषतायें (Perceived qualities)

अनेक अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि आकर्षक शारीरिक गठन, दृढ़ मुखाकृति, अनुनयात्मक (persuasive) स्वर और तरीके, आत्म-विश्वास और कुशलता आदि ऐसे गुण हैं कि जिनसे सम्पन्न व्यक्ति समूह द्वारा नेता स्वीकार कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त उसे किस सीमा तक अनुराग की भावना (feeling of love), पसन्द, सम्मान, नम्रता और कभी-कभी भय तक, आदि गुण कहाँ तक विदित अथवा ज्ञात है, इस बात पर भी नेता की सफलता निर्भर करती है।

भीड़ की स्थिति को ध्यान में रखते हुये जे० एफ० ब्राउन (J. F. Brown) ने सफल नेतृत्व के बारे में निम्नलिखित प्रकार से सामान्यीकरण किया है।

(१) व्यक्ति उसी समूह से सम्बन्धित होना चाहिये जिस समूह का नेतृत्व का वह प्रयास कर रहा है। उसे उस समूह के लोगों की धारणाओं और अभिप्रायों के अनुसार ही अपनी धारणा बनानी चाहिए। यदि वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किसी दूसरे समूह से सम्बन्धित है तब वह उस समूह के लोगों से सहयोग नहीं प्राप्त कर सकेगा।

(२) उसमें सम्मान अवश्य होना चाहिए। यद्यपि वह समूह के व्यक्ति में से हो तथापि उसे उन सबसे श्रेष्ठ होना चाहिए।

(३) उसे वर्तमान नेतृत्व क्षेत्र, स्थिति की प्रकृति तथा लोगों की आवश्यकताओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

(४) जब नेता समूह के ऊपर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लेता है तो समूह भी उस पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है।

समूह का नेतृत्व (Group leadership)

समूह का नेता समूह में मनोबल (morale) के लिये अत्यन्त आवश्यक स्थान रखता है। समूह में उसकी विशेष स्थिति होने के कारण प्राथमिक रूप से वह

समूह के आकार, समूह के वातावरण, समूह के उद्देश्यों, समूह के आदर्शों और समूह की क्रियाओं आदि का निर्धारण करने के लिये उत्तरदायी है। मनोबल का स्तर समूह के विभिन्न गुणों पर बहुत निर्भर करता है।

नेता समूह की आत्मा है। वह समूह की एकता, प्रभाव एवं संगठन का प्रतीक है।

नेता के कार्य
(Functions of the leader)

नेतृत्व ऐसे मानव संगठन में देखा जाता है जहाँ लोग भावना (feeling) या टेली (tele) के आधार पर अन्तःक्रिया करते हैं। मोरेनो (Moreno) का कथन है कि आकर्षण और घृणा की टेली-प्रक्रिया (teleprocess) दोनों व्यक्तियों के सम्बन्ध पर निर्भर करती है (यद्यपि एक व्यक्ति की भावना के संचार से दूसरा व्यक्ति बिल्कुल अनभिज्ञ हो सकता है)। सम्बन्ध की दिशा निश्चित है और दूसरे व्यक्ति पर निर्भर करती है। नेता दूसरे व्यक्तियों में परिवर्तन उत्पन्न करता है और जीवन में धारणाओं का निर्माण करता है।

एक समूह-नेता के विशिष्ट कार्य (specific functions) दूसरे समूह के कार्यों से भिन्न होते हैं। कर्ट लेविन (Kurt Lewin) ने निष्कर्ष निकाला है कि एक निरंकुश नेता अपने अनुयायियों को नम्र और गुप्त रूप से अपने प्रति युयुत्सात्मक (aggressive) बना देता है। या तो वे पूर्ण रूप से उस पर आश्रित हो जाते हैं या उसके प्रति नैराश्य और युयुत्सा की भावना से पीड़ित होने लगते हैं। एक प्रजातांत्रिक नेता समूह का दूसरे प्रकार का ही वातावरण बना देता है। सदस्यों में अहम् की भावना जागृत हो जाती है और वे समझते हैं कि सारा कार्य उन्हीं के हित में हो रहा है, 'हम' की भावना उत्पन्न हो जाती है और मनोबल (morale) का स्तर भी ऊँचा उठ जाता है। ऐसे समूह में जहाँ का नेता समूह के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता है, उस समूह में कम 'हम' की भावना (less of we-feeling) और अधिक चिड़चिड़ापन एवं युयुत्सा पाई जाती हैं।

क्रेच (Krech) और क्रचफील्ड (Crutchfield) के अनुसार समूह चाहे जैसा हो प्रत्येक को कुछ अंश में निम्नलिखित कार्य करने हैं—

अधिशासी के रूप में नेता
(Leader as executive)

अधिशासी के रूप में नेता समूह की क्रियाओं का चालक है तथा उसका उत्तरदायित्व है कि वह यह देखे कि नीतियाँ (policies) सफलतापूर्वक कार्यरूप में परिणित की जाती हैं। बहुधा वह दूसरे लोगों के उत्तरदायित्वों में हस्तक्षेप करता है।

योजना निर्माण करने वाले के रूप में नेता
(Leader as planner)

समूह के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन एवं तरीके नेता द्वारा निश्चित होते हैं। इसके अतिरिक्त वह सहयोग प्राप्त करने के साधन भी निर्धारित करता है। इसमें न केवल वर्तमान योजनाओं का समावेश होता है वरन् भविष्य की सभी योजनाओं और लक्ष्यों का भी समावेश होता है।

नीति निश्चित करने वाले के रूप में नेता
(Leader as policy maker)

नेता के सब कार्यों में एक महत्वपूर्ण कार्य है समूह के लक्ष्यों, ध्येयों, नीतियों का निर्धारण करना। सामान्यतः समूह के लक्ष्य तीन साधनों से निर्धारित होते हैं–

(१) ऊपर से एक समूह के एक उच्च अधिकारी द्वारा। सेना में आज्ञा उच्च सैनिक अधिकारियों के द्वारा निम्न अधिकारियों को दी जाती है अथवा उच्च व्यापारियों द्वारा निर्धारित नीतियों को निम्न वर्ग के व्यापारी भी स्वीकार कर लेते हैं।

(२) नीचे से अर्थात् समूह के सदस्यों का दिया हुआ निर्णय।

(३) नेताओं के द्वारा जो आदेश न तो ऊपर से प्राप्त हैं और न नीचे से वरन् वह स्वेच्छापूर्वक नीतियों का निर्णय देता है।

विशेषज्ञ के रूप में नेता (Leader as expert)

समूह में नेता ज्ञान एवं कुशलता का साधन समझा जाता है। वह एक विशेषज्ञ के रूप में, सलाहकार के रूप में और निर्देशक के रूप में कार्य करता है।

समूह के वाह्य प्रतिनिधि के रूप में नेता
(Leader as external group representative)

वाह्य सम्बन्धों में भी नेता अपने समूह का प्रतिनिधित्व करता है। वह दूसरे समूहों की माँग और सम्पर्क की स्वीकृति को निर्धारित करता है तथा अपने समूह की माँग और सम्पर्क जो दूसरे समूह से सम्बन्धित हैं उनको भी निर्धारित करता है। अर्थात् वह अपने सदस्यों और दूसरे समूह के सदस्यों के सम्पर्क को निश्चित करता है। इस विशेष अर्थ में, जैसा कि लेविन (Lewin) ने कहा है, वह एक 'द्वार रक्षक' है।

आंतरिक-सम्बन्धों के नियन्त्रक के रूप में नेता
(Leader as a controller of internal relationship)

वह समूह के आन्तरिक अन्तःव्यक्तिगत सम्बन्धों को नियन्त्रित करता है। किसी अन्य सदस्यों की अपेक्षा नेता समूह के स्वरूप के विशिष्ट विवरणों को अधिक अच्छे प्रकार से निश्चित करता है, और इस प्रकार अन्तःसमूह के सम्बन्ध प्रभावित होते हैं।

पुरस्कार एवं दण्ड के प्रबन्धक अथवा निर्धारक के रूप में नेता (Leader as purveyor of rewards and punishment)

व्यक्तिगत सदस्य के दृष्टिकोण से नेता का पुरस्कार एवं दण्ड देने का अधिकार विशेष महत्व रखता है। इस अधिकार द्वारा वह दृढ़ अनुशासनात्मक (disciplinary) एवं प्रेरणात्मक (motivational) नियंत्रण स्थापित करता है।

आदर्श के रूप में नेता (Leader as exemplar)

कुछ प्रकार के समूहों में नेता आदर्श व्यवहार उपस्थित करता है। वह सदस्यों के लिये सर्वोच्च चलन, चरित्र एवं उपलब्धि (achievement) के आदर्श निश्चित करता है जिससे दूसरे सदस्य उसका अनुसरण करके समूह की प्रगति में सहायक हो सकें। एक सैनिक नेता जो बड़ी बहादुरी से अपनी टुकड़ियों को युद्ध में उतार देता है अन्य सदस्यों के लिये आदर्श उपस्थित करता है। इसी प्रकार धार्मिक नेता अपने सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों के अनुसार व्यवहार करता है जिससे अन्य सदस्य उसी प्रकार का आचरण करें।

समूह के प्रतीक के रूप में नेता (Leader as the symbol of the group)

सदस्यों के समक्ष ज्ञानात्मक स्पष्टता (cognitive clarity) के किसी भी कार्य से समूह की एकता में वृद्धि होती है। इसके लिये समूह अपनी पहचान के अनेक साधन प्रस्तुत करता है जैसे—बिल्ले, वर्दियाँ, नाम आदि। नेता भी समूह के लिये ऐसा ही कार्य करता है—वह अपने समूह का प्रतीक होता है। समूह की एकता के ज्ञानात्मक प्रतीक के रूप में इंगलैण्ड के राजा अथवा रानी ज्वलन्त उदाहरण हैं।

पंच एवं मध्यस्थ के रूप में नेता (Leader as arbitrator and mediator)

समूह के आन्तरिक संघर्ष एवं तनाव के समय नेता एक पंच एवं मध्यस्थ का कार्य करता है। संघर्ष के समय न केवल वह एक निष्पक्ष न्यायाधीश का कार्य करता है वरन् समूह में अच्छे सम्बन्धों को पुनः स्थापित करने का कार्य भी करता है। इस अधिकार से नेता या तो समूह के द्वैष एवं तनातनी को कम या दूर कर सकता है या बढ़ा सकता है।

व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का प्रतिनिधि (Leader as surrogator for individual responsibility)

अनेक प्रकार के समूहों में नेता सदस्य को अपने व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों से छुटकारा दिलाने का महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कार्य करता है। नेता सदस्यों को निर्णय आदि लेने के कार्यों में स्वतन्त्र कर देता है। इसके स्थान पर नेता यह कार्य

स्वयं करता है क्योंकि सदस्यों का उसे विश्वास प्राप्त होता है जो समझते हैं कि नेता यह कार्य सफलतापूर्वक कर सकेगा ।

आइडियॉलोजिस्ट के रूप में नेता (Leader as an ideologist)

कभी-कभी नेता ही समूह के सदस्यों के सम्मुख आइडियॉलोजी प्रस्तुत करता है । साधारण सदस्यों की अपेक्षा नेता के विश्वास, विचार आदि सपूह की आइडियॉलोजी को अधिक भली प्रकार प्रदर्शित करते हैं ।

वास्तव में नेता न केवल सदस्यों को अधिक प्रामाणिक विचारों से सम्पन्न करता है, वह मूल्यों को निर्धारित करने में भी महत्वपूर्ण योग प्रदान करता है । इस अर्थ में गाँधी जी आध्यात्मिक नेता थे जो करोड़ों भारतवासियों के नैतिक निर्देशक का कार्य भी करते थे ।

पितृ रूप में नेता (Leader as father guide)

नेताओं की यथार्थ भावात्मक संवेदनाओं पर नेता प्रकाश डालता है । वह पहचान या तादात्म्य (identification), परिवर्तन (transference), एवं नम्रता (submissiveness) की संवेदनाओं का आदर्श है । मनोविश्लेषण सिद्धान्तशास्त्रियों ने नेता और उसके अनुयायिग्रों के इस सम्बन्ध पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कुछ विशेष समूहों में नेता का यह कार्य बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है । रूजवेल्ट और हिटलर निःसन्देह अपने अनुयायियों के लिए पितृ-तुल्य थे ।

बलि के बकरे के रूप में नेता (Leader as scapegoat)

पितृरूप (father figure) विसंयुज्यता-विशेषता (ambivalence characteristic) सामान्यतः नेताओं की सच्ची विशेषता है । यह देखा गया है कि पहले जिस नेता को सब पसंद करते थे उसे बड़ी असभ्यता से समूह से अलग कर दिया जाता है । जिस प्रकार से नेता आदर्श रूप से यथार्थ भावात्मक संवेदना का निर्माण कर सकता है उसी प्रकार वह अपने को निराश व्यक्तियों, असंतुष्ट व्यक्तियों और भ्रम में पड़े हुए समूह की युयुत्सा का भी शिकार बना सकता है । असफल नेता के प्रति समूह के सदस्य प्रायः यह समझते हैं कि उसने सबके साथ विश्वासघात किया है । उन अनेक व्यक्तियों ने जो पहले नाजी नेतृत्व के अनुयायी थे महायुद्ध के पश्चात् बड़े हिंसात्मक रूप से नाज़ी नेतृत्व का बहिष्कार किया ।

नेता बलि के बकरे के रूप में प्रशंसनीय कार्य करता है क्योंकि समूह के सदस्य अपनी पराजय और असफलता को नेता के साथ बहुत सरलता से सम्बन्धित कर देते हैं और उसके लिये उसे ही उत्तरदायी ठहराते हैं । जब नेता अपने ऊपर

उत्तरदायित्व ग्रहण कर लेता है तब असफलता के समय दोष भी स्वीकार करना पड़ता है।

नेताओं और अनुयायियों का सम्बन्ध
(Relation of leaders and followers)

नेताओं और अनुयायियों में श्रेष्ठता और अधीनता की अन्तःक्रिया का सम्बन्ध है। नेता अनुयायियों को परिस्थितियों से अवगत कराता है, वर्तमान समस्याओं का हल बतलाता है, और उन्हें कार्य रूप में परिणित करवाता है। यह सभी कार्य एक ही नेता के द्वारा बहुत कम किये जाते हैं। यह जटिल समूहों के लिए अधिक सत्य मालूम होता है

नेता समूह से अलग नहीं समझा जा सकता है और न ही उसके नेतृत्व की योग्यता को समूह की चेतन अथवा अचेतन रक्षा अभाव में जाना जा सकता है। सबसे सफल नेता वह व्यक्ति है जिसकी साँस्कृतिक पृष्ठभूमि समूह के सदस्यों के समान ही है। वह उनके अनुभवों में साथ देता है और उनके भावों को बँटवाता है। कितना भी कुशल वह क्यों न हो नेता समूह के बाहर अनुभव नहीं कर सकता है अर्थात् वह दूसरे और अजीब प्रतीकों के प्रति समूह के द्वारा प्रतिक्रिया नहीं करवा सकता है। नेता का प्रमुख कार्य सही प्रतीकों से अवगत कराना एवं उचित दिशा की ओर कार्य कराना है। नेता अपनी संस्कृति के प्रतीकों से अपने अन्तःज्ञान (intuition) के द्वारा सम्बन्धित होता है। यह सम्बन्ध किस सीमा तक होता है इसमें काफी विभिन्नता होती है। कुछ नेता अधिकतर अन्तर्ज्ञान द्वारा कार्य करते हैं और अपने प्रतीकों के प्रति उन्हें पूर्ण विश्वास होता है इनके विपरीत कुछ ऐसे भी नेता होते हैं जो बिना प्रतीकों में विश्वास किये हुये ही कार्य करते हैं। सम्भवतः सबसे सफल नेता वह है जो अन्तःज्ञान (intuition) और बुद्धि दोनों से सहायता लेकर कार्य करते हैं। अतः वह भावात्मक रूप से लोगों से सम्बन्धित होते हैं किन्तु साथ ही साथ सामान्य लोगों से अपने सम्बन्ध का भी ज्ञान रखते हैं।

अनुयायियों के दृष्टिकोण से नेता अनेक प्रकार के कार्य करता है। वह अधिक महत्वपूर्ण तरीकों को जान सकता है और भावात्मक स्थिरता (emotional fixation) के प्रति वस्तुगत (objective) होता है। सम्भाव्य (potential) अनुयायी भी नेता के प्रति कुछ उत्कण्ठा रखते हैं और उसकी चापलूसी करने को सदैव तत्पर रहते हैं—यह भी देखा गया है। ली बॉन (Le Bon) का कथन है "एक भीड़ में एकत्रित व्यक्ति अपनी सारी इच्छा शक्ति को खो देते हैं और मूल प्रवत्यात्मक रूप से उस व्यक्ति की ओर आकर्षित हो जाते हैं जिसमें वह गुण

है जो उनमें नहीं है।"* ली बॉन का मत है कि उनकी पसंद अच्छी नहीं होती है। नेता प्राय: विचारकों की अपेक्षा कार्य करने वाले अधिक होते हैं। वह प्राय: धैर्यहीन, उत्तेजित, एवं अर्द्ध-विक्षिप्त व्यक्तियों में से चुने जाते हैं। माइकिल्स (Michels) भी नेता का महत्व बताते हुए कहता है "झुण्डों और यहाँ तक कि संगठित झुण्डों को भी नेताओं के द्वारा निर्देशन की आवश्यकता होती है जिससे स्पष्ट रूप से अपार 'नायक-पूजा' उत्पन्न हो जाती है।"†

नि:सन्देह यह सब इस कारण होता है कि नेता अपने अनुयायियों की विनय स्वीकार कर लेता है। वह उनकी पसन्द के अनुसार आदर्श बनाने का प्रयत्न करता है। नेता के प्रति आकर्षित होने का आधार अनुयायियों के व्यक्तित्व की रचना है। यदि अनुयायी पिता का स्थान लेना चाहता है, यदि वह सुरक्षा चाहता है, यदि वह उत्तरदायित्व से छुटकारा पाना चाहता है, तो अपनी कल्पना में इतना आभूषित (tricked out) हो जायेगा कि वह आवश्यकता की पूर्ति का साधन बन जावेगा। पिता के प्रति विसंयुज्यता (ambivalence) का रुख (attitude) होता है और एक असफल नेता घृणापात्र बन सकता है। जब सही व्यक्ति मिल जाता है तो द्विमुखी आकार (two fold pattern) के जटिल सम्बन्ध की स्थापना हो जाती है। नेता के साथ व्यक्ति का तादात्म्य आज्ञापालन और सत्कार के रूप में देखा जाता है। एक साथी सदस्य के साथ पारस्परिक अनुराग और सहानुभूति का तादात्म्य देखा जाता है। यद्यपि फ्रायड की परस्पर दृढ़ता की व्याख्या हम हर प्रकार की स्वामिभक्ति के लिए संतोषजनक नहीं कह सकते हैं, तथापि उसका सिद्धान्त जो नेता के प्रति उद्देश्य-प्राप्ति-अनुराग के सम्बन्ध (aim-inherited-love-relationship) पर आधारित है और जिसमें सभी अनुयायियों के आत्म-त्याग एवं तादात्म्य (indentification) सम्मिलित हैं, कई स्थानों पर यह सही पाया गया है। यह सिद्धान्त उस समय और भी खरा उतरता है जहाँ ईमानदारी को नेतृत्व का एक आवश्यक गुण समझा जाता है तथा जहाँ पक्षपात को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है।

लोग नेता का अनुकरण क्यों करते हैं ?
(Why do the 'led' follow the leaders ?)

नेता के अनुसरण करने के दो कारण हैं—(१) नेता हम में से ही एक है,

---

* "Men gathered in a crowd lose all their force of will and turn instinctively to the person who possesses the quality they look."

† "The need of the masses, even organised masses, to be directed by leaders accompanied by 'hero-worship' is unlimited."

—Michels

परन्तु साथ में (२) वह हमसे भिन्न और श्रेष्ठ भी हैं, हम उसके साथ तदात्म्य (identify) कर सकते हैं, उसके अनुभवों से रोमांचित होते हैं। जो कुछ वह करता है उससे हमारी कोई न कोई मौलिक इच्छायें पूरी होती हैं। दूसरे शब्दों में बिना अपनी दैनिक चर्या से बाहर निकले हुए भी नये अनुभव, सुरक्षा, प्रेम (response) और पद (recognitions) की इच्छायें पूरी होती हैं। हम अपनी कुछ इच्छाओं को सुरक्षा के लिये नेता की ओर देखकर और अपने को उनके अद्भुत या साहसिक रोल में अनुभव करके सन्तोष कर लेते हैं। क्योंकि नेता अपने ही समूह का सदस्य है, हमारी प्रथाओं, रूढ़ियों को मानता है इसलिए उसके उच्च पद, अद्भुत कार्यों में हम अपना प्रतिरूप देखते हैं।

हम नेताओं की कुछ बाहरी सजावटों की नक़ल करके श्रेष्ठता की भावना भी प्राप्त कर सकते हैं, जैसे कुछ विशेष प्रकार के वस्त्र पहिन कर, एक विशेष मॉडल की मोटरकार रखकर, किसी खास क्लब का सदस्य बनकर।

हम ऐसे नेताओं के साथ तादात्म्य करके या उनकी प्रशंसा करके रोमांचित हो सकते हैं और नये अनुभवों की इच्छा की पूर्ति कर सकते हैं जो समाज में समाज-विरोधी कार्य करते हैं। हम ऐसे नेताओं की उन उद्देश्यों या आदेशों के लिए प्रशंसा नहीं करते जिनके लिये वे खड़े हैं बल्कि इसलिए कि हम उनको उन कार्यों को करने और सोचने के तरीकों को प्राप्त करने के साधन के रूप में देखते हैं जिनमें हम अपनी संस्कृति के निषेधों के कारण भाग नहीं ले सकते हैं। इसलिए यदि नेता समाज-विरोधी कार्य करता है तो इसको देख कर समाज विरोधी कार्य करने की हमारी इच्छा सन्तुष्ट होती है।

इस बात की ओर भी मनोवैज्ञानिकों ने संकेत किया है कि अनुयायी नेता से पिता के कार्य की आशा भी रखते हैं। बचपन से हमारी आदत किसी अधिकारी, मार्गप्रदर्शक, शक्तिशाली व्यक्ति की ओर सहायता और निर्देशन के लिए देखने की हो जाती है। अधिकतर लोगों के लिये बचपन में पिता ही नेता होता है। इसलिये, इसमें कोई आश्चर्य नहीं यदि वयस्क होने पर भी हम राजनीतिक और व्यापार सम्बन्धी स्थितियों में इस बात की आशा रखते हैं कि कोई अधिकारी (authority) हमें यह बताये कि हमें क्या करना चाहिये। हम अनिश्चित और भयभीत रहते हैं। हम निश्चितता और सुरक्षा चाहते हैं। इसी लिये किसी अधिकारी के निर्णय को स्वीकार करते हैं।

हम इसलिये भी किसी नेता का अनुसरण कर लेते हैं कि वह किसी पद पर आरूढ़ है। हम इसलिये उसका अनुसरण नहीं करते कि वह एक आदर्श चरित्र है, बल्कि इसलिये कि उसका पद पवित्र (sacred) या गौरवपूर्ण है।

कैज और शैन्क (Katz and Schank) ने पाँच कारण बताये हैं जिनके कारण अनुयायी नेता का अनुसरण करते हैं।

(१) हमारे लिये किसी नेता के सुझाव या अपने साथियों की क्रियाओं का पालन करना अधिक आसान है बनिस्बत अपनी समस्याओं के हल स्वयं निकालने के। अनुकूलता (conformity) समय, शक्ति और विचारना बचाती या कम करती हैं। सेना और नौसेना (naval) के जीवन को देखिये जो अनेक कमियों के होते हुए भी बहुतों के लिये आरामदेह है।

(२) व्यक्तिगत स्थितियों में वास्तविक अनुभव के फलस्वरूप लोग जानते हैं कि नेताओं का अनुसरण मितव्ययी (economical) और अच्छा होता है। यदि हममें से प्रत्येक अपने ढंग से काम करने की कोशिश करे तो बड़ी गड़बड़ी पैदा हो। नेतृत्व का अर्थ अधिक उत्पादन या सक्रियता है बनिबस्त अलग-अलग प्रयास के।

अनेक संस्थाओं में अनुकूलन न करना (non-conformity) दण्डनीय है। नेता स्वयं दण्ड लागू करते हैं। हम अपने साथियों से बहुत अधिक भिन्न नहीं रहना चाहते क्योंकि हमें जनमत का भय रहता है।

(४) बड़े समूह के साथ तादात्म्य (identification) करके हम अपने अहम् (ego) की वृद्धि करते हैं। अनुकूलन के द्वारा हम विशाल संगठन के अंग बन जाते हैं, चाहे वह राजनीतिक समूह हो, भ्रातृत्व बढ़ाने वाला (fraternal) संगठन हो, धार्मिक समूह हो। तब हम अपने सह-सदस्यों और नेताओं की सफलताओं और महान् कार्यों को लोगों को बता सकते हैं और उसका आंशिक श्रेय ले सकते हैं।

(५) हमारे समाज में, संस्थागत अनुकूलन समाजीकरण (conditioning) का फल है। बचपन से हम समूहों में रहे हैं और मिल-जुलकर कार्य करते रहे हैं। हम क्रीड़ा समूहों, स्कूलों, असेम्बली आदि में नेता का अनुसरण करना सीखते हैं।

नेताओं के सम्बन्ध में सामान्य अनुमान
(Generalization about leaders)

अपने अनुयायियों के साथ उनके सम्बन्धों के बारे में नेताओं के लिए दो मोटी बातें कही जा सकती हैं। पहला सामान्य अनुमान का सिद्धान्त ब्राउन (J. F. Brown) ने प्रतिपादित किया था जो कि निम्नलिखित है : 'सफल नेता के लिये यह आवश्यक है कि उसमें उस समूह के अन्य सदस्यों की सामान्य विशेषतायें या सदस्यता चरित्र हो जिसका नेतृत्व करने की वह कोशिश कर रहा है।'* सदस्यता-चरित्र से यह तात्पर्य है कि उसमें वही सब मूल्य, मनोवृत्तियाँ, और आदतें होनी चाहिये जो कि

* "The successful leader must have membership-character in the group he is attempting to lead." —J. F. Brown,

समूह में सामान्य हैं। व्यक्ति को उस समूह का ही पूरी तरह से होना चाहिये जिसका वह नेतृत्व करना चाहता है। मजदूर नेता के विचार, जीवन यापन का ढंग उन मजदूरों के जैसा ही होना चाहिये जिनका वह प्रतिनिधित्व करता है। नेता के रूप में हिटलर की सफलता का मुख्य कारण यही था कि वह अधिकतर जर्मनों की आंकाक्षाओं और अनुभवों को प्रतिबिम्बित करता था। अन्य जर्मनों की भाँति वह भी व्यापार और अन्य पेशों में यहूदियों की सफलता को घृणा की दृष्टि से देखता था और पूंजीपतियों की हर दृष्टि से ऊँची स्थिति से ईर्ष्या करता था। उनका जीवन उसके अनुयायियों और समर्थकों के सामान्य अनुभवों के अनुरूप था।

ब्राउन द्वारा प्रतिपादित दूसरा सामान्य अनुमान (generalizaiton) यह है कि नेता को सामाजिक क्षेत्र में सर्व साधारण से अधिक योग्य होना चाहिये।† यद्यपि नेता उसी समूह का सदस्य होता है, फिर भी वह अन्य सदस्यों की अपेक्षा श्रेष्ठ है। स्टालिन अपने अनुयायियों की भाँति साधारण वस्त्र पहनता था और कॉमरेड स्टालिन था, परन्तु वह क्रेमलिन में दूसरों से अलग रहता था। यह सामाजिक मनोविज्ञान में एक सामान्य सिद्धान्त है। लोग ऐसे व्यक्ति का अनुसरण करना पसन्द नहीं करते जो उनसे अधिक महान् न हो। फिर भी सदस्यता-चरित्र उनको एक सामान्य बन्धन में बाँधता है जिससे कि नेता के श्रेष्ठ गुण और अधिकारपूर्ण स्थिति का आनन्द लिया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त नेता के लिये यह आवश्यक है कि वह स्थिति को और लोगों की आवश्यकताओं को समझे।

नेतृत्व की विधियाँ
(Techniques of Leadership)

मनुष्यों को अपने वश में रखने के लिये नेता द्वारा प्रयोग की जाने वाली विधियों को तीन भागों में विभाजित किया जाना चाहिये : (१) निरोध की विधियाँ (२) प्रचार की विधियाँ, (३) कार्य की विधियाँ।

(१) **निरोध की विधियाँ (Techaiques of Repression)** : अरस्तू ने निरोधात्मक विधियों को तीन भागों में विभाजित किया। (अ) शासक अपने ही लोगों में अविश्वास के बीज बोता है। वह उनमें आपस में झगड़ा कराता है। मित्र को मित्र के विरुद्ध भड़काया और लड़ाया जाता है। नेता को तब तक नहीं उखाड़ कर फेंका जा सकता है जब तक मनुष्य एक दूसरे में विश्वास करना शुरू नहीं करते। आधुनिक उद्योपति अपने मिलों में कार्य करने वाले भिन्न-भिन्न प्रजाति या जाति समूहों में विरोध करा कर हड़ताल रोकते हैं।

---

† "The leader must represent a region of high potential in the social field." —Brown.

(ब) आतङ्क की नीति अपनायी जाती है। जो अधिक प्रभावशाली व्यक्ति हैं उन्हें पद-च्युत करके उनकी शक्ति नष्ट कर दी जाती है। स्वतंत्र और तटस्थ व्यक्तियों को या तो मृत्यु दण्ड दिया जाता है या शक्तिहीन कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जासूसों को फैला कर लोगों में और अधिक आतङ्क उत्पन्न किया जाता है। नाजी डिक्टेटरशिप के काल में इस प्रकार की निरोध विधि का बेहद प्रयोग होता था।

(स) लोगों को निर्धन और शक्तिहीन रखा जाता है। टैक्सों को दिन दूना बढ़ाया जाता है, और लोगों को इतना गरीब रखा जाता है कि वे केवल अपनी गरीबी की चिन्ता और समस्या में ही खोये रहते हैं। इतिहास हमें बतलाता है कि उपद्रव, विद्रोह, और क्रान्तियाँ अत्यन्त पतित और निर्धन वर्गों के द्वारा शुरू नहीं हुईं। विद्रोह ऐसे समूह में पनपता है जिसके पास थोड़ा है, परन्तु जो और अधिक चाहता है। अरस्तू का विश्वास है कि वह व्यक्ति उठ और लड़ नहीं सकता जो एक बार गिरा दिया जाता है और जिसकी गर्दन पर निरोधात्मक पैर रख दिया जाता है।

(२) **प्रचार-विधियाँ (Propaganda techniques)**—आधुनिक प्रोपेगैन्डिस्ट की विधियों से सौभाग्यवश लोग काफी परिचित हो गये हैं। यहाँ पर इसकी पाँच कार्य-विधियों का उल्लेख करना काफी होगा। (अ) अपनी संस्था के कार्यों और सफलता का प्रचार करो। क्योंकि संस्था आवश्यकताओं की पूर्ति का एक अप्रत्यक्ष साधन है, लोग इस बात को हमेशा नहीं जानते कि वे अपने संगठन से कितना कम या अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। इसलिये, संस्थात्मक सफलता का बारम्बार और भड़कीला विज्ञापन करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितनी कि स्वयं सफलता।

(ब) जनता के सामने अच्छा प्रदर्शन कीजिये। अक्सर नेता के कार्य इतने छोटे या अरोचक होते हैं कि उनका डंका नहीं पीटा जा सकता। तब लोगों का मनोरंजन करने की विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिये। एक बार अमेरिका के एक मेयर ने दैनिक रूप से किसी न किसी मनोरंजनात्मक रूप में समाचार पत्रों के मुख्य पृष्ठों में अपनी फोटो छपवाना शुरू कर दिया था।

(स) एक सामान्य शत्रु उत्पन्न करिये। लोगों में अपने नेताओं का साथ देने में एकता होगी यदि वे अपने सामने एक सामान्य खतरा उपस्थित देखते हैं। यदि ऐसी कोई स्थिति नहीं है तो भी वह प्रचार के द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। घृणित समूह को सामान्य शत्रु समझा जाता है। जर्मनी में यहूदी लोग बहुत लम्बे अर्से से सामान्य घृणा का विषय बने हुये थे जिनके विरुद्ध जनता के क्रोध को भड़काया जाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका में कम्युनिस्ट घृणा का विषय है।

(द) संस्था के आदर्श को जनता के सामने बराबर रखते रहो। संस्था के

आदर्श संस्थात्मक कार्यों और रीतियों को उचित ठहराते हैं। लोगों को हमेशा संगठन के यश और आदर्शों की याद दिलाये रहना चाहिये।

(ध) एक से अधिक इच्छाओं की पूर्ति का आश्वासन दो। संस्थात्मक नेता अनेक प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति का आश्वासन देकर अपने सर्मथकों को बनाये रखते हैं। राजनीतिक दल इस बात के लिये बदनाम हैं कि वे हर व्यक्ति को हर वस्तु देने का वादा करते हैं। चर्च एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में इसीलिये कायम है क्योंकि उसने सौन्दर्य-सम्बन्धी, मनोरंजन, शैक्षिक, और सामाजिक इच्छाओं की पूर्ति के साधन के रूप में अपने को प्रस्तुत किया है।

(३) **कार्य-सम्बन्धी विधियाँ (Techniques of action)**—प्रचार तो वास्तव में जबानी प्रतीकों के द्वारा लोगों को वशीभूत करने का साधन है, मनुष्य को अपने कार्यों द्वारा भी वश में किया जा सकता है। इनमें से कुछ विधियों का निरोध की विधियों के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है। उस लिस्ट में हम चार विधियों को जोड़ेंगे।

(अ) विरोधी दलों के नेताओं को उन दलों के प्रभावशाली होने से पहले ही खरीद लो। 'खरीद लेने' से तात्पर्य वास्तव में धन से उनको पुरस्कृत करने और उनकी अन्य व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति दोनों ही हैं जिससे विरोधी दल के नेताओं के उद्देश्यों को भ्रष्ट किया जा सके। उठते हुये या उज्ज्वल भविष्य वाले युवकों को जो उनके इर्द-गिर्द असन्तुष्ट घूमते हैं, महत्वपूर्ण कमेटियों में ले लिया जाता है। संस्था के अन्दर उन्हें छोटे-मोटे पद दे दिये जाते हैं। निम्न वर्गों के खतरनाक और महत्वाकाँक्षी युवकों को शासक वर्ग में लिया जा सकता है। इसका दोहरा लाभ यह होगा कि निम्न वर्गों को नेतृत्व से वंचित किया जा सकेगा और उच्च वर्गों को नये खून से सशक्त किया जा सकेगा।

(ब) संस्थात्मक सेवाओं के लिये जनता से ऐसे ढंग से धन प्राप्त किया जावे जिससे उन्हें कम से कम कष्ट हो। ठाठ-बाट की वस्तुओं पर टैक्स की अप्रत्यक्ष प्रणाली का यही लाभ है कि लोग यही नहीं जानते कि उन्हें कितना देना पड़ता है।

(स) संस्थात्मक निषेधों को सजीव रखिये और अनुष्ठानों की संख्या बढ़ाइये। बच्चों को ऐसे ढंग से शिक्षा दीजिये जिससे उनमें एक 'पातक' की भावना जागृत हो। जब कभी वे नियमों का उल्लंघन करें उन्हें ऐसी प्रताड़ना दीजिये जिससे वे अपने को अपराधी समझें जिससे फिर कभी वे ऐसा कार्य न करें। वह जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को त्योहार की भाँति मनाने की व्यवस्था करता है, जिससे कि वह अपने अनुयायियों के साथ अनेक बन्धन रखता है। जर्मनी में नाजी पार्टी ने शुरू से ही गाने

के साथ मार्च करना, और करतल ध्वनि में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया था। शक्ति में आने के बाद उन्होंने जर्मन जीवन के लगभग सभी पहलुओं को अनुष्ठानों का रूप दे दिया।

(द) जनता की सच्ची सेवा कीजिये। अपने समर्थन को बनाये रखने की एक विधि यह है कि नेता उन सब कार्यों को करे जिनकी उससे आशा की जाती है। अधिकारी अपने कार्य को इतने अच्छे ढंग से कर सकता है कि जनता उसका रहना आवश्यक समझने लगती है। महत्वपूर्ण पदों को प्राप्त करने और उन्हें बनाये रखने में अन्य विधियों की अपेक्षा इस विधि को अधिक महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिये।

नेतृत्व के सिद्धान्त
(Theories of Leadership)

(१) **सन्तुलन का सिद्धान्त (The theory of balance)**—नेतृत्व में सन्तुलन के सिद्धान्त का अर्थ यह है कि किसी एक व्यक्तित्व गुण (personality trait) के स्वयं विकसित हो जाने से ही नेतृत्व की गारण्टी नहीं हो जाती। उदाहरण के लिये, उग्रता (aggressiveness) के साथ-साथ बाधा (inhibition) का होना भी आवश्यक है, वे व्यक्ति को इतना धृष्ट और जिद्दी भी बना सकती है जो दूसरों की बरदाश्त के बाहर हो और जिससे नेतृत्व छिन जाये। इस बात की आवश्यकता है कि ऐसे व्यक्तियों को कभी-कभी रोका जाये जिससे वे सामाजिक कीड़े (pest) ही न बनें बल्कि जिससे वे अपनी शक्ति को सुरक्षित भी रखें। मानव शक्ति की एक सीमा होती है, यहाँ तक कि अधिक से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति भी अथक परिश्रम करके अपने को थकान के प्रभाव से नहीं बचा सकता।

दूसरा सन्तुलन बहुमुखी प्रतिभा (versatility) और विशेषीकरण (specialization) में होना चाहिए। लगभग सभी सामाजिक समूहों में इस प्रकार की विचार शक्ति का महत्व है। इससे व्यक्ति सभी प्रकार की समस्याओं का हल सरलता से निकाल कर दूसरों की ईर्ष्या का विषय बन सकता है। अद्वितीय विचार, शक्ति स्वयं उपद्रव कराने में समर्थ है, वह इतनी दूर की उड़ान भर सकती है कि वह हल्की और दिखावटी मालूम पड़ने लग सकती है। इस बात की आवश्यकता है कि इसका सन्तुलन थोड़ी ही चीजों पर ध्यान केन्द्रित करके बनाया जाये और विशेषीकरण के साथ उसका सन्तुलन रहे जिससे उसमें परिपक्वता और पूर्णता दिखाई पड़े। विशेषीकरण का अर्थ, दूसरी ओर, असहनशीलता हो सकता है, परन्तु अद्वितीय विचार शक्ति के साथ में वह व्यक्तित्व को एक ऐसा सन्तुलन प्रदान करता है जिससे नेतृत्व प्राप्त होता है।

निराशावाद (pessimism) और आशावाद (optimism) का सन्तुलन एक ऐसा व्यक्तित्व-संयोग है जो नेतृत्व के लिये मौलिक है। केवल आशा दिलाये रहने से ही अधिक दिन तक लोगों का समर्थन प्राप्त नहीं हो सकता। जो प्रत्येक विषय में हमेशा आशावादी होता है वह या तो थोड़ा अन्धा या मूर्ख होता है। दूसरी ओर निराशावादी व्यक्ति दूसरों का विश्वास प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। वह हर बात में सन्देह करता है। दोनों के संयुक्त होने पर निराशावाद और आशावाद व्यक्ति को एक नियन्त्रित रूप में आगे की दृष्टि देते हैं। ऐसे व्यक्ति कठिन परन्तु सम्भव कार्यों को कर लेते हैं। वे बाधाओं का हँसते हुए सामना करते हैं।

नेतृत्व में संतुलन एक गूढ़ विषय है जिसके अन्दर केवल दो व्यक्तित्व गुणों का ही सफल संयोग नहीं देखा जाता। इसका अर्थ अनेक भिन्न गुणों के संगठन से है, जो कभी एक, तो कभी दूसरे, गुणों को सहारा देते रहते हैं परन्तु अपनी एकता के कारण सभी गुणों को शक्ति प्रदान करते रहते हैं। सन्तुलन से तात्पर्य विरोधी गुणों के एक दूसरे का मार्ग रोकने या द्वन्द्व से नहीं है, बल्कि ऐसे गुणों के संयुक्त होने से है जिससे कार्य करते समय एक सन्तुलन बना रहे।

(२) **मानसिक शक्ति के केन्द्रीकरण का सिद्धान्त (The theory of focalization of psychic energy)**-इस सिद्धाँत के अनुसार कोई भी स्टैण्डर्ड योग्यता वाला व्यक्ति किसी एक दिशा में अपने प्रयासों और शक्ति को केन्द्रित करके सफलता प्राप्त कर सकता है। मामूली योग्यता वाला व्यक्ति भी मेहनत, लगन और एकाग्रचित्त होने से ऊँची से ऊँची सफलता प्राप्त कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति निर्धनता में पैदा हुआ और पला हो और प्रारम्भिक काल में उसे निरुत्साहित किया गया हो, फिर भी वह किसी दिशा में कमर कस कर कार्य में जुट जाता है तो उसे भी सफलता प्राप्त होती है। ऐसे व्यक्ति को लैस्टर वार्ड (Lester Ward) ने "genius by hard work" कहा है। असम्भव लगने वाली बात को भी दृढ़ निश्चय के द्वारा वह प्राप्त करता है। उसकी इसलिये प्रशंसा होती है क्योंकि वह अपने ही प्रयासों से सफलता की दीवार खड़ी करता है।

मानसिक शक्ति के केन्द्रीकरण के अनेक पहलू हैं। (i) एक तो खाली समय में केन्द्रीकरण करना होता है जिसमें नित्य कोई व्यक्ति किसी विशेष काम में अपना थोड़ा समय लगाता है और पूर्ण योग्यता प्राप्त कर उस क्षेत्र में अपने साथियों का नेतृत्व करता है। (ii) दूसरे, थोड़ी अवधि के लिये गहन केन्द्रीकरण और एकाग्रचित्त होना, जैसा कि फुटबाल का कोई प्रसिद्ध खिलाड़ी या धैर्य परीक्षा (endurance contest) का विजेता करता है। (iii) आँशिक जीवन (partial-life) केन्द्रीकरण जिसमें कोई व्यक्ति किसी विशेष प्रकार के कौशल में प्रवीणता प्राप्त करने में जुट जाता है जिससे एक क्षेत्र में तो वह अन्य प्रतिस्पर्धियों (competitors) से बाजी

मार ले जाता है और उसका अगुआ रहता है परन्तु दूसरे क्षेत्रों में वह विशेष योग्यता प्राप्त नहीं करता। (iv) सम्पूर्ण-जीवन केन्द्रीकरण (whole-life focalization), जिसमें अनेक वर्षों में पूरे होने वाले एक ही प्रोग्राम में अपनी अधिकतर शक्तियों (energies) को व्यक्ति केन्द्रित करता है। किसी विशेष कार्य में ही व्यक्ति का जीवन इतना अधिक लग जाता है कि उसकी ख्याति और प्रतिष्ठा सर्वत्र फैल जाती है (v) दोहरा-जीवन केन्द्रीकरण (dual-life focalization) दो व्यक्तियों का मिलकर एक ही विषय में अपना समस्त ध्यान और प्रयास केन्द्रित करना है, जैसे कि पति-पत्नी पियर (Pierre) और मैरी क्यूरी (Mary Curie)। इस केस में पति अनेक समस्याओं को सामने रखते थे और पत्नी उन पर प्रयोग (experiments) करती थी जिससे रेडियम की खोज हुई। विल्वर (Wilbur) और आरविल राइट (Orville Wright) ने इतना अधिक घुलमिलकर साथ-साथ कार्य किया कि यह कहना कठिन है कि हवाई जहाज बनाने का श्रेय दोनों में से किसको है।

(३) विलक्षणता का सिद्धांत (The marginal uniqueness theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार कुछ व्यक्ति अपने अनोखे गुणों और योग्यताओं के द्वारा नेता बन जाते हैं। विलक्षणता की भी भिन्न-भिन्न दशायें (degrees) होती हैं, जैसे कि कुशलता प्राप्त करने (aptitude) के अन्तर अर्थात् आर्टिस्टिक, मैथमेटिकल, मैकेनिकल, स्मरणशक्ति सम्बन्धी, तर्कशक्ति सम्बन्धी या सहानुभूति प्रकट करने की योग्यताओं को वंशपरम्परा से प्राप्त करने के अन्तर। इन गुणों से युक्त विलक्षण योग्यता वाले व्यक्ति बिल्कुल ही नये और अनोखे ढंगों से कार्य करते हैं। वह व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न समूहों में, विरोधी समूहों में ऐसे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं जो कभी नहीं थे। यदि ऐसे विलक्षण गुणों वाले व्यक्ति ऐसे ढंगों से अपने विचारों और कार्यों को प्रकट करते हैं जिनकी आवश्यकता सामाजिक समूह अनुभव करते हैं और जिनकी वे प्रशंसा करते हैं तो वे व्यक्ति नेता बन सकते हैं। यदि समूह उन सब कार्यों की आवश्यकता अनुभव नहीं करता जो कि वह विलक्षण बुद्धिवाला व्यक्ति करता है तो उसको एक अजीब पागल, यहाँ तक कि अपराधी समझा जा सकता है।

तेजस्वी नेता की सफलता का रहस्य बहुत कुछ उसकी श्रेष्ठ आनुवंशिक योग्यताओं में पाया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अनोखे गुण होते हैं परन्तु इतने नहीं कि उसे नेता बनायें। संसार में कोई भी दो व्यक्ति हर माने में हूबहू एक से नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से अनोखा है, साँस्कृतिक पृष्ठभूमि से वह अनोखा है, और अपने दैनिक अनुभवों से अनोखा है। इन तीनों गुणों का संयोग एक चौथी विलक्षणता को जन्म देता है, इस विलक्षणता को प्रकट करने की योग्यता के इन चारों

गुणों में विशेष रूप से विलक्षण (unique) होने पर ही व्यक्ति अद्भुत और महान कार्य करता है।

व्यक्तिगत आकर्षण (personal magnetism) विलक्षणता का एक स्वरूप है। इस गुण के कारण व्यक्ति अपने साथियों से भिन्न दिखायी पड़ता है और उसकी नेतृत्व सम्बन्धी अन्य योग्यताओं में भी वृद्धि होती है। उत्साह को अक्सर आकर्षण शक्ति का एक अंग कहा जाता है। उत्साह व्यक्ति की आँख में वह चमक पैदा करता है जो आकर्षण होता है। उत्साह थके हुये को नई शक्ति देता है और सुस्त लोगों को जगाता है। इस प्रकार, उत्साह और आकर्षण शक्ति नेताओं के महत्वपूर्ण गुण कहे जाते हैं।

(४) अन्तर्दृष्टि का सिद्धान्त (The flashes of insight theory)—नेतृत्व सम्बन्धी इस सिद्धान्त के अनुसार कोई व्यक्ति अचानक दो ऐसे विचारों या सिद्धान्तों के बीच सम्बन्ध देखता है जो पहले असम्बद्ध थे, या किसी समस्या का हल अचानक देखता है, और इस प्रकार, अपने साथियों का बुद्धिमत्तापूर्वक मार्ग प्रदर्शन करता है। जो व्यक्ति किसी सामाजिक समस्या के सम्बन्ध में अपने साथियों से अधिक गहरी अन्तर्दृष्टि रखता है वह इस योग्य होता है कि उस समस्या को हल करने का ढंग दूसरों को बताये और नेता बन जाये। या तो दूसरों से पहले अन्दृष्टि प्राप्त करना या दूसरों की अपेक्षा अधिक गहरी अन्तर्दृष्टि रखना आदेशात्मक या निर्माण-सम्बन्धी नेतृत्व के लिये आवश्यक है। यह विलक्षण बुद्धि या कड़ी मेहनत दोनों से ही उत्पन्न हो सकती है।

बिजली की कौंध की भाँति अन्तर्दृष्टि अचानक आती है। चाहे कोई कवि सुबह चार बजे उठ कर धारा प्रवाह रूप से कविता की रचना कर रहा हो या कोई मेहनत के साथ रात दिन अपनी प्रयोगशाला में कार्य कर रहा हो, अन्तर्दृष्टि प्रकाश की अचानक किरण की तरह आती है।

अन्तर्दृष्टि 'सम्पूर्ण दृष्टि' (wholesight) भी हो सकती है। यह किसी भी स्थिति या समस्या को केवल एक ही पहलू में देखने के स्थान में सभी पहलुओं में देख सकती है। जो व्यक्ति स्थिति के सब पहलुओं को एक साथ देखता है और अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोणों से जीवन को देखता है, जिसमें सबसे अधिक अन्तर्दृष्टि होती है, नेता पद के लिये वह सबसे योग्य समझा जाता है।

अन्तर्दृष्टि ज्ञान और अनुभव से प्राप्त होती है। आविष्कारक अपने प्रयोगों के द्वारा सूचनाओं का बड़ा भंडार तैयार करता है जिससे उसको अन्तर्दृष्टि पहले से तैयार किये मैदान में प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार, कवियों को भी पुराने और गहरे अनगिनती अनुभवों से ही अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है।

(५) अयोग्यता-में-योग्यता का सिद्धान्त (The ability-in-disabitity theory)--एल्फ्रेड ऐडलर ने क्षतिपूर्ति या मुआवजे की चर्चा करते हुए इस सिद्धान्त की ओर इशारा किया था। कमजोरी और हीनता की क्षतिपूर्ति करने के लिये प्रकृति व्यक्ति को गुण, कौशल और अपूर्व बुद्धि से सुसज्जित करती है। जिन व्यक्तियों में जन्म से कुछ शारीरिक अवगुण या कुरूपता होती है उसकी क्षतिपूर्ति करते हुए प्रकृति उनको विशेष योग्यतायें प्रदान करती है।

इस सम्बन्ध में हम जन्म के समय मानव शरीर और पर्यावरण के संघर्ष पर विचार कर सकते हैं। पर्यावरण से अपने प्रारम्भिक काल में सम्बन्ध होने पर मानव शिशु को शीघ्र ही विरोध प्राप्त होता है और उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बच्चा डट कर उन बाधाओं का सामना कर सकता है और ऐसा करने पर असामान्य योग्यता विकसित कर सकता है।

जहाँ सरलता से सफलता प्राप्त होती है वहाँ कोई विशेष शक्ति का विकास नहीं होता। जहाँ व्यक्ति बाधाओं और पराजयों के सामने कमजोर पड़कर झुक जाता है, उसकी योग्यता अविकसित रह जाती है। जब व्यक्ति अपनी पराजयों के विषय में ही हर समय सोचता है तो हीनता की भावना विकसित हो जाती है और व्यक्तिगत पतन शुरू हो जाता है।

फिर भी, असफलताओं और पराजयों का सामना करने के दो अन्य ढंग भी हैं। दोनों ही नेतृत्व की ओर व्यक्ति को ले जा सकते हैं। पहले, किसी बाधा को दूर करने के प्रयास में असफल होने पर व्यक्ति अपनी शक्तियों को पुन: संगठित कर सकता है और जिस स्थान में पहले हार हुई थी वहाँ दूने चौगुने वेग और शक्ति और कौशल के साथ आ सकता है। इस प्रकार बाधाओं पर विजय प्राप्त करने से व्यक्ति विशेष योग्यता प्राप्त करता है और नेता बन सकता है। इस प्रकार किन्हीं परिस्थितियों का सामना करने में अयोग्य या असफल होने पर व्यक्ति सफलता और नेतृत्व की प्रेरणा प्राप्त कर सकता है।

इस सम्बन्ध में सबसे सुन्दर उदाहरण हमें डेमास्थनीज़ और उनकी बाल्यावस्था में हकलाने की दशा में मिलता है। डेमास्थनीज़ की दशा के व्यक्ति साधारणतया इस हार को चुपचाप मान लेते परन्तु डेमास्थानीज ने अपनी हार स्वीकार नहीं की और कहा जाता है कि वह समुद्रतट पर गया, कंकड़ों से उसने अपने मुंह को भर लिया ओर लहरों से तब तक बोलता रहा जब तक वह साफ-साफ बोलना और उच्चारण करना नहीं सीख गया। इस प्रकार के प्रयास करने में उसने अपने हकलाने की कमी को पूरा ही नहीं किया बल्कि पब्लिक स्थानों में भाषण देने की ऐसी योग्यता प्राप्त कर ली कि आज उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ वक्ता माना जाता है।

दूसरे, कोई व्यक्ति किसी कठिनाई का सामना कर सकता है और उसमें असफल हो सकता है, जिससे साथ-साथ आगे भी कभी इस कठिनाई को दूर करने की सम्भावना न हो। यह हार अन्तिम हो सकती है फिर भी नेतृत्व पास में रखा हो सकता है। कैसे ? व्यक्ति अपनी बची हुई शक्ति को किसी दूसरे कार्य में लगा सकता है। प्रेम में असफल कोई व्यक्ति जनता की सेवा में अपना जीवन लगाकर नेतृत्व प्राप्त कर सकता है। उत्तरी ध्रुव का पता लगाने में असफल होने पर एमण्डसन (Amundsen) उल्टी दिशा की ओर मुड़ गया और उसने दक्षिणी ध्रुव ढूंढ़ निकाला।

(६) **संयोग का सिद्धान्त (The Conjuncture theory)**—नेतृत्व के इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक कारण एक साथ प्रकट होकर कार्य करते हैं। इनमें सबसे पहला कारक व्यक्तिगत योग्यता है चाहे वह आनुवंशिक हो या एकाग्रचित्त होने के कारण प्राप्त हुई हो। दूसरा कारक किसी प्रकार की समस्या संकट का उठ खड़ा होना है। तीसरा कारक विशेष योग्यता वाले व्यक्ति के लिये समस्या हल करने या संकट का सामना करने का अवसर प्राप्त होना है। कभी-कभी इनमें से एक या दो कारक उपस्थित रहते हैं, परन्तु जब तक यह तीनों कारक एक साथ नहीं होते नेतृत्व सम्भव नहीं है।

(७) **समूह प्रक्रिया के सिद्धान्त (The group process theory)**—नेतृत्व के इस सिद्धान्त के अनुसार समूह के सदस्यों के रूप में व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने हैं। वे अपने विचारों को स्वतन्त्रता के साथ प्रकट करते हैं, परन्तु छोटे-छोटे समूहों में मिल कर काम करना सीखते हैं और इस अन्तःक्रिया की प्रक्रिया से ही नेतृत्व प्रकट होता या जन्म लेता है। स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करते हुए व्यक्ति समूह के उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करते हैं और यह उद्देश्य उस बड़े समूह या समाज के अनुरूप होते हैं जिसका एक अनिवार्य अंग यह छोटा समूह है। अपने समूह में ही व्यक्ति को नेतृत्व प्राप्त होता है और इस सम्बन्ध में ऐसे ही व्यक्ति चुने जाते हैं जो अपने समूह और बड़े समूह की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में विशेष सहायक होते हैं।

(क) आगे चलकर उस नेता की प्रशंसा सबसे कम होती है जो अपने श्रेष्ठ गुणों और योग्यताओं को केवल व्यक्तिगत यश के लिये प्रयोग करता है। वह व्यक्तिगत लाभ के लिये ही नेता बनता है। वह केवल शासन के लिये नेतृत्व स्वीकार करता है। इस प्रकार का नेतृत्व अल्पायु होता है या उसका बुरा अन्त होता है।

(ख) दूसरे प्रकार का नेता वह है, जिसकी काफी प्रशंसा होती है, यहाँ तक कि कुछ व्यक्ति बहुत अधिक प्रशंसा करते हैं, परन्तु अधिकतर लोग कम; जो कुछ व्यक्तियों के स्वार्थों के अनुसार कार्य करते हैं, पुरानी रीतियों और बातों के महत्व

पर बल देते हैं, या अन्ध पक्षपात (blind prejudices) के अनुसार कार्य करते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रशंसा के पात्र अवश्य हैं जो स्थापित नियमों और रीतियों का समर्थन करते हैं, परन्तु कभी-कभी वे नयी आवश्यकताओं के अनुसार होने वाले आविष्कारों में बाधक भी होते हैं।

(ग) जो नेता समझौता कराने का कार्य करता है उसकी रक्षक के रूप में प्रशंसा भी होती है और दो तरफा बात करने वाले के रूप में निन्दा भी होती है। मतभेद करने वाले किसी भी समूह को वह सन्तुष्ट नहीं करता यद्यपि उसके प्रयास से उस दिशा में उन्नति हो सकती है।

(घ) जज और निर्णायक का सम्मान अधिक होता है, विशेषकर यदि उनकी योग्यता और ट्रेनिंग उच्च होती है और उनके निर्णय पक्षपातरहित होते हैं। इस प्रकार का कार्य अत्यन्त कठिन होता है।

(ङ) प्रगतिवादी (progressive) नेता भी होता है जो उन मूल्यों के महत्व को स्वीकार करता है जो प्राचीन काल में जन्में परन्तु वह नयी आवश्यकताओं और परिवर्तनों के अनुसार कार्य करता है।

(च) व्यक्ति समूह की ओर से किसी समस्या का हल करने के लिये अपनी श्रेष्ठ योग्यताओं या गुणों को प्रयोग कर सकता है। वह आवश्यक सामूहिक परिवर्तन प्राप्त करने के लिए अपना जीवन दे सकता है। वह अन्य व्यक्तियों के जीवन को सुखी बनाने के लिए अपनी शक्ति, स्नेह और जीवन को लगा सकता है। वह अपने लिये या अपने विशिष्ट मित्रों के लिए कुछ नहीं माँगता है।

(छ) गैर-निर्देशात्मक (non-directive) नेतृत्व भी अक्सर सामूहिक मार्ग-प्रदर्शन के अन्तर्गत प्रकट होता है। लड़के या लड़कियों के क्लबों के वयस्क नेताओं के कार्यों को डुवाल (Duvall) ने सामूहिक मार्ग प्रदर्शन का कार्य बताया है। इस सिद्धान्त के अनुसार गैर निर्देशात्मक नेता वह होता है जो अपने समूह के सदस्यों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा देता है और अपनी नेतृत्व-सम्बन्धी योग्यताओं को विकसित करने के लिए प्रेरणा देता है। वह अपने को पृष्ठभूमि में रखता है। इस सम्बन्ध में खेल-कूद प्रतियोगिता के एक शिक्षक द्वारा कहा गया एक वाक्य उल्लेखनीय है: "My thanks to Troy's great athletes who have given me the opportunity to coach them and who have made me known." उस प्रतियोगिता में ट्राय के खिलाड़ियों ने इतनी अधिक सफलता प्राप्त की कि उनके शिक्षक का नाम भी अपने आप हो गया।

निष्कर्ष—उच्च मनोबल वाले समूहों में प्रजातांत्रिक नेतृत्व निरंकुश नेतृत्व की अपेक्षा अधिक सफल होता है। प्रजातांत्रिक सामूहिक जीवन को निश्चित करने के लिये यह पर्याप्त नहीं है वरन् सामूहिक स्थिति को प्रजातांत्रिक कार्यों के अनुसार

निश्चित करना चाहिए। ऐसे समूह के सदस्यों को यह अवश्य जान लेना चाहिये कि प्रजातांत्रिक वातावरण में किस प्रकार व्यवहार किया जाता है, किस प्रकार उत्तरदायित्व को निबाहा जाता है तथा अन्य सदस्यों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाता है। अच्छे इरादे ही पर्याप्त नहीं होते हैं वरन् प्रविधि की भी आवश्यकता होती है। समूह के बारे में सत्य ज्ञान होना प्रजातांत्रिक नेताओं के लिए बहुत आवश्यक है ही, साथ ही साथ यह भी बहुत आवश्यक है कि समूह के सदस्य एवं नेता यह जान लेवें कि उन्हें क्या करना है। हम अब इस निष्कर्ष पर आ चुके हैं कि प्रजातन्त्र में सही प्रकार के नेतृत्व की बहुत आवश्यकता होती है और इस बात को वह सभी जो सरकार, शिक्षा तथा हर प्रकार के प्रबन्धात्मक कार्य से सम्बन्धित हैं, मान चुके हैं। यह भी निश्चित है कि नेतृत्व की क्षमता उसके व्यक्तित्व के पितृगत प्राप्त गुणों की अपेक्षा उसकी योग्यता, धारणा और समूह के वातावरण पर अधिक निर्भर करती है। अतः नेतृत्व के प्रशिक्षण को जिसे अभी तक पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया था, अब वर्तमान सभी प्रजातन्त्रों में यथेष्ट महत्व प्रदान किया जाने लगा है।

---

११ सामाजिक-परिवर्तन (Social Change)

आधुनिक संसार के हृदय पट पर सामाजिक परिवर्तन पाया जाता है। समाज का हर पहल, हर बड़ी संस्था, हर अनुभव बदलते हैं जो उनकी महत्ता को कम कर देते हैं और उनके स्वरूप को बदल देते हैं। संस्कृति का वह भाग जिसको हम प्राद्योगिकी (technology) कहते हैं विशेषरूप से तेजी से बदल रहा है और प्राद्योगिकीय परिवर्तनों का हमारी सामाजिक संस्थाओं और हमारे दैनिक व्यवहार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। आविष्कारों ने दूरी और स्थान को छोटा कर दिया है, एक दूसरे से हजारों मील दूर रहने वाले लोगों के व्यवहार में समानता (uniformity) उत्पन्न कर दी है, और ऊर्जा (power) और शक्ति (energy) के नये साधन मनुष्य के सुपुर्द कर दिये हैं।

सामाजिक परिवर्तन सभी समाजों में होता है परन्तु औद्योगिक और नागरिक लोगों में यह अधिक तेज और व्यापक होता है। हमारे अपने समाज के मुकाबले में आदिवासी जीवन में बहुत कम परिवर्तन होते हैं। सन् १९०५ में रिवर्स नामक मानवशास्त्री ने भारत की टोडा नामक वन्यजाति के जीवन का वर्णन लिखा था। इससे ३०० वर्ष पूर्व एक पुर्तगाली यात्री ने भी इसी जाति के जीवन का वर्णन लिखा था जिससे रिवर्स का वर्णन करीब-करीब बिल्कुल मिलता-जुलता था। इस ३०० वर्ष के लम्बे अर्से में टोडा लोगों का जीवन बहुत थोड़ा ही बदला था।

कुछ समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन—सामाजिक ढाँचे और समाज के सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन—और साँस्कृतिक परिवर्तन—समाज की संस्कृति में होने वाले परिवर्तन—में भेद किया है। वास्तविक प्रयोग में, यह दोनों प्रकार के परिवर्तन एक दूसरे से इतने घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं कि उपरोक्त अन्तर विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होता। अधिकतर समाजशास्त्री एक से ही परिवर्तन की व्याख्या करने में कभी "सामाजिक परिवर्तन" और कभी "साँस्कृतिक परिवर्तन" शब्दों का प्रयोग करते हैं या दोनों ही प्रकार के परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन के ही अन्तर्गत रखते हैं।*

---

* Horton and Hunt, *Sociology*, Mc Graw-Hill Book Company, p, 434. 1964.

मोटे तौर पर, प्रत्येक सामाजिक प्रणाली (system) में दो प्रकार की प्रक्रियायें होती रहती हैं : (१) प्रक्रियायें जो प्रणाली के ढाँचे को बनाये रहती हैं या उनमें ऐसी प्रवृत्ति होती है : (२) और प्रक्रियायें जो उनमें परिवर्तन लाती हैं। पहले प्रकार की प्रक्रिया के उदाहरण समाजीकरण (socialization) और सामाजिक नियन्त्रण (social control) हैं। इन प्रक्रियाओं और परिवर्तन की प्रक्रियाओं के बीच की रेखा निश्चित नहीं है। उदाहरण के लिये, क्रान्ति की स्थिति वाले समाज में, माता-पिता अपने बच्चों का समाजीकरण करने में जानबूझ कर उन्हें वे मूल्य और व्यवहार-प्रतिमान सिखाते हैं जो कि समाज के भावी ढाँचे से अधिक सम्बन्धित हैं बनिस्बत उसके वर्तमान ढाँचे के। कम से कम, यह माता-पिता वे सभी बातें अपने बच्चों को नहीं सिखाते हैं जो स्वयं उनके माता-पिता ने उन्हें सिखाई थीं। इस हालत में, माता-पिता संस्कृति का हस्तांतरण कर रहे हैं या उसे बनाये रख रहे हैं परन्तु सामाजिक प्रणाली का नया रूप बनाने में भी मदद कर रहे हैं।

इसके अलावा, यद्यपि परिवर्तन की प्रक्रियायें सामाजिक प्रणाली को बदलती हैं, वे उन्हें कायम रहने में भी मदद करती हैं। परिस्थितियों के बदलने पर अपने को जीवित बनाये रखने के लिये सामाजिक प्रणाली को कुछ हद तक अपने ढाँचे को बदलना (adapt) पड़ता है।

आज से कुछ शताब्दी पूर्व भारतवासी अत्यन्त सरल एवं अकृत्रिम जीवन व्यतीत करते थे, वर्ण-व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के कार्य निश्चित थे, जीवन का उद्देश्य था कर्म के सिद्धान्त का पालन करते हुये मोक्ष की प्राप्ति। अध्यात्म-वाद पर अधिक बल दिया जाता था, प्रत्येक हिन्दू धर्म-कर्म, संस्कारों से बँधा हुआ गृहस्थ जीवन व्यतीत करता था। अतिथियों का सत्कार, पड़ोसियों के कल्याण, सुख-दुख की चिन्ता—यह सामाजिक आदर्श थे। स्त्रियाँ परिवार का आभूषण हुआ करती थीं, उनकी जगह घर में थी। घर की देख-रेख, सन्तानोत्पत्ति एवं पालन-पोषण, पति की सेवा उनके मुख्य कार्य थे। तलाक जैसी कोई वस्तु नहीं थी और स्त्री के लिये यह सोचना भी पाप समझा जाता था कि पति से अलग भी उसका कोई अस्तित्व हो सकता है। विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, सती प्रथा और जौहर भी हमारे देश में प्रचलित थे। परिवार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था थी। लोग बड़े-बड़े संयुक्त परिवारों में रहते थे, परिवार सामाजिक नियन्त्रण का सबसे महत्वपूर्ण साधन था।

पर आज हमें प्रत्येक दिशा में परिवर्तन दिखाई देता है। आज भारतीय वेश-भूषा का स्थान यूरोपीय वेश-भूषा ने ले लिया है, स्वदेशी भाषा के स्थान में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग ऊँचे पैमाने में होने लगा है, जीवन बनावटी और जटिल हो गया है, जाति की महत्ता और नियम क्षीण पड़ गये हैं, धन पर अधिक बल दिया जाता है,

सामाजिक वर्गों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है, व्यक्ति की प्रतिष्ठा का द्योतक या आधार उसका धन और जीवन-स्तर ही विशेष रूप से समझा जाता है, औद्योगीकरण के कारण औद्योगिक नगरों में स्त्री और पुरुषों की संख्या और अनुपात में भीषण अन्तर हो गया है जिसका नैतिकता पर अवाँछनीय प्रभाव पड़ता है, अध्यात्मवाद केवल पुतस्कों या कुछ रूढ़िवादी व्यक्तियों तक ही सीमित रह गया है, विज्ञान के अलौकिक चमत्कारों एवं नई-नई खोजों ने हमारे सामने विलासिता की वस्तुयें प्रस्तुत कर दी हैं। जिस देश में अतिथियों का सत्कार एक धर्म समझा जाता था वहां आज न तो लोगों के पास इतना समय ही है, और न इतना धन ही कि अतिथियों का उसी प्रकार से सत्कार किया जा सके। आज के युग में स्त्रियों की स्थिति में भी बहुत परिवर्तन हुये हैं, अब वे घर की चहारदीवारी के अन्दर नहीं रहती हैं, वे अब स्कूल और कालेज में पढ़ती और पढ़ाती हैं, खेल व शारीरिक विकास-प्रदर्शनों में भाग लेती हैं, ड्रामा, गाना व नृत्य की अथवा अन्य संस्थाओं में भाग लेने लग गई हैं, मोटरगाड़ी चलाती हैं, डाक्टर, वैज्ञानिक, प्रोफेसर आदि हैं। यही नहीं, पति के साथ उनके सम्बन्धों में भी विशेष परिवर्तन हुये हैं। पति के समान शिक्षित और सुसंस्कृत होने के कारण वे अपने पति को अपना स्वामी न मानकर अपना साथी या कॉमरेड मानने लग गई हैं। प्रेम-विवाह भी शुरू हो गये हैं। विधवाओं की स्थिति में भी विशेष परिवर्तन हुआ है, अब उनकी स्थिति इतनी दयनीय नहीं रह गई है और विधवाओं के पुर्नविवाह भी होने लगे हैं। यह साँस्कृतिक परिवर्तन के उदाहरण हैं।

परिवार अभी भी बहुत महत्वपूर्ण संस्था है; पर उसका ढाँचा बदल गया है, पति एवं पत्नी के पद (status) व कार्य परिवर्तित हो गये हैं। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं : अब विभिन्न सदस्यों के स्वार्थ एवं उद्देश्य परिवार के उद्देश्यों के स्वार्थों से भिन्न हैं। एक ही परिवार का एक सदस्य डॉक्टर है, दूसरा प्रोफेसर, तीसरा इन्जीनियर और चौथा परचून की दुकान वाला। कोई किसी शहर में है तो दूसरा किसी अन्य शहर में। मनोरंजन, जो कि मुख्य रूप से परिवार का ही कार्य हुआ करता था, अब सिनेमा घर, नाटक व थिएटर, क्लबों आदि ने ले लिया है। परिवार के अन्य कार्य भी अन्य संस्थाओं ने हस्तगत कर लिये हैं।

इन सब बातों से हमें यह स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि चारों ओर मनुष्यों के सामाजिक सम्बन्धों व उनके व्यवहारों में परिवर्तन आ गया है और जो दशा आज हमारे समाज की है यह भी कुछ वर्ष बाद बदल जायेगी, इनमें भी महान परिवर्तन आयेंगे। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि समाज गतिशील है, चलायमान है।

सभी पूर्व-ऐतिहासिक, ऐतिहासिक अथवा आधुनिक समाज में मन्थर अथवा द्रुत गति से सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। किसी समाज के आकार में वृद्धि, खानाबदोश जीवन छोड़ कर स्थायी रूप से किसी एक स्थान में रहना, सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन, धार्मिक विश्वासों और रीतियों पर नये ढंग से बल देना, विज्ञान का विकास, नये सिद्धान्त, युद्ध और अकाल सामाजिक परिवर्तन लाने वाले कारकों में से हैं। मनुष्य चाहे जितनी भी कोशिश क्यों न करें कि उनके सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, परन्तु फिर भी यह सत्य रह जाता है कि समाज बदलते रहे हैं और बदलते रहेंगे। इसी सम्बन्ध में डेविस ने कहा है : व्यक्ति स्थिरता और सुरक्षा के लिये प्रयत्न कर सकते हैं, समाज-स्थायित्व के भ्रम को बढ़ावा दे सकते हैं, निश्चिन्तता की खोज बिना रुके हुये जारी रह सकती है और अनन्तता में विश्वास बिना हिले हुये कायम रह सकता है, फिर भी यह सत्य बाकी रह जाता है कि समाज, अन्य सभी वस्तुओं की भांति, निरन्तर और निश्चित रूप से बदलता रहता है। *

प्रत्येक समाज और प्रत्येक संस्कृति में, चाहे वह कितनी भी परम्परागत अथवा सनातनी क्यों न हो, परिवर्तन हो रहे हैं। समाज की केन्द्रीय इकाई सामाजिक मनुष्य भी जन्म, युवावस्था, वृद्धावस्था और मृत्यु जैसी अवस्थाओं को प्राप्त होता है और अन्त में समाज के सभी कार्यकर्त्ता लुप्त हो जाते हैं और उनका स्थान नये लोग ले लेते हैं। संस्कृति की सबसे छोटी इकाई व्यवहार-आदर्श (behavior-pattern) मनुष्यों की अपेक्षा अधिक स्थायी होते हुये भी परिवर्तनशील है। जितना अधिक नागरिक (urban) कोई समाज होता है उतने ही अधिक वेग से वहाँ परिवर्तन होते हैं। वास्तविक नागरिक समाजों में परिवर्तन अत्यन्त वेग से होता है और सामाजिक जीवन की एक सामान्य और स्थायी विशेषता बन जाता है।

सामाजिक परिवर्तन की वर्तमान तीव्रगति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आधुनिक विज्ञान और यन्त्र कला (technology) का फल है। विज्ञान हमारे संचित ज्ञान को बराबर गढ़ता रहता है जबकि यन्त्रकला उत्पादन की हो अच्छी विधियों को बराबर विकसित नहीं करती है बल्कि नयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नई वस्तुओं का उत्पादन भी करती है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यातायात

---

* "Individual may strive for stability and security, societies may foster the illusion of permanence, the quest for certainty may continue unabated and the belief in eternity perish unshaken yet the fact remains that societies, like all other phenomena, unremittingly and inevitably change."

—Kingsley Davis, *Human Society*, *(1969)* p. 621.

और संदेशवाहन के वेगवान साधनों के विकास ने दूरी को कम कर दिया है क्योंकि आजकल संसार के सभी विशाल सांस्कृतिक समूह लगातार एक दूसरे के साथ सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इसीलिये हम देखते हैं कि सर्वत्र, विशेषकर यन्त्रकला की दृष्टि से पिछड़े हुए देशों में, महान् परिवर्तन हो रहे हैं। पश्चिमी विज्ञान और यन्त्र कला द्रुतगति से संसार भर में छाये जा रहे हैं।

सामाजिक परिवर्तन की समस्या पर अनेक दार्शनिकों और समाजशास्त्रियों ने विचार प्रकट किये हैं और अब भी अनेक प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर पाने में असमर्थ रहे हैं। उदाहरण के लिये सामाजिक परिवर्तन की दिशा क्या है? क्या यह किसी उद्देश्य या विनाश की ओर लिए जा रहा है? सामाजिक परिवर्तन का स्वरूप क्या है? क्या पहले की अपेक्षा यह अधिक तीव्रगामी है और भविष्य में इससे भी अधिक द्रुतगति से होगा? सामाजिक परिवर्तन का सूत्र क्या है? क्या यह बाहर से किसी वस्तु को ग्रहण (borrow) करने से या स्वयं आविष्कार करने से हो रहा है? सामाजिक परिवर्तन का क्या कारण है? क्या इसका कोई एक ही मूल कारण है अथवा कई कारक मिलकर सामाजिक परिवर्तन उत्पन्न कर रहे हैं? और किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन में बाधा डाली जा सकती है? क्या हम अपनी इच्छानुसार ही इसकी दिशा को मोड़ सकते हैं? यह सब अत्यन्त जटिल प्रश्न सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में हैं।

कोई भी चीज स्थायी नहीं है, इस बात को ग्रीक विद्वान हिराक्लाइटस (Heraclitus) ने सबसे सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। उसने कहा कि किसी भी व्यक्ति के लिए एक ही नदी में दो बार घुसना सम्भव नहीं है। इसके असंभव होने के दो कारण हैं। दूसरी बार न तो नदी पहले जैसी रहती है और न व्यक्ति ही पहले जैसा रहता है। पहली और दूसरी बार प्रवेश करने के बीच के समय में, चाहे वह कितना भी कम समय क्यों न हो, नदी और व्यक्ति दोनों बदल चुके होते हैं, कोई भी पहले जैसा नहीं रह जाता है।

प्रत्येक सामाजिक प्रणाली में हमेशा परिवर्तन होता रहता है। यह इसी बात से स्पष्ट है कि उसके सदस्य दिन-प्रति-दिन बूढ़े होते जा रहे हैं और उनमें शारीरिक (physiological) परिवर्तन हो रहे हैं जिनका प्रभाव उनकी कार्यकुशलता पर पड़ता है। उम्र बढ़ने से होने वाले परिवर्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण न भी हों, अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन भी होते रहते हैं। उदाहरण के लिये, दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करने की प्रक्रिया में, एक सामाजिक प्रणाली के सदस्यों के एक-दूसरे से परस्पर होने वाली प्रत्याशाओं (expectations) पर इसका प्रभाव पड़ता है। यदि वह सामाजिक प्रणाली, जैसे कि परिवार, किसी बड़ी सामाजिक प्रणाली का एक भाग है तो अन्य सामाजिक प्रणालियों में भाग लेने से भी व्यक्ति की योग्यता और मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है।

लगातार इस प्रकार होने वाले परिवर्तनों के बावजूद भी अक्सर हम कहते हैं कि कोई सामाजिक प्रणाली अपेक्षाकृत स्थायी (stable) है और उसमें परिवर्तन नहीं हो रहे हैं। ऐसी बातों का केवल यह अर्थ है कि कुछ प्रकार के परिवर्तन अधिक महत्वपूर्ण समझे जाते हैं, और कुछ परिवर्तनों को तुच्छ समझा जाता है।

आजकल समाजशास्त्र में रचनात्मक-क्रियात्मक (structural-functional) सिद्धांत बहुत लोकप्रिय है। सामाजिक ढाँचे के सम्बन्ध में दो बातें मुख्य हैं। पहली, किसी विशेष बात को दृष्टि में रखते हुये यह कुछ हद तक स्थायी है। उदाहरण के लिये, बच्चे की माँ के दिन-प्रति-दिन के व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है, फिर भी वह बच्चे के साथ एक खास तरह का सम्बन्ध बनाये रखती है—वह उसकी देख-रेख, रक्षा, मार्ग प्रदर्शन, उत्साह देना आदि कार्य करती रहती है। इन छोटे-मोटे अन्तरों पर ध्यान न देकर जिस ढंग से वह यह कार्य करती है, हम कह सकते हैं कि उसका माँ का कार्य काफ़ी हद तक स्थायी रहता है। दूसरी, हम ढाँचे का कार्य से सम्बन्ध करते हैं। उदाहरण के लिए, परिवार में माँ की क्रिया (role) के कुछ कार्य (functions) होते हैं जैसे कि बच्चे का समाजीकरण करना, शांति बनाये रखना और नैतिक स्तर (morale) बनाये रखना।

इस प्रकार, संकुचित अर्थ में सामाजिक परिवर्तन से अर्थ सामाजिक प्रणाली में होने वाले परिवर्तन से है। जो कुछ भी स्थायी या अपेक्षाकृत अपरिवर्तित रहा है बदला है। इसके अतिरिक्त संरचनात्मक (structural) परिवर्तनों में से सबसे अधिक महत्वपूर्ण वे हैं जिनका प्रणाली के कार्यों पर प्रभाव पड़ता है—उसके उद्देश्यों की पूर्ति में और प्रणाली को बनाये रखने के लिए आवश्यक शर्तों को अच्छे ढंगों से पूरा करने में।

इस प्रकार, मौलिक रूप से सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य सामाजिक ढाँचे में होने वाले परिवर्तन से है। अब हम परिवर्तन को उन किस्मों का वर्णन करेंगे जिन्हें "संरचनात्मक" कहा जा सकता है।

(१) **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन (Change in social values)**—सबसे महत्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन सामाजिक मूल्यों में होने वाला परिवर्तन है। ईमानदारी से खेलना एक सामाजिक मूल्य है। किन्हीं विशेष स्थितियों में जैसे जब मुद्दई या मुद्दालय उसके सम्बन्धी या मित्र हों, किसी जज का अपने को निर्णय देने में अयोग्य बताना भी एक सामाजिक मूल्य है। यहाँ हमारा उन मूल्यों से तात्पर्य है जो सामाजिक कार्यों (role) और सामाजिक अन्त:क्रिया को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं, न कि मुख्यत: साँस्कृतिक मूल्यों से जैसे कि कला में शास्त्रीय-वाद (classicism)।

सामाजिक ढाँचे और सामाजिक प्रणालियों (systems) पर विशेष प्रभाव डालने वाले मूल्य-परिवर्तन के उदाहरण के रूप में हम सामन्तवादी (feudal) समाज से औद्योगिक-व्यापारी (industrial-commercial) समाज में हुए परिवर्तन को ले सकते हैं। ऐसे परिवर्तन काफी लम्बे अर्से के बाद होते हैं। मूल्यों में इस प्रकार के परिवर्तन को हम भिन्न प्रणालियों की समस्याओं पर समाज की भिन्न क्रियात्मक उपप्रणालियों पर दिये जाने वाले बल के रूप में देख सकते हैं। सामन्तवादी समाज में सबसे ऊँचे पद, जो सामाजिक मूल्यों को प्रकट करते है, सैनिकों और पुजारियों को प्राप्त होते हैं। महत्वपूर्ण होने पर भी, क्योंकि वे आवश्यक कार्य हैं, आर्थिक कार्यों को इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता जैसा कि अन्य कार्यों को। औद्योगिक व्यापारी किस्म के समाज में आर्थिक उत्पादन का अत्यधिक महत्व होता है और इस क्रिया के क्षेत्र के नेताओं की प्रतिष्ठा भी अत्यधिक होती है।

पहले हमारे देश में जाति के ही आधार पर व्यक्ति के गुण और प्रतिष्ठा को आँका जाता था। आधुनिक भारत में जाति के ढाँचे में विशेष परिवर्तन हुआ है। अब व्यक्ति की अर्थ-उत्पादन की शक्ति, शिक्षा, सरकारी पद के आधार पर उसकी प्रतिष्ठा निर्भर करती है।

(२) **संस्थात्मक परिवर्तन (Institutional change)**— "संस्थात्मक परिवर्तन" से हमारा तात्पर्य अधिक स्पष्ट (definite) ढाँचे में होने वाले परिवर्तन से है, जैसे कि संगठनों के स्वरूप, कार्य और कार्य-अन्तर्वस्तु (content) में होने वाले परिवर्तन। बहुविवाह प्रणाली से एक-विवाह प्रणाली में, राजतन्त्र (monarchy) से प्रजातन्त्रवाद में, प्राइवेट इन्टरप्राइज के एकाधिकार (monopoly) से समाजवाद (socialism) में होने वाले परिवर्तन संस्थात्मक परिवर्तन के उदाहरण हैं। छोटे सामाजिक प्रणालियों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिये किसी व्यापारी संगठन में मजदूरी का हिसाब (calculate) करने का एक नया तरीका अपनाया जा सकता है, या कोई लेबर यूनियन कम्पनी की नीति (policy) निश्चित करने में नये अधिकार प्राप्त कर सकती है।

(३) **सम्पत्ति और पुरस्कार के वितरण में परिवर्तन (Change in the Distribution of Possessions and Rewards)**— सामाजिक प्रणाली के संरचनात्मक और अर्ध-रचनात्मक (Quasi-structural) पहलुओं में भेद किया जाता है। उदाहरण के लिए, सम्पत्ति की संस्था में परिवर्तन किये बगैर सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकारों में परिवर्तन किया जा सकता है। एकाधिकार (monopoly) का विकास इसका एक अच्छा उदाहरण है। यहाँ परिवर्तन किन्हीं अधिकारों के किसी एक जगह में होने वाला परिवर्तन नहीं है बल्कि किसी विशेष क्षेत्र में उत्पादन करने वाली फर्मों की संख्या, सम्पत्ति पर अधिकार रखने वाले व्यक्तियों की संख्या

में परिवर्तन है। इस प्रकार के परिवर्तन सामाजिक प्रणाली पर गहरा प्रभाव डालते हैं। पहले, इससे शक्ति का पुनः वितरण होता है। एकाधिकार का विकास उस प्रक्रिया को प्रभावित करता है जिसके द्वारा वस्तुओं के मूल्य निश्चित होते हैं। प्रतिस्पर्धा (competition) में वस्तुओं के मूल्य कम होते हैं जब कि एकाधिकार में उत्पादनकर्त्ता मनमाने दाम रख सकता है।

दूसरे, सम्पत्ति के वितरण में होने वाले महान् परिवर्तन का स्वयं सम्पत्ति की संस्था पर प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिये, एकाधिकार के कुप्रभावों को रोकने के लिये सरकारों ने अनेक कानून बनाये।

इसी प्रकार, किन व्यक्तियों और समूहों को पुरस्कार मिलेगा इस बात में भी परिवर्तन होता है। हमारे देश में कुछ वर्षों से प्रति एकड भूमि पर अधिक अन्न उत्पन्न करने वाले को, अच्छा साहित्य प्रस्तुत करने पर, अच्छी फिल्म बनाने आदि पर अब पुरस्कार मिलने लगे हैं।

(४) **कार्यकर्ताओं में परिवर्तन (Change in Personnel)**—उपर्युक्त प्रकार के परिवर्तनों से स्वाधीन होकर भी, सामाजिक प्रणाली के कार्यों को करने वाले विशेष व्यक्तियों में परिवर्तन हो सकते हैं। एक लम्बे अर्से के बाद ऐसे परिवर्तन अनिवार्य हो जाते हैं क्योंकि लोग बूढ़े होकर अवकाश ले लेते हैं या मर जाते हैं।

इन परिवर्तनों का महत्व भिन्न होता है। यह तो हमेशा ही महत्वपूर्ण है कि कौन किस विशेष पद को ग्रहण करता है। अपनी क्षमताओं और विकसित योग्यताओं की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अनोखा है। महत्वपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति, जैसे देश के नेता, पुलिस के अफसर के अनोखे व्यक्तित्व का सामाजिक नियन्त्रण पर प्रभाव पड़ता है। फिर भी, कार्यकर्त्ताओं में होने वाले परिवर्तन से समाज में इतना परिवर्तन नहीं होता कि उसको संरचनात्मक परिवर्तन कहा जाय।

कार्यकर्त्ताओं की योग्यता पर उस स्थिति में विशेष प्रभाव पड़ेगा जब कि उनके चुनाव (selection) की दशाओं को बदल दिया जाये। उदाहरण के लिये, नौकरी पाने के लिये आवश्यक गुणों में यदि परिवर्तन कर दिया जाये तो कार्यक्षमता में भी अन्तर हो जायेगा। इसके अतिरिक्त अन्य कारकों पर भी कार्यकर्ताओं की योग्यता में अन्तर होना निर्भर करता है। स्पर्धा-सम्बन्धी प्रक्रियाओं, सामाजिक मूल्यों, संस्थाओं, या सम्पत्ति और पुरस्कार के वितरण में अन्तर होने से भी इसमें अन्तर हो सकता है। दूसरे देश में जाने या विदेश से आने वाले (immigration and emigration) की दर, जो बाहर नौकरी के अवसरों पर निर्भर करती है, भी लेबर मार्केट को प्रभावित करती है। यहाँ हम कार्यकर्त्ताओं के टर्न ओवर (turn over) में होने वाले परिवर्तन की चर्चा कर रहे थे।

(५) **कार्यकर्त्ताओं की योग्यताओं या मनोवृत्ति में परिवर्तन (Change in the Abilities or Attitudes of Personnel)**—इस प्रकार का परिवर्तन स्वयं संरचनात्मक परिवर्तन नहीं है परन्तु संरचनात्मक परिवर्तन ला सकता है। आधुनिक ज्ञान-प्राप्त इन्जीनियर, नेता, व्यापारी, संस्थाओं के मैनेजर, लेबर लीडर आदि अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन होने के साथ ही सामाजिक ढाँचे में भी परिवर्तन ला सकते हैं।

सामाजिक परिवर्तन की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती

हम निश्चयपूर्वक यह भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं, यहाँ तक कि थोड़े से काल में, समाज में कौन-कौन परिवर्तन होंगे। इसकी भविष्यवाणी करने की सीमा बहुत संकुचित है। हम कुछ हद तक सही माने में यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि गर्मियों में नदी के तट पर भीड़-भाड़ होगी और जाड़ों में वे जन-शून्य होंगे, कि दिन में किस-किस समय पर नगरों में यातायात के साधनों की अधिक माँग होगी, कि दीवाली से दो एक रोज पहले वस्तुओं की फुटकर बिक्री अधिक होगी, आदि। परन्तु हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते हैं कि दीर्घकाल के बाद समाज का क्या रुख होगा या भविष्य में कौन-कौन सी महत्वपूर्ण घटनायें घटेंगी।

सामाजिक परिवर्तन की तेजी
(The rapidity of social change)

सामाजिक परिवर्तन कुछ समाजों में तेजी से और कुछ में मन्थरगति से सभी समाजों में होता रहा है। समाज कभी भी निश्चल नहीं रहते, हमेशा बदलते रहते हैं। काफी लम्बे अर्से तक अनेक आदिवासी समाज, विशेषकर वे जो कि अन्य समाजों से अलग रहे हैं, अपेक्षाकृत अपरिवर्तित रहे हैं: इसके उदाहरण हमें योरोपियनों के पहुँचने से पहले के आस्ट्रेलियन आदिवासियों में मिलते हैं। यहाँ तक कि कुछ सभ्यतायें, जिनकी संस्कृति अपेक्षाकृत अधिक जटिल थी, काफी बड़े समय तक बिना किन्हीं महत्वपूर्ण परिवर्तनों के रही। प्राचीनकाल में मिश्र (Egypt) में ऐसा ही हुआ था। फिर भी यह सोचना गलत होगा कि किसी समाज की, चाहे वह विशाल अथवा छोटा हो, संस्कृति पूर्णरूप से स्थायी और अपरिवर्तित हो सकती है। यहाँ तक कि रूस में, थोड़े ही समय में, अत्यन्त महान परिवर्तन हुए हैं।

प्रथम महायुद्ध के छिड़ने के बाद से अनिगिनती देशों में भीषण परिवर्तन हुए हैं। यह परिवर्तन केवल उनकी राजनीतिक संस्थाओं में ही नहीं हुए हैं, बल्कि उनके वर्गीय ढांचे (class structures), आर्थिक प्रणालियों (economic system), उनकी रूढ़ियों (mores) और जीवन-यापन के ढ़ंग में भी हुए हैं। संक्षेप में, मनुष्यों के सभी

पारस्परिक मौलिक सम्बन्धों में परिवर्तन हुए हैं। यह परिवर्तन इतने अद्भुत हैं कि कोई भी व्यक्ति जो सन् १९१४ में रहता था इनकी भविष्यवाणी नहीं कर सकता था।

वर्तमान समाज असाधारण रूप से अस्थिर है। सभी वस्तुओं में से, जिनका हम अध्ययन कर सकते हैं, कोई भी वस्तु हमारी आँखों के सामने इतनी तेजी से नहीं बदलती है जितनी कि मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुयें और विशेषकर सामाजिक ढांचा जो वह बनाता है।

सामाजिक परिवर्तन और साँस्कृतिक परिवर्तन में अन्तर

सामाजिक परिवर्तन के विषय में कुछ लिखने से पहले यह बताना हमारा कर्त्तव्य होगा कि यहाँ हमारा मतलब केवल उन्हीं परिवर्तनों से है जो कि सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं। सभी परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन नहीं होते और हमारे लिये सामाजिक और साँस्कृतिक परिवर्तन दो अलग बातें हैं। यहाँ हम पहले परिवर्तन की परिभाषा देना उचित समझेंगे। फिचटर ने कहा है : 'पहले की स्थिति या रहन-सहन के ढंग से भिन्नता को ही संक्षेप में परिवर्तन कह सकते हैं।"*

अनेक लेखकों ने सामाजिक और साँस्कृतिक परिवर्तन में कोई भी भेद नहीं माना है। उदाहरण के लिए, गिलिन और गिलिन ने सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा देते हुए लिखा है : "सामाजिक परिवर्तन जीवन के स्वीकृत ढंगों में होने वाला परिवर्तन है, चाहे वह परिवर्तन भौगोलिक दशाओं, साँस्कृतिक उपकरण, जन-संख्या की रचना, अथवा सिद्धान्तों में परिवर्तन होने के कारण हो, अथवा सांस्कृतिक प्रसार या समूह के अन्दर होने वाले आविष्कारों के कारण हो।"†जीवन के ढंगों से तात्पर्य समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली भौतिक व अभौतिक संस्कृति दोनों से है। इस संस्कृति, के अन्दर धार्मिक विश्वास, अनुष्ठान, सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध आदि ही नहीं सम्मिलित हैं बल्कि जीविका अर्जित करने की सभी विधियाँ सम्मिलित हैं। जैसे कि खेती करने के ढंग, शिकार, मछली मारने, मकान बनाने, खेती और पशुओं की रक्षा करने आदि की भी विधियाँ सम्मिलित हैं।

परन्तु सामाजिक परिवर्तन की उपर्युक्त परिभाषा को हम स्वीकार नहीं कर सकते हैं। हमारे लिए तो साँस्कृतिक परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन से भिन्न है, यद्यपि

* "Change is defined briefly as a variation from a previous state or mode of existence."—Fichter, *Sociology*, p. 340

† "We shall define social changes as variation from the accepted modes of life, whether due to alteration in geographic condition, in cultural equipment, composition of the population, or ideologies, and whether brought about by diffusion or invention within the group."—Gillin, *Cultural Sociology*, p. 56.

कि दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। साँस्कृतिक परिवर्तन एक अधिक व्यापक शब्द है और सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का ही एक भाग है। सामाजिक परिवर्तन में हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को सम्मिलित करते हैं जो कि सामाजिक संगठन में होते हैं या जो सामाजिक सम्बन्धों को परिवर्तित करते हैं। इसी बात पर बल देते हुए डेविस ने कहा है: 'सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य केवल उन परिवर्तनों से है जो सामाजिक संगठन में—अर्थात् समाज के ढाँचे और कार्यों में—होते हैं।"† जोन्स के अनुसार: "सामाजिक परिवर्तन एक ऐसा शब्द है जो कि सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक अन्त:क्रिया अथवा सामाजिक संगठन के किसी पहलू में होने वाले अन्तर या हेर-फेर के लिए किया जाता है।"‡

इस प्रकार, सामाजिक परिवर्तन साँस्कृतिक परिवर्तन का एक भाग है। साँस्कृतिक परिवर्तन के अन्दर तो वे सभी परिवर्तन आ जाते हैं जो कि संस्कृति की किसी भी शाखा या भाग में होते हैं; उदाहरण के लिये, कला में, विज्ञान में, यंत्र कला में, दर्शनशास्त्र में, और साथ ही सामाजिक संगठन, स्वरूपों और नियमों में भी होने वाले परिवर्तन।

इसके उदाहरण के तौर पर हम एक ओर पूंजीवादी समाज में संगठित श्रम (organized labour) के उत्थान को लेंगे और दूसरी ओर किसी मोटर गाड़ी के मॉडल में या रेडियो में होने वाले परिवर्तन को। पहले प्रकार का परिवर्तन मालिक और मजदूर के सम्बन्ध में होने वाले मौलिक परिवर्तन का द्योतक है और इसका प्रभाव सभी जगह आधुनिक सभ्यता के आर्थिक और राजनीतिक संगठनों पर पड़ता है। उपर्युक्त दूसरे प्रकार का परिवर्तन भी परिवर्तन है परन्तु सामाजिक नहीं। कोई नया रेडियो सेट किसी पुराने रेडियो सेट का इसलिए स्थान ले लेता है क्योंकि नये में अधिक वाल्व्ज (valves) हैं। पहले रेडियो की बनावट में होने वाला परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित नहीं करता है।

मैकाइवर और पेज ने भी सामाजिक परिवर्तन को साँस्कृतिक परिवर्तन से

---

* Ibid.

† "By social change is meant only such alterations as occur in social organization—that is structure and functions of society."
—Kingsley Davis, *Human Society* p. 622.

‡ "Social change is a word used to describe variations in, or modification of, any aspect of social process, social patterns, social interaction, or social organization." —Jones, *Sociological Principles*, p. 96.

भिन्न माना है। उन्होंने कहा है "इसलिए सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक या सभ्यता में होने वाले परिवर्तन से भिन्न वस्तु है, समय-प्रक्रिया में भिन्न प्रकार से प्रवेश करता है। हमें एक बार फिर इस बात पर बल देना है कि समाजशास्त्रियों के रूप में हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्धों से है। केवल इन्हीं में होने वाले परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन समझेंगे।"* समय पर विशेष बल दिया गया है, एक ही समय के उन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन जिनमें व्यक्ति प्रवेश करते हैं। संस्कृति में प्रक्रिया (process) के अन्त हो जाने के बाद भी उसके द्वारा निर्मित वस्तु रहती है। परन्तु समाज केवल एक समय-अनुक्रम (time-sequence) के रूप में रहता है। यह एक प्रक्रिया है, न कि एक फल (product)। कोई संख्या या वर्ग प्रणाली भी एक फल है जो कि उसी प्रक्रिया के अन्दर ही रहता है जिसने उसे बनाया है। यदि लोग किसी प्रथा का पालन नहीं करते हैं, तो उसे समय के थपेड़ों से बचाने के लिये म्यूजियम में नहीं रखा जा सकता,† जिस प्रकार कि सैकड़ों वर्ष पुराने हथियार, बर्तन, मूर्तियाँ आदि रखे जाते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि संस्कृति का कोई भी भाग पूर्णरूप से सामाजिक संगठन से असम्बन्धित नहीं है, परन्तु यह भी सत्य है कि संस्कृति की इन शाखाओं में, बिना सामाजिक संगठन को प्रभावित किये हुए, परिवर्तन हो सकते हैं। समाजशास्त्रीय रूप से, हम साँस्कृतिक परिवर्तन में वहीं तक रुचि रखते हैं जहाँ तक वह सामाजिक संगठन से उत्पन्न होता है या सामाजिक संगठन को प्रभावित करता है।

सामाजिक परिवर्तन की गति और स्वरूप
(The rate and form of social change)

जैसा कि पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है, विभिन्न समाजों में परिवर्तन की गति में अन्तर है। परिवर्तन तो प्रत्येक समाज की विशेषता है किन्तु कुछ समाजों में दूसरे समाजों की अपेक्षा परिवर्तन की गति अधिक तीव्र है, जैसा कि आदिवासी समाज और सभ्य समाजों के उदाहरण से स्पष्ट है। पर यह जान लेना यहाँ पर

---

* "Social change is, therefore, a distinct thing from cultural or civilzational change, entering in a different way into the time process. Once more we must insist that our direct concern as sociologists is with social relationships. It is the change in these which alone we shall regard as social change."

—MacIver and Page, *Society : An Introductory Analysis*, p. 511.

† "A social structure cannot be placed in a museum to save it from the ravages of time." —Ibid.

आवश्यक है कि यह अन्तर तभी स्पष्ट हो सकते हैं जब हम दो समाजों को उनके पूर्णरूप में लें। किन्तु एक ही समाज के विभिन्न भागों के परिवर्तन की दर की तुलना कठिन है। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक योरोप में मध्यकालीन योरोपीय समाज की अपेक्षा अधिक वेग से परिवर्तन हुए हैं। परन्तु यह कहना कठिन है कि पिछली तीन शताब्दियों में पश्चिमी सभ्यता में आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थायें पारिवारिक एवं धार्मिक संस्थाओं की अपेक्षा अधिक तेजी से परिवर्तित हुई हैं।

सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप के सम्बन्ध में भी समाजशास्त्रियों में मतभेद है। कुछ समाजशास्त्री सामाजिक परिवर्तन को चक्रवत (cyclical) बताते हैं, अर्थात् वही घटनायें समाज में कुछ समय के बाद घटित होती हैं, जैसा कि व्यापार में उत्कर्ष और अपकर्ष, नगरों का उत्थान और पतन।

अन्य समाजशास्त्रियों का विचार है कि सामाजिक परिवर्तन चक्रवत नहीं होता, बल्कि एक ही विशिष्ट रेखा (linear) में होता है, अर्थात् वही घटनाएँ दोबारा घटित नहीं होतीं।

हम इन दोनों ही सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं कर सकते। यह स्पष्ट है कि वस्तु एक वर्ष से दूसरे वर्ष में एक समान गति से नहीं बदलती। इसी प्रकार, कोई किसी भी लीनता (trend) में थोड़े बहुत परिवर्तन अवश्य होते हैं, क्योंकि कोई भी वस्तु लौट कर अपनी वास्तविक (original) स्थिति को नहीं जा सकती।

आयोजित तथा अनायोजित परिवर्तन
(Planned and unplanned change)

परिवर्तन की गति और दिशा दोनों ही इस बात पर निर्भर करती है कि परिवर्तन जानबूझ कर किया गया है अथवा नहीं। जान बूझ कर किये गये अथवा आयोजित परिवर्तन से हमारा तात्पर्य उस परिवर्तन से है जो कि सामाजिक नियंत्रण, इन्जीनियरिंग तथा योजना (planning) के द्वारा, नेताओं, आविष्कारों (inventors), सुधारकों तथा शक्तिशाली समूहों के द्वारा लाया जाता है। अनेक प्रकार के उद्देश्यों से अनेक लोग इस बात का अनुमान लगाते हैं कि भविष्य में समाज और संस्कृति का बढ़ना किस दिशा में उचित होगा, और वे उसी प्रकार का परिवर्तन लाने का प्रयत्न करते हैं। उदाहरण के लिए, एक शिल्पकार (manufacturer) एक नये आविष्कार के उत्पादन के लिए, एक फैक्ट्री बनाता है। इन प्रयासों के अनेक अप्रत्याशित (unanticipated) परिणाम भी हो सकते हैं; जैसे

कि तेजी से बढ़ते हुए किसी औद्योगिक नगर में मैली कुचैली गलियाँ (slums), परन्तु उनकी सामान्य दशा का उद्देश्य उन्नति लाना है।

इसी प्रकार का 'महान पुरुष सिद्धान्त' सामाजिक और साँस्कृतिक परिवर्तन का कोई एकाकी (exclusive) तथा सार्वभौमिक कारक नहीं है; प्रत्येक महान् सुधारक को कार्य करने के लिये अनुकूल दशायें भी चाहिये। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि व्यक्ति (साधु, सन्त, शूरवीर, तानाशाह और अन्य लोग) अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सफल हुये हैं। उन लोगों ने प्रचार तथा दबाव की विभिन्न विधियों का अच्छे अथवा बुरे ढंग से, प्रयोग किया है। इन लोगों के द्वारा संचालित अनेक आन्दोलनों ने सम्पूर्ण देशों को प्रभावित किया है।

अनियोजित अथवा अपने आप होने वाले परिवर्तन का सामान्यतः कोई पूर्व ज्ञान नहीं होता है। यह अक्सर बाढ़, अकाल और भूचाल जैसी प्राकृतिक विपदाओं के कारण होता है और इसके प्रभाव की सीमा उसके वेग पर और उसका सामना करने की समाज की योग्यता पर निर्भर करती है। यह विपदायें स्वयं अपने में अचानक परिवर्तन हैं और उनके कारण मनुष्यों को अपने व्यवहार में तीव्र गति से अनुकूलन करने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार परिवर्तन के कुछ अनियोजित जैवकीय (biological) कारण भी होते हैं; जैसे कि नई बीमारियाँ।

कोई भी सिद्धान्त जो कि सभी सामाजिक परिवर्तन का कारण इन अनियोजित घटनाओं को ही बतलाता है, सर्वथा गलत है। जैसे-जैसे मनुष्य अपने यन्त्र सम्बन्धी ज्ञान (technical knowledge) तथा प्रशासकीय (administrative) योग्यता के द्वारा अपने भौगोलिक पर्यावरण पर दिन प्रतिदिन अधिक नियन्त्रण प्राप्त करता जाता है, वैसे ही अनियोजित परिवर्तन का महत्व भी कम होता जाता है।

परिवर्तन की दशायें (Conditions of change)

कभी-कभी कुछ लोग दशा एवं कारक दोनों को एक ही वस्तु समझने की गलती करते हैं। परिवर्तन की दशाओं से हमारा तात्पर्य केवल उन परिस्थितियों से होता है जिनमें परिवर्तन होने की सम्भावना है, और परिवर्तन के कारकों से हमारा तात्पर्य उन कारकों से होता है जो परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं।

भौगोलिक और जैवकीय पर्यावरण की उपस्थिति को वे परिस्थितियाँ मानते हुये, जिनमें परिवर्तन होता है, सामाजिक वैज्ञानिक अपना ध्यान सामाजिक और साँस्कृतिक दशाओं पर अधिक केन्द्रित करता है। ऐसी अनेक सामान्य दशायें हैं जिनके अन्दर सामाजिक और साँस्कृतिक परिवर्तन होने की सम्भावना होती है।

(१) किसी समाज के मनुष्य की स्वीकृत आवश्यकताओं की पूर्ति व्यवहार के परम्परागत संस्थात्मक ढंगों से की जाती है। परन्तु जब कई आवश्यकतायें

उत्पन्न होती हैं तब वे एक ऐसी स्थिति ला देती हैं जिसमें परिवर्तन लाने की कोशिश की जाती है और अक्सर उसमें सफ़लता भी मिलती है। उदाहरण के लिये मोटर गाड़ी संश्लेष (automobile complex) ने अनेक नई आवश्यकतायें उत्पन्न कर दी हैं जो कि बढ़िया-बढ़िया सड़कों, थियेटरों, दुर्घटना बीमा, अनेक अन्य नई वस्तुओं से सन्तुष्ट होती हैं। औद्योगिक और व्यावसायिक समाज में ही विशेष रूप से नई आवश्यकताएँ उत्पन्न की जाती हैं।

(२) आवश्यकता का घनिष्ठ सम्बन्ध परिवर्तन लाने की इच्छा के साथ भी है। जहाँ पर मनुष्य अपने वर्तमान पद से सन्तुष्ट होते हैं और नई वस्तुओं को संदेह की दृष्टि से देखते हैं वहाँ परिवर्तन की अनुकूल दशाओं का अभाव होता है। जहाँ मनुष्य अपने बच्चों की शिक्षा देने के, आय वितरण के, अथवा धार्मिक मूल्यों को फैलाने के नये और अधिक अच्छे ढंगों को अपनाने के लिये इच्छुक होते हैं, वे परिवर्तन के लिये अनुकूल दशा प्रस्तुत करते हैं।

(३) ज्ञान का संग्रह भी परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण दशा है क्योंकि व्यवहार के नये ढंग पहले से मौजूद ढंगों के ऊपर बनते हैं। यह दशा प्राप्त ज्ञान की मात्रा और किस्म दोनों पर ही निर्भर करती है। जिस समाज में ज्ञान के संग्रह उपभोग करने की और एक दूसरे को हस्तांतरित करने की सम्भावना रहती है वहाँ परिवर्तन के लिये उतनी ही अधिक अनुकूल दशा होती।

(४) समाज के महत्वपूर्ण मूल्यों और उनके प्रति मनुष्यों की मनोवृत्ति भी परिवर्तन की दशा के रूप में महत्वपूर्ण है। यदि समाज में आवश्यक विषयों पर वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करने की इच्छा के साथ समाज को ठीक करने की इच्छा भी हो तो यह निश्चय है कि वहाँ पर जानबूझ कर कुछ परिवर्तन अवश्य किये जायेंगे। यदि व्यक्ति परम्परागत मूल्यों को बदलने के लिये तैयार है तो यह स्थिति परिवर्तन के लिये अनुकूल होगी।

(५) सामाजिक और साँस्कृतिक ढांचे की गूढ़ता की मात्रा भी परिवर्तन की दशा है। ऐसे समाज में परिवर्तन होने की सम्भावना अधिक रहती है जहाँ व्यक्तियों के पद और वर्ग में महान अन्तर होते हैं, कार्यों का वितरण और विशेषीकरण होता है और यातायात और संदेशवाहन की अच्छी सुविधा होती है।

यह याद रखने योग्य बात है कि परिवर्तन की यह अनुकूल दशायें एक ही साथ समाज में पाई जाती हैं। जहाँ अक्सर परिवर्तन होते रहते हैं वे एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करती हैं। यह कहना मुश्किल होगा कि इनमें से कौन सी दशा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इनमें से अकेले कोई भी दशा परिवर्तन के लिये अनुकूल नहीं है। इसके अतिरिक्त यह सभी दशायें संस्कृति के भौतिक पहलू से

सम्बन्ध रखती है। सामान्यत: सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के अध्ययन में भौतिक दशाओं की अपेक्षा अभौतिक दशायें महत्वपूर्ण हैं।

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियायें (Processes of Social Change)

खोज (Discovery)—खोज से तात्पर्य किसी ऐसे तथ्य या सम्बन्ध का मनुष्य द्वारा देखा जाना है जो पहले से मौजूद है।* मनुष्य ने आग, शरीर में रक्त प्रवाह (b'ood circulation)आदि अनेक बातों की खोज की जो पहले से मौजूद थी परन्तु जिसका ज्ञान मनुष्य को नहीं था। इसी प्रकार, हाल की शरीरशास्त्र और मनोविज्ञान में होने वाली खोज ने, कि बौद्धिक स्तर पर स्त्री और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है, पुरुषों के स्वामित्व को कम करने में मदद की है।

जब नई प्राद्योगिकी का विकास करने में नये ज्ञान का प्रयोग किया जाता है तो महान परिवर्तन प्रकट होते हैं। प्राचीन ग्रीक के लोग भाप से चलने वाले इंजन के बारे में जानकारी रखते थे, और पहली शताब्दी से पहले अलेक्ज़ेन्डर ने एक खिलौने के तौर पर भाप से चलने वाला एक छोटा इंजन बनाया था, परन्तु भाप-शक्ति ने २००० वर्ष बाद ही सामाजिक परिवर्तन लाये जब उसका प्रयोग गम्भीरता-पूर्वक होने लगा। नये ढंग से होने वाले इस्तेमाल सामाजिक परिवर्तन लाते हैं।

आविष्कार (Invention)—संस्कृति के पुराने तत्वों के नये उपयोग को आविष्कार कहते हैं।† मोटर-गाड़ी में प्रयोग होने वाले सभी पदार्थ संस्कृति में पहले से मौजूद थे परन्तु जॉर्ज सैल्टन ने उनका सन्धियुक्त (combined) प्रयोग पहली बार किया।

आविष्कार दो प्रकार के होते हैं जैसे भौतिक आविष्कार, जैसे हवाई जहाज़, टेलीफोन, धनुष-बाण आदि, और सामाजिक आविष्कार, जैसे कि अक्षर(alphabet), लिखित संविधान वाली सरकार (constitutional govt.), या फुटबाल का खेल और उसके नियम।

प्रसार (Diffusion)—यहां तक कि सबसे ज्यादा आविष्कार करने वाला समाज भी सभी नये तत्वों में से कुछ ही का आविष्कार करता है। अधिकतर सामाजिक परिवर्तन प्रसार का फल है, अर्थात् तब उत्पन्न होते हैं जब एक समूह की संस्कृति के तत्व दूसरे समूह द्वारा ग्रहण किये जाते हैं। प्रसार स्वयं उसी समाज के अन्दर और दूसरे समाजों दोनों ही में होता है। न्यू ओरलियन्स के हब्शियों में जाज़ संगीत पाया जाता था और अमेरिकन समाज में ही अन्य समूहों में फैला।

---

* A discovery is a human perception of a fact or relationship which already exists.

† An invention is often defined as a new use of old elements of culture.

फिर वह अन्य समाजों में भी फ़ैला । आज हम जिस रेलगाड़ी, हवाई जहाज, मोटर गाड़ियाँ, मशीनों आदि का प्रयोग करते हैं उनका आविष्कार अन्य समाजों में हुआ परन्तु उनको अपनाने से हमारे यहाँ भी अनेक सामाजिक परिवर्तन हुये ।

परिवर्तन का प्रतिमान (Patterns of Change)—परिवर्तन लगातार रहता है और उसकी भविष्यवाणी करना अत्यन्त कठिन होता है और वह अनेक प्रकार का होता है । इस कारण इसको समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम परिवर्तन में पाये जाने वाले क्रम (order) का पता लगायें । इस सम्बन्ध में सबसे पहली बात यह है कि बदलने वाली भिन्न बातों या वस्तुओं का परिवर्तित होने का अपना अलग तरीका होता है । मैकाइवर और पेज ने भिन्न वस्तुओं से सम्बन्धित तीन प्रतिमानों में भेद किया है ।†

(१) **प्राद्योगिकी और विज्ञान में होने वाले परिवर्तन के प्रतिमान**—उदाहरण के लिए किसी आविष्कार को लीजिए । ऐसा लगता है कि जैसे यह अचानक ही कर लिया गया है जब कि सत्य यह है कि संसार के सामने उसको लाने से पहले उसकी तैयारी करने के अनेक कदम उठाये जाते हैं । एक बार प्रयोग किये जाने की अवस्था तक पहुँचने पर उसमें धीरे-धीरे सुधार करने का एक लम्बा क्रम चलता है । इस प्रक्रिया का उदाहरण टेलीफोन, मोटर गाड़ी, हवाई जहाज, रेडियो आदि के इतिहास में मिलता है । इस प्रकार के परिवर्तन की विशेषता उसका अचानक होना नहीं है बल्कि एक उपयोगी तरीके का निरन्तर धीरे-धीरे विकास है । यह क्रम चलता रहता है जब तक कि वह किसी अन्य तरीके के द्वारा, जो स्वयं ऐसी ही प्रक्रिया से गुजरती है, हटा नहीं दी जाती । इसी प्रकार का परिवर्तन विज्ञान में भी होता है । ज्ञान का क्षेत्र धीरे-धीरे बढ़ता है और नित नये क्रान्तिकारी खोजों को समाविष्ट करने का विज्ञान प्रयत्न करता है । उदाहरण के लिए, १९वीं सदी में डारविन के सिद्धांतों और मैन्डल की खोजों से प्राणीशास्त्र (biology) के विकास में तेजी आ गई ।

(२) **आर्थिक प्रमेय और जनसंख्या में होने वाले परिवर्तन के प्रतिमान**—पहले वाला परिवर्तन केवल एक दिशा में होता है । यह आगे की ओर, वृद्धि की ओर होता है । परन्तु दूसरे प्रकार के परिवर्तन में वृद्धि और गिरावट दोनों ही बातें सम्भव हैं । कुछ समय तक वृद्धि की ओर बढ़ने के बाद इसमें नीचे की ओर भी प्रवृत्ति होती है । इस प्रकार का परिवर्तन आर्थिक प्रमेयों (phenomena) और जनसंख्या के प्रमेय की विशेषता है । शहर बढ़ते हैं और फिर उनकी अवनति हो जाती है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ता है और फिर गिरता है, व्यापारिक क्रिया बढ़ती

† MacIver and Page, Society, p. 19.

है, चरम सीमा पर पहुँचती है और उसमें फिर अपकर्ष आ जाता हैं। इस प्रकार के परिवर्तन की दिशा अनिश्चित होती है।

(३) **चक्राकार परिवर्तन (Cyclical change) या फैशन परिवर्तन, साँस्कृतिक आन्दोलनों आदि के प्रतिमान**—दूसरे प्रकार के परिवर्तन से मिलता जुलता एक तीसरे प्रकार का परिवर्तन है जिसको कुछ लेखकों ने चक्राकार परिवर्तन कहा है। व्यापारिक क्रिया के परिवर्तन को अक्सर आर्थिक चक्र कहा जाता है। प्राकृतिक क्रिया जैसे मौसमों का एक के बाद एक आना और फिर आना भी चक्राकार परिवर्तन, प्राकृतिक न कि सामाजिक परिवर्तन, का उदाहरण है। अक्सर 'चक्राकार' शब्द का प्रयोग व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक की प्रक्रिया के लिये भी किया जाता है। अनेक लेखकों के विचार में चक्राकार परिवर्तन मानव जीवन में भी दिखाई देते हैं जैसे सनातनी और प्रगतिवादी दलों के राजनीतिक आंदोलन, जनसंख्या में दीर्घकालीन परिवर्तन, फैशन में परिवर्तन, रूढ़ियों में परिवर्तन जो कभी बहुत कठोर और कभी बहुत ढीली हो जाती है।

परिवर्तन की किस्म
(Modes or qualities of change)

(१) **प्रक्रिया (Process)**—जब कोई सामाजिक परिवर्तन निरन्तर होता रहता है तब हम उसे 'प्रक्रिया' कहते हैं। यह एक ऐसा परिवर्तन है जो कि स्थिति में शुरू से ही मौजूद किन्हीं शक्तियों के कार्य करने से निरन्तर होता रहता है। इस प्रकार उदाहरण प्रक्रिया शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ यह है कि किसी समूह के लिए, हम 'समूह प्रक्रिया शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ यह है कि किसी समूह के सदस्यों के सम्बन्ध एक नया रूप ले लेते हैं। समाजशास्त्री अनेक प्रक्रियाओं में रुचि रखते हैं। जैसे कि व्यवस्थान (accommodation), एकीकरण (integration), विदारण (distintegration), विघटन आदि। इस प्रकार के परिवर्तन अच्छे या बुरे, और किसी भी दिशा में हो सकते हैं। प्रक्रिया ऊपर या नीचे की ओर, आगे या पीछे, एकीकरण या विदारण की ओर हो सकती है।

(२) **उद्विकास (Evolution)**—अब हम ऐसे परिवर्तन की चर्चा करेंगे जिसमें निरन्तरता के साथ ही दिशा भी होती है। 'उद्विकास' पर आगे एक अलग अध्याय लिखा गया है। उद्विकास का शाब्दिक अर्थ 'प्रकटन' (unrolling) है, एक प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु के छिपे हुए या अस्पष्ट पहलू या विशेषतायें अपने को प्रकट करती हैं। इससे कोई सादी वस्तु धीरे-धीरे एक जटिल वस्तु में बदल जाती है। सामाजिक उद्विकास को दृष्टि में रखते हुए हम कह सकते हैं कि जैसे जैसे समाज के सदस्यों की आवश्यकतायें बदलती और बढ़ती हैं समाज के ढाँचे में–

उसकी संस्थाओं, आदि में—भी धीरे-धीरे उसी के अनुसार परिवर्तन होता है। आज से एक हजार वर्ष पूर्व के भारतीय समाज के सदस्यों और आज के भारतीयों की आवश्यकताओं में हुये परिवर्तन के अनुसार यहां के समाज का ढाँचा भी बदला है। यह सब धीरे-धीरे होता है। जब परिवर्तन तीव्र और अचानक होते हैं तो उसे उद्विकास न कह कर हम क्रान्ति (revolution) कहते हैं।

(३) **प्रगति (Progress)**—ऊपर हम यह लिख चुके हैं कि उद्विकास एक क्रमिक (connected) और निरन्तर परिवर्तन है। यह परिवर्तन किसी भी दिशा में हो सकता है, यह उत्थान या पतन या दोनों ही हो सकता है। प्रगति अपेक्षाकृत एक संकुचित (narrower) तथ्य है। यह परिवर्तन है परन्तु ऐसा परिवर्तन जो एक वांछित या स्वीकृत दिशा में होता है, न कि किसी भी दिशा में। प्रगति एक प्रकार का वांछित उद्विकास है। यदि उद्विकास की दिशा हमारे सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति भी करती है, तो यह प्रगति भी है। फ़ेयर चाइल्ड के शब्दों में, "किसी स्वीकृत और वांछित लक्ष्य या उद्देश्य की दिशा में बढ़ना ही प्रगति है।"

सामाजिक परिवर्तन के कारण
(Factors of Social Change)

हम पहले सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न कारकों की विवेचना करेंगे, तदुपरान्त उन सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे जिन पर यह कारक आधारित है। इस अध्याय को हम मुख्य कारकों पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए, समाप्त करेंगे। अगले अध्यायों में हम विभिन्न कारकों और सिद्धान्तों का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

(१) **भौतिक पर्यावरण (The physical environment)** — इसके अन्तर्गत हम प्रकृति में होने वाले उन परिवर्तनों को लेते हैं जो कि सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं अथवा जिनके कारण उत्पन्न नयी स्थितियों से व्यक्ति को सामंजस्य करना पड़ता है जैसे कि ऋतुओं में परिवर्तन अर्थात, तापक्रम, सूर्यप्रकाश, वर्षा, आर्द्रता, भूचाल, बिजली गिरना इत्यादि। इसके अतिरिक्त टोपोग्रैफी (topography) सम्बन्धित कारकों में होने वाले परिवर्तन को हम ले सकते हैं, जिसके अन्तर्गत मिट्टी की रासायनिक विशेषता, खनिज पदार्थों का होना, नहरों और नदियों का होना जिससे यातायात में सहायता होती है। इन प्राकृतिक कारकों में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों से व्यक्ति को अनुकूलन करना पड़ता है।

(२) **जनसंख्या सम्बन्धी कारक (The demographic factor)** — जनसंख्या के आकार (size) का हमारे जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या के कम या अधिक हो जाने से विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्यायें उत्पन्न

हो जाती हैं। यदि किसी देश की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है तो वहाँ पर गरीबी, भुखमरी, शिशु-हत्या, अपराध, नैतिक पतन, वेश्यावृत्ति इत्यादि समस्याओं का जन्म होता है। इसके विपरीत जहाँ जनसंख्या कम है वहाँ पर उच्च जीवन-स्तर हमारी धारणाओं, आदर्शों एवं जीविकोपार्जन के ढंग को प्रभावित करता है।

इसके अतिरिक्त जनसंख्या की बनावट (composition) में होने वाले परिवर्तन सामाजिक ढांचे पर विशेष रूप से प्रभाव डालते हैं। जहाँ स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक जनसंख्या में हैं वहाँ पर बहुपत्नी विवाह की सम्भावना बढ़ जाती है और उनकी स्थिति एवं कार्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ता हैं।

(३) **प्राणीशास्त्रीय कारक (The biological factor)**—प्राणीशास्त्रीय कारक भी बहुत महत्वपूर्ण ढंग से सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। एक ही माता-पिता की संतानों में अन्तर पाया जाता है और फिर यदि माता और पिता भिन्न नस्ल के हों तो अन्तर और भी अधिक हो जाता है। विभिन्न वाहकाणुओं के योग से विभिन्न सन्तानें उत्पन्न होती हैं और इसीलिये हम यह कह सकते हैं कि एक पीढ़ी के व्यक्तियों की धारणाओं एवं विचारों में और दूसरी पीढ़ी के व्यक्तियों एवं उनकी धारणाओं में विशेष अन्तर पाया जाता है। कोई नवीन पीढ़ी पुरानी पीढ़ी का प्रतिरूप (replica) नहीं हो सकती। जो कुछ भी सामाजिक विरासत के तौर पर नवीन पीढ़ी को मिलता है, उसमें नये विचार, नये मूल्य, नयी धारणाओं का योग होना स्वाभाविक है।

(४) **प्राद्योगिकीय कारक (The technological factor)**—मनुष्य ने प्राकृतिक पर्यावरण को नियन्त्रित करने के प्रयत्न में अथवा अपनी मूलभूत और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न में सभ्यता को जन्म दिया। यह विचित्र प्रविधियाँ (techniques) जो कि मनुष्य के उद्देश्यों (ends) की पूर्ति में साधन (means) हैं सामाजिक सम्बन्धों एवं ढांचों को प्रभावित करती हैं। यदि हम नया घर रहने के लिये बनवाते हैं तो हमें अपनी आदतों को भी बदलना पड़ता है। एक नई मशीन का प्रयोग अथवा एक नया आविष्कार हमारे सामाजिक जीवन पर विशेष प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिये, मोटरगाड़ी के आविष्कार ने हमारे जीवन को बुरी तरह से प्रभावित किया है, इसने दूरी कम कर दी है, परिवारों को गतिशील (mobile) बना दिया है। ऑगबर्न ने रेडियो के आविष्कार के कारण उत्पन्न होने वाले १५० परिवर्तनों की चर्चा की है।

(५) **साँस्कृतिक कारक (The cultural Factor)**—साँस्कृतिक कारक भी सामाजिक परिवर्तन को जन्म देता है। हमारी धारणाओं, मूल्य और आदर्श का सामाजिक सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ता है। पारिवारिक नियोजन की धारणा

जहाँ पर प्रचलित है वहाँ पर परिवार के सदस्यों की स्थिति एवं कार्यों में गहन रूप से परिवर्तन हुए हैं। वहां बच्चों की अच्छी देख-रेख, उच्च शिक्षा एवं अच्छे ढंग से व्यक्तित्व का विकास होता है। इनके अतिरिक्त एक ही प्रविधि का भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयोग हो सकता है। उदाहरण के लिए, कहीं अणुशक्ति (atomic energy) का प्रयोग मानव जाति का नाश करने हेतु हो रहा है, कहीं उसी शक्ति का रचनात्मक कार्यों के लिये प्रयोग हो रहा है।

यहाँ हमने कुछ मुख्य कारकों की ही संक्षिप्त विवेचना की है। अगले अध्यायों में इन कारकों की विस्तृत रूप से व्याख्या की जायेगी। इसके अतिरिक्त अन्य कारकों की भी हम व्याख्या करेंगे।

---

१२ सामाजिक परिवर्तन के कारक (Factors of Social Change)

भौतिक पर्यावरण और सामाजिक परिवर्तन
(Physical Environment and Social Change)

भौतिक पर्यावरण में उन प्रक्रियाओं द्वारा परिवर्तन होते रहते हैं जो कि मनुष्य के नियन्त्रण के बाहर हैं। यह परिवर्तन मानव जीवन के लिये नई दशायें उत्पन्न कर देते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से मानव संस्कृति को प्रभावित करते हैं।

भौगोलिक पर्यावरण में वे सभी असेन्द्रिय (inorganic) घटनायें आती हैं जो सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं। मुख्य रूप से तो ऋतुओं में परिवर्तन जैसे कि तापक्रम, वर्षा, भूचाल, मौसम के परिवर्तन, सूर्य, प्रकाश, बिजली गिरना इत्यादि, जो प्रभाव डालते हैं, और स्थलाकृतिक कारक (topograpical factors) जिसमें कि मिट्टी की बनावट, खनिज पदार्थों का पाया जाना, नहरों व नदियों का होना है, इत्यादि भी सामाजिक जीवन पर गहन प्रभाव डालते हैं।

भौतिक पर्यावरण में मनुष्य द्वारा किये गये परिवर्तनों के अलावा जो उपर्युक्त परिवर्तन ऋतु एवं स्थलाकृति में होते हैं वे मानव शक्ति के परे हैं और यह मन्द परिवर्तन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में साँस्कृतिक अनुकूलन करने के लिए बाध्य कर देते हैं।

भौगोलिक परिवर्तन शारीरिक कार्य-क्षमता को भी प्रभावित करते हैं। हम सभी जानते हैं कि एक ही व्यक्ति गर्म और नम दिनों में दूसरे प्रकार से व्यवहार करेगा और ठंडे दिनों में उसका व्यवहार भिन्न होगा। किसी क्षेत्र में ऋतु में मन्द परिवर्तन के अनुसार शक्ति की शारीरिक एवं मानसिक शक्ति भी परिवर्तित हो जाती है। गर्मियों के दिनों में जाड़े की अपेक्षा लोग अधिक क्रोधी होते है। ठंडक में लोग अत्यधिक फुर्तीले पाये जाते हैं।

इसी प्रकार यह भी सत्य है कि भौगोलिक पर्यावरण में परिवर्तन खाद्य सामग्री (food supply) को प्रभावित करता है जो कि पथ्य के नये नियम (dietary)

habit) बनाता है और नया आहार शारीरिक अनुकूलन करने के लिये बाध्य करता है, जो कि हमारे स्वभाव एवं व्यवहार को प्रभावित करता है।

भौगोलिक पर्यावरण मानव देशान्तरण (human migration) को भी प्रभावित करता है यदि भौगोलिक पर्यावरण में इस प्रकार परिवर्तन हों कि वहाँ व्यक्ति के लिये जीवित रहना असम्भव हो जाये और यदि वहाँ पर मानव निर्मित प्रविधि का भी प्रवेश न हो सके। इन प्राकृतिक विपदाओं को नियन्त्रित करने के लिए, तो वहाँ से लोग दूसरी जगहों (emigration) पर जाते हैं जहाँ पर जीवन की अनुकूल दशायें विद्यमान हैं और यदि भौतिक पर्यावरण में इस प्रकार से परिवर्तन हो कि वहाँ पर जीवन की बहुत सी सुविधायें उपलब्ध हों तो वहाँ पर देशागमन होगा (immigration)। भौगोलिक पर्यावरण के इन परिवर्तनों से किसी क्षेत्र की जनसंख्या का संतुलन बिगड़ जाता है और दो भिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क से बहुत सी जनरीतियाँ एवं प्रथायें भी प्रभावित हो जाती हैं।

इनके अलावा भौगोलिक पर्यावरण प्रत्यक्ष रूप में भी संस्कृति को प्रभावित करता है। जहाँ पर भूमि अधिक उपजाऊ होगी वहाँ पर खेती अधिक पायी जायेगी। भारतवर्ष में अधिक खेती गंगा तटों पर पाई जाती है। समुद्र से नजदीक रहने वाले व्यक्ति मछली पर निर्वाह करते हैं।

भौगोलिक पर्यावरण में परिवर्तन होने से अक्सर सामाजिक परिवर्तन होते हैं, उदाहरण के लिये, पुराने (classical) समय में आज की अपेक्षा अफ्रीका का उत्तरी समुद्रतट कम मरुस्थल (arid) था। अनेक प्राचीन तट के नगर आज नदी के डेल्टा से मीलों दूर हैं। जलवायु में परिवर्तन होते हैं, भूमि का कटना (erosion) होता है और झीलें धीरे-धीरे दल-दल और अन्त में मैदानों में बदल जाती हैं। यद्यपि सामाजिक जीवन इन परिवर्तनों से प्रभावित होता है, परन्तु यह सब बातें इतनी धीमीगति से होती हैं कि एह एक साधारण कारक है। यदि अपने लाभ के कारण व्यक्ति इन पर्यावरण सम्बन्धी परिवर्तनों की गति में तेजी या सुस्ती लाता है तो इन कारकों को प्राकृतिक न कह कर सामाजिक और साँस्कृतिक कहा जायेगा।

देशान्तरण (emigration) के द्वारा भौगोलिक पर्यावरण में परिवर्तन होने की घटना मानव इतिहास में अधिक सामान्य है। विशेषकर आदिवासी समाजों में, जहाँ सदस्य अधिक प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक पर्यावरण पर निर्भर करते हैं, भिन्न पर्यावरण से देशान्तरण महान् साँस्कृतिक परिवर्तन लाता है। सभ्य आदमी अधिक सरलता पूर्वक अपनी संस्कृति को भी अपने साथ ले जा सकता है और एक नये और भिन्न पर्यावरण में उसका पालन कर सकता है। ब्रिटिश साम्राज्यवादी जंगलों के तम्बुओं में भी अपनी शाम की चाय पीता था और रात के भोजन के लिये वस्त्र बदलता था। फिर भी यह कोई नहीं कह सकता कि वह जंगल के पर्यावरण से

प्रभावित नहीं था; प्राकृतिक पर्यावरण के बदलने से सभ्य व्यक्ति की संस्कृति भी बदलती है।

भौगोलिक और साँस्कृतिक कारकों में अन्तःक्रिया

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट होता है कि भौगोलिक पर्यावरण हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है और उसके परिवर्तन हमारी संस्कृति को अनुकूलन करने के लिये बाध्य कर देते हैं। पर इससे हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि हम प्राकृतिक पर्यावरण के अधीन हैं। हमने पिछले अध्यायों में भी स्पष्ट रूप से लिखा है कि मनुष्य ने प्रकृति को नियन्त्रित कर लिया है। बाढ़ के रोकने के लिये बाँध बनाये हैं, रेगिस्तानों को हम फुलवारी में परिवर्तित कर सकते हैं, पहाड़ों में अत्यन्त सुन्दर नगर बसाये हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पर्यावरण और संस्कृति दोनों गतिशील हैं। हमें किसी की क्रिया का दूसरे पर प्रभाव नहीं देखना चाहिए अपितु उनके बीच होने वाली जटिल एवं * निरंतर अन्तःक्रिया का प्रभाव समझना चाहिए।

सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक
(Demographic Factors of Social Change)

मनुष्यों की संख्या या वितरण में कोई महान अन्तर होने से महान् सामाजिक परिवर्तन होते हैं। जब थोड़ी सी आबादी वाले सीमा प्रान्तों (frontiers) में बाहर से आये हुए लोगों के कारण आबादी बढ़ने लगती है, तब सेवा-सत्कार के प्रतिमान में कमी आ जाती है, द्वैतीयक-समूह वाले सम्बन्ध जैसे कि औपचारिक, अव्यक्तिगत, अघनिष्ठ सम्बन्धों की संख्या बढ़ती है, नई-नई संस्थाओं का जन्म होता है, पुरानी संस्थाओं में परिवर्तन होता है जिससे नई स्थिति के साथ वे अनुकूलन कर सकें, और उनमें अन्य परिवर्तन होते हैं। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह या तो देशान्तरण करे या अपनी उत्पादन-विधियों को सुधारे। देशान्तरण स्वयं परिवर्तन के लिये उत्साहित करता है क्योंकि यह मानव समूह को एक नये पर्यावरण में लाता है—नये सामाजिक सम्पर्क स्थापित करता है और नयी समस्याओं से सामना कराता है।

समाज द्वारा निर्दिष्ट दशाओं के अनुकूल जनसंख्या प्राणीशास्त्रीय दृष्टि से

---

* "It appears both the environment and culture are dynamic and interinfluencing, we should speak not simply of the action of either on the other but of a complex and continuous *interaction* between them."

—Sutherland : *Introductory Sociology*, p. 717

भिन्न होती है; अधिक होती है या कम होती है, अधिक स्वस्थ होती है या कम स्वस्थ, अधिक प्रजनन-शक्ति वाली होती है, कुछ सामाजिक अवस्थायें—जैसे कि अन्तर्विवाह (intermarriage) पर निषेध, विवाह के समय वर-वधू की आयु संबंधी प्रथायें, अल्पपक्षों (minorities) को पीड़ा देना, युद्ध-जनसंख्या के प्राणी-शास्त्रीय गुण को कम कर देती हैं। दूसरी अवस्थायें इस गुण को बढ़ाती हैं। इस प्रकार किये गये जनसंख्यात्मक परिवर्तनों का उसके गुण पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है और सामाजिक सम्बन्धों को भी परिवर्तन प्रभावित करते हैं।

बहुत छोटे समाज शायद ही कभी ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्धि प्राप्त करते हों। बड़े समाज केवल अपने पड़ोसियों को ही प्रभावित नहीं करते हैं बल्कि इतिहास को भी बदल देते हैं। किसी भी देश की बढ़ती हुई जनसंख्या राष्ट्र की आर्थिक स्थिति (economy) में अनेक परिवर्तन लाती है और गिरती हुई जनसंख्या का इससे बिल्कुल उल्टा ही प्रभाव होता है। जनसंख्या का दबाव अक्सर युद्ध का कारण बताया गया है। समाज के भिन्न वर्गों की भिन्न प्रजनन-शक्ति (fertility) उन परि-वर्तनों का कारण बतायी गयी है जो समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं और सामाजिक ढाँचे को बदलते हैं।

एक महान् शक्ति के रूप में फ्राँस का पतन, चीनी लेखकों के विचार में, वहाँ जन्म दर गिरने के कारण हुआ और चीन के निवासियों की शारीरिक हीनता का कारण वहाँ की उच्च जन्म दर बताई जाती है।

इस बात पर कोई संदेह नहीं कर सकता है कि जनसंख्या के आकार में परिवर्तन होने से अन्तःक्रियात्मक ढंगों (interactional pattern) में परिवर्तन होना निश्चित है। यही बात जनसंख्या की बनावट (composition) के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, क्योंकि इससे यह निश्चित होता है कि विभिन्न वर्ग सामाजिक माँगों के अनुकूल कार्य कर सकेंगे या नहीं। जनसंख्या के आकार और विभिन्न वर्गों की प्रजनन-शक्ति (fertility) के अतिरिक्त हम इसमें अन्य बातों को भी सम्मिलित करेंगे, जैसे कि सामान्य आयु-विभाजन (किस आयु के व्यक्ति कम या अधिक हैं), जनसंख्या का प्रादेशिक (regional) विभाजन, प्राँतीय बनावट, लिंग (sex ratio) अनुपात, भिन्न वर्गों में मृत्यु और रोग दर, पूर्ण भूमि क्षेत्र के हिसाब से जनसंख्या का अनुपात, ग्रामीण-नागरिक अनुपात, संस्कृति के सामान्य प्राद्योगिकीय (technological) स्तर के हिसाब से जनसंख्या का अनुपात, बाहर के लोगों का आकर बसना, यहाँ के लोगों का बाहर जाना और अन्य बातें। यह सत्य है कि बिना इन सब उपर्युक्त बातों को एक साथ दृष्टि में रखे हुए सामाजिक परिवर्तन की समस्या हल नहीं हो सकती।

प्रथम महायुद्ध के समय योरोप में पुरुषों के बड़ी संख्या में सेना में भर्ती हो जाने से नागरिक जीवन में पुरुषों की एक अस्थायी कमी हो गई और अनेक स्त्रियों ने वे स्थान और पद ग्रहण कर लिए जो शान्ति-काल में पुरुषों के हाथ में थे। तो इसमें क्या आश्चर्य है कि उन्होंने सिगरेट पीना शुरू कर दिया, बाल छोटे-छोटे कटवा लिये, वोट देने के अधिकार की माँग की और दूसरे पुरुषोचित गुणों को प्रकट किया।

जन-संख्या का बदलता हुआ आकार

भारतवर्ष जैसे देश में, जहाँ जनसंख्या अत्यधिक है, अनेक सामाजिक समस्यायें पायी जाती हैं। गरीबी, बेकारी, निम्न जीवन स्तर, अशिक्षा आदि समस्यायें अधिक जनसंख्या के कारण उत्पन्न होती हैं। आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में, जहाँ की जनसंख्या कम है, हम उच्च जीवन स्तर पाते हैं। जीवन-स्तर बदले में हमारी मनोवृत्तियों, मूल्यों, जीविकोपार्जन के ढंगों को प्रभावित करता है'।

मिलिटरी और राजनैतिक दृष्टिकोण से भी जनसंख्या का आकार महत्वपूर्ण है। लिन स्मिथ (Lynn Smith) ने कहा है कि सैद्धान्तिक रूप से बड़ी जनसंख्या का अर्थ एक शक्तिशाली राष्ट्र होता है, जबकि छोटी जनसंख्या से एक कमजोर राष्ट्र बनता है।

जनसंख्या का आकार और घनत्व दो कारकों पर निर्भर करता है :—

(१) जन्म और मृत्यु दरों में सन्तुलन।

(२) देशागमन (immigration) और देशान्तरगमन (emigration) का सन्तुलन।

जब मृत्यु दर की अपेक्षा जन्म-दर अधिक होती है तो जनसंख्या में निश्चित रूप से वृद्धि होगी। जन्म दर की अपेक्षा मृत्यु दर अधिक होती है जब जनसंख्या में कमी होगी। उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी योरोप के अधिकतर देशों की जनसंख्या असाधारण तेजी से बढ़ी। जन्म-दर में वृद्धि होने और मृत्यु-दर के गिर जाने से योरोप और अमेरिका में जितनी जनसंख्या बढ़ी उसका जैसा उदाहरण मानव इतिहास में कभी भी पहले नहीं मिला। ऊँचे पैमाने पर होने वाली बेकारी और अधिक जनसंख्या के खतरों ने इस बात की आवश्यकता उत्पन्न कर दी कि बदलती हुई दशाओं के साथ जनसंख्या का सामंजस्य किया जाये।

मृत्यु-दर के गिरने का कारण विज्ञान में उन्नति होना है; एक ओर तो विज्ञान में ज्ञान का प्रयोग स्वास्थ्य रक्षा (hygiene), सैनिटेशन (sanitation) और निरोधात्मक दवाओं में किया जा रहा है, और दूसरी ओर उत्पादन बढ़ाकर

जीवन-स्तर उठाने में किया जा रहा है। पहले बीमारियों पर मनुष्य का नियन्त्रण बहुत थोड़ा था। अधिकतर लोगों के लिये दारुण निर्धनता से बचना और उनके साथ ही अच्छा पौष्टिक भोजन खाना, आराम करना और रोग से बचना सम्भव नहीं था।

जहाँ पहले जन्म-दर और मृत्यु-दर दोनों ही ऊँची थीं वहाँ अब दोनों ही दरें काफी गिर गई हैं। निम्न जन्म-दर और मृत्यु-दर के इस नवीन सन्तुलन से अनेक लाभ हुए हैं: उच्च जीवन स्तर, अनेक कष्टों से स्त्रियों की मुक्ति, बच्चों की अधिक अच्छी देख-भाल, मानव जीवन और व्यक्तित्व के लिये अधिक आदर।

जन-संख्या की गतिशीलता

अनेक सामाजिक परिवर्तनों का कारण जनसंख्या की गतिशीलता है। जब बाहर से आने वालों की संख्या देशान्तर जाने वालों की संख्या से अधिक होती है, जनसंख्या में भी वृद्धि होती है, और यदि देशान्तर जाने वालों की संख्या बाहर से आने वालों की संख्या से अधिक होती है तो जनसंख्या गिर जाती है। देशागमन (immigration)और देशान्तरगमन (emigration) से साँस्कृतिक सम्बन्धों में वृद्धि होती है। जब दो विभिन्न संस्कृतियों वाले समूह एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, तो विचार, सिद्धान्त, मूल्य, प्रथायें, परम्परायें भी प्रभावित होती हैं। देश के विभाजन के बाद हमारे नगरों में दूसरे प्रान्तों से लोग बड़ी संख्या में आये और अपने साथ नई संस्कृति लाये। इन लोगों के सम्पर्क में आने से हमारे नगर के स्त्रियों और पुरुषों के रहन-सहन, व्यवहार आदि में भीषण अन्तर आये। अन्तर्जातीय विवाहों में वृद्धि होने से पारस्परिक सम्बन्धों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा। दूसरे प्रान्तों के लड़के-लड़कियों के सम्पर्क में आने से हमारे नगरों के लड़के और लड़कियाँ भी अधिक स्वतन्त्र जीवन की माँग करने लगे जिससे परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। जन-संख्या बढ़ जाने से मंहगाई, गरीबी, बेकारी आदि भी बढ़ी। ऊपरी दिखावे और पहनावे आदि में भी अधिक धन व्यय करने से पति-पत्नी के सम्बन्धों पर भी अवांछनीय प्रभाव पड़ा। इसीलिए डासन और गैटिस ने कहा है, "मनुष्य की एक सामाजिक आर्थिक स्तर वाले स्थान से दूसरे स्थान को आने जाने की इच्छा के बिना सामाजिक परिवर्तन अविचारणीय हैं।"

रैजेल (Ratzel) और समनर (Sumner) का कहना है कि जनसंख्या में वृद्धि होने से वर्तमान साधन और प्रविधियाँ (techniques) असन्तोषजनक सिद्ध होती हैं, इसलिये मनुष्यों के कल्याण और आराम के लिये नये साधन, नये तरीके निकाले जाते हैं।

मृत्यु जन्म और विवाह की दर जहाँ सामाजिक मनोवृत्तियों और सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित और निश्चित करती हैं, वहाँ उनका फल भी है। उदाहरण के लिए, जिन देशों में अपेक्षाकृत साधन सीमित हैं और जनसंख्या बढ़ रही है, वहाँ साम्राज्यवाद (imperialism) और सैनिक शासन (militarism) को प्रोत्साहन मिलता है, जो स्वयं जनसंख्या बढ़ाने में सहायक होते हैं। इसीलिये, इटली में, जहाँ की आबादी अत्यधिक है और साधनों से अपेक्षाकृत दरिद्र है, मुसोलिनी ने बराबर इस बात की घोषणा की कि राज्यों की विजय अथवा रक्षा स्त्रियों और पुरुषों की अधिक सन्तानें उत्पन्न करने की क्षमता पर निर्भर करती है। दूसरी ओर, जनसंख्या की वृद्धि से जीवन-स्तर बिगड़ने का खतरा रहता है जो कि स्वयं व्यक्तियों की मनोवृत्तियों को बदलने में समर्थ है।

जनसंख्या के आकार में परिवर्तन होने के साथ उसकी बनावट (composition) में भी परिवर्तन होता है। यदि किसी विशेष जनसंख्या में युवा लोगों की अपेक्षा वृद्ध जनों की संख्या अधिक है, तो उसका ढाँचा उस समाज से भिन्न होता है जिसमें युवा लोगों की जनसंख्या वृद्धजनों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है तो वहाँ स्त्रियों की स्थिति और पद भिन्न होगा, स्त्रियों को स्वतन्त्रता अधिक होगी, पुरुषों की अधीनता कम होगी।

इस सम्बन्ध में हम तीन कारकों पर विचार करेंगे—आयु, लिङ्ग और वैवाहिक स्तर।

आयु (Age)—जनसंख्या में युवा लोगों की संख्या कम होने और वृद्ध जनों की संख्या अधिक होने से भी सामाजिक परिवर्तन होते हैं। वृद्धजन अधिक कठोर, अनुशासनपूर्ण जीवन पर बल देंगे, वैसे ही नियम बनेंगे और युवा लोगों के विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों को उलट फेर देंगे। इसके विपरीत वहाँ की सैन्य शक्ति भी कम हो जायेगी, कार्यों की गति में सुस्ती आ जायेगी। इसके विपरीत, यदि समाज में प्रौढ़ अनुभवी व्यक्तियों की कमी होगी तो सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अनेक गलतियाँ होंगी। अनुभव प्रौढ़ता के साथ ही आते हैं और अनुभव के बिना किसी भी चीज का संचालन उचित रूप से नहीं हो सकता।

लिङ्ग (Sex)—पुरुषों और स्त्रियों के अनुपात का भी सामाजिक जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। पश्चिमी समाज में, विशेषकर अमेरिका में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है—इसका बहुत कुछ कारण युद्ध का प्रभाव है—वहाँ हम स्त्रियों का उच्च पद (status) देखते हैं। हमारे देश में, विशेषकर नगरों में, पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या की अपेक्षा अधिक है। यदि पुरुषों की संख्या अधिक होती है तो समाज में पुरुषों की प्रभुता होगी। हमारे देश में अब पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण स्त्रियों की स्थिति में संतोषजनक सुधार हो रहा है।

वैवाहिक स्तर (Marital status)—यदि किसी समाज में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बढ़ जाती है तो वहाँ बहुपत्नी विवाह की सम्भावना भी बढ़ जाती है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक समाज में, जहाँ स्त्रियों की संख्या अधिक हो, वहाँ बहुपत्नी विवाह ही हो। इसी प्रकार, पुरुषों की संख्या बढ़ जाने से बहुपति विवाह (polyandry) की भी सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त नगरों में, विशेषकर औद्योगिक नगरों में, पुरुषों की संख्या, विशेषकर अविवाहितों की, बढ़ जाने से वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है, अनैतिकता बढ़ जाती है, पति-पत्नी, पिता-पुत्र के सम्बन्धों पर अवाँछनीय प्रभाव पड़ता है।

समनर (Sumner), कैलर (Kellar), फ्रेजर (Frazer) ने कहा है कि प्रथाओं, परम्पराओं और संस्थाओं का जनसंख्या के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है तो उसके निम्नलिखित प्रभाव होते हैं—शिशु-हत्या (infanticide), भ्रूण-हत्या (abortion), विवाह में देरी, जन्म-निरोध के लिए कान्ट्रासैप्टिव जैसी वस्तुओं का प्रयोग बढ़ जाना।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनसंख्या के आकार और बनावट में परिवर्तन होने से सामाजिक परिवर्तन भी होते हैं।

यह स्पष्ट है कि आर्थिक दशायें और जनसंख्या की दर एक दूसरे पर निर्भर हैं। गरीबी, बेकारी, निम्न जीवन स्तर, अपराध आदि का होना, न होना जनसंख्या के ऊपर बहुत कुछ निर्भर करता है।

मृत्युदर, जन्म दर, विवाह दर के परिवर्तन सामाजिक मनोवृत्तियों और सामाजिक सम्बन्धों का फल हैं, और साथ में उनको प्रभावित और निर्धारित भी करते हैं। उदाहरण के लिए, जिन देशों की जनसंख्या असाधारण रूप से बढ़ रही होती है, जबकि वहाँ के साधन (resources) सीमित होते हैं, तो वहाँ तानाशाही (dictatorship) की सम्भावना बढ़ जाती है।

जनसंख्या के अत्यधिक बढ़ने से जन्म निरोध (birth control) के प्रयास भी बढ़ जाते हैं जिनका पारिवारिक सम्बन्धों और विवाह के प्रति मनोवृत्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप परिवार का आकार भी छोटा हो रहा है। छोटे परिवार का निम्नलिखित अर्थ होता है :

(१) अच्छी शिक्षा।
(२) स्त्रियों का उच्च सामाजिक और पारिवारिक स्तर
(३) व्यक्तित्व का उचित रूप से निर्माण
(४) स्त्रियों के कार्यों में कमी
(५) पति-पत्नी के सम्बन्ध अधिक सुखी होते हैं

(६) बच्चों का अच्छा पालन-पोषण
(७) घर की आर्थिक आत्म-निर्भरता
(८) बीमारी से अपेक्षाकृत मुक्ति ।

सामाजिक परिवर्तन के प्राणीशास्त्रीय कारक
(Biological Factors of Social Change)

अनेक लेखकों का विचार है कि सभ्यताओं का विकास और पतन का कारण राष्ट्रों की जैवकीय (biological) विशेषताओं में होने वाला परिवर्तन है। अक्सर इन सिद्धान्तों में एक प्रजातीय मोड़ होता है, महान् सभ्यता का उदय किसी शक्तिशाली बुद्धिमान और आविष्कारक प्रजाति से होता है, और उसका पतन तब होता है जब वह प्रजाति (race) हीन प्रजातियों से मिश्रण करती है और अपनी प्रतिभा को गिराती है।

इसके विपरीत एक सिद्धान्त यह है कि कुछ प्रजातियों के सौभाग्यपूर्ण मिश्रण से ही नई वस्तुओं को उत्पन्न करने की शक्ति का विकास होता है और जब वह मिश्रण तत्व नष्ट हो जाते हैं तो वह गुण भी नष्ट हो जाता है। वास्तव में इस बात का कोई स्वीकार करने योग्य वैज्ञानिक सिद्धाँत नहीं है कि सीखने की शक्ति के मामले में कोई एक प्रजाति किसी दूसरी प्रजाति से जैवकीय दृष्टि से भिन्न है, या पिछले २५ हजार वर्षों में मनुष्य की शरीर रचना में कोई परिवर्तन हुआ हो।

अनेक समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन के कारण के रूप में प्राणीशास्त्रीय कारकों को महत्ता दी है। उनका विचार है कि मनुष्य को अपने भौतिक पर्यावरण के साथ अनुकूलन करना पड़ता है। ऐसा करने में जीवित रहने के लिये हमेशा संग्राम करना पड़ता है और केवल वही लोग जीवित रहते हैं जो कि प्रकृति (nature) की प्रतिकूल दशाओं से लड़ सकते हैं, बाकी लोगों का नाश हो जाता है। जीवन (existence) के लिये संग्राम (struggle) का सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। यह सिद्धान्त डारविन और स्पैन्सर ने प्रतिपादित किया था, और सामान्यतः पशुओं व पौधों के जीवन के सम्बन्ध में इसका प्रयोग किया जाता था परन्तु बाद में मानव जीवन के लिये भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। अब हम उस सिद्धान्त पर विचार करेंगे जो कि प्राकृतिक प्रवरण (natural selection) के सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है।

"सामान्यतः प्रवरण (selection) वह कार्य या प्रक्रिया है जिसके द्वारा, किसी निश्चित व्यवहार आदर्श या उद्देश्य के अनुसार कुछ वस्तुओं को रख लिया जाता है या बढ़ावा दिया जाता है और दूसरों को त्यागा जाता है।"* इसका तात्पर्य

* "Selection in general is the act or process by which, in accordance

यह है कि कुछ वस्तुओं को वरीयता (preference) दी जाती है। इस प्रकार, हम संगीत के कुछ रेकार्डों को चुनते हैं और दूसरों की अवहेलना करते हैं, अथवा एक प्रकार की कविता में विशेष रुचि रखते हैं और दूसरों की अवहेलना करते हैं। इस अर्थ में, प्रवरण परिवर्तन से भिन्न है जिसका अर्थ केवल एक वस्तु द्वारा किसी दूसरी वस्तु का बदल दिया जाना है। "प्राकृतिक प्रवरण वह प्रवरण है जो कि प्रकृति अपनी विधियों के द्वारा पालन करती है; जब कि सामाजिक प्रवरण अपनी विधियों और लौकिक रीतियों के द्वारा समाज लाता है।"†

पहले के समाजशास्त्रियों, जैसे हर्बर्ट स्पैन्सर, के विचार में प्राकृतिक प्रवरण ही सामाजिक उद्विकास की कुंजी था। प्रत्येक प्राणी को अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन करना था और केवल अपने ढाँचे में आवश्यक परिवर्तन करके ही यह अनुकूलन किया जा सकता था। इस प्रकार केवल वही पशु भूमि पर रह सकते थे जिन्होंने फेफड़ों को विकसित कर लिया था, जब कि केवल वे जीव पानी में रह सकते थे जिनमें गलफड़ा (gills) का विकास हो सका। इसी प्रकार से, अपने ढाँचे के कारण ताड़ के पेड़ केवल गर्म जलवायु में बढ़ सकते हैं, जब कि एल्म (elm) वृक्ष केवल ठंडे देशों में हो सकते थे। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण की आवश्यकतायें शरीर में परिवर्तन या उत्परिवर्तन (mutations) लाती हैं जिसके द्वारा अनुकूलन सम्भव होता है। वे शरीर जो कि पर्यावरण की माँग के अनुसार उत्परिवर्तित न हो सके, नष्ट हो गये; केवल सबसे अधिक उपयुक्त बच सके। इस प्रकार भौतिक पर्यावरण का कार्य उन शरीरों को चुनना था जो जीवित रहने के योग्य थे, और अयोग्यों का निरसन कर देना था।

परन्तु इस बात की गवेषणा अधिक की गई तो पता लगा कि पर्यावरण ही प्राकृतिक प्रवरण का एक मात्र साधन नहीं था। माल्थस के अनुसार संसार की खाद्य सामग्री सीमित है जब कि संख्या दिन दूनी बढ़ती है। इस प्रकार मछली एक बार में ६४६००० अण्डे देती है, चिड़ियाँ पांच और इसी प्रकार अनेक रेंगने वाले जन्तु (reptiles)। ऐसी स्थिति में भोजन के लिए संग्राम होता है जिनमें वे लोग नष्ट हो जाते हैं जो भोजन नहीं प्राप्त कर सकते और अधिक सफल लोग बच

with a given norm or end, certain things are retained or promoted and others discarded."

—Gisbert, *Fundamentals of Sociology* (1959) p. 33.

† "Natural Selection is that which nature with her law is supposed to follow, whereas social selection is brought about by society with its laws and conventions." —Ibid.

...ते हैं। इस प्रकार "the survival of the fittest through the struggle for existence" का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ।

प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि उत्पत्ति के नियमों में परिवर्तन होने से वंशानुसंक्रमण के तत्वों में अन्तर होता रहता है। यह भिन्नतायें उत्परिवर्तन (mutation) की प्रक्रिया द्वारा हो सकती हैं। इनमें से किसी भी कारण से हुए जो परिवर्तन—चाहे उत्परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा वंशानुसंक्रमण के तत्वों में अन्तर हो अथवा उत्पत्ति के सिद्धान्तों के अनुसार—पर्यावरण के साथ अनुकूलन कर लेते हैं, अधिक समय स्थिर रहते हैं और जो ऐसा नहीं कर पाते, शीघ्र समाप्त हो जाते हैं।

जीवन के लिए होने वाले संग्राम के अनेक पहलू हैं जिनके अन्दर प्रकृति की कठोरताओं, मौसम और जलवायु के परिवर्तन, खाद्य सामग्री में होने वाले अन्तरों आदि के साथ किये जाने वाले अनुकूलन सम्मिलित हैं। इसके अन्दर भोजन, आश्रय (shelter), या यौन साथी (mates) के लिये एक ही किस्म (species) के व्यक्तियों के बीच होने वाला संघर्ष भी सम्मिलित है। नोविकाऊ (Novicow) के अनुसार इस प्रकार का संघर्ष अणुओं, परमाणुओं, मनुष्यों, समाजों और अन्य सभी प्रकार की इकाइयों में चलता रहता है। पशुओं में जीवन के लिये संघर्ष दो मुख्य रूप धारण करता है: निरसन (elimination) और विलयन (absorption)।

इस संघर्ष के फलस्वरूप कम योग्य लोगों का नाश हो जाता है, और वे लोग जीवित रहते हैं जो कि वर्तमान दशाओं के साथ अधिक अच्छा अनुकूलन कर सकते हैं। अनुभव और ज्ञान पशुओं के सफल संघर्ष में बहुत सहायक हुए हैं। जिन जीवों में यह अधिक मात्रा में थे उनके जीवित रहने की सम्भावना भी अत्यधिक थी। अयोग्यों के संहार या विनाश के द्वारा संघर्ष का अच्छे से अच्छे अनुकूलन में अन्त होता है।

पियर्सन (Pearson) ने प्राकृतिक प्रवरण के चार मुख्य आधार बताये हैं।

(१) गुण परिवर्तनशील हैं—मनुष्यों तथा पशुओं में जितने भी प्राणी-शास्त्रीय कारक हैं वे बदले जा सकते है। उत्परिवर्तन (mutation) की प्रक्रिया के द्वारा वाहकाणुओं (genes) में एकदम परिवर्तन हो जाता है। हमारे वाहकाणुओं पर ही हमारे गुण निर्भर करते हैं। वाहकाणुओं में परिवर्तन आने से गुण भी बदल जाते हैं।

(२) गुण वंशानुक्रम से प्राप्त होते हैं—गुण वाहकाणुओं से प्राप्त होते हैं जो स्वयं आनुवंशिकता से प्राप्त होते हैं।

(३) प्राकृतिक प्रवरण मृत्यु-दर द्वारा प्रवरण करता है—जो प्राणी प्रकृति

के अनुसार अपने में परिवर्तन लाने में असमर्थ होते हैं; मृत्यु द्वारा प्रकृति उनका निरसन कर देती है।

(४) जिनकी मृत्यु देर से होती है उनके बच्चे अधिक होते हैं और जो शीघ्र मरते हैं उनके बच्चे अपेक्षाकृत कम होते हैं।

प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of the principle of natural selection)

सहयोग अनेक पशुओं में पाया जाता है—यद्यपि यह सत्य है कि पशु समाज में जीवन के लिये संघर्ष और निरसन (elimination) अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार विभिन्न जातियों (species) के पशुओं में सहयोग, शान्तिपूर्ण जीवन, और इसी प्रकार की अच्छी बातें जैसे कि सहजीवन (symbiosis) उनके जीवित रहने और जाति के विकास के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

क्रोपोकिन (Kropotkin) ने अपनी पुस्तक Mutual Aid में यह कहा है कि सहयोग ही पशु और मानव जीवन दोनों में ही मौलिक (fundamental) है, न कि जीवित रहने के लिये संघर्ष जैसा कि डारविन तथा अन्य लेखकों का विचार है। इस सम्बन्ध में चुनौती देते हुए क्रोपोकिन ने दो प्रश्न किये—

(१) किस शास्त्र के द्वारा मुख्यतः यह संघर्ष चलाया जाता है ?

(२) संघर्ष में कौन सबसे अधिक योग्य है ?

क्रौपोकिन ने यह भी कहा है कि संघर्ष एक ही जाति के पशुओं के सदस्यों के बीच में नहीं था, बल्कि विभिन्न जातियों के पशुओं में था। इसके अतिरिक्त जीवित रहने के सम्बन्ध में सहयोग अधिक महत्वपूर्ण है। पारस्परिक सहायता उसी समय से आरम्भ हो जाती है जब कि पशु पक्षी अपने बच्चों के पालन-पोषण में और आत्म-रक्षा और भोजन की खोज में सहयोग देना शुरू करते हैं।

इस बात का उदाहरण देते हुए वह कहता है कि सफेद पूछ के बाजों (eagles) को दस-दस के समूहों में शिकार करते हुए देखा गया है। इसी प्रकार भेड़, हिरण, भैंस आदि झुण्डों में रहते हैं अर्थात् सहयोग प्रदर्शित करते हैं।

प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त के अनुसार केवल वही जातियाँ (species) जीवित रहती हैं जो बहुत प्रवल और शक्तिशाली होती हैं। परन्तु अनेक पशु जो जीवित रहते हैं वे सबसे अधिक शक्तिशाली नहीं हैं।

प्राकृतिक प्रवरण और मानव समाज
(Natural selection and human society)

(१) जीवित रहने के लिये सबसे अधिक योग्य कौन हैं ?

प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त का मानव समाज में प्रयोग करने से हमें अनेक

आपत्तियों और तर्कों का सामना करना पड़ता है, जिससे इस सिद्धान्त की असत्यता प्रमाणित होती है।

प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त के अनुसार केवल वही लोग जीवित रहते हैं जो पर्यावरण के अनुकूल हैं और शक्तिशाली हैं, और कमजोर और कम अनुकूल प्राणियों का निरसन (elimination) हो जाता है। परन्तु युद्ध में सबसे अधिक योग्य या स्वस्थ और शक्तिशाली व्यक्तियों को चुना जाता है और यही लोग मारे जाते हैं। इसलिये, प्राकृतिक प्रवरण के विरुद्ध यह प्रमाणित होता है कि युद्ध में सब अधिक योग्य और स्वस्थ व्यक्तियों का निरसन होता है।

इस प्रकार, शब्द 'सबसे अधिक योग्य' (fittest) अत्यन्त अस्पष्ट है। सबसे अधिक योग्य का अर्थ है 'सबसे अधिक श्रेष्ठ'। परन्तु किस अर्थ में श्रेष्ठ? वह व्यक्ति जो कि जीवित रहने के संघर्ष में सबसे योग्य प्रमाणित होता है, सामाजिक, नैतिक अथवा बौद्धिक गुणों में सबसे अधिक हीन हो सकता है। सॉक्रेटीज़ (Socrates) की मृत्यु का कारण उसकी ईमानदारी; अलॉयसियस गॉन्जेगा (Aloysius Gonzaga) की मृत्यु का कारण जन सेवा या दया-भावना थी, रोम में प्लेग से पीड़ित व्यक्तियों की सेवा करते समय वह स्वयं भी बीमारी का ग्रास बना। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि ईमानदार और दयालु व्यक्ति अधिक दिन जीवित नहीं रहते हैं।

(२) जीवित रहने, जीवन में सफलता प्राप्त करने और सन्तान उत्पन्न करने, की दशायें बहुत हद तक समाज द्वारा बदल दी जाती हैं और प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा ही निर्धारित नहीं होती हैं।

(३) मानव जीवन में जीवित रहने के लिये समूहों के बीच होने वाला संघर्ष अधिक महत्वपूर्ण है, न कि व्यक्तियों के बीच होने वाला संघर्ष। परन्तु यह संघर्ष जिंदगी और मौत का नहीं होता, जैसा कि प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त से अनुमान लगाया जाता है।

(४) जीवित रहने के लिये सहयोग ही प्राथमिक है। स्वयं समाज, अनेक मानों में, सहयोग और अन्तर्निर्भरता की प्रणाली है, जो कि प्राकृतिक प्रवरण के विरुद्ध है, क्योंकि इसके अनुसार जीवन के लिये व्यक्ति को एक सीमा के अन्दर ही संघर्ष करना होता है। मनुष्य के लिये समाज में सहयोग इतना अधिक अनिवार्य और महत्वपूर्ण है कि उसके बिना, या संघर्ष पर विजय प्राप्त किये बिना, समाज का अस्तित्व ही नहीं सम्भव है। मनुष्य के सामाजिक जीवन का आधार संघर्ष नहीं सहयोग है। जब समाज की मूलभूत दृढ़ता ही नष्ट होने लगती है तो सामाजिक संस्थायें और स्वयं सामाजिक जीवन भी छिन्न-भिन्न होने लगते हैं।

(५) बहुत सी घटनाओं में मृत्यु या निरसन (elimination) सामाजिक

पर्यावरण का फल होता है। प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त के अनुसार सभी मृत्यु प्राकृतिक पर्यावरण के कारण होती है, परन्तु वास्तव में निरसन की अनेक शक्तियों पर समाज द्वारा निर्मित दशाओं का प्रभाव रहता है। अनेक मृत्यु का कारण शहरों की घनी आबादी, मिलों की विषाक्त (poisonous) गैस, उद्योगों में असुरिक्षत जीवन, मैली कुचैली गलियाँ (slums) आदि हैं जो कि सामाजिक दशायें हैं न कि प्राकृतिक। इसी प्रकार, अनेक औद्योगिक नगरों में जैसे कि कानपुर में, बहुत लोगों की मृत्यु क्षय-रोग (tuberculosis) से होती है जो कि प्राकृतिक प्रवरण का फल नहीं है, बल्कि मकानों की बुरी दशा, गन्दगी, निर्धनता आदि के कारण हैं।

(६) समाज मृत्यु दर को भी रोकता है। यदि मनुष्य प्रतिकूल सामाजिक दशाओं के कारण मरते हैं, तो समाज मृत्यु-दर को कम भी करता है। आरोग्य-शास्त्र (medical science) में उन्नति होने और अत्यन्त प्रभावपूर्ण और निरोधात्मक दवाओं के बनने से स्वास्थ्य रक्षा (hygiene) और सफाई के प्रबन्ध में सुधार होने से मृत्यु-दर पर भी नियन्त्रण होता है।

(७) प्राकृतिक प्रवरण के सिद्धान्त के अनुसार सन्तानोत्पत्ति की दर जीवित रहने की दर (survival rate) से अधिक होनी चाहिए क्योंकि जब जन्म दर अधिक होगी तभी जीवित रहने के लिये संघर्ष भी अधिक होगा। परन्तु मानव समाज में यह सिद्धान्त प्रयोग में नहीं आ सकता जहाँ जीवित रहने की दर भी जन्म दर के बराबर ही है।

(८) प्राकृतिक प्रवरण प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण से सम्बन्धित है, परन्तु अब पर्यावरण प्राकृतिक कहाँ रहा? उसमें तो मनुष्य ने अपनी इच्छानुसार हेरफेर कर के एक सामाजिक पर्यावरण बनाया है। हम लोग संस्कृति के विकास की उच्च अवस्था, सभ्यता, में प्रवेश कर चुके हैं जहाँ प्राकृतिक प्रवरण का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं है।

जहाँ तक मनुष्य के सामाजिक जीवन का सम्बन्ध है, प्राकृतिक पर्यावरण केवल उसके शारीरिक अस्तित्व के लिये एक आधार प्रस्तुत करता है, या उसके कार्यों की सीमा निश्चित करता है, परन्तु अन्य बातों का पता इससे नहीं लगता। हॉबहाउस ने कहा है कि पर्यावरण कभी कला या संस्थायें नहीं बनाता, वह मनुष्य के विचार और इच्छा-शक्ति का फल है, परन्तु पर्यावरण उन दिशाओं को अवश्य निश्चित करता है जिसमें मानव शक्तियाँ सफल हो सकती हैं, और इस प्रकार उन प्रयोगों और प्रायोगिक शुरुआतों को निश्चित करता है जो संस्थाओं का रूप धारण कर लेंगी। * मॉरगन ने कहा है कि सभ्य मनुष्य के उद्विकास में प्राकृतिक प्रवरण

* "The environment never makes arts or institutions, these proceed from the energy of human thought and will, the environment

निरन्तर होने वाला एक कारक है †

सामाजिक प्रवरण (Social Selection)

मैकाइवर और पेज ने सामाजिक प्रवरण की परिभाषा देते हुए कहा है कि जब मानव समाज में उत्पन्न और सामाजिक सम्बन्धों द्वारा कार्य करने वाली शक्तियाँ ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर देती हैं जो सम्पूर्ण जनसंख्या और उसके अन्दर विभिन्न समूहों की सन्तानोत्पत्ति करने और जीवित रहने की दरों को प्रभावित करती हैं, हम इस प्रक्रिया को सामाजिक प्रवरण कहते हैं। ‡

सामाजिक प्रवरण उन शक्तियों का फल है जो समाज में मनुष्य के द्वारा क्रियान्वित की जाती हैं। उनके अन्दर केवल भौतिक (material) शक्तियाँ ही नहीं सम्मिलित हैं, बल्कि सामाजिक संस्थाओं के अभौतिक तत्व भी सम्मिलित हैं। सामाजिक प्रवरण संस्कृति और सभ्यता का ही फल है। मनुष्य हमेशा से ही ऐसी योजनायें और उपकरण (tools) बनाता रहा है जिससे प्राकृतिक प्रवरण के प्रभावों में हेर-फेर कर दिया गया है। मनुष्य को इसलिए homo faber अर्थात् उपकरणों का प्रयोग करने वाला कहा गया है।

जहाँ यन्त्रकला का कम विकास होता है और मनुष्य खाद्य सामग्री बटोरने का जीवन व्यतीत करते हैं वहाँ वे मुख्यतः प्रकृति की दशा पर निर्भर करते हैं जो कभी उन्हें पर्याप्त मात्रा में वस्तुयें प्रदान करती है और कभी बीमारी और अन्य विपदाओं के द्वारा उनकी जनसंख्या को कम कर देती है। ऐसे समाज में प्राकृतिक प्रवरण प्रबल होता है। परन्तु जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता है और प्रकृति की शक्तियों पर मनुष्य का नियन्त्रण बढ़ता है, मानव जीवन में प्राकृतिक प्रवरण का महत्व निरन्तर कम होता जाता है, और सामाजिक प्रवरण का महत्व बढ़ता जाता

---

does go to determine the lines on which human energy can succeed; and so to decide what experiments and tentative beginnings will ripen into institutions"

—L. T. Hobhouse : *Social Development* p. 97

† "Natural selection is a constantly diminishing factor in the evolution of civilized man."—Lloyd Morgan : *Habit and Instinct*, p. 97

‡ "In so far as forces generated within human society and operating through social relationships create conditions which affect the reproduction and survival rates of population as a whole and differentially of the various groups within it, we can term the process *Social Selection.*"

—MacIver and Page, *Society : An Introductory Analysis*, p. 543

है। अनेक भौगोलिक क्षेत्र, पहले जहाँ सदैव रोगों का प्रकोप रहता था, आरोग्यशास्त्र के विकास और उन्नति के कारण, सभ्य मनुष्य के लिये खतरनाक नहीं रह गये हैं। अलास्का जो निर्जन था, अब जनसंख्या से परिपूर्ण है और आधुनिक सभ्यता के सभी आराम वहाँ उपलब्ध हैं; बंजर भूमि को भी अब उपजाऊ बनाया जा रहा है, दूरी को हवाई जहाज आदि के द्वारा कम कर दिया गया है।

प्राकृतिक प्रवरण की अपेक्षा सामाजिक प्रवरण कहीं बड़े दायरे में लागू होता है और एक ही स्थिति की समस्या के अनेक प्रकार के हल बतलाता है। शरीर से कमजोर व्यक्ति जीवित रहने के लिए अयोग्य (unfit) नहीं है; अपने बौद्धिक तथा नैतिक गुणों के कारण वह समाज के सबसे अच्छे सदस्यों में से एक बन सकता है, जैसा कि डॉ० हेलन केलर (Helen Keller) के उदाहरण से स्पष्ट है। १९ महीने की अवस्था से ही वह अन्धी, बहरी, और गूंगी हो गयी। अपनी इच्छा शक्ति और अन्य मित्रों की सहायता से उन्होंने बी० ए० कर लिया और उन्हें तीन डाक्टरेट मिलीं और वह तैरना और घोड़े पर सवारी करना सीख गई। अब वह संसार भर के अन्धे मनुष्यों की भलाई के लिये प्रयत्नशील है।

गुण जैसे कि शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्य, जिनको प्राकृतिक प्रवरण के अन्तर्गत प्रमुखता दी जाती है, सामाजिक प्रवरण के अन्तर्गत महत्ता प्राप्त करने वाले गुणों के सामने तुच्छ प्रमाणित हो सकते हैं, क्योंकि समाज में प्रमुखता प्राप्त करने वाले गुणों से उनका विरोध हो सकता है। उदाहरण के लिये, अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट अपराधी के जीवन को फाँसी पर लटकाकर समाप्त किया जा सकता है; किसी मजबूत सैनिक को राइफिल से मार गिराया जा सकता है; स्वस्थ ग्रामीण को शहर में जंगली या पागल समझा जा सकता है। यह सामाजिक मूल्यों का ही तो प्रभाव है।

सामाजिक प्रवरण दो मुख्य तरीकों से प्रकट होता है। एक तरीका तो उन सामाजिक दशाओं का फल है जो किन्हीं दूसरे उद्देश्यों से उत्पन्न किया गया है। दूसरा तरीका उस सामाजिक नियोजन (planning) का प्रत्यक्ष फल है जो किसी उद्देश्य से किया जाता है। इस प्रकार का तरीका अप्रत्यक्ष है और दूसरा प्रत्यक्ष।

अप्रत्यक्ष सामाजिक प्रवरण (Indirect social selection)

अनेक विधियों से सामाजिक संगठन सन्तानोत्पत्ति और जीवित रहने वाले व्यक्तियों की संख्या के संतुलन (balance) को बदल देता है। उदाहरण के लिए, हम विभिन्न व्यवसायों में काम करने वाले व्यक्तियों की मृत्यु दर को ले सकते हैं। पत्थर तोड़ने वाले, कोयले की खानों में काम करने वाले मजदूर, भाप से चलने वाले रेल के इन्जन ड्राइवर आदि की मृत्यु दर क्षय रोग (tuberculosis) के कारण ऊँची है तो सामाजिक दशायें इसके लिये उत्तरदायी हैं।

प्रत्यक्ष सामाजिक प्रवरण (Direct social selection)

समाज सफाई और स्वास्थ्य रक्षा के नियम बनाकर, अस्पताल आदि बना कर, अनेक खतरों से रक्षा करके, हत्या, शिशु-हत्या और भ्रूण-हत्या (abortion) के लिए दण्ड व्यवस्था करके प्रत्यक्ष रूप से मृत्यु दर को रोकता है। समाज यौन सम्बन्धों (mating relationship) को भी नियन्त्रित करता है; उदाहरण के लिये, बहुविवाह (polygamy) के विरुद्ध नियम बनाकर, विवाह के लिये कम से कम आयु निश्चित करके, अवैध सम्बन्ध या बलात्कार करने वालों को दण्ड देकर। समाज जन्म-दर को भी नियन्त्रित करता है; उदाहरण के लिए, जन्म-निरोध (birth control) सम्बन्धी ज्ञान को फैलाकर जन्म दर कम कर सकता है, अधिक सन्तानें उत्पन्न करने वालों को पुरस्कृत करके (जैसे रूस में) जन्म दर बढ़ा सकता है।

सामाजिक प्रवरण और प्राकृतिक प्रवरण में अन्तर

मैकाइवर और पेज के अनुसार प्राकृतिक और सामाजिक प्रवरण में निम्नलिखित मुख्य भेद हैं—*

(१) प्राकृतिक प्रवरण मृत्यु दर के द्वारा ही कार्य करता है अर्थात् जो व्यक्ति जीवित हैं केवल उन्हीं में उपयुक्त प्राणियों को जीवित रखता है और अनुपयुक्त प्राणियों का निरसन (eliminate) करता है। सामाजिक प्रवरण भी मृत्यु दर के द्वारा कार्य करता है, परन्तु वह अधिक प्रत्यक्ष रूप से जन्म दर से सम्बन्धित है।

(२) प्राकृतिक प्रवरण के अन्तर्गत केवल दो ही स्थितियाँ सम्भव हैं : मृत्यु अथवा प्रकृति के साथ सफल अनुकूलन। इसके विपरीत, सामाजिक प्रवरण अनेक परिस्थितियाँ प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य केवल निरसन (elimination) ही नहीं है। यह निरोधात्मक और रचनात्मक भी हैं; यह केवल यही नहीं निश्चित करता है कि कौन लोग जन्म लेंगे। यह विवाह के नियम के द्वारा निश्चित होता है।

(३) प्राकृतिक प्रवरण केवल किसी विशिष्ट पर्यावरण से अनुकूलन करने के लिए बाध्य करता है। इसका कोई दूसरा स्टैण्डर्ड नहीं है। परन्तु सामाजिक प्रवरण के अन्तर्गत अनेक परिस्थितियाँ विद्यमान हैं जिनमें से चुनाव होता है। यहाँ हम उदाहरण के लिए, सामाजिक प्रवरण के लिये एक पहलू को लेंगे जो कि इस बात को निश्चित करता है कि किसका विवाह किसके साथ होगा। यह योनि सम्बन्धी चुनाव समाज की साँस्कृतिक दशाओं पर निर्भर करता है। योनि सम्बन्ध स्थापित करने के सम्बन्ध में कुछ सामाजिक नियम या आदर्श होते हैं। सामाजिक दशायें इस बात को

---

* MacIver and Page : *An Introductory Analysis*, p. 543

भी निश्चित करती हैं कि किसकी भेंट किसके साथ होगी और इस प्रकार चुनाव की सीमा भी निर्धारित कर देती है ।

(४) सामाजिक विरासत (heritage) से प्राकृतिक प्रवरण का कोई सम्बन्ध नहीं है जब कि सामाजिक प्रवरण का आधार सामाजिक विरासत ही है ।

(५) प्राकृतिक प्रवरण उन दिशाओं को निश्चित करता है जिसमें मानवता बढ़ेगी; सामाजिक प्रवरण इन सीमाओं के अन्तर्गत ही दिशा निर्धारित करता है ।

(६) प्राकृतिक प्रवरण में मनुष्य निष्क्रिय (passive) रहता है और उसकी इच्छाओं एवं उद्देश्यों से यह परे हैं। इसके विपरीत, सामाजिक प्रवरण मनुष्य की इच्छाओं और उद्देश्यों का ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष परिणाम है ।

---

१३ सामाजिक परिवर्तन के प्राद्योगिकीय और आर्थिक कारक (Technological and Economic Factors of Social Change)

आविष्कार और खोज हमारे युग की महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं। इस सत्य के साक्षी के रूप में इस युग को मशीन युग (mechanical era), शक्ति का युग (age of power), विज्ञान का युग (scientific age) कहा जाता है। हमारे समय की यह अद्भुत विशेषता, यंत्रकला (technology), बड़ी तेजी से बदल रही है। घोड़े का स्थान मोटरकार ने ले लिया है और हवाई जहाजों और हैलीकाप्टरों का प्रयोग बढ़ रहा है। रेडियो और सिनेमा का बहुत थोड़े से समय में विशेष रूप से विकास हुआ है। इस प्रकार के प्राद्योगिकीय प्रभाव सामाजिक प्रभावों से अछूते नहीं रहते। अर्थात् या तो आविष्कार सामाजिक परिवर्तन को प्रेरणा देते हैं या उनको उत्साहित करते हैं। उदाहरण के लिए, ब्राडकास्टिंग (broadcasting) ने वक्तृत्व शक्ति (oratory) के स्टाइल को प्रभावित किया है और राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने को प्रभावित किया है। इसीलिये, इस अध्याय में सामाजिक परिवर्तन के कारणों के रूप में मुख्यतः प्राद्योगिकीय परिवर्तनों और खोजों पर विचार किया जायेगा।

एक नया आविष्कार अचानक कर लिया जाता है और जल्द ही विकसित हो जाता है। हम यह सरलता से देख सकते हैं कि यह नया आविष्कार किस प्रकार परिवर्तन लाता है। हम देख सकते हैं कि किस प्रकार रेडियो बोलचाल के सामान्य स्तर स्थापित करता है या शहर को गाँव के ऊपर एक नया साँस्कृतिक प्रभुत्व प्रदान करता है। हम देख सकते हैं कि किस प्रकार मोटरगाड़ियाँ सामाजिक सम्बन्धों का दायरा बढ़ा देती हैं और पड़ोस की सामुदायिक प्रकृति (communal character) को कम कर देती हैं। हम देख सकते हैं कि किस प्रकार आधुनिक फैक्टरी की टैक्निकल दशायें औद्योगिकीय यूनियनवाद को बल देती हैं और पुराने ढंग के दस्तकारी यूनियनवाद (craft unionism) को कमजोर बनाती हैं। इसके अतिरिक्त प्राद्योगिकीय उन्नति एक ही दिशा में निरन्तर होती है और इसलिए हम इसके दीर्घकालीन प्रभावों का पता लगा सकते हैं।

कोई भी आविष्कार सबसे पहला सामाजिक परिवर्तन उत्पादन के क्षेत्र में लाता है। मोटरगाड़ी का आविष्कार होने पर उसका उत्पादन करने के लिये फ़ैक्टरियों की आवश्यकता हुई। उसमें प्रयोग होने वाली वस्तुओं जैसे स्टील, शीशा, रबर के उद्योगों को भी प्रोत्साहन मिला। अनेक मज़दूरों को अपने निवास स्थान छोड़कर फैक्टरियों में जाना पड़ा।

उत्पादन में परिवर्तन होने के बाद उपभोग (consumption) में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। आविष्कार के इस्तेमाल के ढंग में परिवर्तन होने से सामाजिक परिवर्तन होता है--उदाहरण के लिये, मोटरगाड़ी में सेल्फ स्टार्टर के आविष्कार ने स्त्रियों के लिये गाड़ी चलाना आसान बना दिया। मोटर चलाने वाली स्त्रियों ने आने जाने, घरेलू जीवन, बच्चों की देख-रेख, छुट्टियाँ बिताने, और होटलों के इस्तेमाल के सम्बन्ध में अपनी आदतें बदल दीं।

किसी भी महत्वपूर्ण आविष्कार का प्रभाव केवल थोड़े से ही परिवर्तनों तक सीमित नहीं है। सामान्यत: यह अनेक परिवर्तन लाता है जो कि साइकिल के पहिये की तीलियों की तरह अनेक दिशाओं में फैल जाते हैं। उदाहरण के लिये रेडियो ने मनोरंजन, शिक्षा, यातायात, अपराध, और राजनीति के क्षेत्र में परिवर्तन लाये हैं। रेडियो के कम से कम १५० प्रभाव बताये जाते हैं। इसने नये व्यवसाय खोले हैं। राजनीतिक प्रचार के ढंग को बदल दिया है। अपराध का पता लगाने के तरीके को प्रभावित किया है, और समाचार फैलाने में लगने वाले समय में कमी कर दी है।

जब कोई आविष्कार किसी प्रथा या संस्था को बदलता है, उसका प्रभाव वहाँ तक सीमित नहीं रहता। यह बिलियर्ड के एक गेंद की तरह चलता रहता है जो दूसरे गेंद से लड़ता है, और जो बदले में तीसरे गेंद से लड़ता है।

किसी एक आविष्कार को सभी सामाजिक परिवर्तनों का कारण बताना असम्भव है। फिर भी प्रत्येक महान् आविष्कार ने, जैसे कि भाप से चलने वाला इंजन, बिजली, गैस-कम्बस्चन (gas-combustion) इंजन, रेडियो, टेलीफोन, और चलचित्र ने महान् सामाजिक परिवर्तन लाये हैं।

प्राद्योगिकी क्या है ? (What is technology ?)

हमारे लिये सबसे पहले प्राद्योगिकी की परिभाषा देना उचित होगा। किसी विशेष उद्देश्य (end) या उद्देश्यों के समूह की पूर्ति के लिए द्वितीय और उच्च-श्रेणी के साधन (means) को हम प्राद्योगिकी कहते हैं।* सबसे सरल ढंग से हम प्राद्योगिकी को किसी निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के साधनों की पद्धति कह सकते हैं। इस परिभाषा के अनुसार मकान उस समय तक प्राद्योगिकी का भाग नहीं है

* "Technology is a system of second and higher order means to any given end or set of ends."
—A. K. Saran.

जब तक उसका प्रयोग मनुष्य के प्रत्यक्ष सन्तोष या उपयोगिता के साधन के रूप में किया जाता है। मकान बनाने में प्रयोग होने वाली वस्तुयें और मकान बनाने की कला वर्तमान प्राद्योगिकी पद्धति (system) का भाग होगी; यह साध्य के साध्य (means to means) हैं क्योंकि यह प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राद्योगिकी के तथ्य के अन्दर कुछ उद्देश्यों का समूह अन्तर्निहित है जो किसी प्रथम श्रेणी के द्वारा पूरे होने वाले उद्देश्य हैं। यहाँ प्राद्योगिकी और प्राद्योगिकी के फल के बीच का अन्तर स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि फाउन्टेनपेन प्राद्योगिकी नहीं है जब कि फाउन्टेनपेन बनाने में प्रयोग हुई वस्तुयें और मशीन प्राद्योगिकी हैं; हमारा कहने का यह तात्पर्य है कि जब तक लिखना (writing) ही अन्तिम उद्देश्य है, लिखने का यन्त्र (फाउन्टेनपेन) स्वयं प्राद्योगिकी नहीं है। जब हम फाउन्टेनपेन बनाने के लिये किसी विशेष उपकरण या मशीन का आविष्कार करते हैं तो वह प्राद्योगिकी का एक भाग बन जाता है; या जब लिखना (writing) किसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन (means to an end) होता है, जैसा विचारों को फैलाना, तो फाउन्टेन-पेन, प्राद्योगिकी का भाग बन जाता है, जैसा कि इस घटना में लिखना प्राद्योगिकी नहीं होगा।*

मैरिल ने प्राद्योगिकी की परिभाषा इस प्रकार से दी है: "प्राद्योगिकी मनुष्यों के तात्कालिक, व्यावहारिक उद्देश्यों के लिये विशुद्ध विज्ञान का प्रयोग है।"†

राबर्ट पार्क ने अपनी The City नामक पुस्तक में लिखा है कि हमारे समाज के तेज परिवर्तन नयी प्राद्योगिकी के विकास, नये आविष्कारों, उत्पादन के नये प्रकारों और जीवन-क्रम के नवीन स्तरों से सम्बन्धित हैं और एक प्रकार से उन पर आधारित भी हैं। ममफोर्ड ने यहाँ तक लिखा है कि हमारे युग का सबसे नया और व्यापक तत्व पूँजीवाद नहीं है बल्कि मशीनीकरण (mechanization) है।

प्राद्योगिकी समाज को प्रभावित करती है और प्राद्योगिकी में अन्तर आने से कुछ संस्थाओं या प्रथाओं में भी परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। मोटरकार में सैल्फ स्टार्टर (self starter) के आविष्कार होने से स्त्रियों ने भी मोटरकार चलाना शुरू कर दिया। इसके पहले स्त्रियों के लिये यह कष्टप्रद था कि वे मोटरकार से उतरें और हैण्डिल लगायें, इसलिये वह मोटरकार चलाती ही नहीं थीं। इस मशीन में

---

* Prof A. K. Saran, Lucknow University—*The Faith of a Modern Intellectual* A Study of Mukherji's Diversities—I. published in National Herald, *Sunday, Magazine Section Oct.* 1959.

† "Technology is the application of pure science to the immediate, practical ends of human beings."–Merrill, *Society and Culture.* P.470.

परिवर्तन होने से स्त्रियों की आदतों में निम्नलिखित सम्बन्ध में परिवर्तन आ गया—गतिशीलता, घरेलू जीवन, बच्चों की देख-भाल, छुट्टी मनाना और होटलों में आना-जाना। उनके लिए सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की सम्भावनायें बढ़ गई।

इसी प्रकार ऑगबर्न कहता है, ऊपर उठाने के यन्त्र (elevator) के आविष्कार से नगर की जन्म दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि एलिवेटर की सहायता से ऊँची-ऊँची इमारतें बनने लगीं जिनमें रह कर बच्चों का पालन-पोषण सरल नहीं रहा।

आधुनिक समाज और मशीन युग

हमारे समाज में तेजी से होने वाले परिवर्तन स्पष्ट रूप से नयी प्रविधियों (techniques) के विकास, नये आविष्कार, उत्पादन के नये ढंगों, नये जीवन स्तर से सम्बन्धित हैं और उन पर निर्भर भी करते हैं। धारणायें, विश्वास, परम्परायें जो कि एक समय में मानव प्रकृति की द्योतक समझी जाती थीं, उपर्युक्त दिशाओं में होने वाली उन्नति के सामने फीकी पड़ गयीं। राज्यतन्त्र (monarchy) जो एक समय में देवताओं द्वारा स्थापित समझा जाता था, जन्म से प्राप्त होने वाली प्रतिष्ठा, हस्तकला, पड़ोस का अलग अस्तित्व, स्त्री-पुरुषों के अलग-अलग कार्य क्षेत्रों से सम्बन्धित परम्परायें, धर्म, राजनीति और युद्ध सम्बन्धी परम्परायें—इन सब को जबरदस्त धक्का पहुँचा है। किस प्रकार समाज की किसी वस्तु में परिवर्तन होने से समाज के अन्दर किस प्रकार परिवर्तन होता है, यह समझना कठिन नहीं है।

उदाहरण के लिए, हम औद्योगिक युग (industrial age) में स्त्रियों के पद और सामाजिक जीवन में होने वाले भीषण परिवर्तनों को ले सकते हैं। औद्योगीकरण ने उत्पादन के घरेलू ढंग का नाश कर दिया, स्त्रियों को घर से बाहर फैक्टरी और आफिसों में ला दिया, उनके लिए नाना प्रकार के कार्यों का द्वार खोल दिया और उनकी आमदनी में विशेष उन्नति कर दी। यहाँ हम एक नया पर्यावरण और स्त्रियों के लिए एक नया सामाजिक जीवन देखते हैं। इसी प्रकार के अनगिनती उदाहरण दिये जा सकते हैं।

जैसा कि ऑगबर्न ने कहा है 'राज्याधिकार का सिद्धान्त इन आविष्कारों (मोटरगाड़ी, टेलीफोन, रेडियो) के द्वारा अधिक पूरी तौर से और सरलतापूर्वक नष्ट किया जा रहा है बनिस्बत तब जब ग्रान्ट और फोरमैन की सेनाओं ने नष्ट किया था। शक्ति केन्द्रित न कर सकने के लिए प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट को दोष देना बेकार है। इससे तो उचित यह होगा कि टेलीफोन के आविष्कारकर्ता बेल को इसके लिये दोषी ठहराया जाय।"*

---

* "The doctrine of state's right is being broken down much more

प्राद्योगिकी और मानव जीवन की गति
(Technology and the Tempo of Human life)

आधुनिक आविष्कारों ने मानव जीवन की गति को अत्यधिक वेगवान बना दिया है। पिछली सभ्यताओं में भी दु:सह दशायें थीं, रोमाँचकारी और चिन्ताजनक अनुभव होते थे परन्तु आधुनिक आविष्कारों के अभाव में निष्क्रिय (inactive) रहने के लिये भी उन्हें बाध्य होना पड़ता था। उचित कृत्रिम (artificial) रोशनी के अभाव में अनेक कार्य दिन की रोशनी ही में किये जा सकते थे; अब वे रात में भी किए जाते हैं। यातायात के साधनों की मन्थर गति यात्रा का अधिक अवकाश (leisure) देती थी यद्यपि उसमें आराम कम था। संदेशवाहन की मन्थर गति के कारण व्यापार सम्बन्धी कार्य अधिक लम्बे समय में तय होते थे। व्यावसायिक (Professional) मनोरंजन—स्टेज, सिनेमा, रेडियो आदि का अभाव होने से ध्यान और विचार करने का काफी समय मिलता था। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी-छोटी जनसंख्याओं के रहने से कम सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते थे। आधुनिक सभ्यता में विचार करने की अपेक्षा कार्य करने को अधिक महत्व दिया जाता है। अनेक व्यक्तियों ने अपनी ऐसी आदत बना रखी है कि सोने के अतिरिक्त हर समय वे कुछ न कुछ कार्य अवश्य करते रहते हैं।

प्राद्योगिकी और रहन-सहन के स्तर
(Technology and Standards of Living)

जब तक हम प्राद्योगिकी में प्रगति करते रहेंगे, रहन-सहन के स्तर में भी बराबर उन्नति होती रहेगी, यदि जनसंख्या बहुत तीव्र गति से नहीं बढ़ती है। अधिकतर आविष्कारों का निम्नलिखित उद्देश्यों में से कोई एक उद्देश्य होता है। या तो उनका उद्देश्य मानव इच्छाओं की प्रत्यक्ष पूर्ति के लिए बिलकुल ही नये पदार्थों का उत्पादन है; या फिर उनका उद्देश्य समाज में पहले से प्रचलित और प्राप्त वस्तुओं का अधिक योग्यता के साथ कम समय, कम मेहनत, या कम पदार्थों के साथ कम उत्पादन करना है। रेडियो और टेलीविजन प्रथम उद्देश्य के उदाहरण हैं। यह अपेक्षाकृत नये उत्पादन या वस्तुयें हैं जिनका आविष्कार उपभोक्ता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। पावरलूम (power loom), काटन जिन

---

completely and successfully by these inventions (automobile, telephone, radio) than it was by the armies of Grant and Sherman. It is futile to blame President Roosevelt for the concentration of power. It would be more appropriate to fix the blame on Bell, the inventor of the telephone." —W. G. Ogburn, *Social Forces*.

(cotton gin), और रीपर (reaper) दूसरे उद्देश्य के कारण हैं। उनका आविष्कार आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष पूर्ति के लिए नहीं था, बल्कि इसलिए कि वस्त्र, गेहूँ जैसे पूर्व परिचित (familiar) पदार्थों का कम मूल्य और भारी परिमाण (quantity) में उत्पादन किया जा सके। हमारे आनन्द के लिये नये प्रकार के पदार्थ और पदार्थों की भारी मात्रा का प्रबन्ध करके यह स्पष्ट ही है कि शिल्प-विज्ञान की प्रगति ने हमारे रहन-सहन के स्तर को बहुत ऊँचा उठाया है।

कृषि की नयी प्रविधियाँ और सामाजिक परिवर्तन
(New agricultural techniques and social change)

पशुओं की नस्ल (breeds) में, उर्वरक के प्रयोग में, बीजों की किस्मों में, श्रम बचाने की मशीन सम्बन्धी विषयों में, और ऐसी अन्य वस्तुओं में सुधार होने से कृषि उत्पादन गुण और परिमाण (quality and quantity) दोनों में बढ़ गया। परन्तु इन बातों में सुधार होने से किसानों के आर्थिक और गृहस्थ जीवन (household) में भी विशेष परिवर्तन हुए हैं। इनके अतिरिक्त खेती और उद्योग के सम्बन्धों में परिवर्तन हुए हैं। अब खेत पर काम करने के लिए कम आदमियों की आवश्यकता होने से काफी संख्या में मनुष्य शहरों में आने लगे हैं; कृषि अपकर्ष (agricultural depression) की भी कुछ देशों में प्रवृत्ति पाई जाती है क्योंकि वहाँ के निवासियों की आवश्यकता से अधिक वहां अन्न उत्पन्न होने लगा है; विदेशों में अपने माल की खपत कराने और चुँगी की नई समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। यह परिवर्तन भी बदले में नई और कठिन आर्थिक समस्या को जन्म देते हैं।

मशीन और कुशल कारीगरी की आवश्यकता
(Machine and need for skilled workers)

मशीन युग से पहले प्रत्येक व्यक्ति कारीगर (craftsman) था जो कि अपने हाथों से ही सब वस्तुयें तैयार करता था। वह कपड़ा बुनता था, जूता बनाता था, मोमबत्ती बनाता था या दर्जी था। मशीनों के आने के बाद उसकी कारीगरी बेकार हो गई। किसी वस्तु के उत्पादन में मशीन ही प्रमुख हो गई और कारीगरी का कार्य सिर्फ मशीन चलाना ही रह गया। उसमें दूसरे ही प्रकार की प्रवीणता (skill) की आवश्यकता हुई परन्तु एक लम्बे अर्से के बाद मशीन उद्योग (machine industry) के कारण जनसंख्या के अधिक बड़े भाग को पहले से कहीं ज्यादा विशिष्ट (specialized) कौशल, ट्रेनिंग या ज्ञान प्राप्त करने की भी आवश्यकता हुई।

मशीन और बेकारी
(Machine and unemployment)

बहुत समय से लोगों का यह विश्वास रहा है कि श्रम (labour) का स्थान ले लेने से मशीनों ने धीरे-धीरे नौकरी और रोजगारी के अवसर भी कम कर दिये हैं और बेकारी बढ़ा दी है। रोजगारी पर मशीन के प्रभाव पर बुद्धिपूर्वक विचार करने के लिये यह आवश्यक है कि हम इन प्रभावों को दो भागों में विभाजित करें—अल्पकालीन प्रभाव (short-run effects) और दीर्घकालीन प्रभाव (long-run effects)। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि समय-समय पर मशीनें मनुष्यों को बेकारी का ग्रास बना देती हैं, और इससे ऐसी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनको हल करना कठिन होता है। फिर भी यह प्रभाव अल्पकालीन है। वास्तविकता तो यह है कि मशीन प्राद्योगिकी में उन्नति होने से वस्तुओं के मूल्य में कमी आ जाती है, मनुष्य इस योग्य होते हैं कि अधिक पदार्थ (goods) खरीद सकें, और यह उन्नति (मशीन की) रोजगारी के नये अवसर भी प्रदान करती है। नई वस्तुयें बाजार में लाई जाती हैं और नये उद्योगों का जन्म होता है जिससे रोजगार मिलने की सम्भावना भी बढ़ जाती है।

पारिवारिक जीवन में परिवर्तन

प्राद्योगिकीय कारकों ने निम्नलिखित परिवर्तन पारिवारिक जीवन में लाये हैं:

(i) **संयुक्त परिवार का ह्रास :** प्राद्योगिकी के कारण खुले अनेक मिल और फैक्टरियों में काम करने के लिये लोग गाँव से शहर, एक शहर से दूसरे शहर और एक देश से दूसरे देश में जाने लगे जिसके कारण संयुक्त परिवार का ह्रास हुआ। नगरों में आबादी बढ़ जाने से और फलस्वरूप मकानों की समस्या उत्पन्न होने से भी संयुक्त परिवार प्रणाली को धक्का लगा। स्त्रियों की शिक्षा और आर्थिक स्वतन्त्रता ने भी संयुक्त परिवारों को कमजोर बनाया।

(ii) **स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता :** प्राद्योगिकी ने स्त्रियों के लिये भी धनोपार्जन के अनेक साधन उत्पन्न किये। मिल, कारखाने, हवाई जहाज, बड़े-बड़े व्यापारिक दफ्तर आदि जो बड़ी-बड़ी मशीनों के ही कारण सम्भव हो सके स्त्रियों को नौकरी देने लगे। इसका घरेलू सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ा। अपने मनोरंजन, विवाह, व्यक्तिगत आदतों के सम्बन्ध में वे सदस्यों के अनुशासन से मुक्त हो गईं। इससे विलम्ब-विवाह भी होने लगे, पति-पत्नी के सम्बन्ध, माता-पिता-पुत्री के सम्बन्ध आदि में परिवर्तन हुआ।

(iii) **विवाह पर प्रभाव :** प्राद्योगिकी के कारण बने मिल और फैक्टरियों में एक साथ काम करने, बसों और रेलगाड़ियों द्वारा एक साथ यात्रा करने के कारण प्रेम-विवाह की संख्या में वृद्धि हुई है। स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता के

कारण विलम्ब विवाह, अन्तर्जाति विवाह, और विवाह-विच्छेद की घटनायें भी बढ़ गई हैं। प्राद्योगिकी ने गर्भ-निरोध के साधन बना कर नैतिकता पर भी प्रभाव डाला है।

(vi) **परिवार के आकार में परिवर्तन**—औद्योगिक नगर, जो कि प्राद्योगिकी की देन हैं, विशाल जनसंख्या, मकानों की समस्या, तेज जीवन, आर्थिक विषमता की देन हैं, इसलिए ऐसे स्थानों में कम संख्या में सन्तानों की उत्पत्ति स्वाभाविक है। गर्भ-निरोध के साधन उत्पन्न करके भी प्राद्योगिकी ने जन्म-दर पर रोक लगाई है।

(v) **परिवार के कार्यों में कमी**—मशीनों के आविष्कार और फलस्वरूप औद्योगीकरण से पहले परिवार ही अपने सदस्यों की आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु का स्वयं निर्माण करता था। अब सिलाई, धुलाई, आटा पिसाई, भोजन आदि के लिये बाहर व्यवस्था हो जाने के कारण घर में काम काफी कम हो गया है। सवारी-गाड़ियों का प्रबन्ध होने से शिक्षा प्राप्ति के लिये बच्चे अब अपने घर से काफी दूर के स्कूल और कालेज में भेजे जा सकते हैं। सन्तानोत्पत्ति, बच्चों का पालन-पोषण और स्नेह प्रदान करना यही परिवार के अब प्रमुख कार्य रह गये हैं। अन्य कार्य बाहरी संस्थाओं को चले गये हैं।

सामाजिक जीवन में परिवर्तन

प्राद्योगिकीय कारकों का सामाजिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ा जिसको हम निम्नलिखित ढंग से समझ सकते हैं—

(i) **सामुदायिक जीवन में अवनति**—जैसे-जैसे नगरों का आकार और जनसंख्या में वृद्धि होती जाती है वैसे ही वैसे नागरिकों के लिये एक दूसरे के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाये रखना कठिन होता जाता है। एक दूसरे के साथ बैठ कर मनोरंजन करना, सुख-दुःख में भाग लेना सामूहिक स्तर पर सम्भव नहीं रहा है।

(ii) **व्यक्तिवादिता**—औद्योगिक नगरों में व्यक्तियों का अत्यधिक व्यस्त रहना और धन को अत्यधिक महत्व देना उनको व्यक्तिवादी भी बनाता है। अब व्यक्ति को न पड़ोसी की, न रिश्तेदार की, न सहकार्यकर्त्ता की, किसी के सुख-दुःख की चिन्ता नहीं रहती। वह केवल अपने और अपनी पत्नी और बच्चों का ही ध्यान रखता है।

(iii) **मकानों की समस्या**—प्राद्योगिकी के कारण बने बड़े-बड़े मिल और फैक्टरियों से नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हो जाने से मकानों की समस्या उत्पन्न हो गई। इससे मकानों की माँग अधिक हुई और पूर्ति कम हो गई। इससे मकानों के किराये भी बेहद बढ़ गये और अनेक लोग गन्दी बस्तियों में रहने को बाध्य हुए। अनेक मजदूर और कारीगर सड़कों, मैदानों में ही रहने लगे।

(iv) **स्त्री-पुरुष के अनुपात में अन्तर**—अनेक पुरुष जब गाँव से बाहर

काम की खोज में आते हैं तो अपने स्त्री और बच्चों को गाँव में ही छोड़ आते हैं। इसके दो मुख्य कारण होते हैं: एक तो यह कि शहर में पूरे परिवार के लिये अलग मकान किराये पर लेना सम्भव नहीं होता क्योंकि किराये अधिक हैं। अनेक मजदूर मिल कर एक कोठरी किराये पर लेकर साथ रहते हैं। दूसरे, गाँव में थोड़ी बहुत जमीन होने पर उसकी देखभाल करने वाला भी कोई व्यक्ति अवश्य होना चाहिए। इन सब बातों का प्रभाव यह होता है कि शहरों में पुरुषों की संख्या कम हो जाती है। यह स्थिति यौन-अनैतिकता, पारिवारिक विघटन आदि के लिए उत्तरदायी होती है।

(v) **मनोरंजन का व्यापारीकरण**—नगरों में जनसंख्या अधिक बढ़ने, सम्बन्धों के औपचारिक हो जाने, खेल कूद के लिये खुले स्थानों का अभाव होने के कारण सामुदायिक मनोरंजन का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ सिनेमा, थियेटर, सरकस, संगीत सभाओं आदि में, फुटबाल, क्रिकेट के मैच में पैसा व्यय कर टिकट खरीद कर ही व्यक्ति अपना मनोरंजन करते हैं।

(vi) **जनसंख्या में विविधता**—नगरों में दूर-दूर स्थानों से काम की खोज में लोग आते हैं। यह व्यक्ति विभिन्न धर्म, जाति, प्रजाति के होते हैं, भिन्न-भिन्न प्रान्तों से आने के कारण भिन्न भाषायें बोलते हैं, इनके आचार-विचार भिन्न होते हैं। इन सब कारणों से इनके परस्पर सम्बन्ध सीमित और औपचारिक होते है। समाज के सदस्यों के परस्पर सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन के लिये यह भी कारक महत्वपूर्ण है।

(vii) **अपराध, अनैतिकता, संघर्ष और स्पर्धा में वृद्धि**—नगरों में भीड़-भाड़, बेकारी, धन का अत्यधिक महत्व, धन का असमान वितरण, प्राद्योगिकी से निर्मित अनगिनती वस्तुयें अपराध की दर में वृद्धि के लिये उत्तरदायी समझे जाते हैं। शराब, जुआ, वेश्यावृत्ति नगरों में सामान्य बात है। सामुदायिक प्रभाव का अन्त और व्यक्तिवादिता, एक ही कमरे में अनेक मजदूर स्त्री-पुरुषों का एक साथ रहना, सिनेमा और अन्य बातों का प्रभाव नैतिक मूल्यों पर पड़ता है। शहरों में व्यापारियों में गला-काट प्रतिस्पर्धा होती है। विभिन्न सम्प्रदाय और गिरोहों के बीच में संघर्ष होना सामान्य बात है।

(viii) **जाति बन्धन का ढीला होना**—प्राद्योगिकी के कारण उत्पन्न औद्योगीकरण से हमारे समाज में एक परिवर्तन यह हुआ है कि जाति के बन्धन अत्यन्त क्षीण हो गये हैं। विवाह, खान-पान, पेशे के चुनाव आदि के सम्बन्ध में जाति के नियमों का अब कठोरता के साथ पालन नहीं किया जाता है। अन्य देशों में काली और गोरी प्रजातियों को एक दूसरे के निकट लाने में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक रहा है।

(ix) **नये वर्गों का जन्म**—सामाजिक स्तरण का आधार ही बदल गया है। पहले हमारे समाज में 'जन्म' और जाति के आधार पर ही व्यक्ति का सामाजिक पद निश्चित होता था। औद्योगीकरण के कारण धन का महत्व बढ़ने और पेशों के वंशानुगत न रहने के कारण जन्म का आधार समाप्त हो गया। अब सामाजिक स्तरण आर्थिक स्तर पर ही मुख्यतः आधारित है। पूंजीपतियों और अन्य श्रेणी के लोगों के अलग-अलग वर्ग बन गये हैं।

(x) **सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन**—ग्रीन ने कहा है—"प्राद्योगिकीय परिवर्तन सामाजिक मूल्यों और आचार सम्बन्धी नियमों को प्रभावित करता है।"* आधुनिक समाज में औद्योगीकरण के कारण जीवन में सफलता ही मुख्य सामाजिक मूल्य बन गई है। यौन-नैतिकता, ईमानदारी, सच बोलना, देशभक्ति, परोपकार आदि पुराने सामाजिक मूल्यों का लोप हो गया है। अब तो किसी भी प्रकार धन, उच्च पद और आराम प्राप्त होना चाहिये।

आर्थिक जीवन में परिवर्तन

प्राद्योगिकी ने विशेष रूप से उद्योग और आर्थिक संस्थाओं में परिवर्तन लाया है। परिवार अब उद्योग का केन्द्र नहीं रहा। अब उसका स्थान बड़े आर्थिक संगठनों ने ले लिया है। बड़े-बड़े कारखाने, बैंक, स्टोर इत्यादि खुल गये हैं।

(i) **पूंजीवाद का विकास**—बड़ी-बड़ी मशीनों के आविष्कार से यह सम्भव हुआ कि ऊँचे पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन हो। इसके लिये विशाल पूंजी की भी आवश्यकता थी। इसलिये आर्थिक उत्पादन के साधनों पर ऐसे व्यक्तियों का एकाधिकार हो गया जो धनी थे। दूसरी ओर वे लोग थे जिनके पास न पूंजी थी, न जमीन थी और न कोई अन्य सम्पत्ति। इस प्रकार समाज दो अलग-अलग वर्गों में विभाजित हो गया। पूंजीपति भारी मुनाफा कमाने लगे और दिन-प्रति-दिन और अधिक धनी होने लगे जबकि निर्धन व्यक्तियों की निर्धनता में वृद्धि हुई।

(ii) **श्रम का विभाजन और विशेषीकरण**—ऊँचे पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन के लिये यह आवश्यक है कि श्रमिकों में अलग-अलग कार्य बाँट दिये जायें। कारीगरों से यह आशा की जाती है कि वे किन्हीं विशेष कार्यों में विशेष प्रवीणता प्राप्त करलें। दूसरी ओर मैनेजर भी अपने कार्य में विशेष योग्यता प्राप्त करते हैं। कार्य अच्छी तरह से सीखने के लिये विशेष ट्रेनिंग का प्रबन्ध रहता है।

---

* "Technological change affects social values and moral norm."
—Green, *Sociology* P. 522.

(iii) **बड़े पैमाने पर उत्पादन और व्यापार में उन्नति**—प्राद्योगिक उन्नति से समाज में एक परिवर्तन यह हुआ कि ऊँचे पैमाने पर वस्तुओं का उत्पादन होने लगा। बड़ी-बड़ी मशीनें कम समय में विशाल मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन करने लगीं। मशीनों से पूरा लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक समझा गया कि मिलों में कई शिफ्टें चलें। वस्तुओं का उत्पादन बढ़ने पर उनको बेचने में व्यापारियों ने भी उन्नति की।

(iv) **जीवन का उच्च स्तर**—प्राद्योगिकी के कारण आराम की अनगिनती वस्तुओं का उत्पादन होने से लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा हो गया। बिजली के पंखे, रेफ्रीजेरेटर, मोटर, रेडियो, टेलीफोन, रेलगाड़ी, हवाई-जहाज आदि के आविष्कार से जीवन में सुविधायें बेहद बढ़ गईं। दूर-दूर के स्थानों में पैदा हुए फल, साग सब्जी और अन्य खाद्य पदार्थों का सेवन भी यातायात के साधनों में उन्नति होने से सम्भव हुआ। यही बात अन्य प्रकार की उपयोग की वस्तुओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

(v) **अवकाश की समस्या**—नगरों में कार्य करने का समय निश्चित और अधिक होने, घर से दफ्तर के दूर होने, मनोरंजन के व्यापारीकरण के कारण और मकानों में जगह की कमी के कारण व्यक्ति के सामने अवकाश का समय निकालने और काटने की समस्या उत्पन्न हो गई। जीवन की गति तेज हो जाने से एक तो अवकाश मिलता ही नहीं, और यदि मिलता भी है तो उसको बिताने के लिये मनो-रंजन का अभाव रहता है।

(vi) **आर्थिक अपकर्ष और बेकारी**—प्राद्योगिकीय विकास के कारण उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि होने का एक प्रभाव यह हुआ कि गरीब मजदूरों का मिल मालिकों ने शोषण करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे मजदूर संगठन बनाने लगे जिनसे हड़तालें और औद्योगिक झगड़े की घटनायें बढ़ने लगीं। मिलों में काम करने की दशायें अक्सर बीमारी का कारण होती हैं। अक्सर मशीन-दुर्घटना से कारीगर अपने हाथ-पैर और कुछ घटनाओं में जान से भी हाथ धो बैठते हैं। मजदूरों की समस्याओं को सुलझाने के लिए मजदूर यूनियन का जन्म हुआ।

राज्य पर प्रभाव

प्राद्योगिकी में विकास होने से राज्य की संस्था में भी परिवर्तन हुए। एक ओर उत्पादन सम्बन्धी आविष्कार और दूसरी ओर संचार सम्बन्धी आविष्कारों के कारण राज्य की संस्था में परिवर्तन हुए। पहले, उत्पादन सम्बन्धी आविष्कारों के कारण राज्य को परिवार से अनेक कार्य ले लेने पड़े। वृद्धों को बीमा या अन्य प्रकार द्वारा सहायता पहुंचाना, बीमारों की सेवा सुश्रूषा, बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध, बाल-श्रम अधिनियम बनाना आदि कार्य राज्य को करने पड़ते हैं। मजदूरों के निवासके

लिये श्रमिक कालोनी बनाना, सफाई आदि का कार्य भी राज्य को करना पड़ता है। राज्य को अनेक कल्याणकारी कार्य करने पड़ते हैं। प्राद्योगिकी के कारण शहरों में बढ़ती हुई जनसंख्या, यातायात के साधनों की मांग, और अन्य समस्याओं की ओर सरकार को ध्यान देना पड़ता है।

दूसरी ओर, संचार सम्बन्धी आविष्कारों के कारण अब राज्य का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। अब बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना और उनका शासन संभव है। अब समाचार-पत्रों, रेडियो, फिल्म आदि संचार के साधनों से एक स्थान में घटित घटना का अन्य स्थानों में भी प्रभाव पड़ता है। जनतन्त्र को राज्य के विरुद्ध अब संचार के साधनों के कारण सरलता से आंदोलित किया जा सकता है। प्राद्योगिकी के ही कारण विदेशों में उपनिवेश बनाना, ऊँचे पैमाने पर पर-राष्ट्र से युद्ध करना आदि संभव हुआ है।

प्राद्योगिक विकास से बढ़ी किसी राज्य की सैन्य-शक्ति का उसी राज्य और अन्य राज्यों की नीतियों पर प्रभाव पड़ता है। नये-नये संहारक शस्त्रों से सुसज्जित होकर अमेरिका हर देश की नीतियों में हस्तक्षेप कर रहा है और आवश्यकता पड़ने पर लड़ता है। बरट्रेन्ड रसल ने बारूद को आधुनिक राज्यों का जन्मदाता माना है। बारूद का आविष्कार होने से पूर्व राज्य बड़े-बड़े जागीरदारों और सामन्तों का दमन करने में असमर्थ थे। बाबर की बड़ी-बड़ी तोपों ने उसे भारत में मुगल शासन स्थापित करने दिया।

प्राद्योगिकी के कारण राज्य के सैन्य जीवन में काफी परिवर्तन हुए। वायु सेना और जल सेना का विकास प्राद्योगिकी में होने वाले विकास के ही कारण सम्भव हुआ। न बड़े-बड़े जलयान और वायुयान बनते और न इस प्रकार की सेना बनती।

प्राद्योगिकी के कारण उत्पन्न मजदूरों की श्रम-समस्यायें, सड़कों पर बढ़ते हुए ट्रैफिक, स्मगलिङ्ग, सिनेमा, दवाओं, भ्रूण-हत्या (abortion) आदि के लिए राज्य को नये अधिनियम बनाने पड़ते हैं।

धर्म पर प्रभाव

प्राद्योगिकी के कारण नगरों में व्यक्ति वैज्ञानिक आविष्कारों और प्रगतिशील देशों की विचारधारा के निकट आता जा रहा है। औद्योगीकरण के कारण समाज में धन का महत्व बढ़ा है। इसने धर्म के प्रभाव को कम कर दिया है। ऐशो-आराम की नयी-नयी वस्तुओं के आविष्कार होने से और धन का महत्व बढ़ जाने से आज का व्यक्ति इहलोक बनाने में अधिक प्रयत्नशील है, और परलोक की ओर से वह उदासीन हो गया है। चिकित्साशास्त्र और सर्जरी में विकास होने से झाड़-फूंक और

अन्य अन्धविश्वासों में कमी आ गई है। अब व्यक्ति चन्द्रमा पर उतरने लगा है।

दूसरी ओर, प्राद्योगिकी के कारण दूर-दूर से आकर अनेक धार्मिक संप्रदायों के शहरों में बस जाने और यातायात और संचार के नये साधनों के कारण एक साथ रहना, मिलना, विचारों का आदान-प्रदान करना, एक दूसरे को नजदीक से देखना और समझना संभव हुआ। इस कारण दूसरे धर्म के प्रति सहनशीलता बढ़ती है और संकीर्णता दूर होती है।

ग्रामीण समुदायों में परिवर्तन

प्राद्योगिकी के विकास और उसके फलस्वरूप औद्योगीकरण और यातायात और संचार के साधनों ने ग्रामीण जीवन को बेहद बल दिया है। अब गाँव में शहरों की संस्कृति फैलने लगी है। इससे शहरों और गाँवों के बीच का अन्तर कम होता जा रहा है। गाँव-गाँव बिजली दौड़ाई जा रही है, कृषि के आधुनिक उपकरणों का प्रयोग बढ़ गया है, सरकारी अस्पताल खुल जाने से अन्धविश्वासों में कमी आ गई है, रेडियो के प्रयोग से ज्ञान-वृद्धि हुई है, ट्यूब वेल्स और पक्की सड़कों के कारण जीवन-स्तर में सुधार हुआ है। दूसरी ओर, कुटीर उद्योगों का नाश भी हो गया है। गाँव का बाजार पहले जैसा महत्वपूर्ण नहीं रहा क्योंकि बसों और रेलगाड़ियों पर बैठकर लोग शहरों में खरीदारी के लिए सरलता से आ सकते हैं।

आर्थिक कारक और सामाजिक परिवर्तन
(Economic Factor and Social Change)

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक कारकों का महत्व काफी है। आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन होने से समाज के अन्य क्षेत्रों में भी परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार, आर्थिक दशाओं का जनसंख्या के स्वास्थ्य से, मृत्युदर और बीमारी की दर से, विवाह और तलाक़ की दर से, आत्महत्या और अपराध से, देशागमन (immigration) और देशान्तरगमन (emigration) से, और अन्य बातों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समृद्धि और अपकर्ष के बदलते हुए कालों का उपरोक्त सभी बातों पर प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार, सामाजिक अशांति और राजनीतिक उथल-पुथल, क्रान्ति और युद्ध के साथ भी आर्थिक दशाओं का सम्बन्ध है। वास्तव में, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों का सम्बन्ध अत्यन्त निकट है और किसी भी राजनैतिक समाज के इतिहास को वहाँ की आर्थिक दशाओं पर विचार किये बगैर नहीं समझा जा सकता।

(१) **आर्थिक दशायें और सामाजिक संस्थायें**—समृद्धि और अपकर्ष दोनों

का विभिन्न सामाजिक संस्थाओं पर प्रभाव पड़ता है। समृद्धि काल में विवाह एवं जन्म की दर बढ़ जाती है जिससे परिवार का आकार बदल जाता है। दूसरी ओर, अपकर्ष के काल में विवाह की दर और जन्म की दर गिर जाती है और तलाक की दर बढ़ जाती है। समाज की आर्थिक संरचना में परिवर्तन होता है तो परिवार के आकार और कार्य भी बदल जाते हैं। कृषक समाज से औद्योगिक समाज में रूपान्तर होने से संयुक्त परिवार का ह्रास हुआ, स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता मिली, विलम्ब विवाह, प्रेम विवाह, अन्तर्जाति विवाह बढ़े, परिवार का नियन्त्रण कम हुआ और तलाक और त्याग की घटनायें बढ़ीं। पहले, परिवार ही अपने सदस्यों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करता था। अब उसके अधिकतर कार्य राज्य ने ले लिये हैं। भारत का आर्थिक ढाँचा बदल जाने से यहाँ नये बैंकों की स्थापना, यातायात व संचार के साधनों में उन्नति, अस्पताल, स्कूल, लायब्रेरी, सिनेमा, बाजार जैसी सामाजिक संस्थाओं की स्थापना और उनके कार्य व महत्व में परिवर्तन हुए हैं। यहाँ नये-नये वर्गों का जन्म हुआ है जिनमें सामान्यतः संघर्ष चलता रहता है।

समृद्धिकाल में उद्योगपति और व्यापारी नये स्कूल और कॉलेज खोलने के लिये अनुदान को तैयार रहते हैं। पुरानी शैक्षिक संस्थाओं को पुस्तकें और उपकरण खरीदने और इमारत बढ़ाने के लिये बाहर से धन प्राप्त होता रहता है। छात्रों की संख्या भी अधिक रहती है। अपकर्ष के काल में इन सब बातों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(२) **आर्थिक दशायें और धार्मिक संस्थायें**—विज्ञान की उन्नति और वैज्ञानिक खोज और आविष्कार के लिये अधिक से अधिक धन की आवश्यकता होती है। यह आविष्कार बदले में धर्म के प्रभाव को कम करते हैं। अब बीमारों का उचित ढंग से इलाज करना लोग अच्छा समझते हैं, न कि पूजा पाठ कराने को। समृद्धि काल में चर्च और धार्मिक संस्थाओं को चन्दा भी अधिक प्राप्त होता है। दूसरी ओर, अधिक धन हो जाने पर लोग ऐशोआराम में लग जाते हैं और ईश्वर की याद कम करते हैं। अपकर्ष के काल में लोग धार्मिक संस्थाओं को चन्दा कम देते हैं। व्यापारिक मनोरंजन और मदिरा सेवन अपकर्ष के काल में कम हो जाता है और ईश्वर की याद करने का 'समय'' लोगों के पास अधिक रहता है।

(३) **आर्थिक दशायें और जन्म एवं मृत्युदर**—साधारणतः समृद्धि काल में सन्तानों की जन्मदर बढ़ जाती है जब माता-पिता उनका पालन-पोषण का व्यय उठा सकते हैं। इस काल में मृत्युदर गिरती है जब छोटे बच्चों और अन्य आयुवर्गों के रोगियों का उपचार करने के लिये आवश्यक धन होता है। दूसरी ओर, अपकर्ष काल में विवाह की दर और जन्मदर दोनों गिरती हैं। धनाभाव के कारण सही

चिकित्सा न करा सकने के कारण और चिन्ताओं के कारण हृदय गति रुकने की घटनायें बढ़ जाने से मृत्यु दर बढ़ जाती है।

(४) **आर्थिक दशायें और स्थानान्तरण** (emigration):—जब किसी स्थान की आर्थिक दशा अपकर्ष, बाढ़, सूखा, युद्ध, बीमारी के कारण बिगड़ जाती हैं तो उस स्थान के अनेक लोग अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध समझे जाने वाले स्थानों में जाकर रोजगार के लिये बस जाते हैं। पहले कृषि के साधनों में उन्नति न होने पर बड़ी संख्या में ग्रामवासी शहरों में नौकरी की तलाश में आते थे। जिन लोगों के पास जमीनें नहीं हैं वे अब भी शहरों में काम करने आते हैं। दूसरी ओर, समृद्धि काल में अन्य क्षेत्रों से आकर लोग वहाँ बसते हैं। जनसंख्या की बनावट में इस प्रकार परिवर्तन होने से, क्योंकि बाहर वाले भिन्न संस्कृति साथ में लाते हैं, अन्य प्रकार के सामाजिक परिवर्तन भी होते हैं।

(५) **आर्थिक दशायें और राजनैतिक संगठन**—आर्थिक दशाओं का राजनैतिक संगठन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी भी देश के राजनैतिक चुनावों में आर्थिक समस्याओं और विभिन्न दलों की आर्थिक नीतियों का प्रभाव पड़ता है। कौन सा राजनीतिक दल वर्तमान आर्थिक समस्याओं को सुलझा सकता है, इस बात पर वोट पड़ते हैं। किसी भी देश या राज्ज के संविधान आर्थिक स्थितियों को दृष्टि में रख कर बनते हैं। उद्योगपतियों द्वारा मजदूरों का शोषण, एकाधिकार का दुरुपयोग कर ऊँची कीमतों पर वस्तुओं को बेचना—ऐसी ही बातों ने भारतीय सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र (public sector) में उद्योग खोलने, बैंकों और शकर मिलों का राष्ट्रीयकरण करने के लिये प्रेरित किया। धन का असमान वितरण सम्पत्ति ऐक्ट, इन्कम टैक्स, एस्टेट ड्यूटी आदि के सम्बन्ध में सरकार की नीति को प्रभावित करता है। अत्यधिक आर्थिक विषमता और सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में उदासीनता और असफलता सरकार को पदच्युत करने के लिये उत्तरदायी रही हैं। साम्यवाद निर्धन देशों में ही फैला है।

(६) **आर्थिक दशायें और जनसंख्या के शारीरिक एवं मानसिक लक्षण**:—अनेक अध्ययनों से यह पता लगता है कि आर्थिक दशाओं का जनसंख्या के शारीरिक एवं मानसिक लक्षणों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। धन की कमी के कारण स्वास्थ्यप्रद भोजन का अभाव और मानसिक संघर्ष और चिन्ता क्रमशः शारीरिक कद और मानसिक कुशलता को कम कर देते हैं। धन की कमी के कारण अच्छी शिक्षा, जो कि आजकल एक मंहगा विषय है, प्राप्त नहीं होती जिससे बुद्धि प्रखर नहीं हो पाती। वैसे धन अधिक होने से ही यह निश्चित नहीं हो जाता कि व्यक्ति संतुलित भोजन करेगा और अच्छी शिक्षा प्राप्त करेगा।

(७) **आर्थिक दशायें और आत्म-हत्या एवं अपराध**—यह सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है कि आर्थिक दशाओं में परिवर्तन होने से आत्महत्या और अपराध की दर में भी परिवर्तन होता है। अनेक ऐसी घटनायें होती हैं जिसमें पहले के धनी लोग व्यापार में अपकर्ष और घाटा होने पर आत्म हत्या कर लेते हैं। निर्धनता आत्म सम्मान और नैतिकता की भावना पर भी प्रहार करती है। अक्सर यह लोगों को चोरी, गबन, जालसाजी आदि करने के लिये प्रेरित करती है। दूसरी ओर, अधिक धन होने पर वेश्यावृत्ति, जुआ, और मदिरा सेवन में वृद्धि होती है। इसके यह अर्थ नहीं हैं कि अपराध और आत्महत्या के लिये केवल आर्थिक दशायें ही उत्तरदायी हैं। इनके अन्य कारण भी होते हैं।

ऊपर हमने देखा कि प्राद्योगिकीय और आर्थिक कारक किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। यह हम शुरू में ही कह चुके हैं कि सामाजिक परिवर्तन का कोई एक कारण नहीं होता। हाँ, किन्हीं स्थितियों में हम किसी एक या दो कारकों को महत्व अधिक दे सकते हैं। हमारे देश में बहुत सा सामाजिक परिवर्तन तो औद्योगीकरण और अन्य कारकों के कारण हुआ है। परन्तु अब सरकार आयोजित (planned) सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये प्रयत्नशील है। इसके लिए अनेक योजनायें बनायी और लागू की जा रही हैं।

संदेशवाहन के साधन में उन्नति और सामाजिक परिवर्तन (Advances in communication and social change)

इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण वे सामाजिक परिवर्तन हैं जो कि संदेशवाहन की प्रविधियों (techniques) में उन्नति होने से उत्पन्न हुए हैं। संदेशवाहन सामाजिक सम्बन्धों की एक प्राथमिक दशा ही नहीं बल्कि सभी प्रकार की प्राद्योगिक उन्नति का आधार भी है। जिस तीव्रगति से संदेशवाहन के साधनों में आजकल उन्नति हो रही है उतनी कभी भी समाज के इतिहास में नहीं हुई, यद्यपि कि इसमें हमेशा ही निरन्तर विकास होता रहा है। आज बिजली ने इन्जन चलाने में भाप का स्थान ही नहीं ले लिया है, वायुयान और मोटरगाड़ियों के सुधार में वह एक कारक ही नहीं है, चल-चित्र को एक व्यापारिक मनोरंजन ही नहीं बना दिया है, बल्कि दूरी को कम करके, मनुष्य की वाणी को रेडियो के द्वारा इस योग्य बना दिया है कि वह संसार भर में सर्वत्र सुनी जा सके।

ऑगबर्न ने कहा है कि किसी महत्वपूर्ण आविष्कार का केवल एक ही सामाजिक प्रभाव नहीं होता। कभी-कभी यह अनेक प्रभाव डालता है जो कि किसी पहिये की तीलियों की भाँति भिन्न दिशाओं में फैल जाते हैं।*इस प्रकार रेडियो

* "An important invention need not be limited to only a single social effect. Sometimes it exerts many influences which spread out in different directions like the spokes of a wheel."
— Ogburn and Nimkoff: *Handbook of Sociology*, p. 594.

मनोरंजन, शिक्षा, राजनीति, यातायात और अनेक प्रकार की क्रियाओं को प्रभावित करता है। ऑगबर्न ने सामाजिक जीवन पर रेडियो के १५० प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखलाये हैं।

अणुशक्ति और सामाजिक परिवर्तन
(Atomic energy and social change)

यद्यपि प्राद्योगिक उन्नति ने मनुष्य को अनेक लाभ पहुँचाये हैं, उसने मनुष्य के लिये अनेक समस्यायें भी उत्पन्न कर दी हैं। अब ऐटम बम और हाइड्रोजन बम उन परिवर्तनों से भी कहीं अधिक भीषण परिवर्तन लाने की धमकी देते हैं जिनको हमने अब तक अनुभव किया है। आधुनिक विज्ञान की अनेक अन्य खोजों की तरह यह शक्ति संहारात्मक और रचनात्मक दोनों ही उद्देश्यों के लिये प्रयोग में लाई जा सकती है। युद्ध की शक्ति के रूप में यह मनुष्य के सभी कार्यों या निर्माणों का नाश करने में समर्थ है। शान्ति के साधन के रूप में यह आराम की वस्तुओं को इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न कर सकती है जितना मानव इतिहास में कभी नहीं हुआ।

किसी एक भौतिक आविष्कार के गौण सामाजिक प्रभाव
(The derivative social effects of a material invention)

जब कोई आविष्कार किसी संस्था अथवा प्रथा को प्रभावित करता है तो उसका प्रभाव वहीं तक सीमित नहीं रहता है अपितु उसका प्रभाव आगे जारी रहता है और एक के बाद एक नई घटनायें एक क्रम की भाँति प्रभावित होती रहती हैं।

इसको एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में काटन जिन (cotton) के आविष्कार से सबसे पहला प्रभाव कपास बोने में वृद्धि हुआ, क्योंकि अब इस यन्त्र द्वारा उसकी क्रिया अधिक तीव्र हो गई और कम मेहनत की आवश्यकता पड़ी।

कपास बोना जो कि हाथ की बहुत ही जटिल क्रिया है, सबसे कठिन समस्या हो गई है। कपास का उत्पादन बिना अधिक मजदूरों के नहीं बढ़ाया जा सकता। अतः अफ्रीका से अधिक संख्या में नीग्रो (negroes) लोगों को लाने की आवश्यकता हुई और इसका प्रभाव यह हुआ कि गुलामी की प्रथा (slavery) बहुत तेजी से बढ़ी। कॉटन जिन के आविष्कार से एक तीसरा भी प्रभाव हुआ। कपास की खेती के कारण गुलामों की जन संख्या में वृद्धि हुई और क्योंकि कपास का उस समय बेहद बोलबाला था, दक्षिण के किसानों की शक्ति में भी वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप अमेरिकन गृह युद्ध (American civil war) हो गया।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि काटन जिन (cotton gin) के आविष्कार के कारण ही गृह युद्ध हुआ। गृह युद्ध के अनेक कारण थे

जिनमें नीग्रो की स्वतन्त्रता भी एक था। हम समाजशास्त्री के नाते किसी भी घटना को एक कारक के द्वारा नहीं समझा सकते। हां, बहुत से कारकों में एक को कुछ महत्व अवश्य दे सकते हैं। मोटरकार में स्वयं-चालित (self starter) यन्त्र के आविष्कार से स्त्रियों का घर से बाहर निकलना अधिक सम्भव हो गया और वे विभिन्न क्रियाओं में भाग लेने लगीं पर यह परिवर्तन केवल स्वयं चालित यन्त्र के द्वारा ही नहीं हुआ, उनमें शिक्षा का प्रसार, राजनीतिक स्वतन्त्रता, बहुत से नये नियम इत्यादि का प्रभाव प्रमुख है।

यन्त्र सम्बन्धी परिवर्तन द्वारा होने वाले सामाजिक आविष्कार (Social inventions from mechanical change)

अक्सर सामाजिक परिवर्तन केवल वर्तमान रीतियों या आदतों में ही परिवर्तन होते हैं। इस प्रकार, मोटरकार के कारण गर्मियों के लिये बने होटलों में रहने वाले अतिथि अब अपेक्षाकृत थोड़े दिनों के लिये ठहरने लगे हैं। इस परिवर्तन (मोटरगाड़ी का आविष्कार) से होटलों में ठहरने की अवधि में परिवर्तन हुआ है। होटलों में इससे कोई नई वस्तु नहीं निर्मित हुई है, यद्यपि इस बात का इन होटलों की आमदनी पर विशेष प्रभाव पड़ा है।

जब हम किसी महत्वपूर्ण आविष्कार, जैसे कि मोटरकार, और उसके सामाजिक प्रभाव की चर्चा करते हैं तो उसके साथ के आविष्कारों को भी सम्मिलित कर लेते हैं। मोटरगाड़ी के ही चारों ओर इन सब क्रियाओं के होने से इसे मोटर गाड़ी संश्लेषण (motor car complex) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि मोटरगाड़ी का आविष्कार करने के साथ लम्बी और चौड़ी सड़कों की आवश्यकता होती है, बड़े-बड़े आधुनिक स्कूल, अस्पताल आदि की आवश्यकता और निर्माण होता है। यही बात रेडियो-संश्लेषण आदि के लिए भी कही जा सकती है।

सामाजिक आविष्कार और मशीन-सम्बन्धी आविष्कार (Social inventions and mechanical inventions)

अभी तक हम ऐसे सामाजिक परिवर्तन की चर्चा कर रहे थे जो मशीन-सम्बन्धी आविष्कारों के फल थे। परन्तु गौर करने पर यह भी पता चलता है कि सामाजिक आविष्कार भी सामाजिक परिवर्तन लाते हैं। उदाहरण के लिये, टेलीग्राफ में केवल यांत्रिक आविष्कारों, जैसे बैटरी और तार का ही प्रयोग नहीं होता बल्कि एक कोड, संकेत (code) का भी प्रयोग होता है, जो एक सामाजिक आविष्कार है। सबर्ब (suburb) जो स्वयं एक सामाजिक आविष्कार है यांत्रिक आविष्कारों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक आविष्कारों का फल है।

फिर भी, प्राद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र कारण नहीं है।

मनुष्य का सोचना और भावनायें, उसका मनोविज्ञान भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है। प्रश्न उठता है कि मनोवैज्ञानिक कारण और प्राद्योगिकीय कारक में से कौन अधिक महत्वपूर्ण है ? ऑगबर्न का कहना है कि मनोवैज्ञानिक कारक सामाजिक परिवर्तन का फल है, न कि उसका कारण। उदाहरण के लिए, हैण्डीक्राफ्ट के जमाने में मालिक और नौकर के बीच में एक व्यक्तिगत सम्बन्ध होता था क्योंकि वे एक दूसरे को जानते थे और कार्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं को भली-भाँति समझते थे। यह मनोवैज्ञानिक मनोवृत्तियों, गलतफ़हमियों, सहानुभूति के अभाव, हड़ताल और उद्योगों को जन्म नहीं दे सकीं। इसके विपरीत, प्राद्योगिकी ने बड़े पैमाने के उद्योग (industry) विकसित किये, जिसके फलस्वरूप मालिक और नौकर की वर्तमान मनोवैज्ञानिक मनोवृत्तियाँ जन्मी।

सामाजिक परिवर्तन के निर्णयवादी सिद्धान्त*
(Deterministic Theories of Social Change)

निर्णयवादी सिद्धाँतों से यहाँ हमारा तात्पर्य उन सिद्धांतों से है जो मानव-व्यवहार और मानव-व्यवहार के परिवर्तनों को पर्यावरण, या बाहरी या भौतिक दशाओं का फल बताते हैं।

निर्णयवादियों का सबसे बड़ा दोष यह है कि उन्होंने इतने जटिल सामाजिक संगठन की व्याख्या करते समय केवल एक ही कारक को महत्ता दी है। फिर भी हम इस सिद्धांत को किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि सामाजिक परिवर्तन के अनेक कारक हैं। किसी एक विशेष घटना में, यह सम्भव है कोई एक कारक या एक से कारकों का समूह प्रमुख हो परन्तु इसके आधार पर सामान्य अनुमान (generalization) नहीं लगाया जा सकता।

इस प्रकार की व्याख्या के अनेक स्वरूप हो सकते हैं। उदाहरण के लिये यदि जलवायु-सम्बन्धी या भौगोलिक परिवर्तनों को प्राथमिकता दी जाये, तो हम ऐसी स्थिति का सामना करते हैं जिसे मनुष्य अपनी इच्छानुसार नहीं झुका सकता। यदि आर्थिक या प्राद्योगिकीय दशाओं पर बल दिया जाता है, यह व्याख्या अधिक जटिल बन जाती है—केवल इसलिये नहीं कि यह दशायें स्वयं भी बराबर तेजी से बदलती रहती हैं बल्कि इसलिये भी कि यह स्वयं मानव कार्यों का फल हैं।

इस अध्याय में हम दो निर्णयवादियों के सिद्धान्तों पर विचार करेंगे—कार्ल-मार्क्स (आर्थिक निर्णयवादी) और वेबलन (औद्योगिक निर्णयवादी)।

(अ) मार्क्स द्वारा दी गई सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या (The Marxist Explanation of Change)—कार्ल मार्क्स ने यह सिद्धाँत प्रतिपा-

---

* सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत पर लिखे गये अध्याय में अन्य निर्णयवादी सिद्धांत भी पढ़िये।

दित किया कि समाज संरचना (structure) एक आर्थिक रचना (creation) है और सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तन आर्थिक परिवर्तनों के फल हैं।

कार्ल मार्क्स के सिद्धान्त का सार उसकी पुस्तक Critique of Political Economy में मिलता है। उसने कहा है : "सामाजिक उत्पादन करते समय मनुष्य कुछ निश्चित सम्बन्धों में प्रवेश करते हैं जो कि अनिवार्य हैं और मनुष्यों की इच्छा स्वतन्त्र हैं, उत्पादन के यह सम्बन्ध उत्पादन की उनकी भौतिक शक्ति के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुरूप हैं।" दूसरे शब्दों में, औद्योगिक विकास की अवस्था (stage) उत्पादन के ढंग और उन सम्बन्धों और संस्थाओं को भी निश्चित करती है जो कि आर्थिक प्रणाली (economic system) का निर्माण करती हैं। सम्बन्धों का यह समूह, बदले में महत्वपूर्ण सामाजिक संगठन का मुख्य निर्णायक है या फिर मार्क्स के शब्दों में "उत्पादन के इन सम्बन्धों का पूर्ण संग्रह समाज के आर्थिक ढाँचे की रचना करता है -- जो कि सच्ची नींव है जिस पर समाज की राजनैतिक और कानून की अधिरचना उठती है और जिसके अनुरूप सामाजिक चेतना के निश्चित स्वरूप होते हैं।"* मनुष्य का साँस्कृतिक जीवन, उसका बौद्धिक, सौंदर्यपरक (aesthetic),तथा आध्यात्मिक जीवन, उसके धर्म और दर्शन और सामाजिक स्वरूप जो उनके माध्यम हैं, आर्थिक प्रणाली के ही प्रतिबिम्ब हैं।

(१) सामाजिक उत्पादन मनुष्य की इच्छा से स्वतन्त्र है।

(२) प्राद्योगिकी के कारण कुछ उत्पादन-सम्बन्धी सम्बन्ध होते हैं जो कि आर्थिक ढाँचे की रचना करते हैं। मिल और फैक्ट्री में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो कि पूंजीपति हैं, दूसरे मजदूर हैं। मजदूरों के पास उत्पादन के साधन नहीं हैं और इसीलिये वे पूंजीपतियों पर आश्रित हैं जो कि अनुचित लाभ उठाये जाते हैं। इस प्रकार दोनों के बीच एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध रहता है।

(३) इस आर्थिक संरचना पर कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक अधिसंरचना आधारित है।

(४) उत्पादन के ढंग में परिवर्तन होता है जो आर्थिक रचना को बदल देता है और उन पर आधारित अधिसंरचना (superstructure) परिवर्तित हो जाती है।

(ब) मार्क्स का वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त (Marx's theory of class struggle)—उत्पादन की भौतिक शक्तियों में परिवर्तन होने के कारण इन निहित

---

* "The sum total of these relations of production constitutes the economic structure of society—the real foundation, on which rise political and legal superstructures of society and to which correspond definite forms of social consciousness." —Mar.x

आर्थिक कारकों में एवं उन आर्थिक सम्बन्धों में, जो पहले से स्थापित हो चुके हैं, उनमें संघर्ष होता है। उत्पादन की नई क्रिया पहले वाले आर्थिक सम्बन्धों एवं सामाजिक अधिसंरचना (social superstructure) में परिवर्तन की माँग करती है। परन्तु इस आर्थिक माँग का सामाजिक एवं आर्थिक संगठन अनुमोदन नहीं करते हैं। इसका कारण यह है कि पहले वाली व्यवस्था में लोगों की विचारधारायें (ideologies) एवं निहित स्वार्थ (vested interests) उत्पन्न हो जाते हैं परन्तु वे लोग, जिनके लिये प्रयोग से हटने वाली व्यवस्था रुकावट उत्पन्न कर देती है वे इसकी शिथिलता के बारे में चेतन हो जाते हैं और इसके उलटने में मदद करते हैं। अतः प्रत्येक सामाजिक क्रान्ति समाज की एक नवीन स्थिति को जन्म देती है। प्रबल आर्थिक वर्ग की विचारधारायें (ideology) त्रस्त (suppressed) वर्ग की विचार-धाराओं के विरोध में हो जाती हैं और इस प्रकार से कम्युनिस्ट मैनीफ़ेस्टो के अनुसार— "वर्तमान समाज का सम्पूर्ण इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।"*

पूंजीवादी व्यवस्था (capitalistic order) में यह वर्ग संघर्ष अधिक सरल हो जाता है और केवल दो वर्गों में अत्यन्त प्रत्यक्ष रूप से संघर्ष होता है—मध्यवर्ग (bourgeoisie) और मजदूर वर्ग (proletariat)। परन्तु निहित आर्थिक व्यवस्था मध्य वर्ग के अनुपात में मजदूरों की संख्या बढ़ा रही हैं और उस दिन की तैयारी कर रही है जिसमें सभी मजदूर ही बच रहेंगे, और इस प्रकार आखिरी क्रान्ति का वर्ग संघर्ष समाप्त हो जायगा और आर्थिक निश्चयात्मक से मुक्ति पाकर एक नया वर्ग प्रारम्भ हो जायेगा।

यह क्रान्ति किस प्रकार होती है ?

पूंजीवाद का सिद्धान्त किराये पर मजदूर लेकर लाभ करने का सिद्धान्त हैं। श्रम ही एक ऐसा आर्थिक 'पदार्थ' है जो अपने 'मूल्य' से अधिक मूल्य की वस्तु का उत्पादन करता है। जितना वह मेहनताना या अपना 'मूल्य' पाता है उसे कई घण्टे कार्य करके वह चुका देता है। पर जितना उसके कार्य से लाभ होता है उसका एक बहुत थोड़ा ही भाग उसे स्वयं मजदूरी के रूप में प्राप्त होता है। पूंजी एक प्रकार का जन्तु है जो फलदायक है और बड़ा होता जाता है। धनी दिन-प्रति-दिन धनी होते जाते हैं (यह बात थोड़े से लोगों के लिये सत्य है, अन्य धनी व्यक्तियों की आय प्रतिस्पर्धा के कारण कम होती जाती है) और मजदूरों की संख्या बढ़ती जाती है। पूंजीवाद छोटे-छोटे मालिकों को भी नौकर बना देता है, फिर छोटे-छोटे पूंजी-पतियों का पतन करता है। इस प्रकार दूसरों का शोषण करने वालों का स्वयं दूसरों के हाथों से शोषण होता है।

* "The history of all hitherto existing society is the history of class struggle." —Marx,

मार्क्स के सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Marxist Theory)

सॉरोकिन ने मार्क्स के सिद्धान्त की निम्नलिखित ढंग से आलोचना की है। *

(१) इसका पहला दोष कारण-सम्बन्धी सम्बन्ध और निर्णयवाद का तथ्य है।

मार्क्स ने आर्थिक कारणों को ही सामाजिक परिवर्तन का एक मात्र कारक माना है। सामाजिक समस्याओं के क्षेत्र में हम सभी कारकों की अन्तर्निर्भरता को स्वीकार करते हैं, न कि इस बात को कि एक ही कारक पर अन्य सब कारक निर्भर हैं। मार्क्स की इस धारणा के दो अर्थ हो सकते हैं—(अ) सभी कारकों पर विचार करते समय यह आर्थिक कारक ही सर्व प्रथम आता है जो अन्य सभी सामाजिक समस्याओं को निश्चित करता है या; (ब) सामाजिक समस्याओं को निश्चित करने में अन्य सभी कारकों की अपेक्षा इस कारक की कुशलता अधिक है।

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के विचार को स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि आर्थिक कारकों से पहले ही भौगोलिक दशायें और मनुष्य की जन्म प्रेरणायें (drives) प्रकट हुई और उन्होंने कार्य करना आरम्भ कर दिया। अन्य सामाजिक कारक, जैसे कि बुद्धि, अनुभव, धार्मिक विचार या अन्धविश्वास, निषेध (taboos) के नियम या रूढ़ियाँ, आदिम कला, आदि अत्यन्त आदिम मानव समाजों में भी पाये गये हैं और आर्थिक दशाओं के समय से ही कार्य करते रहे हैं। यह विचार बिल्कुल असत्य है कि आदिम मनुष्य के पास खाली पेट के अतिरिक्त कुछ भी न था। इसके अतिरिक्त हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि मनुष्य में केवल एक ही मूलप्रवृत्ति (instinct) होती है—भोजन सम्बन्धी—या यह कि यह सबसे प्रबल मूलप्रवृत्ति है। सामाजिक सत्य इस बात की निरर्थकता को सिद्ध करते हैं। हम यह भी नहीं स्वीकार कर सकते हैं कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है और आर्थिक विचार से ही सब कार्य करता है।

इसके अतिरिक्त, एस्पिनास (Espinas), दुरखाइम (Durkheim), हवेलिन (Huvelin), थर्मवाल्ड (Thurmvald), मैलिनोस्की (Malinowski), ह्यूबर्ट (Hubert) और मॉस (Mauss) की गवेष्णाओं से यह पता लगता है कि आदिम अवस्था में भी उत्पादन की प्रविधि और सम्पूर्ण आर्थिक जीवन समकालीन धर्म, जादू, विज्ञान और अन्य बौद्धिक वस्तुओं से न तो अलग ही किये जा सकते हैं और न तो उनके बिना अर्थपूर्ण ही हैं। अगली अवस्थाओं (stages) में भी, आर्थिक संगठन

* Sorokin, *Contemporary Sociological Theories.*

पर जादू, बुद्धि, अनुभव या परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। मैक्स वैबर (Max Weber) ने इस बात को स्पष्ट रूप से दिखाया है कि चीन, भारत, प्राचीन जगत, मध्य युग और वर्तमान युग के आर्थिक ढाँचे पर धर्म, जादू, परम्पराओं आदि का भीषण प्रभाव पड़ा है। इसलिये, आर्थिक कारक अन्य कारकों से अधिक पुराना नहीं है। इसका अर्थ है कि सामाजिक प्रमेय (phenomena) हमेशा एक दूसरे पर परस्पर निर्भर हैं और थे। इसलिए यह कहना सर्वथा असत्य है कि आर्थिक कारक अन्य सब कारकों से पहले आया और इसलिए प्राथमिक है।

(३) सॉरोकिन कहता है कि यदि आर्थिक कारक ही हमेशा चालक (starter) है और सामाजिक जीवन के क्षेत्र में होने वाले सभी परिवर्तन आर्थिक दशा में परिवर्तन होने से होते हैं, तो हम स्वयं आर्थिक कारक की ही गतिशीलता (dynamic) की कैसे व्याख्या कर सकते हैं। आर्थिक कारक में कहाँ से गति आती है ? यह कैसे परिवर्तित होता है ? क्योंकि मार्क्स के विचार में आर्थिक कारक ही हमेशा चालक (starter) है और इसीलिये उसको प्राथमिकता दी गई है, इसलिए इन प्रश्नों का उत्तर भी आवश्यक है।

(४) इस कथन में बड़ी अस्पष्टता और अनिश्चितता है कि आर्थिक कारक ही सामाजिक प्रमेयों (phenomena) का अन्तिम, प्रमुख और सबसे महत्वपूर्ण कारक है। मार्क्स और उसके समर्थकों का विश्वास है कि सभी सामाजिक और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का कारण बतलाने के लिये आर्थिक कारक ही काफी है।

सॉरोकिन कहता है कि यदि युद्ध और शान्ति, निर्धनता और समृद्धि, गुलामी और आजादी, क्रान्ति और प्रतिक्रिया एक ही कारक के फल हैं तो इससे निम्नलिखित समीकरण (equation) प्राप्त होता है।

$$\text{A and non–A} = f(E)$$

E से यहां तात्पर्य आर्थिक कारक (economic factor) से है। सॉरोकिन ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि यह मार्क्स के सिद्धान्त के अनुसार दो परस्पर विरोधी बातें एक ही कारक के फल हैं।

इस प्रकार का समीकरण (equation) तर्क की दृष्टि से अत्यन्त मूर्खतापूर्ण है और विज्ञान के मौलिक सिद्धान्त—कारण और प्रभाव के एकसमान (uniform) सम्बन्ध—का खण्डन करता है। इसके अनुसार एक ही कारण के अत्यन्त भिन्न और विरोधी फल हो सकते हैं। सॉरोकिन ने इसको अधिक स्पष्ट करने के लिये निम्न लिखित समीकरण (equation) दिया है।

E (economic factor) is the cause of	A and non-A B and non-B C and non-C that is the cause D and non-D of all forms of F and non-F behaviour, social .... processes, and N and non-N historical events.

सॉरोकिन कहता है कि सामाजिक जीवन और इतिहास की अत्यन्त गतिशीलता की एक ही कारक में व्याख्या करना पागलपन के अतिरिक्त कुछ नहीं है।*

(५) इस सिद्धान्त का एक दूसरा दोष यह है कि कुछ शब्दों—जैसे, 'आर्थिक कारक', 'उत्पादन की शक्तियाँ और सम्बन्ध' और 'आर्थिक आधार'—की परिभाषायें सन्तोषजनक रूप से अलग और विशिष्ट नहीं हैं।

मार्क्स के शब्दों की अस्पष्टता का कारण यह है कि उसकी व्याख्या करने वाले (interpreters) जैसे कॉट्सकी (Kautsky), सौम्बार्ट (Sombart), हैन्सन (Hansen) ने इस कारक को केवल एक प्रविधि ही बताया है, जब कि दूसरे व्याख्या करने वाले (interpreters) जैसे कि एजिन्जल्स (Engels), मैसेरिक (Masaryk), सैलिगमैन (Seligman) आदि ने इसका अर्थ उत्पादन की सामान्य दशाओं से लगाया है, जिसमें भौगोलिक पर्यावरण, प्राकृतिक साधन, यातायात, व्यापार वितरण की विधि आदि सम्मिलित हैं।

मार्क्स-एञ्जिल का वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त भी अत्यन्त दोषपूर्ण है। यह कहना बिल्कुल असत्य है कि "आज के वर्तमान सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।"† इस सिद्धान्त का यह अर्थ निकलता है कि सामाजिक वर्गों के बीच में सहयोग नहीं रहा है। यह इसलिये असत्य है क्योंकि वर्ग-विरोध की अपेक्षा वर्ग-सहयोग ही अधिक सार्वभौमिक सत्य (phenomena) रहा है। अनेक गवेषणाओं के बाद, जैसे कि क्रोपोकिन का Mutual Aid, यह निश्चित है कि मानव जाति की प्रगति सहयोग और दृढ़ता के कारण हुई है, न कि वर्ग-संघर्ष, विरोध और घृणा के कारण।

---

* "To hope for explanation of the most complex dynamics of social life and history through only one factor amounts to nothing but idiocy." —Sorokin' op., cit., p. 525.

† "The history of all hitherto existing society is history of the class struggle." *The Communist Manifesto* p. 12.

केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही सिद्धान्त में कोई ऐसी बात नहीं है जो कि पहले के लेखकों के द्वारा न कही गई हो। सॉरोकिन ने इस सिद्धान्त को चीनी सन्तों, कन्फ्यूसियस और मेन्सियम की पुस्तकों में; पूर्वी देशों की पवित्र पुस्तकों में; और क्रिश्चयन बाइबिल में पाया। पश्चिमी समाज के इतिहास में सदा ही अनेक महान् व्यक्तियों ने, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका के जन्मदाता भी सम्मिलित हैं, आर्थिक कारकों के महत्व पर बल दिया है।

बियरस्टैड (Bierstedt) ने कहा है कि मार्क्स और एञ्जिल्स ने इतिहास की जटिल प्रक्रिया को सरल दिखाने की चेष्टा की है। इस बात का कोई भी व्यक्ति, जो जीविकोपार्जन के लिए कार्य करता है, विरोध नहीं करेगा कि आर्थिक कारक महत्वपूर्ण होने हैं। परन्तु यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि दूसरे सब कारक महत्वहीन होते हैं। अनेक ऐतिहासिक क्रान्तियों और परिवर्तनों में आर्थिक कारकों का ही हाथ रहा है, परन्तु यह कहना ज्यादती होगी कि, उदाहरण के लिए, ईसाइयों के धार्मिक युद्ध (crusades) का कारण आर्थिक था, न कि धार्मिक; कि संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न प्रान्तों के बीच जो युद्ध हुआ उसका एकमात्र कारण आर्थिक था, न कि गुलामों की स्वतन्त्रता का प्रश्न; कि पन्द्रहवीं शताब्दी के भौगोलिक अन्वेषण (exploration) लालच के कारण हुये, न कि कुतूहल के कारण।*

मार्क्स के सिद्धान्त का केवल एक गुण यह है कि उसने अपने समय से पहले के दिये गये विचारों को एक अधिक प्रबल और अतिशयोक्ति के ढंग से सामान्य रूप (generalize) दिया।

वेबलन के विचार (Veblenian Analysis)

मार्क्स के सिद्धान्त में हमने देखा कि परिवर्तन के कारणों का प्रारम्भ उत्पादन की विधियों (techniques of production) में होने वाले परिवर्तन से होता है। परन्तु बदलते हुए सामाजिक ढाँचे के साथ इन परिवर्तनों का अप्रत्यक्ष, न कि प्रत्यक्ष सम्बन्ध बदलता है। मार्क्स के विचार में उत्पादन की विधियों में परिवर्तन होने से पहले आर्थिक सम्बन्ध पर प्रभाव पड़ता है जो कि बदले में सामाजिक ढाँचे को परिवर्तित करता है।

दूसरे लेखकों ने यह अधिक स्पष्ट रूप से दिखाने का प्रयत्न किया है कि सामाजिक दशायें प्रत्यक्ष रूप से प्राद्योगिक दशाओं का फल हैं। इन लेखकों में हम वेबलन को एक प्राद्योगिक निर्णयवादी (technological determinist) मानते हैं। वेबलन ने सामाजिक परिवर्तन को केवल प्राद्योगिक कारकों का ही फल बताया है।

वेबलन कहता है कि हमारी आदतें और हमारे मानसिक अनुशासन (disciplines) उस समूह के कार्य से नियन्त्रित होते हैं जो हम करते हैं और

* "Robert Bierstedt : *The Social Order.*

विशेषतया प्रविधि की उस किस्म से जिसका समावेश उस कार्य के अन्तर्गत है। अर्थात् कार्य की जो प्रकृति प्रविधि की प्रकृति से नियन्त्रित होती है वह हमारी आदतों और मानसिक अनुशासन (disciplines) को भी नियन्त्रित करती है। अभ्यस्तता (habituation) मनुष्यों के शरीरों और मस्तिष्क को विशेष प्रभावित करती है।

मनुष्यों में कुछ प्रेरणायें (drives) या मूल प्रवृत्तियाँ (instincts) होती हैं जो कि स्थिर रहती हैं; परन्तु आदतें भौतिक (material) पर्यावरण के अनुरूप बदलती रहती हैं। इसलिए पर्यावरण में अन्तर होने से ही सामाजिक ढाँचे में भी अन्तर आ जाता है। मनुष्य अपने कार्यों से जाना जाता है, इसलिये वह अनुभव करता है और विचारता है।*

विचारने की आदतों में परिवर्तन होने से ही सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन होता है। विचारने की आदतें उस प्रविधि से प्रभावित होती हैं जो कि उस कार्य में निहित हैं। वेबलन कहता है कि अन्तिम विश्लेषण में हम यही कह सकते हैं कि सामाजिक संस्थाओं में होने वाले परिवर्तन के लिये उत्तरदायी शक्तियाँ आर्थिक स्वभाव की हैं। इसलिए प्राद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन निश्चित करती है। इस सिद्धान्त को हम संक्षेप में चार भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) सबसे पहले प्रविधि (technique) में परिवर्तन होता है जो भौतिक (material) पर्यावरण को बदल देता है।

(२) भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन होने से हमारी आदतें भी बदल जाती हैं।

(३) आदतें हमारे विचारने के ढंग को बदलती हैं।

(४) विचारने के ढंग में होने वाले परिवर्तन सामाजिक ढाँचे को बदल देते हैं।

वेबलन के सिद्धांत की आलोचना

वेबलन के अनुसार हमारी आदतें और विचारने के ढंग कार्य की प्रविधि पर निर्भर करती हैं। परन्तु हम अनेक आदिवासी समाजों में भिन्न साँस्कृतिक दशायें पाते हैं, यद्यपि कि उनमें निहित प्रविधियां एक-सी ही हैं या प्राद्योगिकीय उन्नति के एक ही स्तर पर हम भिन्न साँस्कृतिक दशायें देखते हैं।

अनेक सामाजिक और साँस्कृतिक परिवर्तन भौतिक (material) पर्यावरण से परिवर्तन होने के कारण नहीं, बल्कि साँस्कृतिक विस्तार (diffusion) तथा एकीकरण (assimilation) के कारण होते हैं। विचारों, धर्म और रुचियों में अनेक परिवर्तन होते हैं जो कि हमेशा भौतिक पर्यावरण के कारण ही नहीं होते।

* "Man is what he does, so feels and thinks."
Veblen : *The Instinct of workmanship*, *Chap*. p. 192.

प्राद्योगिकीय उन्नति के एक ही स्तर पर व्यक्तियों के एक दूसरे से भिन्न और विरोधी विचार होते हैं। विचारने के ढंग (विरोधी विचार) उस समय भी विकसित होते हैं जब कि प्रविधि में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। एक ही प्रविधि और कार्य का भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न प्रभाव हो सकता है।

अन्य निर्णयवादियों की भाँति, वेबलन ने भी सामाजिक प्रक्रिया और सामाजिक दशाओं को अत्यन्त सरल समझा है। वास्तव में सामाजिक संगठन एक अत्यन्त जटिल वस्तु है।

वेबलन और मार्क्स की तुलना

अपने समाजवाद के वैज्ञानिक गुण पर बल देने के बावजूद भी मार्क्स अपनी नैतिक लीनता को नहीं छिपा पाया है। यह निर्णयवादी के भेष में एक आदर्शवादी है और इसलिए, अनेक व्यक्तियों को उसकी अपील प्रभावित करती है। उसका आदर्श एक वर्गहीन समाज है, वह एक लक्ष्य की ओर संकेत करता है। इसी से उसकी असलियत प्रकट होती है।

वेबलन अपने सिद्धान्त के प्रति ईमानदार है और किसी उद्देश्य या लक्ष्य की ओर संकेत नहीं करता है।

मार्क्स ने प्राद्योगिकी को सामाजिक परिवर्तन का अप्रत्यक्ष कारण माना है। उसने आर्थिक सम्बन्धों को प्राथमिकता दी है। वेबलन प्राद्योगिकी को सामाजिक ढाँचे में होने वाले परिवर्तन का प्रत्यक्ष कारण मानता है।

वेबलन ने आधुनिक समस्याओं का विश्लेषण किया है, मार्क्स ने मानव इतिहास का विश्लेषण किया है।

निष्कर्ष

इन निर्णयवादियों को स्वीकार करना वास्तव में जीवन और पर्यावरण के अत्यन्त जटिल सम्बन्धों को गलत समझना है। यह इस बात की अवहेलना होगी कि मनुष्य और उसकी सामाजिक विरासत (heritage) में अन्त:क्रिया होती रहती है। यह इस बात की अवहेलना होगी कि सामाजिक पर्यावरण की रचना मनुष्य की कलाओं और प्रविधियों से नहीं बल्कि उसके विश्वासों, उसकी इच्छाओं, उसके भय, और उसकी आकांक्षाओं से भी हुई।

हम मार्क्स और वेबलन के सिद्धान्त की मुख्य विशेषताओं की प्रशंसा करते हैं परन्तु इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते कि इतने जटिल समाज में होने वाले सभी परिवर्तन एकमात्र इन्हीं कारकों के फल हैं। इसलिए, अब हम अन्य कारकों पर भी विचार करेंगे।

१४ सामाजिक परिवर्तन के साँस्कृतिक तथा अन्य कारक (Cultural and Other Factors of Social Change)

संस्कृति समाज के सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है । परन्तु कोई भी संस्कृति इस सम्बन्ध में दोष रहित या पूर्ण नहीं है और समाज के सब सदस्यों को पूर्ण रूप से कभी संतुष्ट नहीं कर पाती है । संस्कृति के दोषों से व्यक्तिगत कष्ट और सन्तोष उत्पन्न हो सकते हैं और जैसा कि लिन्टन (Linton) कहता है, यह परिवर्तन की प्रेरणा देते हैं । जितने अधिक व्यक्ति इन दोषों को या संस्कृति को अपूर्णता की प्रेरणा देते हैं, परिवर्तन की उतनी ही अधिक सम्भावना बढ़ जाती है ।

साँस्कृतिक विलम्बना की कल्पना (The Hypothesis of Cultural Lag)

साँस्कृतिक विलम्बना की कल्पना सबसे पहले ऑगबर्न ने की थी । उसने भौतिक और अभौतिक संस्कृति में भेद किया है । ऑगबर्न कहता है कि यद्यपि विश्लेषण की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है कि भौतिक और अभौतिक संस्कृति में भेद किया जाये, फिर भी यह स्मरणीय है कि यह एक बड़ी सांस्कृतिक इकाई सामाजिक संस्था के अन्तःसम्बन्धित भाग हैं । उदाहरण के लिए मकान, फ़र्नीचर और भोजन परिवार संस्था की भौतिक संस्कृति के भाग हैं, और उसके अभौतिक पहलू के अन्दर विवाह, एक-विवाह की प्रथा (monogamy) और पितृसत्तात्मक नियम जैसी वस्तुओं को हम सम्मिलित कर सकते हैं ।

ऑगबर्न कहता है कि जब भौतिक संस्कृति में परिवर्तन होते हैं, वे बदले में, अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन लाते हैं, विशेषकर उस संस्कृति में जिसे ऑगबर्न ने अनुकूलन करने वाली (adaptive) संस्कृति कहा है, अर्थात् भौतिक परिवर्तनों को अधिक उपयोगी बनाने के ढंगों में । परन्तु यह अनुकूलन करने वाली संस्कृति अपने कार्य में धीमी भी हो सकती है । उदाहरण के लिये, देश के जंगल काटे या नष्ट

किये जा सकते हैं जबकि उसको सुरक्षित रखने (conservation) की कला औद्योगिक या कृषि सम्बन्धी विकास से पिछड़ जाती है। रोग से कर्मचारियों की रक्षा करने और Workmen's Compensation Act की आवश्यकता अनुभव करने से पहले ही फैक्टरी प्रणाली का बहुत विकास हो चुका होता है। राजनैतिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली अपरिवर्तित रह सकती है जब कि जनसंख्या की प्रकृति और वितरण बदल जाते हैं। इन सबको ऑगबर्न ने साँस्कृतिक विलम्बना कहा है। ऑगबर्न ने इस सांस्कृतिक विलम्बना के और भी कुछ उदाहरण दिये हैं। उन शहरों में जहाँ जनसंख्या बढ़ रही है प्रति १०००० निवासियों के हिसाब से पुलिस शक्ति कम है अपेक्षाकृत उन शहरों के जहाँ जनसंख्या घट रही है। बढ़ते हुये शहर सन्तोषजनक गति से अपनी पुलिसशक्ति को नहीं बढ़ाते हैं; घटते हुए शहर उचित समय पर ही उसे कम नहीं कर लेते हैं। पुलिस की संख्या में परिवर्तन जनसंख्या के परिवर्तन से पिछड़ जाता है।

कुछ प्राद्योगिकीय विकास और आविष्कार जो कि समकालीन समाज में साँस्कृतिक विलम्बना उत्पन्न कर रहे, हैं निम्नलिखित हैं—टेलीफोन, मोटरकार, वायरलेस, सिनेमा, शक्ति चालित कृषि-मशीनें, प्रिंटिंग, फोटोग्राफी, अप्राकृतिक रोशनी, कॉन्ट्रासेप्टिव आदि।

साँस्कृतिक विलम्बना के सिद्धान्त की आलोचना

कौन किससे पिछड़ता है ? जब हम विलम्बना के विषय में चर्चा करते हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु से पिछड़ जाती है या उनकी गति में अन्तर है। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि कौन किससे पिछड़ जाता है? ऑगबर्न के मतानुसार अभौतिक संस्कृति भौतिक संस्कृति से पिछड़ जाती है। यह बात स्वीकार नहीं की जा सकती है।

उदाहरण के लिये, यदि हम पुरानी रीतियों को अपनाते रहें या उनका पालन करते रहें, जब कि नई सामाजिक दशाओं को देखते हुये हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति उन रीतियों के बदलने से हो सकती है, तो हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह विलम्बना भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति के बीच है। यह विलम्बना तो अभौतिक संस्कृति के ही दो भागों के बीच हुई।

इसी प्रकार, हम यह भी नहीं कह सकते कि प्रत्येक घटना में भौतिक संस्कृति ही अभौतिक संस्कृति के आगे रहती है या कि मुख्य समस्या भौतिक संस्कृति से अभौतिक संस्कृति के सामंजस्य या अनुकूलन की है।

इसके अतिरिक्त, हम विलम्बना के विषय में तभी कुछ कह सकते हैं जब कि हमारे पास एक ऐसा मापदण्ड हो जो कि शान्ति-स्थापक और विलम्बी दोनों को समान रूप से लागू हो सके। जहाँ इस प्रकार का कोई मापदण्ड नहीं है हम उचित

रूप से उसे विलम्बना नहीं कह सकते हैं। कठिनाई तो यह है कि शब्द "साँस्कृतिक विलम्बना" सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं के अन्दर होने वाले सभी असामंजस्य और असन्तुलनों के लिये प्रयोग किया गया है, बजाय इसके कि इसको उसी पद्धति के अन्दर कुशलता के अन्तरों तक सीमित रखा जाता। उपरोक्त आलोचना मैकाइवर और पेज के विचारों पर आधारित है।

मैकाइवर ने भिन्न विलम्बनाओं को अलग-अलग नामों से पुकारा है।

(१) **प्राद्योगिक विलम्बना (Technological lag)**—मैकाइवर कहता है कि यह शब्द उस स्थिति के लिए प्रयोग किया जाता है जब कि एक ही प्राद्योगिक प्रक्रिया के अलग-अलग कार्यों में से कोई एक कार्य अन्य कार्यों के साथ शान्तिपूर्ण सहयोग बनाये रखने के लिए आवश्यक कुशलता को प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। इसके फलस्वरूप, इस स्थिति में सम्पूर्ण प्रक्रिया की उत्पादन शक्ति निश्चल या क्षीण हो जाती है।* इसका उदाहरण औद्योगिक रुकावट (industrial "bottleneck") है। इसका दूसरा उदाहरण ऑगबर्न ने दिया है। हम जंगल के पदार्थों का उपयोग तो कुशलतापूर्वक करते हैं परन्तु स्वयं जंगल की देख-भाल करने में उतनी कुशलता प्रदर्शित नहीं करते। प्राद्योगिक विलम्बना का आधार अन्तःक्रिया करने वाले विभिन्न कारकों की सापेक्ष (relative) कुशलता नापने की हमारी योग्यता पर निर्भर करता है। इससे यह दिखाया जा सकता है कि एक कारक अन्य कारकों से पिछड़ रहा है।

(२) **प्राद्योगिक प्रतिरोध (Technological restraint)**—मैकाइवर कहता है कि इस शब्द का प्रयोग उस स्थिति में किया जाता है जब कि कुछ निहित (vested) स्वार्थों की रक्षा करने के लिये कुछ लोग अधिक कुशल नये यन्त्रों, विधियों, या साधनों को प्रयोग में आने से रोकते हैं या अधिक अच्छी नई वस्तुओं के उपयोग में बाधा पहुँचाते हैं। यदि नई वस्तुयें प्रयोग में आ जायेंगी, उनका प्रचार बढ़ जायेगा, तो पहले की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले व्यक्तियों को आर्थिक हानि होगी, उनके पदार्थों को कोई नहीं खरीदेगा। इसलिये वे नई वस्तु के प्रवेश को रोकते हैं।

---

* "This term is appropriate where any one of the interdependent functions within a technological process fails to achieve or maintain the degree of efficiency requisite for its harmonious cooperation with the rest so that the productivity of the whole process is impaired, retarded or blocked at this point."

—McIver and Page, op. cit, p. 575,

मैकाइवर ने अनेक प्रकार के प्राद्योगिक प्रतिरोध बताये हैं :—

(i) **नौकरशाही स्वार्थ द्वारा निश्चित प्रतिरोध (Restraint determined by bureaucratic interest)**—परम्परा या वर्तमान संगठन की प्रतिष्ठा के विचार अधिक कुशल विधियों या प्रविधियों का विरोध करते हैं। इसका उदाहरण हम सरकारी विभागों में पाते हैं जो कि सस्ती और अधिक कुशल कार्यपद्धतियों को प्रयोग में लाने का विरोध करते हैं क्योंकि पहले की पद्धति अपनाने के अभ्यस्त हो जाने के कारण नई पद्धति अपनाने में उन्हें असुविधा होगी, साथ में प्रतिष्ठा का विचार तो रहता ही है। अपनी वस्तु को तो श्रेष्ठ मानना ही है और उसके लिये नई पद्धति को दोषपूर्ण प्रमाणित करना भी आवश्यक होता ही है।

(ii) **आर्थिक स्वार्थों द्वारा निश्चित प्रतिरोध (Restraint determined by economic interest)**—यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कुछ व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि नई प्रक्रिया या विधियों को अपनाने से उनके आर्थिक स्वार्थों को धक्का लगेगा। यह पहले प्रकार के प्रतिरोध से भिन्न है, क्योंकि यह केवल आर्थिक विचारों से ही लगाया जाता है। उदाहरण के लिये, व्यापार संघ (trade-union) किसी ऐसी प्रविधि या मशीन का विरोध कर सकता है जिसमें कम मजदूरों की आवश्यकता हो, जिससे कुछ मजदूरों की नौकरी जाने का खतरा हो, या कोई पेशेवर संगठन (professional organization) किसी ऐसे कार्य पद्धति को अस्वीकार कर सकता है जिससे उसकी नौकरी तो अच्छी हो जाये परन्तु उसके आर्थिक एकाधिकार (monopoly) को क्षति पहुँचे।

(iii) **साँस्कृतिक स्वार्थों द्वारा निश्चित प्रतिरोध (Restraint determined by cultural interest)**—कभी-कभी नयी प्राद्योगिकी (technology) किसी बाहरी समाज से किसी एक समुदाय या देश में प्रवेश करायी जाती है जहाँ की संस्कृति ही बिल्कुल भिन्न है, जिसकी संस्कृति के अनुकूल यह नयी प्राद्योगिकी नहीं होती। इसका सबसे जोरदार उदाहरण हमें उस स्थिति में मिलता है जब कि किसी प्रगतिवादी सभ्य देश की औद्योगिक और दूसरी प्राद्योगिक विधियाँ किसी अपेक्षाकृत आदिम (primitive) लोगों पर स्थापित की जाती है। गाँधीजी ने मशीनीकरण का विरोध किया क्योंकि यह भारत की संस्कृति के अनुकूल नहीं था। पश्चिमी समाज की संस्कृति पर भी नयी प्राद्योगिकी का अप्रत्याशित (sudden) प्रभाव पड़ा है परन्तु उनके लिये प्राद्योगिकी एक स्वदेशी वस्तु है और न कभी बाहर से लायी जाती है, न लादी जाती है। इसलिये वहाँ नई प्रविधियों को अपनाने की तत्परता पायी जाती है।

(३) **साँस्कृतिक संघर्ष (Cultural clash)**--जब भिन्न मूल्यों, धर्म, जीवन-यापन के ढंग वाले व्यक्ति एक ही समुदाय के अन्दर एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं तो

उनमें संघर्ष होता है। इसको साँस्कृतिक संघर्ष कहते हैं। किसी भिन्न या विदेशी प्राद्योगिकी को अपनाने में केवल यही भय नहीं रहता है कि वह पुराने मूल्यों पर प्रहार करेगी, बल्कि इस बात का भी भय रहता है कि उसके साथ नये मूल्यों, भिन्न स्तर, भिन्न जीवन लक्ष्यों का भी प्रवेश होगा।

(४) **साँस्कृतिक विसंयुज्यता (Cultural ambivalence)**—समनर ने कहा है कि रूढ़ियों में स्थिरता की प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति की आदतें समुदायों की रूढ़ियों (mores) के अनुरूप बनती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की एकता के लिये अपनी रूढ़ियों के साथ व्यवस्थान (accommodation) करता है। जब नई संस्कृति बाहर से लायी जाती (import) है और पुरानी और नई संस्कृति में जब संघर्ष होता है तो व्यक्ति नई संस्कृति से वैयक्तिक व्यवस्थापन करने में असफल हो सकता है।

संस्कृति परिवर्तन के निर्णायक के रूप में
(Cu'ture as determinant of Social Change)

(१) **संस्कृति का निर्देशन का कार्य (The directional role of culture)**:—इस बात को बहुत थोड़े लोग अनुभव करते हैं कि साँस्कृतिक कारक केवल प्राद्योगिक परिवर्तन के ही अनुरूप नहीं चलता है बल्कि, बदले में, प्राद्योगिक परिवर्तन की दिशा और प्रकृति को भी प्रभावित करता है। जो शक्तियाँ हम उत्पादन के उद्देश्य से उत्पन्न करते हैं वे हमारी संस्कृति के ऊपर निर्भर करती हैं। औद्योगिक मशीन केवल आवश्यकता की वस्तुयें ही नहीं बनाती हैं। यह विलासिता की वस्तुयें, जीवन में आराम की वस्तुयें या युद्ध की सामग्री दोनों का ही उत्पादन कर सकती है। सभ्यता के साधनों को, मैकाइवर कहता है, हम एक जहाज के उदाहरण से चित्रित कर सकते हैं जो कि अनेक भिन्न बन्दरगाहों की यात्रा कर सकता है। किन बन्दरगाहों की हम यात्रा करेंगे यह हमारी संस्कृति पर निर्भर करता है। जहाज के बिना हम बिल्कुल भी जल-यात्रा नहीं कर सकते, जहाज की प्रकृति के अनुसार हम धीरे या तेजी से यात्रा करेंगे, छोटी या लम्बी समुद्र-यात्रा करेंगे, जहाज पर उपस्थित होने पर हमें उसी की दशाओं के साथ अपने जीवन का सामंजस्य करना होगा और हमारे अनुभव उसी के अनुसार भिन्न होंगे। परन्तु मैकाइवर कहता है, जिस दिशा में हम यात्रा करेंगे वह जहाज के डिजाइन के द्वारा पूर्व-निश्चित नहीं होती है। यह हमारी संस्कृति से, जिसके अनुरूप हमारे व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है, निश्चित होगी।

सामाजिक आविष्कार और सामाजिक परिवर्तन

आविष्कार दो प्रकार के होते हैं: प्राद्योगिकीय और सामाजिक। हम पिछले अध्याय में प्राद्योगिकीय आविष्कारों के सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव स्पष्ट कर

चुके हैं। यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि सामाजिक आविष्कार, जैसे कोई नया धर्म, कानून, प्रथा, फैशन, सामाजिक मूल्य भी सामाजिक परिवर्तन ला सकता है। हम यह ऊपर लिख चुके हैं कि मैक्स वैबर के अनुसार किस प्रकार प्रोटेस्टेंट धर्म की उत्पत्ति होने से पूँजीवाद का भी जन्म हुआ। हमारे देश में बौद्ध धर्म, जैन धर्म का आविर्भाव होने पर परिवार के आकार पर प्रभाव पड़ा जब अनेक लोग विवाहित अथवा अविवाहित अवस्था में परिवार को त्यागकर संघ में शामिल होने लगे। भारत में इस्लाम धर्म फैलने पर पर्दा प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि को प्रोत्साहन मिला और स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में गिरावट आयी। ईसाई धर्म फैलने पर इसी प्रकार निम्न जातियों में शिक्षा बढ़ी, अन्धविश्वास और गन्दगी दूर हो हुई। पश्चिमी सभ्यता, साहित्य और विचारों से प्रभावित होकर छुआ-छूत, पर्दा प्रथा, बाल-विवाह आदि के सम्बन्ध में परिवर्तन हुए।

कानून भी संस्कृति के महत्वपूर्ण अङ्ग हैं। नये कानून बनने से भी सामाजिक परिवर्तन होता है। हिन्दू विवाह अधिनियम १९५५ के पारित होने से बाल विवाह का अन्त हुआ, तलाक की व्यवस्था से स्त्रियों की स्थिति सुधरी। दूसरी ओर, सम्पत्ति में स्त्रियों को अधिकार प्राप्त होने से पति-पत्नी, भाई-बहन के सम्बन्धों पर प्रभाव पड़ा। अस्पृश्यता सम्बन्धी कानून बनाकर सरकार ने अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति सुधार दी। इसी प्रकार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, नये-नये टैक्सों का लगाना आर्थिक दशा को बदलता है जो बदले में सामाजिक परिवर्तन लाने में समर्थ है।

मैक्स वेबर के विचार

मैक्स वेबर (Max Weber) का विचार है कि संस्कृति सामाजिक परिवर्तन का प्रत्यक्ष कारण ही नहीं है बल्कि, उपयोग की वस्तुओं पर प्रभाव डाल कर, यह एक अप्रत्यक्ष कारण भी है।

पूंजीवाद और प्रोटेस्टैन्टवाद (Capitalism and protestantism)—वेबर ने प्रोटेस्टेंटवाद के कुछ स्वरूपों और शुरू के पूँजीवाद के सम्बन्ध का अध्ययन किया। वेबर ने मुख्य रूप से धर्म और आर्थिक घटनाओं (phenomena) के सम्बन्ध का विश्लेषण किया है। उसने इस बात को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया कि आर्थिक घटनायें धर्म को निश्चित करती। उसके हैं विचार में दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, और कभी कभी साँस्कृतिक तत्व आर्थिक परिवर्तन के लिये मार्ग बनाते हैं।

वेबर के अनुसार आधुनिक पूँजीवाद का सार निम्नलिखित है। बुद्धिपूर्वक संगठित और प्रबन्धित आर्थिक उद्यम (enterprise) जो कि बिल्कुल सही वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हो और प्राइवेट सम्पत्ति, बाजार में बेचने वाले के लिये

वस्तु का उत्पादन; जनता के लिये उत्पादन और जनता के द्वारा धन कमाने के लिये उत्पादन; और कार्य के प्रति अधिक से अधिक उत्साह और कार्य-कुशलता जिसके लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति को पूर्णरूप से अपने कार्य, व्यापार से प्रेम हो। कार्य के प्रति प्रेम प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का मुख्य कार्य होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को ईमानदारी, प्रेम और धर्म के साथ अपना कार्य करना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप मनुष्य को उसकी कार्य-कुशलता की दृष्टि से देखा जाता है और उसी हिसाब से मेहनताना दिया जाता है। वेबर कहता है कि प्रोटेस्टेन्ट धर्म साँसारिक कार्य को उचित रूप, ईमानदारी और उत्साह से करने को उसका पावन (sacred) कर्तव्य बताता है। प्रोटेस्टेन्ट धर्म यह भी शिक्षा देता है कि ईमानदारी, लगन, बुद्धि से काम करने से मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इसलिये, मैक्स वेबर कहता है, प्रोटेस्टेन्ट धर्म ईमानदारी से खूब धन कमाने के लिये प्रेरित करता है।

वेबर कहता है कि आर्थिक रूप से प्रमुख और समृद्ध वही देश हैं जो कि प्रोटेस्टेन्ट हैं जैसे कि हॉलैण्ड, इंग्लैण्ड और अमेरिका। प्रोटेस्टेन्ट आर्थिक विचार ने अपने सदस्यों को पूंजीवादी अर्थवाद (economy) में ही शिक्षित और पारङ्गत किया।

मैक्स वेबर के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि जर्मनी में प्रोटेस्टेन्ट जनसंख्या आर्थिक रूप से अधिक समृद्धिशाली है। वेबर इसके विपरीत कारण की भी सम्भावना देखता है। वह कहता है कि इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड और दूसरे कुछ देश इसलिए समृद्धिशाली नहीं हैं कि उन्होंने प्रोटेस्टेन्ट धर्म स्वीकार कर लिया, बल्कि उन्होंने इस धर्म को इसलिए स्वीकार किया क्योंकि वे आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि वेबर के विचार में धर्म और आर्थिक स्थिति दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

किस बात को हम कितना महत्व देंगे, यह हमारे सामाजिक मूल्यों पर निर्भर करता है जो कि स्वयं संस्कृति के उपर निर्भर है। संस्कृति भी इस बात को निश्चित करने में एक महत्वपूर्ण कारक है कि नई मशीन, नई प्रविधि, नई व्यवस्था आनी चाहिये या नहीं, यदि आनी चाहिए तो किस प्रकार की। इसीलिए नई वस्तुओं से उत्पन्न होने वाले परिवर्तन, कम से कम, अप्रत्यक्ष रूप से ही साँस्कृतिक कारक पर निर्भर करते हैं।

यह भी हम एक बार फिर लिखना उचित समझते हैं कि साँस्कृतिक कारक सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न हों वे उसका एकमात्र कारक नहीं हैं। अब हम अन्य कारकों पर भी विचार करेंगे।

सामाजिक परिवर्तन के व्यक्तित्व सम्बन्धी कारक (Personality Factors in Social Change)

यद्यपि सामाजिक परिवर्तन समूहों के व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं, फिर भी व्यक्ति अपने आविष्कारक (inventive) मस्तिष्क और प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण स्वयं समाज में परिवर्तन कर सकता है। महान् पुरुषों और बुद्धिमान (genius) व्यक्तियों का इतिहास में एक विशेष स्थान है। महान् और बुद्धिमान व्यक्ति समाज में असंतोषों का विश्लेषण करके, उसे समझकर, उन्हें व्यक्त कर सकता है; वह समस्याओं को हल करने के नये ढंग का आविष्कार या खोज करता है; वह अपने साथ के नागरिकों को इस बात के लिये उत्साहित कर सकता है कि वह नई विधियों और प्रविधियों को अपनावें। इस सम्बन्ध में कुछ थोड़े से नामों का उल्लेख करना काफी होगा—साँक्रेटीज, जीसस क्राइस्ट, गैलीलियो, न्यूटन, फैराडे, एडिसन, नैपोलियन, शैक्सपियर, एब्राहम लिंकन, मार्क्स, गाँधी।

युद्ध और सामाजिक परिवर्तन (War and Social Change)

अनेक प्रकार के संघर्ष समाज में देखे जाते हैं, परन्तु सबसे अधिक विषम और विकराल संघर्ष युद्ध है। इनके कारण जनसंख्या और भौतिक (material) सामग्री का नाश हो जाता है। जब एक विशेष क्षेत्र में एक बड़ा युद्ध लड़ा जाता है तो वहाँ का प्राकृतिक पर्यावरण भी नष्ट हो जाता है। युद्ध में भाग लेने वालों और युद्ध के बाद जीवित बचने वालों के लिये एक ऐसी नई स्थिति का जन्म होता है जो शान्तिकाल से भिन्न होती है। इस नई स्थिति के साथ सामञ्जस्य करना आवश्यक हो जाता है। पराजित लोग विजयी लोगों के द्वारा किये गये परिवर्तनों को स्वीकार करते हैं, नहीं तो उन्हें और भी अधिक दण्ड दिया जाये। विजयी लोगों को भी युद्ध के कारण क्षीण हुई जनसंख्या और नष्ट हुए आर्थिक संगठन के साथ पुनर्सङ्गठन करना पड़ता है। शान्ति काल के समय जितने भी प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं उन सबको युद्ध से धक्का लगता है और सम्पूर्ण सामाजिक जीवन में परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है।

सामूहिक क्रिया और परिवर्तन (Change through Collective Action)

अनेक सामाजिक परिवर्तन अनायोजित (unplanned) होते हैं और इतने धीरे-धीरे होते हैं कि अधिकतर नागरिकों को उनका परिज्ञान भी नहीं होता। फिर भी, कभी-कभी कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन आयोजित (planned) सामूहिक क्रिया के द्वारा वेग से लाये जाते हैं। सम्पूर्ण समाज—जैसे आधुनिक राष्ट्र—के द्वारा होनें वाली सामूहिक क्रिया का अर्थ सरकार के द्वारा होने वाले कार्य हैं, क्योंकि सरकार ही वह संस्था है जो कि सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करती है।

सरकारी क्रिया सामान्यत: अधिनियम (legislation) पास होने और लागू होने का रूप लेती है।

हाल में कुछ वर्षों के कुछ सामाजिक परिवर्तन अधिनियमों के फल हैं। उदाहरण के लिये हमारे देश में अधिनियम ने बालकों के श्रम (child labour) को कम कर दिया है। इसी प्रकार, अनेक देशों में अनेक अधिनियमों ने स्कूल में विद्यार्थियों की उपस्थिति (attendance) बढ़ाने में, निःशुल्क (free) पब्लिक स्कूलों की स्थापना करके और स्कूलों में विद्यार्थियों की उपस्थिति अनिवार्य करके सहायता की है।

सामाजिक परिवर्तन के विचार-सम्बन्धी कारक*
(Ideological Factor of Social Change)

सभी सामाजिक परिवर्तन विचारों से उत्पन्न होते हैं। इसलिये इस प्रकार के प्रश्नों का उठ खड़ा होना स्वाभाविक ही है कि यह विचार कहाँ से आते हैं और उनके किस प्रकार के प्रभाव होते हैं। ऑगबर्न (Ogburn) कहता है कि विचारों की दो अन्तिम (extreme) किस्में होती हैं: एक तो वे जो कि सत्य और भौतिक पदार्थों के चारों ओर केन्द्रित होते हैं और दूसरे वे जो कि कल्पनाओं (fantasies) के चारों ओर केन्द्रित होते हैं।

दूसरे किस्म के विचार मनुष्य की आकांक्षाओं, भय अथवा अन्य उद्वेगों से उत्पन्न होते हैं; ऐसे विचारों को विश्वास (beliefs) कहते हैं। इस प्रकार का विचार पहले लोगों का था कि ईसू मसीह के जन्म के हजार वर्ष बाद इस सृष्टि का नाश हो जायगा; यह एक विश्वास (belief) था जो कि सत्यता पर आधारित नहीं था।

दूसरी ओर विचार किन्हीं वस्तुओं (phenomena) के निरीक्षण से उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे कि नाव चलाने के ज्ञान की घटना में। कुछ ऐसे भी विचार होते हैं जो उपर्युक्त दोनों किस्मों का मिश्रण होते हैं या दोनों से मिलते-जुलते होते हैं। सत्य और कल्पना के बीच का उदाहरण हमें राज्य के कार्यों के laissez-faire सिद्धान्त के विचार में मिलता है। अनेक व्यक्ति यह विश्वास करना चाहते हैं कि वह सरकार सबसे अच्छी है जो सबसे कम शासन करे और हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते समय आर्थिक शक्तियाँ स्वयं आत्म सामञ्जस्य कर लेती हैं। इसलिए कुछ व्यक्तियों के लिये सामाजिक दर्शन एक इच्छापूर्ण विचारधारा है। दूसरी ओर अनेक सरकारों ने एक परिवर्धित (modified) laissez faire की नीति अपना कर भी सफलता प्राप्त की है। इसी प्रकार, कुछ विचार कुछ अंश में इच्छाओं पर और कुछ अंश में निरीक्षण (observation) पर आधारित हैं।

---

* साँस्कृतिक कारक के अन्तर्गत इसकी चर्चा की जा चुकी है।

जहाँ तक विचारों के प्रभाव का सम्बन्ध है चाहे जहाँ भी उनकी उत्पत्ति क्यों न हो, भौतिक (material) संसार के सत्य और निरीक्षण पर आधारित विचारों से प्रभावित होने की सम्भावना अधिक है, बनिस्बत विश्वासों से। भौतिक संस्कृति सरलता से कल्पना की ओर नहीं झुकती है। उदाहरण के लिये, आधुनिक सभ्यता के उत्साह और उद्योग में, इस बात की अपील मनुष्यों से की जा सकती है कि वे एक सरल जीवन व्यतीत करें। चाहे जितनी बार सरल जीवन की आवश्यकता और महत्व पर उपदेश क्यों न दिये जाये, आज की घड़ियों और आधुनिक व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के दिनों में अधिकतर व्यक्तियों के लिए, पहले के सरल जीवन को लौटाना कठिन होगा।

फिर भी, कल्पना (fantasy) पर आधारित विचार और आदर्श भी भौतिक संस्कृति को प्रभावित करते हैं। राष्ट्रीय यश (glory) के सम्बन्ध में इच्छापूर्ण (wishful) विचार किसी छोटे से राष्ट्र को मिलीटरी-तैयारी में संलग्न कर सकते हैं। इस प्रकार के विचार राष्ट्र को फ्रीट्रेड के लाभों से दूर कर उसको चुंगी की ऊँची दर वसूलने की नीति और अन्य नीतियाँ अपनाने को बाध्य करते हैं जो कि फैक्टरियों और कैमिकल इन्डस्ट्रीज के अनुकूल होती हैं।

हम सोवियट रूस की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रयोग किये गये मार्क्सवादी विचारों और आदर्शों का भी उल्लेख कर सकते हैं। इन विचारों का सोवियट रूस के अस्तित्व के थोड़े से ही दिनों में सामाजिक संगठन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। परन्तु इन मार्क्सवादी विचारों का प्राद्योगिकी (technology) पर प्रभाव कम स्पष्ट है। यहाँ हमारे कहने का यह अर्थ नहीं है कि कल्पनाओं (fantasies) का प्राद्योगिकी पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है बल्कि यह कि निरीक्षण पर आधारित विचारों का अधिक प्रभाव पड़ता है।

विचारों का प्रभाव तब भी स्पष्ट हो जाता है जब कि हम प्रचार (propaganda) और विज्ञापन के प्रभाव का निरीक्षण करते हैं। व्यक्तिवाद (individualism) या कम्यूनिज्म जैसे सामाजिक दर्शनों (philosophies) की उत्पत्ति और प्रभाव यह प्रमाणित करते हैं कि वे सत्य और कल्पना दोनों के मिश्रण हैं।*

विचार और सिद्धान्त आविष्कारों और आर्थिक दशाओं को प्रभावित करते हैं। वे प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक परम्पराओं, प्राचीन विश्वासों और पुराने व्यवहार आदर्शों के औचित्य पर प्रश्न उठाते हैं। सृष्टि (nature) की प्रकृति के सम्बन्ध में, विभिन्न वस्तुओं के बीच के सम्बन्ध, प्रक्रियायें जो कि शारीरिक संरचना में, उसकी मानसिक प्रतिक्रिया में, और उसके सामाजिक सम्बन्धों में कार्य करती हैं उनके सम्बन्ध में नये वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं। आचार (morals) सम्बन्धी

* Ogburn and Nimkoff : *A Handbook of Sociology*, p. 158.

परम्परागत नियमों को तिलाँजलि दे दी गई है या वे परिवर्तन की प्रक्रिया में हैं।

हमारे परम्परागत धार्मिक विचारों पर आधुनिक ज्ञान का प्रभाव पड़ा है। सिद्धान्त जो कि कभी सार्वभौमिक रूप से सत्य माने जाते थे अब निराधार प्रमाणित हो गये हैं, या उसका महत्व कम हो गया है और इसके फलस्वरूप धर्म की संस्था में पिछली शताब्दी में महान् परिवर्तन हुए हैं।

नये राजनैतिक दर्शन (philosophies) के कारण राज्य की प्रकृति और प्रक्रियाओं के सिद्धाँत में, जिसमें कभी सभी लोग विश्वास करते थे, परिवर्तन हुआ है।

परिवार और यौन-सम्बन्धों में भी परिवर्तन हुआ है। केवल प्राद्योगिक परिवर्तन के कारण ही नहीं बल्कि इन सम्बन्धों से सम्बन्धित नये सिद्धान्तों के प्रभाव के कारण भी।

सामाजिक और वैयक्तिक सम्बन्धों के आदर्शों (patterns) में भी, इन सम्बन्धों से सम्बन्धित नये सिद्धान्तों के कारण महान् परिवर्तन हुये हैं। उदाहरण के लिये, पहले पति और पत्नी, और माता-पिता और सन्तानों के बीच के सम्बन्ध शासन सम्बन्धी (authoritarian) आधार पर स्थित थे। पिता के आदेश पुत्र या पुत्री के लिए क़ानून होते थे जिनका पालन करना वे अपना कर्त्तव्य और धर्म सकझते थे। पिता के निर्णय चाहे कितने भी अन्यायपूर्ण क्यों न मालूम हों, उसकी आज्ञाओं का पालन करना अनिवार्य था क्योंकि वह पिता था और इसलिये शासक था। अपनी पत्नी के लिये वह स्वामी और देवता था। उसको अपने पति की इच्छाओं के अनुरूप चलना था और बच्चों में उसकी शक्ति (authority) के प्रति आदर की भावना जागृत करनी थी। इसी प्रकार स्कूल में शिक्षक के वचन भी कानूनवत् होते थे। उनकी शक्ति और श्रेष्ठता उनके ज्ञान और बुद्धिमत्ता पर आधारित थी। उसकी इच्छायें चाहे कितनी भी स्वार्थपूर्ण या अन्यायपूर्ण क्यों न हों शिष्यों के लिए उसका पालन करना और उसके प्रति आदरपूर्ण होना अनिवार्य था। आज शासक और उसके अधीनों के बीच के सम्बन्धों में परिवर्तन हो रहे हैं।

१५ भारत में सामाजिक परिवर्तन (Social Change in India)

भारतीय सामाजिक ढाँचे में आदिकाल से ही अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। विवाह और जाति के सम्बन्ध में होने वाले परिवर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। साथ ही अनेक नयी आर्थिक और सामाजिक संस्थायें जैसे कि स्कूल, अस्पताल, लायब्रेरी आदि का भी विकास होता रहा। ब्रिटिश शासन काल में इन परिवर्तनों की गति काफी बढ़ गई और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगीकरण में तेजी आने से सामाजिक परिवर्तन की रफ्तार में तेजी आ गई।

आधुनिक काल में भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तन में दो कारकों का विशेष महत्व है: पाश्चात्य विज्ञान और प्राद्योगिकी (technology), और सामाजिक नियोजन (planning)। प्रद्योगिकी का प्रभाव हम सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में देखते हैं। रहन-सहन की दशायें और स्तर में और मेडिकल देख-रेख में उन्नति करके इसने मृत्यु-दर को बहुत कम कर दिया है और जनसंख्या की वृद्धि में तेजी ला दी है। पूँजीवादी उद्योग ने सम्पति-प्रणाली में और श्रम-विभाजन में महान् परिवर्तन लाये हैं, और नये समाजिक वर्गों और पदों को जन्म दिया है जो कि देश के राजनीतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिकायें अदा करते हैं। प्राद्योगिकी ने धीरे-धीरे आर्थिक सम्बन्धों को ही नहीं बदला बल्कि संसार के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण को भी बदल दिया जिससे परम्परागत संस्कृति से उसका संघर्ष हुआ। ब्रिटिश शासन ने प्राद्योगिक आविष्कारों के साथ सामाजिक आविष्कारों को भी यहाँ परिचित कराया जैसे, सरकार और शासन की एक नयी प्रणाली, न्याय-सम्बन्धी प्रणाली, शिक्षा के स्वरूप। उसने नये साँस्कृतिक मूल्यों का भी प्रवेश कराया जैसे कि बुद्धिवाद (rationalism), समानतावाद और समाजवाद।

सांस्कृतिक पिछड़ या विलम्बना (lag) की धारणा का भारत में काफी महत्व है। आधुनिक पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था के विकास के फलस्वरूप अनेक सामाजिक आन्दोलन हुए जिनमें से कुछ ने परम्परागत भारतीय संस्कृति को अस्वीकार

किया और कुछ ने उनमें सुधार कर उन्हें आधुनिक रूप देने का प्रयास किया। परन्तु सत्य तो यह है कि वर्तमान भारत की सामाजिक संस्थाओं और सांस्कृतिक मूल्यों ने औद्योगिक समाज के जीवन-यापन के ढंग के साथ अनुकूलन नहीं कर पाया है। औद्योगिक समाज में जहां व्यक्ति की गतिशीलता बढ़ गई है और सामाजिक कल्याण का कार्य सरकार ने लिया है, विशाल संयुक्त-परिवार की संस्था उपयोगी या आवश्यक नहीं रही है। प्रजातन्त्रीय समाज की विचारशीलता, गतिशीलता और समानता को देखते हुए जाति प्रणाली अनुचित है। जाति के सिद्धान्त का राजनैतिक शासन के सिद्धान्तों, शिक्षा-प्रणाली, और उद्योगों की आवश्यकताओं से विरोध है। फिर भी, जाति और संयुक्त-परिवार हिन्दू धर्म के मौलिक तत्व हैं और इनके कमजोर होने से पिछले सांस्कृतिक मूल्य भी कमजोर होते हैं। आजकल अधिकतर हिन्दू विचारशीलता और धर्म निरपेक्षता से, जो कि औद्योगिक विकास की संगिनी है, अधिक प्रभावित है। बुद्धिजीवियों (intellectuals) को इन परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाले तनावों से परेशानी है जिन्हें पुरानी और नयी पीढ़ी के लोगों और संस्कृतियों से सामंजस्य करने में सोच-विचार करना पड़ता है। अनेक शिक्षित युवक व युवतियाँ विवाह पर जाति के प्रतिबन्धों, माता-पिता द्वारा तय किये गये विवाहों, बुजुर्गों की पितृसत्ता के विरुद्ध हैं। फिर भी, परिवार के प्रति निष्ठा और स्नेह के कारण, और नये व्यवहार-प्रतिमानों के फल के विषय में अनिश्चित होने के कारण पुराने व्यवहार-स्वरूपों का पालन करते हैं। विभिन्न सामाजिक वर्गों में भी संघर्ष है। पुरोहित वर्ग नये आर्थिक परिवर्तनों का विरोध करता है क्योंकि इससे उनकी प्रतिष्ठा और आर्थिक लाभ को धक्का पहुँचता है।

अन्य स्थानों की भाँति भारत में भी सामाजिक नियोजन अनेक संघर्षों को शान्त करता है। यह सामाजिक परिवर्तन में एक ऐसा कारक है जिसे गिन्सबर्ग सामान्य ध्येय (purpose) का उदय होना कहता है। सामाजिक कल्याण की उन्नति करने के लिए आज सभी समाजों में केन्द्रीय आर्थिक और सामाजिक नियोजन पाया जाता है। सन् १९५० के भारतीय संविधान ने नयी राजनीतिक प्रणाली के निम्नलिखित ध्येय बताये हैं; सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की स्थापना; विचारने, विचार प्रकट करने, विश्वास और पूजा की स्वतन्त्रता; पद और अवसर की समानता; और भ्रातृता (fraternity)। Government planning commission की भी उसी वर्ष स्थापना हुई जिसका उद्देश्य उपर्युक्त ध्येयों की पूर्ति में सहायता देना था परन्तु जो आर्थिक समस्याओं से ही छुट्टी नहीं पाता है।

डा० दुबे ने कहा है कि जिन प्राद्योगिक आविष्कारों का थोड़े ही समय में प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा जैसे कि सुधरे हुए बीज, फर्टिलाइजर्स, पशुओं की सुधरी

किस्म जिनके फलस्वरूप फसल से अधिक लाभ हुआ, उनको तो किसानों ने तत्परता के साथ अपनाया परन्तु ऐसे आविष्कारों का विरोध किया जिनका सामाजिक संरचना पर या सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रभाव पड़ता जैसे कृषि की नयी प्रविधियाँ, खेती के सहकारी ढंग, सैनिटेशन सुधारने के सुझाव, और शिक्षा पद्धति ।* दुबे के विचार में मनो वैज्ञानिक परिवर्तन के भी लक्षण गाँवों में दिखाई देते हैं और प्रत्याशाओं (expectations) स्तर में भी उन्नति हुई ।

आर्थिक संस्थायें (Economic institutions)

अन्य देशों की भाँति भारत की आर्थिक संस्थाओं में भी समय के साथ ही परिवर्तन हुए हैं यद्यपि इन परिवर्तनों की गति पाश्चात्य देशों के मुकाबले में बहुत धीमी रही है ।

(अ) **श्रम-विभाजन (Division of labour)** :—सहस्त्रों वर्षों से जाति के आधार पर हमारे देश में श्रम-विभाजन रहा है । हिन्दू शास्त्रकारों ने अलग-अलग जातियों के कार्यों का विभाजन कर दिया था जिससे अपने-अपने क्षेत्रों में उन्हें विशेषीकरण (specialization) प्राप्त था । पाश्चात्य सभ्यता और औद्योगीकरण के प्रभाव के कारण जब जाति के बन्धन ढीले पड़ने लग गये तब श्रम-विभाजन ने एक नये रूप में जोर पकड़ा । इस सम्बन्ध में सबसे मजेदार बात यह है कि प्रविधि (technique) में परिवर्तन होने से या नये व्यवसायों के शुरू होने से नयी जातियों का जन्म हुआ । हटन ने Caste in India नामक अपनी पुस्तक में लिखा है कि मोटर मिस्त्रियों से जो लोग मोटर ड्राइवर हो गये हैं उन्होंने अपनी एक नयी जाति बना ली है और खान-पान और विवाह के सम्बन्ध में अपने को उनसे अलग समझते हैं । पहले की जाति-प्रणाली में व्यवस्थित श्रम-विभाजन एकीकरण का कार्य (integration) भी करता था जिस पर दुरखीम ने विशेष बल दिया था । ग्राम अर्थव्यवस्था (economy) में जाति मध्यकालीन श्रेणी (guilds) की भाँति, आवश्यक कार्यों के होने का आश्वासन देती थी और इसके लिए प्रत्येक जाति के सदस्य नयी पीढ़ियों को अपनी हस्तकला आदि सिखाते थे और जजमानी प्रथा के द्वारा एक दूसरे का कार्य करते थे । औद्योगिक और मुद्रा अर्थव्यवस्था में श्रम-विभाजन जटिल हो गया और अब बाजार से ही वस्तुयें या सेवायें खरीद कर व्यक्ति अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं । इस प्रकार, आर्थिक विकास में जाति को बाधक समझा गया और श्रम-विभाजन की दृष्टि से उसका महत्व कम हो गया ।

(ब) **सम्पत्ति (property)** :— वैदिक काल में प्रचलित सम्पत्ति-अधिकारों के सम्बन्ध में कोई निश्चित बात नहीं मालूम है । मैक्डॉनेल्ड और कीथ ने कहा है कि वैदिक लेख इस बात को स्वीकार नहीं करते कि परिवार की सम्पत्ति एक सामूहिक

* S. C. Dube, *India's Changing Villages.*

सम्पत्ति थी बल्कि वह परिवार के मुखिया, विशेषकर पिता, की सम्पत्ति थी और परिवार के सदस्यों का उस पर केवल नैतिक अधिकार था जिसकी पिता अवज्ञा कर सकता था। दूसरी ओर, कपाड़िया ने कहा है कि इस बात का कोई स्पष्ट संकेत हमें वैदिक साहित्य में नहीं मिलता है कि पितृसत्तात्मक परिवार ही एकमात्र किस्म का पारिवारिक संगठन था। बाद में संयुक्त परिवार के विदारण के चिह्न प्रकट हुए और व्यक्तियों को अलग सम्पत्ति का अधिकार मिला। इस प्रकार, किसी भी काल में सामान्य पारिवारिक सम्पत्ति नहीं थी, परन्तु बाद के काल में परिवार के मुखिया के सम्पत्ति के हस्तान्तरण के अधिकार पर बन्धन लगाये गये।

भारत में भूमि ही उत्पादक सम्पत्ति का मुख्य स्वरूप रही है और भूमि का धारणाधिकार (tenure) हिन्दू लॉ से नियमित होता था, बाद में मुस्लिम लॉ भी आ गया। ब्रिटिश शासन में ही १७९३ के Bengal Permanent Settlement Regulation के बाद भूमि-धारणाधिकार ठीक से निश्चित हुआ। यह सन्देहजनक है कि मनु के हिन्दू लॉ के अनुसार भूमि पर कोई स्वामित्व (proprietary) अधिकार थे। राजा को अधिकार था कि उपज का एक भाग ले और बदले में वह किसान की रक्षा करता था। मुस्लिम लॉ, जिसका पालन १२वीं शताब्दी के बाद से हो रहा है, ने सम्भवतः स्वामित्व (proprietary) अधिकार दिये। बंगाल में १७९३ के Permanent Settlement ने वहाँ और बाद में देश के अन्य भागों में ज़मीदारों के लिए निश्चित स्वामित्व अधिकार बनाये और उन्हें landed gentry का रूप दिया। यह लोग मुग़लों के ज़माने में मालगुजारी वसूल करने का कार्य करते थे। दूसरे स्थानों में, जैसे बम्बई और मद्रास में, रैयतवारी प्रणाली ने कृषक मालिकों के वर्ग को जन्म दिया। ब्रिटिश विधान के फलस्वरूप भूमि के स्पष्ट स्वामित्व अधिकार स्थापित हुए, भूमि हस्तान्तरित व बेचने योग्य वस्तु बन गई और पूँजीवाद अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आ गई।

(स) ट्रेड यूनियन—अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए देश में उद्योग-बैंक और अन्य आर्थिक संस्थाओं में ट्रेड यूनियन संस्था का भी जन्म हुआ है। दुःख की बात है कि एक ही स्थान की विभिन्न ट्रेड यूनियनों में आपस में मतैक्य (unanimity) नहीं रहता और इन्होंने राजनैतिक दलों का रूप ले लिया है।

२. राजनैतिक संस्थायें (Political institutions)

भारत में, ऐतिहासिक दृष्टि से, हमेशा राजतंत्र रहा था। बाद में, ब्रिटिश शासन के बाद पूर्ण प्रजातंत्र की यहाँ स्थापना हुई। मॉरिस-जोन्स ने Parliament in India नामक अपनी पुस्तक में भारत की पार्लमिन्टरी गवर्नमेन्ट की प्रशंसा करते हुए कहा है कि भारतीयों के जीवन में पार्लमेन्टरी संस्थायें कहीं अधिक सुदृढ़ रूप से स्थापित हैं, बनिस्बत योरोप के अनेक देशों के। पाश्चात्य ढंग की भाँति राजनी-

तिक दल यहाँ भी कार्य करते हैं, और सदस्यों के चुनाव पर अशिक्षा का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। देश में all-India दलों का बाहुल्य इस बात का द्योतक है कि यहाँ राजनीतिक एकता काफी हद तक पायी जाती है। साँस्कृतिक और भाषा के क्षेत्रीय (regional) अन्तर भी राजनीति पर प्रभाव डालते हैं। जाति भी राजनीति में महत्वपूर्ण कार्य करती है। मॉरिस-जोन्स ने कहा है कि मद्रास की राजनीति में ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों के बीच संघर्ष एक महत्वपूर्ण कारक है। खुली सीटों (unreserved seats) से नीची जातियों के बहुत ही थोड़े लोगों के चुने जाने से इस बात का आभास मिलता है कि अनुसूचित (scheduled) जातियों और अस्पृश्य जातियों के प्रति अन्य जातियों का रुख अच्छा नहीं है। राजस्थान में हुए चुनावों की रिपोर्ट से पता लगता है कि अन्य राज्यों की अपेक्षा वहाँ के मतदाता जाति, परम्परा, धार्मिक विश्वासों, धमकियों और रिश्वत से अधिक प्रभावित हुए थे। * वीनर के अध्ययन से यह पता लगता है कि सभी राजनीतिक दलों के सदस्य मुख्यतः मध्यम वर्ग के शहरी और युवा होते हैं। †

3 नौकरशाही (Bureaucracy)

भारत में नौकरशाही की नींव सुसंगठित ढंग से चन्द्रगुप्त मौर्य ने रखी थी जिसका साम्राज्य भारत के अनेक प्रदेशों में फैला था। उसके बाद ब्रिटिश शासन काल में यह पूरे जोर से स्थापित हुई। आज हम देखते हैं कि नौकरशाही का बड़ा जोर है, विशेषकर सरकारी क्षेत्रों में अक्सर मिनिस्टर भी यह शिकायत करते हुए सुने गये हैं कि सरकारी अफ़सर, विशेषकर सेक्रेटेरियट में, उनकी अवहेलना करते हैं। वैसे यह, जैसा कि मार्क्स वैबर ने कहा है, बड़े औद्योगिक क्षेत्रों में भी पायी जाती है।

4 संयुक्त-परिवार (Joint family)

भारत में आदिकाल से संयुक्त-परिवार पाये गये हैं। इसमें सम्पत्ति पर सामान्य अधिकार, देवता की सामान्य पूजा होती थी और परिवार के मुखिया को विशेष अधिकार, खास तौर से शासन-सम्बन्धी, अधिकार होता था। हिन्दू लॉ के अनुसार पारिवारिक सम्पत्ति को अलग किया जा सकता था परन्तु ऐसा बहुत कम होता था और तीन-चार पीढ़ियों के सदस्यों का एक साथ रहना, काम करना, और खाना-पीना एक सामान्य बात थी। संयुक्त परिवार के एकीकरण में सम्पत्ति और कार्य के अतिरिक्त धर्म भी एक महत्वपूर्ण कारक था क्योंकि जीवित लोगों के साथ ही मृत और अजन्मे व्यक्ति भी परिवार के सदस्य होते थे।

* S. V. Kogekar aud R. P. Park, *Reports on the Indian General Elections.*

† M. Weiner : *Politics in India,* 1951-52,

जब कि धर्म का प्रभाव परिवार के स्थापित स्वरूपों को बनाये रखने का कार्य करता है, आर्थिक संस्थाओं में परिवर्तन होने से परिवार में भी परिवर्तन होते हैं। मरडॉक ने कहा है कि भोजन और भोजन को प्राप्त करने के साधन श्रम के यौन-विभाजन और विषय लिङ्गों के सापेक्ष पद (status) को प्रभावित करते हैं जिनका निवास-स्थान-सम्बन्धी नियमों पर प्रभाव पड़ता है। सम्पत्ति की किस्मों और उसके वितरण के ढंगों का उत्तराधिकार के नियमों पर प्रभाव पड़ता है, सम्पत्ति का होना या न होना विवाह को प्रभावित करता है (धन होने से बहुपत्नी विवाह को प्रोत्साहन मिलता है)।

भारत में संयुक्त परिवार में होने वाले परिवर्तन औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था के आविर्भाव और विकास से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। कपाड़िया ने दिखाया है कि ब्रिटिश शासन ने एक नयी आर्थिक व्यवस्था, विचारधारा (ideology) और प्रशासन (administration) प्रणाली भारत में चलाई जिसने भारतीय सभ्यता को बदलना शुरू किया। पूँजीवाद और उदारतावाद (liberalism) ने वैयक्तिक प्रयास और तार्किकता (rationality) पर बल दिया जिसके विस्तार ने संयुक्त परिवार की एकता बनाये रखने वाली भावनाओं को कमजोर किया। संयुक्त परिवार में वैयक्तिकता का कोई ध्यान न था। आर्थिक विकास होने के साथ ही शहरों का विकास और गाँवों का ह्रास हुआ। इन परिवर्तनों ने व्यक्तिवादिता को बढ़ावा दिया और संयुक्त परिवार में स्त्रियों की हीन दशा के विरुद्ध विद्रोह उत्पन्न किया। कपाड़िया ने कहा कि सामाजिक बीमा के विकास ने भी सामाजिक सुरक्षा के संगठन के रूप में संयुक्त परिवार का महत्व कम कर दिया।

औद्योगीकरण के कारण भारतीय संयुक्त परिवार न केवल बदल रहा है बल्कि उसे बदलना चाहिये क्योंकि आर्थिक विकास की आवश्यकताओं को देखते हुए वह असंगत भी है। यह वैयक्तिक स्वतन्त्रता और प्रयास में बाधक है। संयुक्त परिवार एक अत्यन्त विस्तृत और संकुचित दोनों ही प्रकार का एक समुदाय है। यह इस माने में विस्तृत है कि यह व्यक्ति, विशेषकर स्त्री सदस्यों, के लिए प्रतिबन्ध लगाता है, और संकुचित इसलिए है कि यह व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्धों और निष्ठाओं की सीमा को छोटा करता है और राष्ट्रीय एकता और सामूहिक प्रयास को रोकता है। पाणिक्कर ने कहा है कि यह सामाजिक भाव, सम्पूर्ण समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को नष्ट करता है और एक एकीकरण-प्राप्त हिन्दू समाज के विचार को असम्भव बनाता है।* संयुक्त परिवार उच्च जन्म-दर को प्रोत्साहन देता है।

* "There can be no denying that the organization of Hindu life on the basis of the sub-caste or joint family extinguishes the social

आगे चलकर, औद्योगीकरण में उन्नति होने से, इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि भारतीय परिवार प्रणाली पाश्चात्य देशों की परिवार प्रणाली से विशेष भिन्न नहीं होगी। इस परिवार संरचना में निम्न जन्म-दर, बड़े पैमाने पर विवाहित स्त्रियों की नौकरी, राज्य द्वारा शिक्षा की व्यवस्था, और परिवार के कार्यों में कमी होगी। साथ ही स्वयं औद्योगीकरण भी इस बात पर निर्भर करेगा कि कितनी जल्दी संयुक्त-परिवार में परिवर्तन होता है।

5 विवाह (Marriage)

हिन्दू लॉ के अनुसार विवाह एक संस्कार (sacrament) है, न कि एक संविदा। यह विवाह समाप्त नहीं किया जा सकता था। केवल नीची जातियों में तलाक की प्रथा थी और पति-पत्नी में से किसी एक के ईसाई धर्म में परिवर्तन करने पर ही यह नष्ट हो सकता था। इसके साथ ही, बहुपत्नी विवाह (polygamy) भी कानून द्वारा स्वीकृत था और रखेल रखने के भी कानूनी स्वरूप थे। यह प्रबन्ध केवल पुरुषों की ही आवश्यकताओं को पूरा करते थे। इस कानून को सबसे पहले Bombay Prevention of Hindu Bigamous Marriages Act 1947 ने बदला जिसके फलस्वरूप बम्बई राज्य में एक–विवाह का नियम अनिवार्य हो गया। इसके साथ ही Bombay Hindu Divorce Act 1947 के पास होने से तलाक को वैधानिकता प्रदान की गई। उसके बाद 1947 में Hindu Marriage Act पास होने पर एक-विवाह और तलाक की व्यवस्था सम्पूर्ण देश में हो गई।

6 धर्म और नैतिकता
(Religion and Morality)

हिन्दू धर्म और जाति के अन्त:सम्बन्ध को सभी समाजशास्त्री स्वीकार करते हैं। श्रीनिवास ने कहा है कि हिन्दू धर्म का संरचनात्मक आधार जाति है जो ईसाई या इस्लाम धर्म में परिणित होने पर भी कायम रहती है। इसका अर्थ यह है कि जाति ही व्यक्ति के संस्कारों, अधिकारों व कर्त्तव्यों को निश्चित करती हैं और जो लोग किन्हीं कारणों से धर्म-परिवर्तन कर चुके हैं वे भी उसके प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते। श्रीनिवास के अनुसार हिन्दू जातियों के रीति-रिवाज, संस्कार और विश्वास अपनाकर वन्यजातियाँ या अन्य गैर-हिन्दू समूह धर्म में सम्मिलित हुए हैं और उन्होंने नई जातियाँ बनाई हैं। बगैर जाति बने हुये कोई भी समूह पूरी तौर पर हिन्दू धर्म में सम्मिलित नहीं हो सकता। श्रीनिवास ने कहा है कि एक

sense, the feeling of obligation to a social whole, and thereby renders the conception of a unified Hindu society impossible.

—K.M. Pannikkar, *Hindu Society at Cross Roads.*

अर्थ में जाति को हिन्दूधर्म का चर्च संगठन समझा जा सकता है, जिसके बगैर वह न जीवित रह सकता था न फैल सकता था।*

भूतकाल में, धार्मिक सम्प्रदाय (sects) और सुधार आन्दोलन हिन्दूधर्म की परम्परा में सन्निहित हो गये थे। परन्तु अब होने वाले सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन होने के कारण अब वैसा एकीकरण शायद सम्भव न होगा। जाति और संयुक्त परिवार के हिन्दू धर्म से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होने, इन दोनों संस्थाओं में परिवर्तन से वह भी प्रभावित होगा। आर्थिक विकास, राजनीतिक निर्णयों जिनमें सम्पत्ति सम्बन्धी कानून भी शामिल हैं जो वैयक्तिक स्वामित्व (ownership) को प्रोत्साहन देते हैं, और नये सामाजिक सिद्धांतों के फैलने से जाति और संयुक्त परिवार में महान परिवर्तन हो रहे हैं जो बदले में हिन्दू धर्म को प्रभावित कर रहे हैं। राष्ट्रवादी और समाजवादी विचारों का काफी प्रभाव पड़ा है। आधुनिक शिक्षा ने धार्मिक विश्वासों को जो पौराणिक कथाओं पर आधारित थे, क्षीण कर दिया है। अब व्यक्ति मुक्तरूप से अपने धर्म की अच्छाइयों और बुराइयों पर वाद-विवाद करता है। अन्तर्जातीय विवाह, विदेश यात्रा, धन के बढ़ते हुए महत्व ने धर्म-के बन्धनों को ढीला कर दिया है। पुजारियों के प्रति आदर और धार्मिक उत्सवों में भाग लेने की मात्रा व प्रकृति में अन्तर आ गया है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों के बीच में खाने-पीने सम्बन्धी और अन्य निषेधों का विशेष महत्व नहीं रहा है। पर धर्म सम्बन्धी सहनशीलता बढ़ गई है और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच दंगे साधारणत: नहीं होते हैं।

साथ ही नैतिकता-सम्बन्धी परिवर्तन भी इस देश में हुए हैं। स्त्रियों का सिगरेट पीना, मद्यपान करना, राजनीति में भाग लेना, नौकरी करना, पर-पुरुषों के साथ निस्संकोच भाव से बातचीत, वाद-विवाद करना, अकेले यात्रा करना किसी भी ढंग से अब अनैतिक नहीं रहा है। यही बात कुछ मामले में पुरुषों के सम्बन्ध में भी कही जाती है। इन बातों के सम्बन्ध में सहनशीलता बढ़ गई है। सामाजिक विज्ञानों ने बाहरी शक्तियों को इन बातों के लिये जिम्मेदार ठहरा कर व्यक्ति को दोषी ठहराने से इन्कार कर दिया है।

नैतिकता के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह हुई है कि नैतिक नियमों का राजनीतिक सिद्धांतों से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है। आजकल बहुत सी नैतिक असहमतियाँ (disagreements) राजनैतिक असहमतियाँ होती हैं, और बहुत से नैतिक विश्वासों का राजनीतिक विचारधाराओं (ideologies) में समावेश हो गया

---

* "Thus caste may be regarded in one aspect as the church organization of Hinduism, without which the latter could not have maintained itself or spread." —M.N. Srinivas.

है। इसका यह अर्थ नहीं है कि नैतिकता का अब धार्मिक विश्वासों से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह गया है। अब भी नैतिक और संस्कारात्मक नियम अन्त:सम्बद्ध है। जाति और संयुक्त परिवार ने अब तक व्यक्तिवादिता के विकास को काफी रोका हैं और परम्परागत सामाजिक नैतिकता अब भी पायी जाती है। फिर भी, राष्ट्रवाद और समाजवाद जैसे आधुनिक राजनैतिक सिद्धांतों के विकास में, जो नैतिकता की नयी धारणायें बनाते हैं, और परम्परागत हिन्दू नीति की पुनर्व्याख्या में हमें परिवर्तन के काफी आभास मिलते हैं। अब व्यक्ति अत्यधिक विलासिता, और आनन्द को पहले जैसा बुरा नहीं समझता है।

भारत में कानून (Law in India)

भारतीय कानून की अनेक विशेषतायें हैं जिसमें से एक प्रमुख विशेषता कानून और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हैनरी मेन ने कहा था कि भारत ने अभी वह अवस्था पार नहीं की है जिसमें कानून को धर्म से अलग किया जाता हो।* मैक्स वैबर ने भी इस विशेषता की चर्चा करते हुए 'प्रभुत्वशाली पुजारीवाद' (dominant priesthood) पर जोर दिया है जो संस्कारों के द्वारा व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को नियंत्रित करता था। रीन्सटीन ने कहा है कि वर्तमान हिंदू सिद्धांत के अनुसार सब कानून धर्म-सूत्रों में पाये जाते हैं।† मेन ने कहा कि हिन्दू लॉ में धर्म का पूर्ण प्रभुत्व धीरे-धीरे स्थापित हुआ। उदाहरण के लिये, विवाहित स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों पर धर्म के प्रभाव में धीरे-धीरे प्रतिबन्ध लगे। हिन्दू धर्म में पूर्वज-पूजा के बढ़ते हुए महत्व ने सभी कानूनी नियमों और धार्मिक महत्व वाले सम्बन्धों को पारिवारिक संस्कारों का रूप दिया। दूसरी ओर, जे०डी० मेन (J.D. Mayne) ने Hindu Law and Usage नामक पुस्तक में उपर्युक्त तर्कों का समर्थन करते हुए कहा कि हिन्दू लॉ पुरातन प्रथाओं पर आधारित है जो ब्राह्मणवाद से पहले और स्वतन्त्र पायी जाती थी। परन्तु जैसे-जैसे हिन्दू धर्म फैलता गया और ब्राह्मण जाति का प्रभाव बढ़ा, कानून पर धार्मिक धारणाओं का भी प्रभाव बढ़ता गया। मनुशास्त्र और मिताक्षरा के बावजूद भी अनेक पुराने नियम कायम रहे। इसके अतिरिक्त, विभिन्न पेशेवर समूहों में कानूनों की विशिष्ट प्रणालियाँ बन गयीं, विशेषकर व्यापारी और वाणिज्य करने वाले समूहों में, और साथ ही जातियों ने अपने अलग कानून बनाये और न्याय-शासन में स्वाधीनता प्राप्त की जिस सम्बन्ध में जाति-बहिष्कार बहुत सफल और प्रबल साधन साबित हुआ।

* "India has not beyond......the stage at which a rule of law is not yet discriminated from a rule of religion."
—Henry Main, *Ancient Law.*

† "According to prevailing Hindu theory, all Law is contained in the Dharma-Sutras." —Max Weber on Law in Economy and Society.

भारतीय कानून पर ब्रिटिश शासन का प्रभाव अत्यन्त जटिल पड़ा। न्याय-शासन में उसने ब्रिटिश अदालतें बना कर और जाति-पंचायतों से न्याय-सम्बन्धी अधिकार छीन कर उसने केन्द्रीय प्रणाली स्थापित की। बहुत से मामलों में ब्रिटिश जजों ने हिन्दू लॉ को सही माना परन्तु जहाँ ब्रिटिश शासकों की नैतिक भावनाओं से हिन्दू प्रथाओं का प्रत्यक्ष विरोध था वहाँ परिवर्तन भी लाये जैसे बाल-विवाह और सती-प्रथा के सम्बन्ध में। उद्योगों और व्यापार के विकास और पाश्चात्य शिक्षा ने कानून में नये परिवर्तन लाये। उदाहरण के लिये, Gains of Learning Act, 1930 के द्वारा व्यक्ति को यह अधिकार मिला कि अपनी व्यक्तिगत आमदनी को संयुक्त परिवार में न जमा करके अपने पास रक्खे। इसी प्रकार, Hindu Law of Inheritance (Amendment) Act, 1929 और Hindu Woman's Right to Property Act, 1937 के द्वारा स्त्रियों को संयुक्त-परिवार की सम्पत्ति में अधिकार मिला। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से इस देश में कानून-सम्बन्धी परिवर्तन की प्रक्रिया चलती रही और Hindu Succession Act, 1956 के द्वारा उत्तराधिकार के नियमों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। पहले मुसलमानों में काजी जजों का भी काम करते थे। उनसे भी यह अधिकार ब्रिटिश शासकों ने छीन लिया था। यहाँ अब एक कानूनी पेशे (legal profession) का विकास हुआ जिसके सदस्य अक्सर विदेश से शिक्षा ग्रहण करके आते हैं। यह ब्राह्मण-पुजारी वर्ग से भिन्न है जो कानून की व्याख्या करने में सर्वोपरि था।

8 शिक्षा (Education)

प्राचीन भारत में औपचारिक (formal) शिक्षा ब्राह्मणों द्वारा दी जाती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बच्चों की दीक्षा के लिये भिन्न आयु निश्चित थी। शिक्षा प्रणाली ज्ञान की अपेक्षा जीवन पर अधिक बल देती थी। शिष्य और गुरु के बीच निरन्तर व्यक्तिगत सम्पर्क होता था जो कि एक ही घर में रहते थे और जो एक आध्यात्मिक बन्धन से बँधे होते थे। उपनयन संस्कार के बाद शिष्य एक नये जीवन में प्रवेश करता था जहाँ गुरु उसके चरित्र का फिर से निर्माण करता था और उसे शारीरिक और आध्यात्मिक अनुशासन में रहना पड़ता था। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली जनसंख्या के एक छोटे से भाग के लिये खुली थी, जिसका संचालन एक पुश्तैनी पुजारी करता था जो धार्मिक सिद्धान्तों और विचारों को हस्तान्तरित करता था और धर्म-निरपेक्ष शिक्षा की उपेक्षा करता था। प्राविधिक (technical) प्रवीणता परिवार और पेशेवर समूहों के द्वारा अनौपचारिक ढंग से दी जाती थी।

मुगल साम्राज्य की अवनति के बाद शिक्षा प्रणाली का विदारण हुआ और ब्रिटिश शासन की स्थापना से शिक्षा जगत में उन्नति होने के साथ ही नई समस्यायें भी उठ खड़ी हुयीं। शुरू में ब्रिटिश शासन ने परम्परागत हिन्दू स्कूलों का समर्थन किया और नये स्कूल और कॉलेज खोले। परन्तु १८३५ में यह निर्णय लिया गया कि सरकार का उद्देश्य भारत में योरोपीय साहित्य और विज्ञान की उन्नति होना चाहिए, शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी होना चाहिये, और Education Fund का प्रयोग केवल अंग्रेजी शिक्षा पर ही होना चाहिये। इस नीति का अनेक भारतीय सुधारकों जैसे राजा राममोहनराय ने और नये व्यावसायिक मध्यम वर्ग ने समर्थन किया परन्तु जैसा डी. पी. मुखर्जी ने कहा है इससे उच्च वर्गों को समाज के अन्य वर्गों से अगल कर दिया गया।* निम्न जातियों में शिक्षा नगण्य ही रही।

भारत में स्वतन्त्रता के बाद, शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें बढ़ाई गयीं और गाँवों में स्कूलों का विकास हुआ और निम्न जातियों के बच्चों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान किये गये। फिर भी कुछ भेदभाव बाकी हैं। बेसिक एडुकेशन, जो मानसिक और शारीरिक कार्य के संयोग (combination) पर बल देती है, अधिकतर बच्चों के लिए उपलब्ध है परन्तु भारतीय समाज के उच्च वर्ग के लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी टाइप के ग्रामर और पब्लिक स्कूल में भेजते हैं।

भारत में, ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली में अनेक दोष होते हुए भी एक अच्छाई यह थी कि इसने नीची जातियों के लिए पहली बार शिक्षा के अवसर प्रदान किये। आधुनिक शिक्षा ने तेजी से बदलते हुए भारतीय समाज में अनेक समस्यायें भी उत्पन्न कर दी हैं जो विभिन्न पीढ़ियों के सदस्यों के बीच सामाजिक मूल्यों के सम्बन्ध में संघर्ष में हमें दिखाई देती हैं जैसे माता-पिता द्वारा तय किये गये विवाहों का विरोध, छात्र-अनुशासनहीनता, और बाल अपराध।

हुमायूँ कबीर ने कहा है कि जब कि पहले के वक्त में शिक्षकों का गरीब या अशक्त होने के बावजूद भी सम्मान किया जाता था, आज के वर्तमान भारत में धन पर ही विशेष बल दिया जा रहा है।† शिक्षक द्वारा बताये गये सामाजिक मूल्यों को आवश्यक रूप से सही नहीं माना जाता। अब परिवार, खेलकूद, समूह और संदेशवाहन के विशाल साधनों द्वारा बताये गये मूल्यों से उसे प्रतियोगिता करनी पड़ती है। परिवार और स्कूल में संघर्ष उत्पन्न हो गया है। सामाजिक गतिशीलता (mobility), परिवार द्वारा बताये गये धार्मिक मूल्यों के विरोध में राज्य द्वारा दी जाने वाली धर्म-निरपेक्ष शिक्षा, भिन्न पीढ़ियों के दृष्टिकोण में अन्तर,

* D. P. Mukerjee, *Modern Indian Culture*.

† Humayun Kabir, *Education in New India*.

स्कूल और क्रीड़ा समूह, और स्कूल और संदेशवाहन के साधनों में विरोध ने एक विचित्र स्थिति उत्पन्न कर दी है जिससे अनिश्चितता बढ़ गई है।

आज पुराने स्कूल और कॉलेजों के स्थान में बड़े-बड़े स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, Polytechnic Institutes आदि खोले जा चुके हैं जहाँ शोध और अनुसंधान के कार्य तेजी से हो रहे हैं और जिन्होंने जीवन और सामाजिक सम्बन्धों के प्रति व्यक्ति के दृष्टिकोण को ही बदल दिया है।

स्त्रियों की स्थिति (Status of Women)

(१) **वैदिक युग (Vedic Age)** : प्राचीन युग में यद्यपि अनेक देशों में स्त्रियों की स्थिति दयनीय थी परन्तु भारत में वैदिल काल में उनकी स्थिति बहुत अच्छी थी। आत्म-विश्वास, शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदि विषयों में उनकी स्थिति पुरुषों की ही तरह थी। लड़कियों को स्वतन्त्रतापूर्वक सबसे मिलने-जुलने और लड़कों के बराबर शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था और हर माने में स्त्री और पुरुषों की सामाजिक स्थिति एक थी।

(२) **उत्तर-वैदिक काल (Post-Vedic Age)** : इस काल में स्त्रियों की स्थिति में अवनति शुरू हुई। बाल-विवाह की प्रथा शुरू हुई जिससे लड़कियों की शिक्षा में बाधा पड़ने लगी, धार्मिक संस्कारों में भाग लेने के अधिकार छीन लिये गये। विधवा-विवाह पर निषेध जारी किया गया। बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन बढ़ा।

(३) **स्मृति युग (Smriti Age)** : इस में स्त्रियों के समस्त अधिकारों को छीन लिया गया। अब केवल माता के रूप में उनका आदर होता था। विवाह की आयु अधिक कम हो गई जिससे शिक्षा प्राप्त करना उनके लिये असम्भव सा हो गया। विधवा-विवाह पर निषेध अधिक सख्त हो गये और सती प्रथा को सर्वोत्तम समझा गया।

(४) **मध्यकालीन युग (Medieval Age)** : इस युग में, विशेषकर मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद, स्त्रियों की स्थिति पहले से भी खराब हो गई। हिन्दू धर्म की रक्षा, स्त्रियों के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता बनाये रखने के लिये ब्राह्मणों ने स्त्रियों के सम्बन्ध में नियमों को अधिक कठोर बनाया। पर्दा प्रथा बढ़ी। सती प्रथा ने बेहद जोर पकड़ा। केवल सम्पत्ति पर कुछ अधिकार मिलने लगा।

(५) **आधुनिक युग (Modern Age)** : स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय थी। ब्रिटिश शासकों ने पूँजीवाद अर्थ-व्यवस्था, पाश्चात्य शिक्षा, आदि लाकर हर सामाजिक क्षेत्र में सुधार करने की कोशिश की परन्तु बहुत थोड़े ही परिवार इससे लाभ उठा सके। महिला आन्दोलन, पाश्चात्य संस्कृति, स्त्रियों में शिक्षा के विस्तार, छापाखाने और यातायात व संचार के साधनों में उन्नति होने से जिससे दूर-दूर के देशों में हुई प्रगति के बारे में विचार प्राप्त हुए, औद्योगीकरण के कारण काम और नौकरी में पुरुषों के समान अवसर प्राप्त होने से,

संयुक्त परिवार के विदारण से, अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता मिलने से, स्वतन्त्रता आन्दोलन शुरू होने से, बाल-विवाह पर रोक लगने से, स्त्रियों की स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति में विशेष सुधार हुआ। ऐसे अनेक अधिनियम बने जिन्होंने विधवा-पुर्नविवाह, सम्पत्ति-उत्तराधिकार, नौकरी सम्बन्धी अड़चनों को दूर कर दिया। स्त्रियों की स्थिति सुधारने में राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, रानाडे, महर्षि कर्वे, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, डा० एनी बेसेन्ट आदि व्यक्तियों को विशेष श्रेय है। अब व्यापार, डाक्टरी, इन्जीनियरिङ्ग, शिक्षा, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में स्त्रियाँ पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त किये हुए हैं और उनके समान अधिकार का सबसे बड़ा प्रमाण श्रीमती इन्दिरा गाँधी का प्रधान मन्त्री होना है।

10 जाति (Caste)

भारतीय सामाजिक संरचना के अन्तर्गत जाति में समय-समय पर अनेक परिवर्तन हुए हैं।

वैदिक युग : ऋग्वेद के अनुसार भारतीय समाज में केवल तीन वर्ग थे और किसी प्रकार के कठोर प्रतिबन्ध न थे। श्रेष्ठता या हीनता की भावना भिन्न वर्गों के बीच नहीं पायी जाती थी। व्यवसाय के चुनाव, खान-पान, विवाह आदि के सम्बन्ध में कोई रोक नहीं थी। विधवा-विवाह होता था।

उत्तर-वैदिक युग : भिन्न वर्गों में भेदभाव शुरू हो गया। इस युग में एक नये वर्ग—शूद्र का जन्म हुआ और ब्राह्मणों की शक्ति बढ़ी। ब्राह्मणों ने अन्य वर्गों का शोषण शुरू किया। जैन धर्म और बौद्ध धर्म के उत्थान से ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा गिरी क्योंकि इन धर्मों ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का विरोध किया, समानता पर बल दिया, और कर्म न कि जन्म के आधार पर श्रेष्ठता पर बल दिया। बौद्ध धर्म और जैन धर्म की अवनति के बाद ब्राह्मणों ने खोई हुई प्रतिष्ठा और शक्ति फिर से प्राप्त की और अनेक कठोर नियम बनाये। व्यवसायों को पुश्तैनी बना दिया गया, जाति अन्तर्विवाह (endogamy) को अनिवार्य कर दिया गया और एक नये वर्ग—अछूत—की रचना की गई। चाण्डाल आदि गाँव के बाहर रहने को बाध्य हुए। बाल-विवाह को इस युग में प्रोत्साहन मिला।

धर्मशास्त्र-युग : इस युग में जाति के नियमों को अत्यन्त कठोर बना दिया गया और ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा और शक्ति में विशेष वृद्धि हुई। अब वैश्यों को शूद्रों के बराबर स्थान दिया गया।

मध्यकालीन युग : मुसलमानों के आगमन से जाति प्रणाली को धक्का लगा। वे अपना धर्म फैलाना चाहते थे। इन्होंने ज़ज़िया कर लगा कर अनेक लालच

देकर हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन की प्रेरणा दी। अकबर ने हिन्दू और मुसलमानों दोनों के ही लिए फारसी भाषा में शिक्षा देने के लिये स्कूलों की स्थापना की। इस युग में कबीर, गुरुनानक, चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मणों और उनकी रीतियों की निन्दा की। १३ वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में सन्त तुकाराम और नामदेव ने शूद्रों के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

आधुनिक युग : पाश्चात्य शिक्षा के फलस्वरूप लोग भिन्न जातियों के प्रति नरम दृष्टिकोण रखने लगे; समानता की भावना जागृत की गई। पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में धन का महत्व अधिक बढ़ा और जाति का महत्व कम हुआ। यातायात और संचार के नये साधनों ने सामाजिक दूरी को दूर कर दिया, रेलगाड़ी और बसों में अब ब्राह्मण और मेहतर अगल-बगल बैठने लगे, लोग दूर-दूर नौकरी करने जाने लगे जहाँ जाति कठोरता चल न सकी। औद्योगीकरण का विकास होने से सब जाति और धर्म के लोग बड़े-बड़े मिलों और कारखानों में साथ-साथ काम करने लगे, बड़े और छोटे किस्म के होटल अनगिनती संख्या में खुल गये जहाँ सब जाति के लोग एक साथ बैठकर खाने-पीने लगे, नौकरी के सम्बन्ध में व्यक्तिगत गुणों पर बल दिया जाने लगा, न कि जाति पर। राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनों ने, विशेषकर आर्यसमाज और ब्रह्म समाज ने जाति-व्यवस्था के दोषों को दूर करने के लिये विशेष प्रयत्न किये जो बहुत हद तक सफल हुए। भारतीय संविधान ने हर क्षेत्र में समानता घोषित की और अछूतों व अनुसूचित जातियों की सभी प्रकार की निर्योग्यताओं (disabilities) को दूर किया। गाँधी जी और उनके हरिजन आन्दोलन भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। अब तो अनेक अधिनियमों के कारण विधवा-विवाह और अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं। बाल-विवाह पर रोक लगा दी गई है। यह सब जाति-प्रथा की विशेषता थे। राजनीति में जाति विशेष महत्व रखती है और जिस क्षेत्र में किसी एक जाति के सदस्य अधिक संख्या में होते हैं राजनैतिक दल उसी जाति के सदस्य उस क्षेत्र से खड़े करते हैं। आज समाज में जाति की अपेक्षा वर्ग-समानता को अधिक महत्व दिया जाता है।

संस्कृतिकरण और पाश्चात्यकरण
(Sanskritization and westernization)

श्रीनिवास ने Social Change in Modern India नामक पुस्तक में जाति के सम्बन्ध में होने वाली नयी प्रवृत्ति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। उनका कहना है कि हमारे देश की निम्न हिन्दू जातियों और वन्यजातियों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे उच्च जातियों की प्रथायें, संस्कार, विचारधारा, और जीवन-यापन के ढंग अपनाते हैं और अक्सर अपनी जाति का नाम भी बदल

देते हैं। यह "नई" जातियाँ जाति-श्रेणीक्रम (hierarchy) में उच्च स्थान की माँग करती हैं और दो-एक पीढ़ी के बाद सामान्यतः उनकी माँग पूरी हो जाती है। दूसरी ओर, उच्च जातियाँ पाश्चात्य साँस्कृतिक मूल्यों और विचारों और रहन-सहन के ढंगों को अपनाती हैं।

श्रीनिवास ने कहा है कि जाति प्रणाली कोई ऐसी प्रणाली नहीं है जिसमें प्रत्येक जाति की स्थिति हमेशा के लिये निश्चित हो गई हो। स्थितियाँ बदलती रही हैं, विशेषकर श्रेणी-क्रम के बीच के हिस्से में। एक दो पीढ़ी के बाद कुछ भिन्न जातियाँ शाकाहारी बनकर और नशीले पदार्थों का पूर्ण त्याग करके, और ब्राह्मणों के संस्कारों और देवताओं को अपनाकर जाति श्रेणी-क्रम में कुछ ऊपर उठ गयीं। इस सम्बन्ध में अय्यप्पन और बालरत्नम ने कहा है कि हिन्दू समाज के विभिन्न जातियों में कठोर विभाजन ने संस्कृतीकरण की इस प्रक्रिया में तेजी लायी क्योंकि किसी भी श्रेणी-क्रम प्रणाली में प्रबल समूह की प्रथाओं, आदतों और संस्कारों की नकल करने की प्रवृत्ति भी रहती है। यह सम्भव है कि निम्न जातियों द्वारा ब्राह्मणों के जीवन-यापन के ढंग को अपनाने पर लगाये गये प्रतिबन्ध का बिल्कुल उल्टा प्रभाव हुआ हो। निषिद्ध फल अधिक स्वादिष्ट था।* जिन प्रथाओं को निम्न जातियों ने अपना लिया है वे हैं: वस्त्र, आभूषण, खाना पकाने के ढंग, शाकाहार, नशीले पदार्थों का त्याग। इसके साथ ही वे अक्सर अपनी जाति का नाम भी बदल देते हैं। गैर-ब्राह्मण केवल ब्राह्मणों की धार्मिक रीतियों और प्रथाओं को ही नहीं अपनाते बल्कि उनकी संस्थाओं को भी अपनाते हैं। श्रीनिवास ने उपर्युक्त बात का समर्थन करते हुये विवाह, स्त्रियों की स्थिति, और नातेदारी (kinship) का उदाहरण दिया है। "हिन्दुओं में वधुओं में कौमार्य, पत्नियों में पतिव्रता होना, और विधवाओं में इन्द्रिय-दमन (continence) पर बल दिया जाता है। यह सबसे ऊँची जातियों में विशेष रूप से पाया जाता है। निम्न जातियाँ अपने यौन-नियमों के प्रति ढीली रही हैं परन्तु श्रेणी-क्रम में जाति के उठने पर उनका संस्कृतिकरण हो जाता है और यौन व विवाह के सम्बन्ध में ब्राह्मणों के नियम अपना लिये जाते हैं। विधवा-पुनर्विवाह और तलाक पर प्रतिबन्ध लग जाते हैं।†

पाश्चात्यकरण से श्रीनिवास का तात्पर्य हिन्दुओं की उच्च जातियों के द्वारा

* "It is possible that very ban on the adoption of the Brahmanical way of life by the lower castes, had exactly the opposite effect. The forbidden fruit was the tastier one."

—Aiyappan and Balaratnam, *Society in India* p. 73.

† A. P. Barnabas "*Sanskritisation*" The Economic Weekly April 15, 1961.

पाश्चात्य संस्कृति-भावना (ethos) और विचार को स्वीकार करना और ब्रिटिश प्रथाओं और आदतों को स्वीकार करना, अपनाना या नकल करना है। साहित्यिक परम्परा होने कारण उच्च जातियों के लिए पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करना आसान था। भारत में पाश्चात्यकरण का स्वरूप और रफ्तार एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में और जनसंख्या के एक भाग से दूसरे भाग में भिन्न थी। उदाहरण के लिए, एक समूह ने वस्त्र, खान-पान, तहजीब, बोलचाल, खेलकूद, उपकरणों के प्रयोग में पाश्चात्य-करण किया जब कि दूसरे समूह ने पाश्चात्य विज्ञान, ज्ञान और साहित्य को ही ग्रहण किया जब कि बाहरी दिखावे की बातों को स्वीकार नहीं किया।

पाश्चात्यकरण की प्रक्रिया ने उच्च जातियों और निम्न जातियों के बीच सामाजिक दूरी बढ़ा दी। उच्च जातियाँ ब्रिटिश शासकों के निकट आ गईं जिससे उन्हें राजनीतिक और आर्थिक लाभ भी हुए। क्योंकि ब्राह्मण लोग सामाजिक श्रेणी क्रम की सबसे ऊँची चोटी पर थे इसलिए बगैर उपहास-पात्र बने वे यह सब कर सके। यदि निम्न जातियाँ पाश्चात्यकरण की कोशिश करतीं तो अवश्य उपहास-पात्र बनतीं।

बर्नाबास का कहना है कि उपर्युक्त बातों पर गौर करने से हमें यह मालूम होता है कि हिन्दू समाज दो या तीन श्रेणियों मे बँटा है : उच्च जातियाँ; मध्यम जातियाँ, और निम्न जातियाँ। प्रत्येक श्रेणी की अपनी मूल्य-प्रणाली होती है। निम्न जातियों की दृष्टि में उच्च जातियों की मूल्य-प्रणाली की अत्यधिक प्रतिष्ठा होती है। प्रत्येक जाति अपनी सामाजिक स्थिति ऊँचा करना चाहती है। श्रीनिवास ने कहा है कि जब निम्न जाति के लोग धनी हो जाते हैं, वे अपने जीवन-यापन के ढंग का संस्कृतिकरण करना चाहते हैं। वे उन प्रथाओं और आदतों को छोड़ देते हैं जिन्हें घटिया समझा जाता है। अधिक स्पष्ट शब्दों में वे गोमांस और सुअर का मांस खाना और ताड़ी पीना छोड़ देते हैं। वे ब्राह्मणों के संस्कार और प्रथाओं को अपना लेते हैं और यहाँ तक कि अपनी जाति का नाम भी बदल देते हैं। दो या तीन पीढ़ियों में ऐसी जाति समाज में उच्च स्थिति प्राप्त कर लेती है। निम्न जातियाँ संस्कृतिकरण करना चाह रही हैं जब कि उच्च जातियाँ पाश्चात्यकरण करना चाहती हैं। जब निम्न जाति का संस्कृतिकरण पूर्ण हो जाता है, वह अपने पाश्चात्यकरण की कोशिश करती है। नर्मदेश्वर प्रसाद ने कहा है कि हम यह कह सकते हैं कि कोई निम्न जाति अपने संस्कृतिकरण में दो पीढ़ियाँ और फिर पाश्चात्य-करण में दो और पीढ़ियाँ लेगी, अर्थात् ४ से ६ पीढ़ियों के दरम्यान में, भाग्य के साथ देने पर, जाति श्रेणी-क्रम (hierarchy) के सबसे निचले भाग से कोई जाति सबसे ऊँची पहुँच सकती है।*

---

* N. Prasad, *The Myth of Caste System.* p. 242,

12 वर्ग (Class)

वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था, न कि जाति-व्यवस्था पायी जाती थी। व्यवसाय, खान-पान, विवाह आदि के सम्बन्ध में व्यक्ति स्वतन्त्र था। वास्तव में वर्ण-व्यवस्था वर्ग-व्यवस्था का ही रूप थी। बाद में धन का महत्व बढ़ने, भूमि के बँटवारे, व्यवसायों के सम्बन्ध में प्रतिबन्ध लगने, आदि के कारण अनेक वर्गों और जातियों का जन्म हुआ। इस देश में जाति-व्यवस्था, न कि वर्ग-व्यवस्था रही है।

मध्यकाल के अन्तिम भाग में वाणिज्य के विकास और शहरों के बनने से नये वर्गों का जन्म हुआ जिनमें व्यापारी, मिस्त्री, और मजदूर प्रमुख थे। मिस्त्री शीघ्र ही मजदूरों की श्रेणी में प्रविष्ट हो गये। व्यापारियों द्वारा निर्मित नये वर्ग ने पुराने कुलीन जन (gentry) के साथ मिलना-जुलना बढ़ाया और दोनों के ही युवा पुत्रों ने वाणिज्य और नये पेशों को अपनाया। पहले कुलीन जन वह वर्ग था जो कि भूमि के मालिक थे और कृषक दास (serfs) कुछ प्रथागत या कानूनी प्रतिबन्धों के अन्तर्गत उस भूमि पर खेती करते थे। बाद में शहरों के बनने व विकास के कारण जब व्यापारियों और बिसातियों और मिस्त्रियों के नये वर्गों का जन्म हुआ तब श्रेणी-क्रम में उनके स्थान के सम्बन्ध में कोई बात निश्चित न हो सकी। कुछ समय के बाद कच्चे पदार्थ और उनको तैयार माल में परिणित करने के साधनों के हाथ से छिन जाने पर मिस्त्री भी मजदूरों के विशाल वर्ग में विलीन हो गये। इस काल में व्यापारी, बिसाती और उद्यमी (enterpreneurs) खूब फले-फूले और संख्या में बढ़े। तनख्वाह पाने वाले लोगों ने अब तक कोई विशेष उन्नति नहीं की है। निम्न ग्रेड के क्लर्क, दूकानों के सहायक-कार्यकर्त्ता, बैंक कर्मचारियों आदि ने अपनी यूनियन बना ली है। सभी ग्रेड के शिक्षकों ने भी अपनी यूनियन बनायी हैं। बीसवीं शताब्दी के भारत के सामाजिक जीवन की सबसे महत्वपूर्ण घटना मजदूर वर्ग का अन्य वर्गों से अलग हो जाना और तनावपूर्ण सम्बन्ध है। आज वर्गों के अन्दर अनेक उप-वर्ग बन रहे हैं। औद्योगीकरण और नगरीकरण दिन-प्रति-दिन नये वर्गों को जन्म दे रहे हैं, आधुनिक शिक्षा ने शिक्षितों को अशिक्षितों से अलग कर दिया है। उत्पादन के साधनों के मालिक, व्यापारी, शिक्षक, डाक्टर, वकील और क्लर्क भी अपने को अलग वर्ग समझते हैं यद्यपि समाजशास्त्रीय दृष्टि से पेशे के आधार पर वर्ग-विभाजन नहीं हो सकता।

13 धर्म-निरपेक्षीकरण (Secularization)

श्रीनिवास ने Social Change in Modern India नामक पुस्तक में धर्म-निरपेक्षीकरण की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वास्तव में यह

पाश्चात्यकरण के अन्तर्गत आता है। धर्म-निरपेक्षीकरण की प्रक्रिया नगर-निवासियों और शिक्षित समूहों में अधिक पायी जाती है। धर्म-निरपेक्षीकरण से तात्पर्य यह है कि जो बातें पहले धार्मिक समझी जाती थी वे अब वैसी नहीं समझी जातीं। इसमें विचारशीलता (rationalism) का तत्व भी पाया जाता है जिसके अनुसार आधुनिक ज्ञान ने परम्परागत विश्वासों और विचारों का स्थान ले लिया है।

यह कहना अधिक उचित होगा कि भारत में अन्य धार्मिक समूहों की अपेक्षा हिन्दू लोग धर्म-निरपेक्षीकरण की इस क्रिया से अधिक प्रभावित हुए क्योंकि छुआ-छूत और पवित्रता की भावना इन्हीं में सबसे अधिक प्रबल थी। पहले, व्यक्ति स्वयं अपनी हजामत नहीं बनाता था। नाई यह कार्य करता था। हजामत बनाने के बाद व्यक्ति स्नानगृह के बर्तन को नहीं छू सकता था। कोई अन्य व्यक्ति उसके ऊपर पानी डालता था। पूरी तरह से भीग जाने और पानी से कुल्ला करने के बाद ही वह बर्तनों को छू सकता था। स्त्रियाँ, विशेषकर विधवायें, और बुजुर्ग लोग छुआ-छूत के नियमों के पालन पर अधिक बल देते रहे हैं। निम्न-जातियों की अपेक्षा उच्च जातियों में यह भावना अधिक पायी जाती है। पाश्चात्य सभ्यता, औद्योगीकरण और नगरीकरण के कारण कुछ दशाब्दियों से छूत और पवित्रता की धारणायें कमजोर हो गई हैं। आज शहरों में व्यक्ति की दैनिक चर्या, निवास-स्थान, खान-पान का समय, उसके धन्धे से अधिक प्रभावित होता है बनिस्बत जाति और धर्म से।

अधिक शिक्षित वर्ग होटलों में सफाई पर अधिक बल देते हैं, न कि जाति पर। शिक्षा के प्रचार के फलस्वरूप आधुनिक व्यक्ति स्वास्थ्य-रक्षा (hygiene) पर अधिक बल देता है, बनिस्बत पवित्रता के परम्परागत विचारों पर। पवित्रता और सफाई अक्सर एक दूसरे की विरोधी होती हैं। अक्सर ब्राह्मण महाराज गन्दे कपड़े पहनकर खाना पकाते हैं और गर्म बर्तनों को सँभालने के लिये मैले वस्त्रों से उनको पकड़ते हैं।

अनेक जीवन-चक्र सम्बन्धी संस्कार जैसे नामकरण, मुण्डन, उपनयन संस्कार त्यागे जा रहे हैं। ब्राह्मण विधवा के सर मुड़ाने के संस्कार का लोप हो गया है और अनेक शिक्षित स्त्रियों में विधवा पुनर्विवाह होने लग गये हैं। विवाह में दहेज-प्रथा का भी अनेक वर्गों में अन्त हो गया है।

---

१६ सामाजिक-परिवर्तन के सिद्धान्त (Theories of Social Change)

आदि काल से विभिन्न समाजों में परिवर्तन होते रहे हैं और मनुष्य ने इन परिवर्तनों का कारण बताने और समझने की कोशिश हमेशा ही की है। पहले जमाने के विचारकों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से बाद के विचारकों के विचारों में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आज यह सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है कि सामाजिक परिवर्तन का कोई एक कारण नहीं होता। इस परिवर्तन के लिए समूह के अन्दर और बाहर की स्थितियों से उत्पन्न होने वाली शक्तियाँ दोनों ही जिम्मेवार हैं।

सामाजिक परिवर्तन के प्राचीन सिद्धान्त (Ancient Theories of Social Change)

सामाजिक परिवर्तन का एक प्राचीन सिद्धान्त इसकी अवनति के रूप में व्याख्या करता है। जैसा कि विलसन वालिस (Wilson Wallis) ने बताया है, इस प्रकार की धारणा प्राचीन पूर्वी देशों में प्रचलित थी। यह ६०० B.C. में चीनी ऋषि लाओ—से के लेखों और भारत, पर्शिया और सुमेरिया के महाकाव्यों में प्रकट किया गया। इनमें और संसार के अन्य प्रदेशों के ग्रन्थों में यह स्वीकार किया गया कि प्रारम्भ में मनुष्य बहुत ही सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता था, स्वर्ण-युग में रहता था। बाद में धीरे-धीरे इस स्थिति में अवनति होने लगी और अनेक क्रमिक अवस्थाओं के बाद मनुष्य अधःपतन (degeneration) के युग में पहुँच गया।

दूसरी प्राचीन धारणा जो कि कम स्थानों में लोकप्रिय हुई, यह थी कि मानव इतिहास अनेक चक्रों से होकर गुजरता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, इतिहास अपने आप को दोहराता है। अनेक अवस्थाओं से गुजर कर वह अपनी वास्तविक (original) अवस्था को फिर लौट आता है जहाँ से फिर एक बार चक्र शुरू

हो जाता है। इस सिद्धान्त को शुरू के कुछ हिन्दू लेखकों ने प्रतिपादित किया और आज भी बौद्ध दर्शनशास्त्र में यह बात हमें मिलती है। यह विचार हमें ग्रीस और रोम के भी कुछ दर्शनशास्त्रियों जैसे, मार्क्स औरेलियस, के लेखों में मिलता है।

इतिहास की गति की तीसरी प्राचीन व्याख्या को निवैल ली रॉय सिम्स ने "चढ़ाव का विचार" (idea of ascent) कहा। इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक परिवर्तन ऊपर की दिशा की ओर हुआ। मनुष्य एक अत्यन्त आदिम अवस्था से आगे बढ़ता गया जब तक कि वह उस काल की काफी उन्नत स्थिति को नहीं पहुँच गया। उसकी प्रगति वर्तमान काल में आकर समाप्त हो गयी। यह स्थिति विकास की सबसे ऊँची अवस्था है जिसके आगे किसी भी प्रकार की किसी उन्नति की कोई आशा नहीं की जा सकती। यह सिद्धान्त ग्रीक कवि हेसियौड (Hesiod) के लेखों, एपीक्यूरियस के दर्शनशास्त्र में, और रोमन कवि और दर्शनशास्त्री लुक्रेटियस (Lucretius) के लेखों में पाया जाता है। यह विचार अपेक्षाकृत सबसे कम लोकप्रिय हुआ।

सामान्यतः, प्राचीनकाल में सामाजिक परिवर्तन को अच्छा नहीं समझा जाता था। उस काल में यह समझा जाता था कि परिवर्तन के केवल घातक परिणाम ही हो सकते हैं।

मध्यकाल में परिवर्तन की धारणा
(Concepts of Change in Medieval Times)

मध्ययुग में पाश्चात्य लेखक सामाजिक परिवर्तन की समस्या में अपनी सब रुचि खो बैठे। इहलोक की अपेक्षा परलोक की ओर ध्यान केन्द्रित हो गया और यह समझा गया कि भूलोक उत्प्राकृतिक (supernatural) शक्तियों द्वारा संचालित होता था। मनुष्य अपना भाग्य बदलने में असमर्थ था। समाज को स्थिर (static) समझा गया जिसके सामाजिक मूल्य हमेशा के लिये निश्चित हो चुके थे। यह विश्वास किया गया कि किसी विशेष उद्देश्य के लिये ईश्वर ने इस संसार को रचा। यह उद्देश्य किसी समय भी पूरा हो सकता था और सृष्टि का पूर्ण नाश हो सकता था। यह सिद्धान्त अत्यन्त निराशावादी था।

इस निस्सहायता की मनोवृत्ति से बड़ी मुश्किल में पाश्चात्य समाजों को छुटकारा मिला। अरब सभ्यता के प्रभाव के कारण इन लोगों में भविष्य में सुखी होने की आशा की किरण निकली।

सामाजिक परिवर्तन के प्रति एक नये रुख के विकास में बुद्धिजीवियों (intellectuals) ने एक बहुत बड़ी भूमिका अदा की। इस सम्बन्ध में चौदहवीं शताब्दी के सामाजिक दर्शनशास्त्री इब्न ख़ाल्दून का नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ। उसने मानव इतिहास को एक प्राकृतिक, उद्विकासीय (evolutionary)

प्रक्रिया कहा और सामाजिक परिवर्तन की एक नयी धारणा के विकास के लिये मार्ग खोला ।

प्रगति के रूप में परिवर्तन
(Change as Progress)

आधुनिक काल के शुरू में यह विचार बहुत लोकप्रिय था कि समाज में निरन्तर प्रगति हो रही है। मनुष्य को इस बात के लिये समर्थ समझा गया कि वह पूर्ण सामाजिक व्यवस्था प्राप्त कर सके। यह नया दृष्टिकोण इस बात की ओर संकेत करता है कि मनुष्य में आत्म-विश्वास बढ़ा और उसने स्वयं को अपने भाग्य का स्वामी समझा। मनुष्य ने अपने पर्यावरण, विशेषकर भौतिक संसार, को ज्यादा सही ढंग से समझा।

सत्रहवीं शताब्दी में फ्राँसिस बेकन ने इस बात पर बल दिया कि सामाजिक परिवर्तन निरन्तर प्रगति की दिशा में था। इस सिद्धान्त को १८वीं सदी में फ्रेंच लेखक टर्गो (Turgot) और कन्डोरसे (Condorcet) ने अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त किया। टर्गो ने कहा कि मानव समाज धीरे-धीरे परन्तु लगातार ऊँचाई की ओर बढ़ रहा था, यद्यपि कभी-कभी इस प्रगति में बाधा भी पडती थी। यह प्रगति सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू में, यहाँ तक कि मनुष्य की प्रकृति में भी, हो रही थी। कन्डोरसे टर्गो से भी अधिक आशावादी था। उसने कहा कि मानव की अपने को परिनिष्पन्न (perfect) करने की योग्यता अनन्त है और विकास की प्रक्रिया अनिश्चित काल तक चलती रहेगी।

प्रमुख समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन को उन निश्चित अवस्थाओं के रूप में देखा जो नीचे स्तर से ऊँचे स्तर की ओर चलती है। "ऑगस्त कॉम्त" ने तीन ऐसी अवस्थायें बतायीं : ईश्वरपरक (Theological), तात्विक (Metaphysical) और निश्चयात्मक (Positive)। मानव जाति पहली दो अवस्थाओं से गुजर चुकी है, यद्यपि जीवन के कुछ पहलुओं और विचारों में वे अब भी मौजूद हैं, और धीरे-धीरे निश्चयात्मक अवस्था को पहुँच रही हैं। पहली अवस्था में, मनुष्य ने यह समझा कि संसार को उत्प्राकृतिक शक्तियों ने रचा था और वह जड़पूजा (fetish) और अनेक देवताओं में विश्वास करता था और अब एक देवता में विश्वास करने लगा है। यह युग आधुनिक युग के शुरू होने के समय तक रहा जब तात्विक अवस्था प्रारम्भ हुई। इस अवस्था में कल्पना के द्वारा मनुष्य ने सामाजिक प्रमेयों की व्याख्या करने का प्रयत्न किया। वैज्ञानिक निश्चयात्मक अवस्था में मनुष्य कारणों की खोज को असम्भव और अनावश्यक समझता है जिसको अनुभव के द्वारा प्रमाणित किया जा सके। इस धारणा में प्रगति का विचार छिपा है और यही

वैज्ञानिक दृष्टिकोण लेकर यदि मनुष्य प्राकृतिक और सामाजिक प्रमेय को समझने का प्रयत्न करेगा तो, काम्त के विचार में, मनुष्य अवश्य प्रगति करेगा।

व्याख्या करने वाला एक सिद्धान्त स्पैन्सर ने प्रतिपादित किया। उसने समाज को एक शरीर की भाँति बताया और कहा कि सामाजिक विकास की शारीरिक उद्विकास (organic evolution) से तुलना की जा सकती है। उसने सामाजिक उद्विकास को प्रगतिवादी माना।

उसने कहा कि मानव समाज धीरे-धीरे एक अच्छी स्थिति की ओर प्रगति करता रहा है। अपनी आदिम अवस्था में समाज में एक दूसरे से युद्ध करते हुए अनेक समूह थे जिनके बीच जीवित रहने के लिये बेरहमी से संघर्ष होता रहता था। स्पैन्सर ने इस स्थिति को मिलिटरीवाद कहा। धीरे-धीरे समाज शान्ति और उद्योग के काल की ओर अग्रसर हुआ। यह उद्योगवाद की स्थिति थी। इस प्रक्रिया के दरम्यान समाज एक कम विभेदीकरण और कम एकीकरण की स्थिति से अधिक विभेदीकरण (differentiation) और अङ्गों के अधिक एकीकरण (integration) की स्थिति में बदल गया। यद्यपि आज का समाज अधिक विभेदीकरण वाला है, फिर भी उद्योगवाद की स्थिति में समाज में अधिक समन्वय (coordination) पाया जाता है क्योंकि इसके विभिन्न भाग—संस्थायें—एक दूसरे से मिल कर एक एकीकरण प्रणाली बनाये हुये हैं। इस प्रकार के सन्तुलन की स्थापना के कारण भिन्न सामाजिक, आर्थिक और प्रजातीय समूह एक दूसरे के साथ शान्तिपूर्वक रह सकते हैं और व्यक्ति अधिक से अधिक स्वतंत्रता और आत्म-निर्णय का अवसर अनुभव करते हैं। स्पेन्सर के अनुसार सामाजिक उद्विकास, जिसको उसने प्रगति माना है, अपने आप चलने वाली प्रक्रिया है।

सामाजिक परिवर्तन का उपर्युक्त सिद्धान्त जिसके अनुसार समाज धीरे-धीरे सभ्यता की ऊँची स्थिति की ओर बढ़ता है, और यह एक रेखीय (linear) दिशा में और प्रगति की दिशा में बढ़ता है कल्पना पर और कामना पर अधिक आधारित है, न कि सत्यता पर। आज का कोई भी समाजशास्त्री या मानवशास्त्री इसे स्वीकार नहीं करता है। आजकल सामाजिक परिवर्तन को अनिवार्य और निरन्तर माना जाता है। इसको प्रगति से एकसम (identical) नहीं समझा जाता। सत्य तो यह है कि अधिकतर वर्तमान समाजशास्त्री और मानवशास्त्री इस बात में सन्देह करते हैं कि पूर्ण सुधार के अर्थ में, विशेषकर अभौतिक पदार्थों में, प्रगति कभी हो सकती है। प्रगति में विश्वास तो इस बात पर निर्भर करता है कि कौन सा समाज किस वस्तु की कामना करता है और समाज उस लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है या नहीं। केवल इतना ही सत्य है कि परिवर्तन सब समाजों में होता है।

सामाजिक परिवर्तन के बौद्धिक सिद्धान्त
(Telic Theories of Social Change)

अनेक प्रमुख समाजशास्त्रियों ने केवल इसी बात को स्वीकार नहीं किया है कि प्रगति एक स्पष्ट और निश्चित चीज है बल्कि इस बात पर भी बल दिया कि प्रगति चेतन, क्रमबद्ध (systematic) प्रयासों के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार, लैस्टर वार्ड ने प्रगति की परिभाषा देते हुए कहा कि यह मानव सुख में वृद्धि है। सुख की प्राप्ति सभी व्यक्तियों का लक्ष्य है इसलिये समाज को अपने सभी सदस्यों के लिये सुख प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये। वार्ड के अनुसार प्रगति को उद्देश्यपूर्ण प्रयास या चेतन नियोजन (planning) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन करने में बुद्धि की कुशलता वैज्ञानिक ज्ञान पर निर्भर करती है इसलिये शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा ही बुद्धि संवेगों को प्रभावित कर सकती है जिससे सफल नियोजन सम्भव हो सकता है। वार्ड के अनुसार प्राकृतिक उद्विकास धीमा, अनिश्चित और हानिकर होता है जबकि social telesis या बौद्धिक नियोजन प्रकृति की प्रक्रियाओं को तेज कर देता है।

इससे मिलता-जुलता विचार हमें चार्ल्स एलवुड और अन्य समाजशास्त्रियों में मिलता है। एलवुड ने कहा कि सामाजिक विकास जो पहले अचेतन, अपने आप होने वाले अनुकूलन (adaptation) के कारण था, विशेषकर अपनी प्रारम्भिक और निम्न अवस्थाओं में, उसका स्थान बौद्धिक, उद्देश्यपूर्ण शक्तियों द्वारा लिया जा रहा है। वह वार्ड से सहमत था कि प्रगति शिक्षा और ज्ञान के कारण तेजी से हो रही है।

जर्मन समाजशास्त्री लुडविग स्टीन और इंगलिश समाजशास्त्री हॉबहाउस ने भी वार्ड से मिलते-जुलते सिद्धान्त पेश किये। स्टीन का विश्वास था कि प्रगति मानव बुद्धि और ज्ञान, विशेषकर समाज के विज्ञान, के विकास पर निर्भर करती है। नियोजन और अधिनियम (legislation) को सही समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिये तभी वह सफल हो सकते हैं। स्टीन ने इस बात की कल्पना की कि आगे चलकर सब राज्यों का एक संघ बन जायेगा और राष्ट्रवाद का अन्त हो जाएगा, व्यक्तियों और समूहों में सहयोग बढ़ेगा, और शारीरिक संघर्ष का स्थान बौद्धिक प्रतियोगिता ले लेगी। हॉबहाउस ने भी यही विचार प्रकट किया कि भौतिक कारकों पर बुद्धि का नियंत्रण हो जाने पर प्रगति प्राप्त हो सकेगी। मानव समस्यायें बुद्धि के द्वारा नियंत्रित हो सकती हैं। वास्तव में, वास्तविक प्रगति प्राप्त करने का एकमात्र तरीका यह है कि बौद्धिक नियन्त्रण किया जाये। इसलिए हमारी प्रकृति के बौद्धिक तत्व का विकास किया जाये जिससे उद्विकासीय प्रक्रिया में उसका अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके।

उपर्युक्त सिद्धान्तों पर गौर करने से पता लगता है कि सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करते समय इन लेखकों के मस्तिष्क में 'प्रगति' का विचार था। वार्ड, एलवुड आदि के विचार को बौद्धिक या उद्देश्यपूर्ण कहा जा सकता है। सर्वसाधारण इस विचार से प्रभावित हैं क्योंकि यह औसत व्यक्ति के विचारने के ढंग से मेल खाता है।

सामाजिक परिवर्तन के निर्णयवादी सिद्धाँत
(Deterministic theories of Social Change)

अधिकतर समाजशास्त्री सामाजिक परिवर्तन के निर्णयवादी सिद्धांत से सहमत हैं। इस विचार के अनुसार सामाजिक परिवर्तन कुछ शक्तियों—सामाजिक या प्राकृतिक या दोनों—के कारण होता है, न कि मानव विचार और उद्देश्यों के कारण। उद्देश्यपूर्ण प्रयास भी मानव समाज में महत्वपूर्ण है परन्तु वह तभी सफल हो सकता है जब वे शक्तियाँ और परिस्थितियाँ अनुकूल हों। समाजशास्त्री इस बात से सहमत नहीं हैं कि कोई एक कारक निश्चायक होता है परन्तु प्रक्रिया की निर्णय-वादी प्रकृति से सभी सहमत हैं।

(१) स्वतः परिवर्तन का सिद्धांत (The theory of automatic change)—सामाजिक परिवर्तन की निर्णयवादी प्रकृति पर समनर और कैलर ने बल दिया और कहा कि सामाजिक परिवर्तन आर्थिक कारकों द्वारा स्वतः निश्चित होता है। कैलर ने कहा कि स्वतः परिवर्तन एक अबौद्धिक और अचेतन प्रक्रिया है। परिवर्तन का कारण लोकरीतियों का बदलना है जो आवश्यकता के अनुसार बदलती है, परन्तु यह परिवर्तन आयोजित (planned) नहीं होता। यह सत्य है कि इन परिवर्तनों के लिये अन्त में व्यक्ति ही जिम्मेवार होते हैं, वे ही परिवर्तन लाने का इरादा रखते हैं परन्तु इसकी स्वीकृति या अस्वीकृति समाज के ऊपर निर्भर करती हैं और यह कार्य समाज स्वतः करता है। कैलर के विचार में चेतन प्रयास और बौद्धिक नियोजन तब तक परिवर्तन नहीं ला सकते जब तक कि लोकरीतियाँ और रूढ़ियाँ उसके लिये तैयार नहीं होतीं। मनुष्य तो अधिक से अधिक यह कर सकता है कि होने वाले परिवर्तन में सहायता या बाधा पहुँचाये। कैलर ने उदाहरण देते हुये कहा कि गुलामी के विरुद्ध विद्रोह केवल इसीलिए सफल हो सका क्योंकि बदली हुई दशाओं के कारण गुलामी का स्वयं अन्त हो रहा था। अन्यथा, ऐसा विद्रोह असफल रहता।

(२) आर्थिक निर्णयवाद का सिद्धान्त* (The theory of economic determinism)—डारविन के उद्विकास के सिद्धांत से प्रभावित होकर सभी

---

* सामाजिक परिवर्तन के प्राद्योगिकीय कारक पर लिखे गये अध्याय में मार्क्स के सिद्धांत की विस्तारपूर्वक व्याख्या और आलोचना की गई है।

सामाजिक प्रमेय (phenomena) की व्याख्या प्राकृतिक शक्तियों के फल के रूप में की जाने लगी थी। यह हम ऊपर कह चुके हैं कि स्पेन्सर और शुरू के कुछ अन्य समाजशास्त्री इस बात पर बल देते रहे कि सामाजिक जीवन और संगठन प्राकृतिक शक्तियों द्वारा नियन्त्रित होते हैं। यह दृष्टिकोण इस धारणा के अनुकूल था कि मानव समाज के आर्थिक जीवन एक प्राथमिक कारक हैं। इस धारणा को निश्चित शब्दों में कार्ल मार्क्स ने, जो आधुनिक समाजवाद का जन्मदाता था, प्रकट किया। मार्क्स जर्मन दर्शनशास्त्री हैगल के इस सिद्धान्त से प्रभावित था कि विचार ही जीवन की सबसे महत्वपूर्ण प्रेरक शक्तियाँ हैं (metaphysical idealism), फिर भी आगे चलकर उसे इस बात में विश्वास हुआ कि जीवन के भौतिक पहलू, विशेषकर आर्थिक पहलू, निश्चायक कारक हैं। इस प्रकार, उसने आर्थिक निर्णयवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसने कहा कि सम्पूर्ण सामाजिक ढाँचा आर्थिक शक्तियों द्वारा निश्चित होता है। इसलिये उसके सिद्धान्त को 'इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या' (materialistic interpretation of history) कहा जाता है।

संक्षेप में, मार्क्स और उसके साथी फ्रीडरिच एञ्जिल्स ने यह बताया कि मानव समाज अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरता है। हर अवस्था (stage) की एक अलग स्पष्ट संगठनात्मक प्रणाली होती है। प्रत्येक नयी अवस्था पिछली अवस्था के साथ संघर्ष होने के कारण उत्पन्न होती है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन होने का कारण प्राथमिक आर्थिक कारकों का बदलना है, अर्थात् उत्पादन और वितरण की विधियों में परिवर्तन है। इन बातों में परिवर्तन होने से सभी सामाजिक संस्थाओं जैसे सरकार, धर्म और परिवार में परिवर्तन होता है। इस प्रकार, समाज में आर्थिक कारक ही प्राथमिक है क्योंकि जीवन के सभी सामाजिक पहलू उस पर निर्भर करते हैं और इसी के द्वारा निश्चित भी होते हैं।

मार्क्स के विचार में सामाजिक संगठन चार विशिष्ट पहलुओं से होकर गुजरा है और प्रत्येक पहलू की अपनी एक स्पष्ट उत्पादन प्रणाली थी। एक पाँचवाँ, अन्तिम और आदर्श पहलू आने वाला है और उसका आना निश्चित है। इन पाँचों पहलुओं को मार्क्स ने पूर्वी (या एशियाटिक), प्राचीन, सामन्तशाही, पूंजीवादी, और साम्यवादी (communistic) कहा।

मार्क्स ने लिखा है कि एशियाटिक आर्थिक व्यवस्था सबसे आदिम (primitive) है। यह पूर्व-शिक्षित समाजों और कुछ पिछड़े हुये सभ्य समूहों में पायी जाती है। उपयोग के लिये उत्पादन, परिवार के सदस्यों तक सीमित श्रम-विभाजन और सम्पत्ति का सामुदायिक स्वामित्व इस पहलू की विशेषतायें थीं। इसके बाद प्राचीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हुई जब पशुओं और ऐशो-आराम

की वस्तुओं पर प्राइवेट स्वामित्व हुआ जिससे व्यवहार और केवल उपभोग के लिए वस्तुओं का उत्पादन न हो कर विनिमय (exchange) के लिए उत्पादन शुरू हुआ। मातृसत्ताक परिवार का स्थान पितृसत्ताक परिवार ने ले लिया। एक व्यापारी वर्ग उत्पन्न हुआ जिसने तमाम धन और शक्ति एकत्रित की। दूसरी ओर, इसी काल में बड़ी-बड़ी जमीनों का प्राइवेट स्वामित्व और गुलामी की संस्था का भी जन्म हुआ। किसानों की निर्धनता और गुलामी के लाभहीन होने के कारण तीसरे पहलू सामंतशाही (feudalism) की शुरुआत हुई। सामंतशाही में यद्यपि भूमि के स्वामी मालिक लोग थे परन्तु उत्पादन के साधन किसानों के साथ में थे, और मिस्त्री अपने उपकरणों (tools) और भौतिक पदार्थों के मालिक थे। उत्पादन मुख्यत: उपभोग के लिये होता था। मुद्रा अर्थव्यवस्था (money economy) के विकास और उसके फलस्वरूप मजदूरी (wage labour) देने का तरीका, नयी भूमि और देशों की खोज, नये बाजारों के विकास, प्राद्योगिकीय आविष्कारों में नित नयी वृद्धि आदि होने से सामंतशाही अर्थव्यवस्था का विघटन होने लगा और उसके स्थान में एक पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म हुआ। यह प्रणाली ऐसे धनी वर्ग पर निर्भर थी जिनके हाथ में उत्पादन के सब साधन थे और जो निर्धन वर्गों का शोषण करते थे जिनके पास बेचने के लिए केवल अपना श्रम था। इस प्रकार, समाज में परस्पर विरोधी दो वर्ग हुये—बोर्जुआ (bourgeoisie) और प्रोलेतेरियत (proletariat)।

मार्क्स के विचार में आधुनिक पूंजीवादी प्रणाली अपने नाश की ओर अग्रसर हो रही है क्योंकि इसने ऐसी दशायें उत्पन्न कीं, ऐसी शक्तियों को बाँधा है जिनके कारण उसका विदारण निश्चित है। अपने Communist Manifesto में मार्क्स और एंजिल्स ने आधुनिक पूंजीवादी समाज की तुलना 'एक भूतसाधक' से की जो नरक की उन शक्तियों को अब अपने वश में रखने में असमर्थ है जिन्हें अपने मंत्रों से उसने बुलाया है।† जिन शस्त्रों की सहायता से बोर्जुआ वर्ग ने सामंतशाही पर विजय पायी वही उसके विरुद्ध हो गये। इसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सामाजिक व्यवस्था एकदम अपने पूर्ण विकास को नहीं प्राप्त होगी। उसे दो अवस्थाओं (stages) से गुजरना होगा। पहली अवस्था में प्रोलेतेरियत की तानाशाही होगी जिस काल में श्रम-वर्ग शासन करेगा और पूंजीवादी शासन के सभी चिह्न धीरे-धीरे लुप्त हो जायेंगे। दूसरी अवस्था में, सच्चा साम्यवाद होगा जिसमें न कोई राज्य, वर्ग, संघर्ष और शोषण होंगे। साम्यवादी समाज में केवल एक सिद्धान्त रहेगा: हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार काम लो और हर

† "a sorcerer who is no longer able to control the powers of the nether world whom he has called up by his spells."

एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दो। मार्क्स ने एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसमें सामाजिक व्यवस्था पूर्णता (perfection) की स्थिति पर पहुँच जायेगी।

आलोचना—मार्क्स ने मानव इतिहास की गति के सम्बन्ध में जो निष्कर्ष निकाले उनका कोई उचित वैज्ञानिक आधार न होने से उसकी आलोचना हुई। जहाँ तक उसके आर्थिक निर्णयवाद का प्रश्न है, अनेक समाजशास्त्री उसमें सत्यता देखते हैं। परन्तु बहुत थोड़े ही सामाजिक वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि मानव इतिहास में आर्थिक कारक ही एकमात्र महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं। यहाँ तक कि स्वयं मार्क्स ने भी इस बात को सच नहीं माना क्योंकि उसने गैर-आर्थिक शक्तियों का महत्व स्वीकार किया। समाजशास्त्री इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं कि समाज कुछ निश्चित क्रमिक (successive) अवस्थाओं से गुजरा है और वह आवश्यक रूप से और निश्चयपूर्वक एक आदर्श अवस्था की ओर बढ़ रहा है: इस बात का कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है कि समाज किसी दिशा में, उन्नति या अवनति की ओर अवस्थाओं से होकर गुजरता है। मार्क्स का यह विश्वास कि मनुष्य अपने अस्तित्व की आदर्श अवस्था को निश्चयपूर्वक प्राप्त करेगा कल्पनामात्र है, एक स्वर्णयुग का स्वप्न है। फिर भी, मार्क्स के सिद्धान्त का समकालीन लोगों पर जितना गहरा प्रभाव पड़ा वह आधुनिक काल के किसी सामाजिक सिद्धान्त का नहीं पड़ा।

आर्थिक निर्णयवाद के सिद्धान्त की मुख्यत: इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह 'आर्थिक' शब्द की स्पष्ट रूप से परिभाषा नहीं देता है। कहीं-कहीं यह प्राद्योगिकीय या उत्पादन के ढंग की ओर संकेत करता है, परन्तु कहीं धर्म-हित (class interest) की ओर भी संकेत करता है जो राजनीतिक और सामाजिक प्रकृति का होता है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक परिवर्तन के कारण और जिस ढंग से अर्थ-व्यवस्था में यह परिवर्तन होते हैं इनकी उचित व्याख्या नहीं की गई है, बल्कि आभास यह होता है कि यह परिवर्तन स्वयं उत्पन्न होते हैं।

साँस्कृतिक विलम्बना की उपकल्पना*

(The Hypothesis of Cultural Lag)

विलियम ऑगबर्न ने अपनी पुस्तक Social Change में सांस्कृतिक विलम्बना की उपकल्पना की। साँस्कृतिक विलम्बना की धारणा का आभास हमें पहले के समाजशास्त्री समनर, म्यूलर-लायर (Muller-Lyer), बीरकान्त, ग्राहम वालाज, और स्पेन्सर के लेखों में भी मिलता है परन्तु ऑगबर्न ने ही पहली बार इस विचार

* सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक पर लिखे गये अध्याय में इसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है।

को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया और एक निश्चित सिद्धान्त का रूप दिया। ऑग-बर्न ने जोर देकर कहा कि भौतिक संस्कृति के एकत्रित होने के कारण सम्भव हुए अनेक आविष्कारों के कारण सामाजिक परिवर्तन बहुत तेजी से हो रहा है। यह तेज परिवर्तन संस्कृति के भौतिक पहलू में जैसे कि मकान, औजार, बर्तन, मशीन, वस्तुओं के उत्पादन, और यातायात में ज्यादा जल्द हुआ बनिस्बत अभौतिक पहलू में जैसे कि धर्म, सरकार, परिवार और शिक्षा। भौतिक संस्कृति में खोज और आविष्कार तेजी से होते हैं।

संस्कृति के भिन्न भागों के एक ही गति से न बदलने से एक भाग और दूसरे भाग में एक विलम्बना की मात्रा और अवधि उन तत्वों पर निर्भर करती है जिनके बीच विलम्बना है। यह काफी लम्बे समय तक भी रह सकती है और इस बीच असामंजस्य रहता है। भौतिक तत्व पहले बदलते हैं जिनके कारण अभौतिक तत्वों को ही सामंजस्य करना पड़ता है यदि समाज में संतुलन रहना है। सम्भव है कि कभी परिवर्तन संस्कृति के अभौतिक तत्वों में पहले हो परन्तु ऐसा बहुत कम ही होता है। ऑगबर्न के विचार में आधुनिक मनुष्य के सामने यह समस्या है कि वह किस प्रकार प्राद्योगिकी अवस्था के साथ अपने विचारने के ढंग और व्यवहार का सामंजस्य करे।

ऑगबर्न ने अपनी धारणा के समर्थन में कुछ उदाहरण दिये। पितृसत्ताक ढंग के परिवार जो कृषक समाज में जन्मे और उसके अनुकूल थे अब भी विशाल औद्योगिक और नागरिक समाजों में पाये जाते हैं। आधुनिक परिवार की अनेक समस्याओं का कारण, इसलिये, निरर्थक और पुराने ढंग के परिवार को कायम रखना है। दूसरा उदाहरण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के पुराने स्वरूपों और राजसत्ता (sovereignlty) की पुरानी धारणाओं का अब भी प्रचलित रहना है जब कि अन्य क्षेत्रों में हुए परिवर्तनों के कारण विभिन्न देश एक दूसरे के अत्यधिक निकट आ गये हैं और एक दूसरे पर अधिक निर्भर करते हैं। इसी प्रकार का एक उदाहरण हमको फैक्टरी में काम करने की बदली हुई दशाओं और पुराने श्रम-कानूनों के बीच के अन्तर में मिलती है। इसी प्रकार के उदाहरण जीवन के सभी पहलुओं से दिये जा सकते हैं।

आलोचना—ऑगबर्न की उपकल्पना से सामान्यतः समाजशास्त्री सहमत हैं, फिर भी, कुछ लेखकों ने यह मानने से इन्कार कर दिया है कि खोज और आविष्कार जीवन के अभौतिक तत्वों में परिवर्तन की शुरुआत करते हैं या उनका समाज में हमेशा ही महान प्रभाव होता है। उदाहरण के लिए, गिलफिलन (Gilfillan) ने कहा कि सामाजिक परिवर्तन अनेक जटिल कारकों का फल है और यह बताना असम्भव सा है कि उनमें से कौन सा कारक प्राथमिक है। गिलफिलन के इस निष्कर्ष

को समाजशास्त्री सिम्स (Sims) ने चुनौती दी और कहा कि यद्यपि प्राद्योगिकीय आविष्कार सामाजिक कारकों से इतने अधिक गुंथे हुये हैं कि यह निश्चित करना असम्भव है कि उनमें से कौन अधिक महत्वपूर्ण है, परन्तु फिर भी कुछ मामले ऐसे हैं जिनमें प्राद्योगिकीय कारकों की प्राथमिकता स्पष्ट है और प्रमाणित की जा सकती है ।

विचारधारा–निर्णयवाद
(Ideological Determinism)

अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों और विचारकों ने आर्थिक निर्णयवाद के सिद्धान्त का प्रत्यक्ष विरोध करते हुये, संस्कृति के अभौतिक तत्वों को सामाजिक परिवर्तन का मौलिक कारक समझा । इस प्रकार, रूसी समाजशास्त्री यूजीन डी रौबर्टी (Eugene de Roberty) ने यह कहा कि विचार ही सामाजिक जीवन में प्रमुख प्रेरक हैं : दूसरे शब्दों में सामाजिक परिवर्तन विचारों पर निर्भर करता है न कि क्रियाओं और भौतिक तत्वों पर । इस प्रकार आर्थिक या भौतिक प्रमेय अभौतिक तत्वों के आधीन है । ऐसा ही विचार फ्रेंच सामाजिक मनोवैज्ञानिक टार्ड ने भी प्रकट किया था ।

एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के अनुसार धर्म सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख सूत्र-पात कर्त्ता (initiator) है । इस विचार के प्रतिपालक ले बो जॉर्जिस सोरल (Georges Sorel),जेम्स फ्रेजर और चार्ल्स एलवुड हैं । मैक्स वैबर ने इस सिद्धान्त पर जोर दिया कि सामाजिक परिवर्तन लाने में धर्म अन्य संस्थाओं का नेतृत्व करता है । वैबर ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि अन्य धार्मिक प्रणालियों जैसे हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ताओवाद (Taoism) और यहूदी धर्म (Judaism) ने अपने अनुयायियों की आर्थिक व्यवस्था को निश्चित किया । वैबर ने इस बात को स्वीकार किया कि परिवर्तन का सूत्रपात गैर धार्मिक शक्तियों द्वारा भी हो सकता है और आध्यात्मिक और धार्मिक मूल्यों को सामाजिक संरचना का एकमात्र निश्चायक मानना अनुचित है । फिर भी, उसका यह विश्वास था कि सामान्यतः नैतिक-धार्मिक कारक ही सामाजिक परिवर्तन लाते हैं ।

आलोचना : विचारधारा-निर्णयवाद, विशेषकर धार्मिक निर्णयवाद के सिद्धान्त की भी समाजशास्त्रियों ने आलोचना की है । सॉरोकिन ने इस सम्बन्ध में प्रश्न किया है : "यदि धर्म में परिवर्तन होने से ही अन्य सभी सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन होते हैं तो कब, कैसे और क्यों स्वयं धर्म बदलता है ?"

सॉरोकिन के विचार में सामाजिक परिवर्तन का कारण संस्कृति के भिन्न भागों की अन्तःक्रिया है इनमें कोई भी भाग प्राथमिक नहीं है । सॉरोकिन और

अनेक अन्य समाजशास्त्रियों ने साँस्कृतिक परिवर्तन को बहुवाचक (अनेक कारकों की अन्तःक्रिया का फल) बताया है। उन्होंने आर्थिक या विचार-धारा निर्णयवाद को गलत बताया। फिर अनेक समाजशास्त्री परिवर्तन को बहु-कारकों का फल मानने से इन्कार करते हैं। सिम्स ने उपर्युक्त सिद्धान्तों की आलोचना करते हुये कहा है कि परिवर्तन का सूत्रपात भौतिक संस्कृति से होता है जहाँ से वह अन्य क्षेत्रों को फैलता है। इसका कारण यह है कि संस्कृति के भौतिक तत्व कहीं ज्यादा आविष्कारक और संचयी (cumulative) होते हैं बनिस्बत अभौतिक तत्वों के, उन्हें अधिक तत्परता से स्वीकार और हस्तान्तरित किया जाता है, और अन्त में, क्योंकि उनका सम्बन्ध मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं से है, वे सामाजिक परिवर्तन लाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन का चक्रवत् सिद्धान्त
(Cyclical Theories of Social Change)

यह धारणा बहुत पुरानी है कि परिवर्तन चक्रवत् ढंग से होता है। पुरानी कहावत 'इतिहास अपने को दोहराता है' इस विचार को स्पष्ट करती है।

(१) **जैवकीय चक्र का सिद्धान्त (Theory of the Biologic Cycle)**—सामाजिक परिवर्तन की चक्रवत् प्रकृति को प्रमाणित करने का प्रयत्न फ्रांसीसी मानवशास्त्री वाचर डी लापूश (Vacher de Lapouge) ने किया। लापूश ने कहा कि संस्कृति को निश्चित करने में प्रजाति सबसे महत्वपूर्ण है और अन्य प्रजातियों से श्रेष्ठ होने के कारण नॉर्डिंग प्रजाति सभ्यता की उच्च अवस्था के लिये उत्तरदायी है। सभ्यता का विकास और प्रगति उस समय होती है जब किसी समाज में श्रेष्ठ प्रजाति के व्यक्तियों की बहुतायत हो और उस समय अवनति होती है जब निकृष्ट प्रजातियों के लोग समाज में शामिल हो जाते हैं। शक्तिशाली और उच्च सभ्यता वाले विभिन्न समाजों का विदारण और नाश केवल इसलिये हुआ कि उन्होंने हीन प्रजातियों के सदस्यों को खपा लिया। पश्चिमी सभ्यता जो 'आर्य' प्रजाति की उत्पत्ति है उसका नाश निश्चित है क्योंकि लगातार बाहरी, हीन प्रजातीय तत्व वहाँ पर आकर भर रहा है और उसका नियन्त्रण दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। इस प्रकार के सिद्धान्तों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, इसलिये आजकल इनको स्वीकार नहीं किया जाता है।

(२) **सांस्कृतिक चक्र के सिद्धान्त (Theories of Cultural Cycles)**—

(i) **स्पैन्गलर के विचार**—अपनी पुस्तक The Decline of the West में स्पैन्गलर ने इतिहास के सभी पहले के लेखों की कटु आलोचना की है। वह कहता है कि सामाजिक परिवर्तन एक ही दशा में (linear) नहीं होता बल्कि चक्रवत् होता है। एक ही दिशा में परिवर्तन होने का अर्थ यह है कि कोई भी वस्तु परिवर्तित होते हुये

एक के बाद एक अगली अवस्था में प्रवेश करती है परन्तु वह कभी पीछे, अपनी प्रारम्भिक अवस्था में, नहीं आती है।

स्पैन्गलर ने सभी आदिम (primitive) समाजों को इतिहास-रहित बताया है और ऐसी आठ सभ्यताओं की खोज की है जिनका एक-सा विकास और भविष्य रहा है। इनमें से प्रत्येक का जीवन, एक विशाल शरीर (organism) की भाँति रहा है—जन्म, किशोरावस्था, पूर्णता (maturity), अवनति और विनाश और विघटन का काल। स्पैन्गलर ने समाज को उसकी उन्नति करने के काल में 'संस्कृति' कहा है, उसके पतन के काल में 'सभ्यता' कहा है।

सभी रचनात्मक क्रिया, स्पैन्गलर के विचार में, संस्कृति में होती है, और जब यह उन्नति का क्रम समाप्त हो जाता है समाज प्रविधियों के विस्तार की ओर प्रवृत्त होता है, सभ्यता बन जाता है और अवनति करना शुरू कर देता है। इस प्रकार, अवनति करता-करता वह उस अवस्था को प्राप्त होता है जहाँ से उसने उन्नति करना शुरू किया था। समाज साइकिल के पहिये की भाँति ऊपर-नीचे घूमता रहता है।

स्पैन्गलर ने इतिहास का अध्ययन निरन्तर एक ही दिशा (linear time) में करने के बजाय इनमें से प्रत्येक सभ्यता के जीवन का एक अलग कोर्स बताया है और उनके बीच की तुलना या समानता (parallel) दिखाने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिये, सीजर और क्रॉमवैल समान व्यक्तित्व के पुरुष थे और स्पैन्गलर के विचार में दोनों ही सभ्यताओं में उन दोनों का जन्म होना अनिवार्य था।

स्पैन्गलर ने यहाँ तक कहा है कि अमेरिकन सभ्यता, जो कि उन आठ सभ्याओं में से एक है, अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच गई है और अब केवल उसकी अवनति की ही आशा की जा सकती है। युद्ध और नगर इस विनाश के उदाहरण हैं।

स्पैन्गलर के विचार में समाज जन्म और मृत्यु के ढंग पर चक्रवत् घूमते हैं। इस चक्र को कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती, यद्यपि यह बीच की अवस्था में नष्ट हो सकता है जैसा कि मैक्सिको की माया सभ्यता (Maya Civilization) में हुआ जो कि अपने विकास की मध्य अवस्था में स्पेन के विजेता के हाथ नष्ट हो गई।

स्पैन्गलर के सिद्धान्त का अनेक समाजशास्त्रियों ने मजाक बनाया है क्योंकि यह वैज्ञानिक आधार पर स्थापित होने का दावा करता है जब कि उनके विचार में यह बनावटी साम्यों (analogy) पर आधारित है।

(ii) **पैरेटो के विचार**—विल्फ्रेड पैरेटो ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि समाज राजनीतिक शक्ति और अवनति के कालों से गुजरते हैं जो चक्रवत् ढंग से

दोहराये जाते हैं। सभी समाजों में दो किस्म के व्यक्ति होते हैं। एक तो वे जो परम्परागत ढंग से चलना चाहते हैं। इनको पैरेटो ने rentier कहा। दूसरे वे लोग जो नयी योजनायें बनाते हैं, जोखिम (risk) उठाना चाहते हैं और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये शक्ति का प्रयोग करते हैं। इनको पैरेटो ने speculators कहा। समाज में राजनीतिक स्वास्थ्य या अच्छी राजनीतिक स्थिति की शुरुआत तब होती है जब कुलीनतन्त्र (aristocracy), उच्च वर्ग या speculators शक्ति का प्रयोग कर राजनीतिक शक्ति हथिया लेते हैं। थोड़े समय बाद नेतृत्व-समूह अपनी कार्य-शक्ति से वंचित हो जाता है और सख्त शासन करने में असमर्थ हो जाता है। शक्ति के स्थान में शासक वर्ग दाँव-पेंच का प्रयोग अधिक करने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि अन्त में शासकवर्ग में ऐसे व्यक्ति घुस जाते हैं जिनकी rentier मनोवृत्ति होती है। यह नया स्वल्पतंत्र समूह बाहर से किसी को अपने वर्ग में नहीं आने देता जिनमें नेतृत्व-विशेषतायें हों। इसका पूर्ण रूप से अधः-पतन हो जाता है। इसी के साथ, उत्साही व्यक्ति, speculators, गिरी हुई अवस्था से फिर उठ खड़े होते हैं, नये उच्च वर्ग बना लेते हैं और पुराने समूह को हटा कर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते हैं। यह चक्र फिर शुरू हो जाता है। पैरेटो का विचार है कि समाज के आर्थिक जीवन और विचारधारा-प्रणाली इस राजनी-तिक चक्र की तरह और उसके साथ चक्रों से गुजरती है। विचारधारा सम्बन्धी चक्र में विश्वास और भरोसे का स्थान सन्देह और आलोचनात्मक मनोवृत्ति ले लेती है, जिसके स्थान में फिर कुछ समय के बाद विश्वास का युग आ जाता है। इस प्रकार यह चक्र निरन्तर चलता रहता है।

(iii) **चैपिन (Chapin) के विचार**—चैपिन ने संकालीय चक्रवत् परि-वर्तन (synchronous cyclical change) की उप-कल्पना प्रस्तुत की। इस सिद्धान्त के अनुसार संस्कृति के विभिन्न भाग या उसकी सामाजिक संस्थायें उत्पत्ति विकास और शक्ति, और नाश के चक्र से गुजरती हैं। यदि इन महत्वपूर्ण भागों, जैसे सरकार और परिवार, के चक्र एक साथ चलते हैं सम्पूर्ण संस्कृति एकीकरण (integration) की स्थिति में रहेगी। यदि वे एक साथ न चलकर आगे पीछे चलते हैं तो संस्कृति का विघटन हो जायेगा। यदि विभिन्न भाग शक्ति के काल से गुजर रहे हैं सभ्यता उन्नति करने की स्थिति में होगी। यदि वे अवनति के काल से गुजर रहे हैं तो पूर्ण संस्कृति अवनति की ओर चल रही होगी। जिस प्रकार सभी जीवित पदार्थों में विकास और नाश होना अवश्यम्भावी है उसी प्रकार साँस्कृतिक स्वरूपों में भी ऐसा होना निश्चित है।

(iv) **टॉयनबी के विचार**—टॉयनबी (Toynbee) ने अपनी 'A Study of History' नामक पुस्तक में इक्कीस संस्कृतियों या सभ्यताओं को दृष्टि में रखा

है, जबकि स्पैन्गलर ने केवल आठ। इन इक्कीस घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए टॉयनबी ने सामाजिक परिवर्तन के किसी सिद्धान्त, उनके विकास की किसी कुन्जी या बढ़ती के किसी सामान्य ढंग (pattern) को खोजने की चेष्टा की है।

टॉयनबी ने अपने सिद्धान्त को दो मुख्य तथ्यों के आधार पर रचना की है : चुनौती (challenge) और स्वीकृति (response) के तथ्य। प्रत्येक शिक्षित समाज अपना जीवन किसी चुनौती की स्वीकृति से शुरू करता है और अनेक क्रमिक चुनौतियों की क्रमिक स्वीकृतियों में अपना भविष्य निश्चित करता है। वास्तविक और प्रारम्भिक चुनौती पर्यावरण की होती है। समाज का भौगोलिक पर्यावरण ऐसा आवश्यक होना चाहिये कि वह मनुष्यों को एक चुनौती हो, अर्थात् वह इतना अच्छा व सरल नहीं होना चाहिये कि वह उससे अनुकूलन करने के लिये किसी प्रयास की आवश्यकता ही न हो, न इतने प्रतिकूल या कठोर हों कि अपने को जीवित रखने के ही प्रयास में सारी शक्ति समाप्त हो जाय।

इसके बाद जो चुनौतियाँ मनुष्य को मिलती हैं वे सामाजिक होती हैं। यह चुनौतियाँ स्वयं उसी समाज में भी मिलती हैं और बाहर के समाजों की उन्नति से भी मिलती हैं। समाज इनमें कुछ चुनौतियों को पूरा कर लेते हैं और कुछ में असफल रहते हैं और, संक्षेप में, यह उसके परिवर्तन की कहानी है, चुनौती और स्वीकृति की कहानी है, पतन और उत्थान की कहानी है।

स्पैन्गलर की अपेक्षा टॉयनबी आशावादी हैं। कुछ समाज अपने पहले के समाजों के, जिनसे वे सम्बन्धित (affiliated) हैं, अनुभवों, दन्तकथाओं और धर्म का उपभोग करके ऊँचे उठ सकते हैं। इस प्रकार इतिहास की गति चक्रवत है, परन्तु प्रत्येक चक्र—अर्थात् प्रत्येक क्रमिक (succeeding) सभ्यता—का पद पिछली सभ्यता से ऊँचा है।

सत्य तो यह है कि न तो स्पैन्गलर का निराशावाद और न टॉयनबी का आशावाद ही सबसे अच्छी ऐतिहासिक प्रमाण से भी उचित प्रमाणित हो सकता है।

(v) **सॉरोकिन के विचार**—सॉरोकिन ने सामाजिक परिवर्तन के अपने सिद्धान्त में एकरेखीय (linear) और चक्रवत् दोनों ही परिवर्तनों को अधिक लचीले ढंग से सम्मिलित किया है। सॉरोकिन कहता है कि थोड़े समय के लिये संस्कृति एक निश्चित दिशा में बढ़ सकती है और देखने में एक-रेखा के सिद्धान्त का पालन कर सकती है, परन्तु अन्त में संस्कृति की कुछ अन्दरूनी शक्तियों के कारण उसकी दिशा बदल जायेगी, वह एक नया मार्ग पकड़ेगी और विकास का एक नया काल उपस्थित होगा। यह नयी दिशा भी एक रेखा में हो सकती है; एक पैण्डुलम की भाँति आगे पीछे बढ़-हट सकती है; सम्भवतः यह एक वक्र रेखा (curve) में ऊँचे-नीचे बढ़ सकती है। किसी भी हालत में नयी दिशा की भी सीमा

होती है और कुछ समय बाद संस्कृति दोबारा एक नया रुख पकड़ लेती है। इन क्रमहीन परिवर्तनों के दरम्यान में संस्कृति कुछ अंश में या अपूर्ण रूप से अपनी किसी भी पहली स्थिति को लौट सकती है। इस दशा में वह अधिक से अधिक हद तक परन्तु पूर्ण रूप से नहीं, चक्र पूरा कर सकेगी। मानव समाज के इतिहास में संस्कृति से इतनी ही आशा की जा सकती है।

विशेषकर पूर्वी देशों से, स्पैन्गलर की भाँति, विभिन्न सभ्यताओं के इतिहास से उदाहरण लेकर उसने यह निष्कर्ष निकाला कि सभ्यताओं को तीन प्रमुख किस्मों या सुपर-प्रणालियों में बाँटा जा सकता है। यह है : काल्पनिक (ideational), आदर्शात्मक (idealistic), और ऐन्द्रिय (sensate)। इनमें से प्रत्येक का जीवन के प्रति अपना अलग दृष्टिकोण, मूल्यों का अपना कुलक (set), और व्यवहार-प्रतिमान होते हैं। इस सभी सुपर-प्रणालियों में सामाजिक संस्थायें, आर्थिक व्यवस्था, कानूनी प्रणाली, नीतियां, कला, विज्ञान और यहाँ तक कि व्यक्तियों के व्यक्तित्व जीवन के प्रमुख दर्शनशास्त्र के अनुरूप होती हैं। उसने कहा कि कुछ सभ्यतायें इतनी स्पष्ट सुपर-प्रणाली की स्थिति को प्राप्त नहीं होतीं और उनमें विभिन्न प्रणालियों का मिश्रण पाया जाता है। यह विभिन्न प्रणालियों की विशेषतायें एक दूसरे से असम्बन्धित और बगैर एकीकरण के होती हैं। इन सभ्यताओं को सॉरोकिन ने eclectic * कहा। सॉरोकिन ने कहा कि सच्चे अर्थ में महान सभ्यतायें एकीकरण की ऐसी स्थिति को प्राप्त करती हैं कि एक समय में केवल एक सुपर-प्रणाली का अमिश्रित रूप में पालन करती हैं।

सॉरोकिन ने इस बात पर बल दिया कि विभिन्न समाज, या इतिहास के विभिन्न कालों में वही समाज, वास्तविकता और मूल्यों की काल्पनिक, आदर्शात्मक और ऐन्द्रिय धारणाओं का पालन करता है। विभिन्न संस्कृतियां भिन्न सुपर-प्रणालियों का पालन इसलिये करती हैं क्योंकि वे वास्तविकता और मूल्य की सही प्रकृति ढूंढ़ने की धारणा पर आधारित हैं। उपर्युक्त तीनों में से कोई एक धारणा संस्कृति के लगभग प्रत्येक भाग को प्रभावित करती है और उसकी सुपर-प्रणाली को निश्चित करती है। इसलिये हम काल्पनिक, आदर्शात्मक और ऐन्द्रिय किस्म की संस्कृति की चर्चा करते हैं। और क्योंकि महान संस्कृतियाँ ऐसे कालों से गुजरती हैं जिनमें क्रम से यही तीन धारणायें प्रमुख होती हैं, हम इनको संस्कृति की अवस्थायें (stage) कह सकते हैं।

जीवन के काल्पनिक (ideational) दर्शनशास्त्र पर आधारित संस्कृतियाँ सामान्यतः अपने शिशुकाल में होती हैं। वास्तविकता और मूल्य को 'सुपर-ऐन्द्रिय

* विभिन्न दर्शनशास्त्रियों के सिद्धान्तों में से कुछ-कुछ ऐसी बातों को चुनने वाला जो अपने को अच्छी लगती हों।

और सुपर-ा किक ईश्वर' के रूप में समझा जाता है जब कि संवेदक-संसार मिथ्या मालूम होता ।* मनुष्य के विचार और व्यवहार, उसकी संस्थायें, संक्षेप में जीवन का उसका पूरा ढंग, इसी सिद्धान्त पर आधारित है और इसी धारणा और इसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली मूल्य-प्रणाली के चारों ओर केन्द्रित है। इस प्रकार की संस्कृति 'ईश्वर-आरोहित' (God-ridden) कही जा सकती है। इस प्रकार की संस्कृति के उदाहरण, सॉरोकिन के विचार में, ताओवादी चीन में, ईसा के जन्म से पाँच सदी पूर्व के ग्रीस में, ब्राह्मण काल और बौद्धकाल के भारत में, और मध्यकालीन ईसाई योरोप में मिलते हैं। सरल और आदिम संस्कृतियों में काल्पनिक प्रणाली के उदाहरण होपी और जूनी वन्यजातियों में मिलते हैं। ऐसी संस्कृतियों में धर्म और अन्धविश्वासों का बाहुल्य होता है।

दूसरी ओर, एक ऐसी संस्कृति होती है जिसमें वास्तविकता और मूल्य कुछ हद तक इन्द्रियों से परे और कुछ हद तक इन्द्रियों की पहुँच में होते हैं। इस प्रकार की संस्कृति को आदर्शात्मक कहा गया। मनुष्य के विचार और व्यवहार कुछ अंश में उपयोगिता और भौतिकवाद से प्रभावित होते हैं और कुछ अंश में परलोक के विचार से। सॉरोकिन के अनुसार इस प्रकार की संस्कृति प्राचीन मिश्र में कुछ काल तक, रोम में ईसा के जन्म से पहले पाँचवी सदी में और यूरोप में उसकी मृत्यु के बाद तेरहवीं और चौदहवीं सदी में।

अन्त में, ऐन्द्रिय किस्म की संस्कृति वह संस्कृति है जो इस धारणा पर आधारित है कि वास्तविकता और मूल्य वही हैं जो हमारी इन्द्रियाँ देख सकती हैं और जिन चीजों को इन्द्रियां देख न सकें वे वास्तविक नहीं हैं। ऐसी संस्कृति में विज्ञान, कानून, नैतिकता, धर्म और कला सभी इस धारणा पर आधारित होते हैं। जीवन के सम्पूर्ण तरीके की विशेषता भौतिकवादी दृष्टिकोण होता है। ईसा के जन्म से चौथी सदी से पहले से लेकर मृत्यु के बाद की तीसरी सदी के ग्रीस और रोम, अपने इतिहास के कुछ काल तक चीन, और पाँचवी सदी के बाद के पश्चिमी योरोप इस प्रकार की संस्कृति के उदाहरण हैं। यह ऐसी संस्कृति होती है जिसकी सभी बातें—कला, साहित्य, धर्म, विधि, आचार, सामाजिक सम्बन्ध और दर्शन—इन्द्रियों की अपील करती हैं और इन्द्रियों की आवश्यकताओं और इच्छाओं की पूर्ति करती हैं।

काल्पनिक (ideational) संस्कृति ऐन्द्रिय संस्कृति के विपरीत है जिसमें उपर्युक्त बातें आत्मा या मन को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, सेनसेट

* "Reality and value are then conceived of in terms of a 'Super-sensory and Superrational God', while the sensory world appears as illusory."

या ऐन्द्रिय कला देखी जा सकती है, उत्तेजनात्मक और चित्रकरण योग्य हैं; काल्पनिक कला प्रतीकात्मक (symbolic), धार्मिक और बहुधा अमूर्त होती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ऐन्द्रिय संस्कृति वैज्ञानिक है जब कि काल्पनिक संस्कृति धार्मिक है।

सॉरोकिन के विचार में इतिहास में हमें कभी इनमें से किसी भी एक संस्कृति का उसके शुद्ध स्वरूप में उदाहरण नहीं मिलता है। फिर भी, वह कहता है कि इतिहास के विभिन्न काल इन दोनों स्तम्भों के बीच हैं। पिछले तीन हजार वर्षों का पाश्चात्य इतिहास काल्पनिक और ऐन्द्रिय संस्कृति के बीच का इतिहास है। यदि संस्कृति वैज्ञानिक ढंग को बहुत अधिक अपनाने लगती है तो उसका उल्टा प्रभाव पड़ने लगता है और वह आदर्शात्मक स्थान ग्रहण करने लगती है।

सॉरोकिन के विचार में इतिहास चक्रवत् न होकर घटता है और संस्कृति इन दोनों स्थितियों को कभी पूर्ण रूप से प्राप्त न पा कर एक दूसरे के बीच चक्कर लगाती रहती है।

संस्कृति में ऐन्द्रिय से काल्पनिक और काल्पनिक से ऐन्द्रिय की ओर जो निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं उसका कारण, सॉरोकिन के अनुसार, संस्कृति की परिवर्तनशील प्रकृति है।

सॉरोकिन के इस विश्वास में कि महान् सभ्यतायें काल्पनिक, आदर्शात्मक और ऐन्द्रिय अवस्थाओं से गुजरती हैं और यह प्रत्येक अवस्था विकास और अवनति के काल से गुजरती है यह बात छुपी है कि अवनति करती हुई ऐन्द्रिय अवस्था में संस्कृति अपने को आदर्शात्मक या काल्पनिक अवस्था के लिए तैयार करती है। सॉरोकिन स्पैन्गलर से सहमत था कि सभ्यतायें वास्तव में मरती नहीं हैं बल्कि या तो अपने को फिर से नया बनाती हैं या दूसरी संस्कृतियों में प्रवेश करती हैं। सॉरोकिन के विचार में, पाश्चात्य सभ्यता अब 'वृद्ध' ऐन्द्रिय अवस्था में है अर्थात् अपनी अवनति के आख़िरी चरण में है, और सम्भवत: काल्पनिक या आदर्शात्मक युग में प्रवेश कर रही है। उसके विचार में, पाश्चात्य संस्कृति ऐसे बिन्दु तक पहुँच गई है जहाँ से उसका विघटन निश्चित है यदि, उसकी सत्यता की प्रणाली, नीतियाँ और कला अधिक उपयुक्त नहीं बनती या अपनी वास्तविक उपयुक्तता (adequacy) को प्राप्त नहीं होते।

आलोचना . सॉरोकिन सबसे कठिन समाजशास्त्रीय समस्या 'सामाजिक परिवर्तन' की अत्यन्त विचारशील एवं वैज्ञानिक ढंग से व्याख्या करता है और अन्य लेखकों की बहुत सी त्रुटियों को भी दूर करता है। पर उसके साथ-साथ उसके स्वयं के सिद्धान्त में कुछ आवश्यक प्रश्न शेष रह जाते हैं।

सबसे प्रथम तो उसका काल्पनिक और ऐन्द्रिय का अन्तर स्पष्ट नहीं है

और यह वैषयिक (objective) होने की अपेक्षा प्रातीतिक (subjective) अधिक है।

दूसरे, यह कहना कि समाज में परिवर्तन इसलिये होता है क्योंकि यह उसकी प्रकृति में है, पर्याप्त नहीं है।

तीसरे, इसमें संदेह है कि कोई व्यक्ति इस योग्य है कि वह संस्कृति में उतार-चढ़ाव लाने की योजना भी बना सके, संस्कृति में आगे होने वाली घटना की भविष्यवाणी करना तो दूर रहा।

निष्कर्ष

इन सिद्धान्तों के विवाद के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमें सामाजिक परिवर्तन जैसी जटिल और व्यापक समस्या को समझने के लिये न तो किसी एक ही सिद्धान्त या नियम को मान लेना चाहिये, न किसी विशेष कारक को ही, अपितु पर्यावरण और विभिन्न सामाजिक परिवर्तन के कारकों के मध्य में होने वाली अन्त:क्रिया द्वारा ही इन्हें समझा जा सकता है।

परिवर्तन की कोई भी दिशा विभिन्न कारकों का परिणाम है और उसे एक विशेष या विशिष्ट कारक द्वारा समझना उचित नहीं है। उदाहरण के तौर पर यदि हम 'अपराध की लहर' अथवा आत्म-हत्या में वृद्धि, एक नया धार्मिक आन्दोलन या वर्ग संघर्ष को लें तो हम यह कह सकते हैं कि बिना धारणाओं में परिवर्तन हुये यह उत्पन्न नहीं हो सकते और इसलिये हमें अपनी व्याख्या में साँस्कृतिक झुकाव को शामिल करना पड़ेगा। पर जो धारणाओं में परिवर्तन हैं वे हमारे स्वार्थ एवं आधारभूत आवश्यकताओं के परिवर्तन के साथ सामंजस्य करने के द्वारा उत्पन्न हुए हैं—और इसीलिये अपने परिवर्तन की व्याख्या में हमें उस पूर्ण अवस्था के आर्थिक, प्राद्योगिक अथवा राजनीतिक पहलू, जिसमें कि वह घटना घटित हो रही है, लेने पड़ेंगे।

१७ उद्विकास (Evolution)

जब हम केवल सामाजिक परिवर्तन पर विचार करते हैं, हम किसी सिद्धान्त, किसी दिशा, यहां तक कि निरन्तरता में रुचि नहीं रखते हैं। परिवर्तन का अर्थ समय को देखते हुए उस वस्तु में अन्तर होना है जिसके लिये इस शब्द का प्रयोग किया जा रहा है। यह परिवर्तन आगे की ओर या पीछे की ओर, उद्देश्यों की पूर्ति के लिये, उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नहीं भी, ऊँचा-नीचा हो सकता है।

प्रक्रिया (Process)

जब परिवर्तन निरन्तर (continuous) होता है, उसको प्रक्रिया कहते हैं। मैकाइवर का कहना है कि प्रक्रिया का अर्थ निरन्तर परिवर्तन से है जो कि एक निश्चित ढंग से उन शक्तियों के कारण हो रहे हैं जो कि पहले से ही उस स्थिति के अन्दर उपस्थित हैं।* प्रक्रिया का अध्ययन करते समय हम एक स्थिति से दूसरी स्थिति के बीच परिवर्तनों की एक पंक्ति (series) देखते हैं। उनमें आवश्यक रूप से यह अन्तर्निहित नहीं होता है कि दूसरी स्थिति पहली स्थिति की अपेक्षा अच्छी या बुरी है और न वह दिशा ही मालूम पड़ती है जो यह अपनाती है। प्रक्रिया ऊपर या नीचे, आगे या पीछे, संगठन या विघटन के लिये हो सकती है। प्रक्रिया का केवल यह अर्थ है कि एक-एक कदम रखते हुए एक निश्चित ढंग से एक स्थिति दूसरी स्थिति में प्रवेश कर रही है।

उद्विकास (Evolution)

जब परिवर्तन में केवल निरन्तरता ही नहीं, बल्कि परिवर्तन की दिशा भी होती है तो हम उसको उद्विकास कहते हैं।† उद्विकास बढ़ती (growth)

* "A process means continuous change taking place in a definite manner through the operation of forces present from the first within the situation."

† "When there is not only the continuity of change but direction of change we mean evolution." —Ibid.

नहीं है, उससे भिन्न है। यह बढ़ती से कुछ अधिक है। बढ़ती भी परिवर्तन की दिशा की ओर संकेत करती है : परन्तु यह केवल संख्यात्मक प्रकृति (quantitative character) के परिवर्तन की ओर संकेत करती है। उद्विकास में परिवर्तन केवल आकार में ही नहीं बल्कि ढाँचे में भी होता है।

उद्विकास अंग्रेजी शब्द evolution का हिन्दी रूपान्तर है जो कि स्वयं लैटिन शब्द evolvere से निकला है; e का अर्थ है बाहर (out) और volvere का अर्थ है लुढ़कना (to roll); evolvere का अर्थ हुआ फैलना (to unfold), खोलना और बढ़ाना (to unroll, to open and extend)। इस शब्द से तात्पर्य किसी वस्तु के अन्दरूनी विकास से है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पौधे या पशु बढ़ते (grow) हैं और अपने अङ्गों (organs) को विकसित करते हैं या आयु के बढ़ने के साथ बच्चे के मस्तिष्क का विकास होता है। इससे तात्पर्य उन विशेषताओं का प्रकट होना है जो पहले छिपी हुई या अस्पष्ट थीं। इसका अर्थ केवल बढ़ना (grow) ही नहीं है, यह इससे अधिक अर्थ रहता है। बाढ़ या मिट्टी का ढेर बढ़ता है, परन्तु विकसित नहीं होता है। यह साधारण से जटिल होने से अधिक अर्थ रहता है। मैकाइवर कहता है कि उद्विकास का अर्थ आन्तरिक प्रक्रिया द्वारा किसी प्रकृति को प्राप्त करना है।* प्रारम्भिक अवस्था अगली अवस्था की ओर ले जाती है जैसा कि अरस्तू (Aristotle) कहता है, जिसमें वस्तु अधिक पूर्णता प्राप्त करती है। यह हम शरीर के उद्विकास में देखते हैं। इसकी परिपक्वता (maturity) इसकी पूर्णता है, उस वस्तु की प्राप्ति है जो वह प्राप्त करना चाहता है। समाज के मामले में परिपक्वता (maturity) जैसी कोई वस्तु नहीं होती है, इसलिये सामाजिक उद्विकास का तथ्य अधिक कठिन है।

उद्विकास का शाब्दिक अर्थ 'प्रकटन' (unrolling) है, एक प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु के छिपे हुये या अस्पष्ट पहलू या विशेषतायें अपने को प्रकट करती हैं। यह एक ऐसा परिवर्तन है जिसमें परिवर्तित होती हुई वस्तु के अन्दर के अनेक पहलू (aspects) प्रकट होते हैं, जिसमें अन्दर विद्यमान गुणों (potentialities) को यथार्थता प्रदान की जाती है। हम उस स्थिति को उद्विकास नहीं कह सकते हैं जिसमें कोई वस्तु या प्रणाली केवल बाहरी शक्तियों के दबाव में बदल जाती है। परिवर्तन बदलती हुई इकाई के अन्दर उन शक्तियों के प्रकटन (manifestation) के रूप में होना चाहिए जो अन्दर से कार्य कर रही हैं।

वास्तव में सामाजिक जीवन का उद्विकास नहीं होता है; वह तो बढ़ता है, अधिक पूर्ण और गहरा होता है। उसके स्वरूपों (forms) का उद्विकास होता है और उसके उद्विकास का अर्थ है उनका खुलना, सामाजिक जीवन की बढ़ती

* "Evolution means the realization of a nature by internal process.'
—R. M. MacIver. *The Elements of Social Science*, p. 129.

हुई माँगों के जवाब में पहले से भिन्न अवस्था को प्राप्त होना। मैकाइवर कहता है कि जैसे-जैसे मनुष्यों की आवश्यकतायें बढ़ती हैं, वैसे-वैसे वह सामाजिक ढाँचा भी इसी के अनुसार बदलता है जिसमें इन आवश्यकताओं की पूर्ति होती है—और यही उद्विकास का अर्थ है।*

जहाँ कहीं भी समाज के इतिहास में हम समाज के अंगों (organs) या इकाइयों के बढ़ते हुए विशेषीकरण को देखते हैं, हम उसे सामाजिक उद्विकास कह सकते हैं। मैकाइवर के विचार में सामाजिक उद्विकास निम्नलिखित रूप से प्रकट होता है: (अ) अधिक श्रम-विभाजन, जिससे कि अधिक से अधिक व्यक्तियों की शक्तियाँ अधिक विशिष्ट (specific) कार्यों पर केन्द्रित हों और जिससे सहयोग की एक अच्छी पद्धति समाज में बनी रहे; (ब) क्रियात्मक समितियों और संस्थाओं की संख्या और किस्मों (variety) में बढ़ती, जिससे कि प्रत्येक की अपने कार्यों की सीमा कम हो जाये; और (स) सामाजिक संदेशवाहन (communication) के साधनों, विशेषकर भाषा के माध्यम (medium), में अधिक भिन्नता और शुद्धता (refinement)।† मैकाइवर कहता है कि जब उपर्युक्त परिवर्तन हो रहे हैं, समाज का उद्विकास भी होता रहता है।‡

हम उस ऐतिहासिक प्रक्रिया का पता नहीं लगा सकते जिसके द्वारा भिन्नता (differentiation) की यह विभिन्न श्रेणियाँ प्रस्फुटित हुईं। परन्तु यदि हम अपने आदिवासी समाजों पर ध्यान दें तो हमें उन सामान्य दिशाओं का पता लगता है जो कि उस प्रक्रिया का पालन करती हैं।

सामुदायिक प्रथा से भिन्नित समितियों की ओर
(From communal custom to differentiated associations)

संस्थाओं से पहले मनोवृत्तियों और स्वार्थों का जन्म होता है। जैसे-जैसे यह धारणायें और स्वार्थ स्पष्ट होते जाते हैं वे प्रथाओं का रूप धारण कर लेते हैं। सरल समाजों में प्रथाओं के नियम ही शासन के एकमात्र साधन हैं। जब यह प्रथायें विशाल रूप धारण कर लेती हैं, नयी आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करती हैं, जब कोई एक या अधिक स्वार्थ अन्य स्वार्थों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं तब इनसे सम्बन्धित कार्य विशेष मनुष्यों या उप-समूहों के सुपुर्द कर दिये जाते हैं।

* "As the purposes of men grow, the social structure within which they are realized changes in accordance with these—and that is the meaning of evolution." —R. M. MacIver, op. cit.,p. 122.

† MacIver.; *It Structure and Changes*. p. 405.

‡ "When the above mentioned changes are proceeding society is evolving." —Ibid.

धीरे-धीरे ये मनुष्य या उप-समूह अपने अधिकारों को जमा लेते हैं और उनको संस्था का रूप दे देते हैं। धीरे-धीरे ज्ञान और प्रवीणता (skills) में वृद्धि होती है और समूह के कुछ विशेष व्यक्तियों के द्वारा संचालित होती हैं। नये निषेध, रीतियाँ, कार्य करने के ढंग, अर्थात् नयी संस्थाओं का जन्म होता है। संस्थाओं का जन्म समितियों से पहले, अक्सर बहुत पहले, होता है। जब संस्थायें बन जाती हैं तो उनका संचालन करने के लिये कुछ साधनों की आवश्यकता होती है। समितियाँ ही वे साधन हैं। मैकाइवर के अनुसार उद्विकास की इस प्रक्रिया को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है।* –

(१) **सामुदायिक प्रथायें (communal customs)** :—राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक, धार्मिक, साँस्कृतिक प्रथायें एक दूसरे में मिली होती हैं जो धीरे-धीरे निम्न अवस्था में प्रवेश करती हैं :—

(२) **भिन्नित सामुदायिक प्रथायें (differentiated communal institutions)** : –राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक, धार्मिक, साँस्कृतिक प्रणालियाँ अलग-अलग और स्पष्ट रूप धारण कर लेती हैं और फिर धीरे-धीरे निम्नलिखित अवस्था में निहित हो जाती हैं।

(३) **भिन्नित समितियाँ (differentiated associations)**:—राज्य, आर्थिक कारपोरेशन, परिवार, चर्च आदि।

उपर्युक्त अवस्थाओं पर दृष्टि डालने से यह हमें स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि आधुनिक समितियों का जन्म प्रथाओं से हुआ है और अपनी वर्तमान दशा या स्वरूप को प्राप्त करने में इन्हें सहस्रों वर्ष लगे हैं। यह कार्य बहुत धीरे-धीरे होते हैं और पिछली दशा या स्थिति की निरन्तरता (continuity) में ही होते हैं।

यह सम्भव है कि आदिम सामाजिक दशाओं में भी छोटी-छोटी एक या दो समितियाँ कभी-कदा थोड़ी देर के लिये हो जाती हों, परन्तु समितियों के विशाल और स्थायी रूप, जैसे कि राज्य, उस समय अविचारणीय थे। आदिम दृढ़ता के लिये यह आवश्यक है कि यदि कोई व्यक्ति किसी वन्य जाति (tribe) का सदस्य है तो नातेदारी (kin) का भी सदस्य होना उसके लिये निश्चित है; यदि कोई वन्य जाति के सामान्य जीवन में भाग लेता है तो उसके देवताओं में भी विश्वास रखता है। सब बातें एक ही में मिली होती हैं। विभिन्न अलग-अलग संस्थायें शुरू में केवल सामुदायिक जीवन के विभिन्न पहलू होती हैं जो धीरे-धीरे प्रकट होते हैं। उसी विभिन्नता में नये संगठन के बीज छिपे होते हैं जो विकसित होने में सहस्रों वर्ष लेते हैं। हमारी दूसरी अवस्था (stage) में सम्पूर्ण समुदाय के लिए राजनीतिक संस्थाओं का एक

* MacIver and Page, op. cit.

ही कुलक (set) होता है। हमारी तीसरी अवस्था में (उद्विकास की), राज्य तो एक ही है, परन्तु अन्य राजनीतिक संगठन अनेक होते हैं जिनके विचार राज्य के सम्बन्ध में भिन्न होते हैं। इसी प्रकार, उद्विकास की दूसरी अवस्था में समुदाय द्वारा स्वीकृत धार्मिक संस्थाओं का एक ही कुलक (set) होता है और यह राजनीतिक संस्थाओं से सम्बद्ध है। तीसरी अवस्था में, लेकिन, यह राज्य से अलग ही नहीं हो गई, स्वतन्त्र ही नहीं हो गई बल्कि इसके परिणामस्वरूप नाना प्रकार की धार्मिक समितियों का भी इन्होंने निर्माण किया है।

हाल में, मानव प्रजाति की शुरू की दशाओं के सम्बन्ध में की गई गवेषणाओं (investigations) से यह पता लगा है कि मानव जाति ने अपने जीवन का आरम्भ निम्नतम स्तर से किया और अपने अनुभवों से प्राप्त ज्ञान को धीरे-धीरे संग्रह करके असभ्यता (savagery) से सभ्यता में प्रवेश किया।

जिस प्रकार कि इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कुछ मानव परिवार असभ्यता (savagery) की अवस्था में रहे हैं, दूसरे परिवार बर्बरता (barbarism) की अवस्था में, और दूसरे कुछ सभ्यता (civilization) की अवस्था में रहे हैं, उसी प्रकार इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह तीनों विभिन्न दशायें प्राकृतिक रूप से और प्रगति (progress) के आवश्यक क्रमों (sequence) के रूप में एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यहाँ इस बात की शहादत (evidence) देने का प्रयास किया जायेगा कि मानव जाति की प्रारम्भिक दशा अत्यन्त रुक्ष (rude) थी, अनुभव के द्वारा मानव जाति की मानसिक और नैतिक शक्तियों का क्रमिक उद्विकास (gradual evolution) हुआ और सभ्यता की सीढ़ी तक पहुँचने से पहले बढ़ती हुई विपरीत बाधाओं का सामना पड़ा।

सभी सभ्यताओं में सामाजिक जीवन की इकाई परिवार ही है। सभ्य संसार में परिवार अलग नहीं रहते हैं; असभ्य (savage) समाज में इस तरह की बात पायी जाती है, परिवार दूसरे समाजों से अलग रहते हैं। सीलोन के वेद्दा लोग इधर-उधर छितराये हुए थोड़े से परिवार के संग्रह हैं। उनकी संख्या लगभग दो हजार है और वे पेड़ों, गुफाओं और आदिम (primitive) झोपड़ियों में रहते हैं। बरसात के दिनों में कभी-कभी दो तीन परिवार कुछ दिनों एक ही गुफा में रहते हैं, परन्तु परिवार के बाहर कोई भी संगठित जीवन नहीं है। मानव जाति का प्रारम्भिक जीवन बहुत कुछ इसी प्रकार से बीता होगा। बड़े-बड़े समूहों का निर्माण और कार्यों का विभाजन होने पर ही विस्तृत जीवन विकसित हो सका होगा, और जंगली और बर्बर अवस्था से प्रगति (progress) हुई होगी।

एक ही गुफा में दो या तीन परिवारों के रहने से गोत्र का निर्माण, जैसे

कि वेद्दा लोगों में, होता है । यह गोत्र अत्यन्त छोटे होते हैं और अधिकतर गोत्रों को दूसरे गोत्रों के अस्तित्व का रत्ती भर भी ध्यान नहीं रहता, वे यही नहीं जानते हैं कि उनके गोत्र के अलावा भी कोई गोत्र है । इसके फलस्वरूप उन लोगों में वर्ग भेद (class distinction), और संगठित युद्ध भी नहीं होते, यद्यपि कि शिकार करने की भूमि को लेकर उनमें झगड़े हो सकते हैं । परिवार के अलग रहने के कारण परिवार के अन्दर ही विवाह होते हैं—छोटी बहन से विवाह करना अत्यन्त सामान्य है । स्त्रियों की संख्या कम होने के कारण इन लोगों में एक-विवाह (monogamy) ही पाया जाता है, परन्तु चरित्र की निर्मलता इनकी विशेषता है । उनका बौद्धिक स्तर अत्यन्त निम्न है और वे परमात्मा में विश्वास नहीं करते, किन्तु जादू-टोना (witchcraft) में थोड़ा विश्वास करते हैं । वेद्दा लोग एक दूसरे की सम्पति का आदर करते हैं ।

टीरा देल फ्यूगो (Tierra del Fuego) के याहगान (Yahgan) कुछ अधिक विकसित हैं । परिवार इतने अधिक अलग-अलग नहीं हैं, और शायद इसी कारण इनमें वेद्दा लोगों जैसा एक-विवाह (monogamy) और एक-निष्ठा (fidelity) नहीं पायी जाती । इनकी जनसंख्या एक हजार से भी कम है और यह लोग तीन और चार परिवारों के छोटे-छोटे समूहों में रहते हैं । इनमें गोत्र संगठन भी नहीं है, पश्चात्ताप ही न्याय का ढंग है, और यद्यपि कि परिवारों में झगड़े हो सकते हैं, उनमें कोई युद्ध संगठन नहीं होता । उनके कोई पद, मुखिया, गुलाम नहीं होते; सम्पत्ति पर सामुदायिक अधिकार नहीं होता । भूत-प्रेतों में विश्वास और उनसे भय, यहीं तक उनका धर्म सीमित है । मनुष्य-मांस-भक्षी यह नहीं हैं, परन्तु फिर भी इनमें शिशु-हत्या की आज्ञा है ।

यद्यपि कि हम यह नहीं सोच सकते कि मनुष्य जाति का प्रारम्भिक जीवन वेद्दा और याहगान लोगों जैसा ही था, फिर भी हमें इस बात का कुछ आभास तो मिलता है कि उस समय सामाजिक जीवन कैसा होता है जब वह परिवार तक ही सीमित होता है । उनके सामाजिक संगठन, शान्ति स्थापित करने के साधन, प्रथायें कायम रखना, उनके विश्वास आदि की अनिश्चितता वास्तव में मनुष्य जाति की अनिश्चितता है जिसने विचार करना भी नहीं शुरू किया है । अनिश्चितता ही सभ्यता की ओर बढ़ने का प्रथम चरण है ।

इस प्रकार, गवेष्णा (investigation) की दो रेखाओं (lines) की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है । एक तो आविष्कारों और अनुसंधानों से होकर बढ़ती है, और दूसरी प्राथमिक संस्थाओं से होकर । इन तथ्यों से कुछ विचारों, लालसाओं (passions) और अभिलाषाओं (aspirations) के क्रमिक निर्माण

(gradual formation) और उत्तरगामी (subsequent) विकास का हमें आभास मिलता है। आविष्कारों और अनुसंधानों के अतिरिक्त ये निम्नलिखित हैं :-

(१) जीविका (subsistence); (२) सरकार; (३) भाषा; (४) परिवार; (५) धर्म; (६) घरेलू जीवन और मकान बनाने की विद्या ((house life and architecture); और (७) सम्पत्ति।

(१) जीविकोपार्जन की अनेक क्रमिक (successive) कलाओं या विधियों द्वारा, जो समय-समय पर निकाली गई, बढ़ाया और ठीक किया गया है, और इनको आविष्कारों और अनुसंधानों से सम्बन्धित किया गया है।

(२) सरकार के स्वरूप की उत्पत्ति को हम असभ्यता (savagery) की अवस्था के समय के गणों (gens) के संगठन में ढूँढ़ सकते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे राजनीतिक समाज की स्थापना हुई।

(३) ऐसा लगता है कि मानव बोली (speech) चेहरे के भाव (expression) के अत्यन्त रुक्ष (rudest) और सरल स्वरूपों से विकसित हुई। हावभाव (gesture) या इशारे की भाषा, जैसा कि लुक्रेटियस (Lucretius) ने कहा है, स्पष्ट और संयुक्त (articulate) भाषा से पहले आई, जिस प्रकार कि बोली से पहले विचार आये। एकाक्षरी (monosyllabical) अनेक अक्षरों के संयुक्त रूप (syllabical) से पहले शुरू हुई, और फिर धीरे-धीरे पूरे वाक्य बोले जाने लगे। मानव बुद्धि ने मुँह से निकलने वाली ध्वनियों से लाभ उठाकर स्पष्ट और संयुक्त भाषा (articulate) का उद्विकास किया।

(४) परिवार के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि इसकी विभिन्न अवस्थाओं का आरम्भ रक्त-सम्बन्ध (consanguinity) और दाम्पत्य जीवन (affinity) से हुआ, विवाह सम्बन्धी नियम बनाने के बाद इसके स्वरूप विभिन्न कालों और अवस्थाओं में प्रकट हुए।

(५) धार्मिक विचारों के जन्म और विकास के सम्बन्ध में इतनी कठिनाइयाँ हैं कि इस बारे में कोई सन्तोषजनक उत्तर देना सरल नहीं है। धर्म का सम्बन्ध विचारशक्ति और उद्वेगात्मक (emotional) प्रकृति के साथ और इसके फलस्वरूप ज्ञान के ऐसे अनिश्चित तत्वों के साथ है कि सभी आदिवासी धर्म अस्पष्ट और मूर्खतापूर्ण मालूम पड़ते हैं।

(६) मकान निर्माण कला के उद्विकास का हमें कुछ आभास मिलता है। इसकी शुरुआत असभ्यों (savages) की झोपड़ियों से हुई, उसके बाद क्रम से बर्बरों (barbarians) के सामुदायिक मकान, सभ्य राष्ट्रों में अलग-अलग परिवारों के अलग मकान बने।

(७) सम्पत्ति का विचार मनुष्य के मस्तिष्क में धीरे-धीरे जमा और बहुत

लम्बे समय तक कमजोर बना रहा। असभ्यता (savagery)की अवस्था शुरू होने पर इस (सम्पत्ति) के कीटाणु (germ) के विकसित होने के लिए उस अवस्था और बर्बरता की अवस्था के पूर्ण अनुभव की आवश्यकता थी, जिससे मानव मस्तिष्क इसके प्रभाव को स्वीकार कर सकता। सम्पत्ति का एक अभिलाषा (passion) के रूप में अन्य अभिलाषाओं (passions) पर विजय प्राप्त करना ही सभ्यता की शुरुआत थी। इससे केवल यही सम्भव नहीं हुआ कि मानवजाति ने उन बाधाओं पर विजय प्राप्त कर ली जिनकी वजह से सभ्यता के विकास में इतनी देरी हुई, बल्कि इसके कारण भौगोलिक क्षेत्र (territory) और सम्पत्ति के आधार पर राजनीतिक समाज की स्थापना हो सकी।

यहाँ पर हम यह कह सकते हैं कि सरकार के सभी स्वरूपों को हम दो सामान्य योजनाओं (plans) में, योजना शब्द का मनोवैज्ञानिक अर्थ में प्रयोग करते हुए देख सकते हैं। सरकार के स्वरूपों की पहली योजना व्यक्तियों और उनके व्यक्तिगत सम्बन्धों पर आधारित हैं और उसको समाज (society) कहा जा सकता है। गण (gens) इस संगठन की इकाई (unit) है। प्राचीन काल में इनके जोड़ की क्रमिक (successive) अवस्थाओं को बतलाते हुए हम गण (gens), फ्रैट्री (phratry), वन्यजाति (tribe) और अनेक वन्य जातियों (tribes) का योग जिससे राष्ट्र का निर्माण हुआ, का उल्लेख करते हैं। पहले अनेक वन्यजातियों का योग (confederacy) हुआ जो कि स्वतन्त्र या अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों में रहती थीं। बाद में, एक ही क्षेत्र में अनेक वन्यजातियों का योग होने से एक राष्ट्र का निर्माण हुआ। गणों (gens) की उत्पत्ति के समय से, सभी प्राचीन समाजों में ऐसे ही संगठन पाये गये हैं; और ऐसे ही संगठन ग्रीस और रोम में सभ्यता के आने के बाद तक रहे। सरकार के स्वरूपों की दूसरी योजना भौगोलिक क्षेत्र (territory) और सम्पत्ति पर आधारित है, और उसको राज्य (civitas) कहा जा सकता है। इस प्रकार के संगठन का आधार नगर (township ward) थे जिनकी अपनी क्षेत्रीय सीमायें और सम्पत्ति थी और इसका फल राजनीतिक समाज है। राजनीतिक समाज भौगोलिक क्षेत्रों पर संगठित है, और क्षेत्रीय सम्बन्धों के द्वारा व्यक्तियों और उनकी सम्पत्ति की देखभाल करता है। इस योग (integration) की क्रमिक (successive) अवस्थायें निम्नलिखित हैं: नगर या गढ़ (township or ward), जो कि संगठन की एक इकाई है; सूबा या प्रान्त (county or province), जो कि नगरों या गढ़ों का संग्रह है; राष्ट्र जो कि सूबों या प्रान्तों का संग्रह है जिसके निवासी एक राजनीतिक समाज में संगठित हैं।

इसके अतिरिक्त हम यह देखते हैं कि बर्बरों की, यहाँ तक कि असभ्यों की, पारिवारिक संस्थाओं के उदाहरण अब भी हमें कुछ परिवारों में दिखाई देते

है। यह ऐसे समाज के संगठन में दिखाई देते हैं जो कि लिंग (sex), नातेदारी (kin), या भौगोलिक सीमा के आधार पर बने हुए हैं; विवाह और परिवार के क्रमिक स्वरूपों, और उनके द्वारा निर्मित सगोत्रता (consanguinity) की प्रणालियों के द्वारा दिखाई देते हैं; मकानों के द्वारा दिखाई देते हैं और सम्पत्ति के अधिकार और वंशाधिकार (inheritance) से प्रभावित रीतियों की प्रगति में देखे जा सकते हैं।

यहां पर यह भी कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक अवस्था में मानव जाति को हर जगह एक से ही अनुभव हुए; एक ही दशाओं में मानव आवश्यकतायें, अधिकतर एक से ही थीं; और सम्पूर्ण मानव जाति का मस्तिष्क एक समान ही कार्य करता था।* यही कारण है कि एक सी संस्थायें सभी समाजों में जन्मीं। प्रमुख संस्थाओं और जीवन से सम्बन्धित कलाओं के कीटाणु तो उसी समय विकसित हो गये थे जब कि मनुष्य असभ्य (savage) था। इसके बाद बर्बरता और सभ्यता की अवस्था में प्राप्त अनुभवों का पूर्ण उपयोग करके आधुनिक संस्थाओं का जन्म हुआ। विभिन्न महाद्वीपों से एक सी संस्थाओं और उनकी उत्पत्ति के सामान्य कारण इस बात के प्रमाण हैं कि सभी जगह मनुष्य एक सामान्य स्टॉक से निकला है।

असभ्यता के काल को, जिनके प्रारम्भिक काल के बारे में बहुत ही थोड़ा ज्ञान है, तीन उपकालों में बाँटा जा सकता है। तीन उप-कालों (sub-periods) को हम असभ्यता के पुरातन, मध्यम और बाद के काल के नाम से पुकार सकते हैं, और प्रत्येक उपकाल में समाज की दशा को, इसी क्रम से असभ्यता के निम्न, मध्यम और उच्च-स्तर कह सकते हैं।

इसी प्रकार बर्बरता काल को भी हम तीन उप-कालों में विभाजित कर सकते हैं, और क्रम से बर्बरता के पुरातन, मध्यम, और बाद के काल कह सकते हैं और इसी क्रम से प्रत्येक समाज की दशा को बर्बरता के निम्न, मध्यम और उच्च-स्तर कह सकते हैं।

समाज की अवस्थायें (Stages of Society)

I असभ्यता का निम्न स्तर
(Lower status of savagery)

यह काल मानव जाति के शैशवकाल से आरम्भ हुआ और मछली मार कर पेट भरने और आग जलाने और उसके प्रयोग करने के ज्ञान के साथ अन्त हुआ। उस समय मनुष्य अपने सीमित क्षेत्रों और निवासस्थान में रहते थे और फलों और कन्दमूल से अपना पेट भरते थे। संयुक्त (articulate) भाषा का प्रारम्भ इसी काल

* Lewis Morgan, *Ancient Society* p. 314,

से हुआ है। मानव जाति में ऐसी किसी भी वन्य जाति का उदाहरण ऐतिहासिक काल तक नहीं रहा।

II असभ्यता का मध्य स्तर
(Middle status of savagery)

इसका आरम्भ मछली पकड़ने और खाने और आग के प्रयोग के ज्ञान के साथ हुआ और धनुष और बाण के आविष्कार के साथ इसका अन्त हुआ। इस अवस्था में मानव जाति ने अपने सीमित निवास स्थान से निकल कर पृथ्वी पर चारों ओर फैलना शुरू कर दिया। मॉर्गन के विचार से, जिस समय इन जातियों की खोज हुई तब अनेक आस्ट्रेलियन जातियाँ और पॉलिनेशियन जातियाँ इस अवस्था के उदाहरण के रूप में मिलीं।

III असभ्यता का उच्च स्तर
(Upper status of savagery)

इसका आरम्भ धनुष और बाण के आविष्कार के साथ हुआ और बर्तन बनाने (pottery) की कला के आविष्कारों के साथ इसका अन्त हुआ। इस काल और स्तर की वन्यजातियों, के उदाहरण हमें हडसन बे टैरीटरी (Hudson Bay Territory) की अथाबास्कन वन्यजातियों, कोलम्बिया की घाटी की वन्यजातियों, और उत्तरी दक्षिणी और अमेरिका के तटों की कुछ वन्यजातियों में मिलते हैं।

IV बर्बरता का निम्न स्तर
(Lower status of barbarism)

बर्तन बनाने की कला के आविष्कार और प्रयोग को मॉर्गन आदि ने असभ्यता और बर्बरता के बीच की दीवार माना है। दोनों अवस्थाओं की भिन्न दशाओं के सत्य को हमेशा से ही स्वीकार किया गया है, परन्तु कहाँ पर जाकर असभ्यता का अन्त हुआ और बर्बरता का आरम्भ हुआ, इस बात या आधार को किसी ने प्रमाणिक रूप से बताने का प्रयास नहीं किया है। इसीलिए हम ऐसी सब वन्यजातियों को असभ्य (savages) कहेंगे जिनके पास बर्तन बनाने की कला नहीं थी और ऐसी सब वन्यजातियों को बर्बर (barbarians) कहेंगे जिनके पास बर्तन बनाने की कला थी परन्तु जिनके पास वर्णाक्षर (phonetic alphabet) और लिखने की कला नहीं थी।

इस प्रकार, बर्बरता का प्रथम उप-काल बर्तन बनाने की कला के साथ आरम्भ हुआ, चाहे यह स्वयं आविष्कार करके या बाहर से सीख कर हुआ हो। इस काल का अन्त, पूर्वी गोलार्ध (eastern hemisphere) में पशुओं के पालन और पश्चिमी गोलार्ध में सिंचाई के द्वारा मक्के और पौधों की खेती और मकान बनाने में धूप में सुखाई ईंटों और पत्थरों के प्रयोग के साथ हुआ।

साँस्कृतिक श्रेणियाँ (Cultural Grades)	अवस्थायें (Phases)
III सभ्यता (**Civilization**)	उच्च सभ्यतायें
	मध्य सभ्यतायें
	निम्न सभ्यतायें
II बर्बरता (**Barbarism**)	उच्च श्रेणी— हल (Plough) की संस्कृति और खानाबदोश चरवाहे
	शुरू के भूमि जोतने वाले चरवाहे
I असभ्यता (**Savagery**)	उच्च श्रेणी के शिकारी
	मध्यम श्रेणी के शिकारी
	मानव उत्पत्ति

मनुष्य का आर्थिक उद्विकास*

विशेषतायें (Characteristics)	उदाहरण (Examples)
ऊँचे पैमाने पर उद्योग का प्राइवेट पूंजीवाद संगठन । मशीन का ऊँचे पैमाने पर प्रयोग । उद्योग पर राज्य के नियन्त्रण का आरम्भ ।	आधुनिक पश्चिमी सभ्यता के राष्ट्र; जापान ।
उच्च पैमाने पर आर्थिक संगठन का प्रारम्भ; श्रम-विभाजन और विशेषी-करण ।	रोमन साम्राज्य; १८ वीं शताब्दी से पहले के लैटिन और ट्यूटोनिक राष्ट्र ।
व्यापार और हस्त-कला । नगर ।	मैक्सिको और पीरू की प्राचीन संस्कृतियाँ; सोलन से पहले के ग्रीक, प्यूनिक युद्धों तक के रोमन; मध्यकालीन योरोप ।
पुरुषों में श्रम-विभाजन; धातुयें ।	होमरिक ग्रीक; गणराज्य की स्थापना से पहले का रोम; अफ्रीकन किसान ।
स्त्रियों और पुरुषों के बीच श्रम-विभाजन; पत्थर; पालिश किये हुये हथियार ।	न्योलिथिक मनुष्य; रैड इण्डियन शिकारी और मक्के की खेती वाले; एशिया और अफ्रीका के रेगिस्तानों के खानाबदोश ।
सूत कातना, कपड़ा बुनना, बर्तन बनाना, नाव; पालतू पशु । स्थाई निवास-स्थान ।	नार्थ अमेरिकन इण्डियन ।
फलों आदि का बटोरना, छोटे पशुओं का शिकार, गुफायें या स्थायी निवास-स्थान ।	ऑस्ट्रेलियन आदिवासी; अफ्रीकन पिगमी और बुशमैन; वेद्दा, याहगान, अण्डमा-नीज; ऐस्किमो ।
संयुक्त बोली (articulate speech) का विकास; आदिम उपकरणों का निर्माण; अग्नि के प्रयोग की खोज ।	कोई भी नहीं बचा है ।

* Lewis Morgan, *Ancient Society*.

V बर्बरता का मध्य स्तर
(Middle status of barbarism)

जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है इसका आरम्भ पूर्वी गोलार्ध में पशुपालन और पश्चिमी गोलार्ध में सिंचाई द्वारा खेती और मकान बनाने में धूप में सुखाई ईंटों और पत्थरों के प्रयोग के साथ हुआ। इस काल और स्तर का अन्त मॉर्गन के अनुसार, कच्चे लोहे को गलाने की प्रक्रिया के आविष्कार के साथ हुआ। इस मध्य स्तर में उदाहरण के लिये, हम न्यू मैक्सिको, मैक्सिको, मध्य अमेरिका और पीरू की वन्यजातियों को रख सकते हैं। इस स्तर में पूर्वी गोलार्ध की वे वन्य-जातियाँ भी आती हैं जो पशु पालन करती थीं परन्तु जिनको लोहे के सम्बन्ध में कोई भी ज्ञान नहीं था।

VI बर्बरता का उच्च स्तर
(Upper status of barbarism)

इसका आरम्भ लोहे की वस्तुओं के निर्माण के साथ हुआ और अन्त वर्णाक्षर (phonetic alphabet) के आविष्कार और साहित्यिक लेखों में लेखनी के प्रयोग के साथ हुआ। यहीं से सभ्यता आरम्भ होती है। इस स्तरकाल में, उदाहरण के लिए हम होमरिक (Homeric) युग की ग्रीस की वन्यजातियों, रोम की स्थापना से थोड़े समय पूर्व की इटैलियन वन्य जातियों और सीजर (Caeser) के समय की जर्मनी की वन्य जातियों को ले सकते हैं।

VII सभ्यता का स्तर (Status of civilization)

यह वर्णाक्षर (phonetic alphabet) के प्रयोग और साहित्यिक लेखों के उत्पादन के साथ आरम्भ हुआ और इसको प्राचीन और आधुनिक में विभाजित किया जा सकता है।

वह अवस्था, जिससे मानव जाति का विशाल भाग अवश्य गुजरा होगा, ग्राम समुदाय है। ग्राम समुदाय की विशेषतायें यह हैं कि मनुष्य भूमि के निश्चित क्षेत्र पर स्थायी रूप से रहते हैं जिस पर सबका अधिकार होता है और खेती करते हैं। अनेक परिवारों की एक वन्य जाति अनेक अलग-अलग गाँवों में स्थायी रूप से रहने लगेगी या कुछ अंश में खानाबदोश और कुछ अंश में स्थायी रूप से बनी रहेंगी। जैसा कि हीसगीर के हैबरीडियन द्वीप (Hebridean Isle of Heisgeir) निवासियों के उदाहरण से स्पष्ट है। समाज की बढ़ती हुई निश्चितता का प्रमाण खेत के बीच के मकानों (homestead) में परिवारों का रहना और गार्हस्थ्यों (households) के मुखियों का गांव के मुखियों के आधीन एक ग्राम पंचायत बनाना है।

१८ प्रगति (Progress)

प्रगति अंग्रेजी शब्द 'progress' का हिन्दी रूपान्तर है जो कि स्वयं लैटिन शब्द 'pro-gredior' से निकला है जिसका अर्थ आगे बढ़ना (to stepforward) है। इस प्रकार प्रगति का मौलिक अर्थ किसी वांछित या इच्छित दिशा या लक्ष्य (ends) की ओर बढ़ना है, जिससे कि प्रगति उतने ही प्रकार की हो सके जितने कि वाँछनीय लक्ष्य (ends) हों, उदाहरण के लिये, ज्ञान-प्राप्ति में प्रगति, स्वास्थ्य में प्रगति आदि। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से, प्रगति में नैतिकता का तत्व निहित है और प्रगति से अर्थ उन नैतिक मूल्यों की ओर बढ़ना है जिनको प्राप्त करने के लिये अनेक युगों से मनुष्य प्रयास करता आया है।

पिछले अध्याय में हम यह लिख चुके हैं कि उद्विकास (evolution) एक निरन्तर और क्रमिक (connected) परिवर्तन है। हमने यह भी लिखा है कि यह परिवर्तन किसी भी दिशा में हो सकता है, यह उत्थान और पतन या दोनों ही हो सकता है। प्रगति (progress) अपेक्षाकृत एक संकुचित (narrower) तथ्य है। यह परिवर्तन है, परन्तु यह परिवर्तन एक वांछित या स्वीकृत दिशा में होता है, न कि किसी भी दिशा में। प्रगति एक प्रकार का वांक्षित उद्विकास है। लम्ले कहता है कि जब हम उद्विकास के विषय में चर्चा करते हैं तो हमारी बात मनुष्य से ही आवश्यक रूप से सम्बन्धित नहीं रहती है परन्तु जब हम प्रगति के विषय में चर्चा करते हैं तो हमारा विषय हमेशा मनुष्य ही होता है। यदि उद्विकास की दिशा हमारे सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति भी करती है, तो यह प्रगति भी है।* फ़ेयर चाइल्ड ने कहा कि किसी स्वीकृत और वाँछित लक्ष्य या उद्देश्य की दिशा में बढ़ना ही प्रगति है।†

* "......if the direction of evolutionary change brings also a fuller realization of the values we cheris hthen for us it is also progress."
—MacIver and Page.

† "Movement in the direction of a recognized and desired goal or objective is progress." —Fairchild : *Dictionary of Sociology*, p. 236

टी० एच० हॉबहाउस (T. H. Hobhouse) ने उद्‌विकास और प्रगति का अन्तर बताने की चेष्टा की है। उन्होंने कहा है :उद्‌विकास से मेरा तात्पर्य किसी भी प्रकार की बढ़ती से है : सामाजिक प्रगति सामाजिक जीवन की उन गुणों की दृष्टि से बढ़ती है जिनका मनुष्य सोच-समझ कर, या ऐसे ही, मूल्य लगाते हैं। इस प्रकार सामाजिक उद्‌विकास की अनेक सम्भावनाओं में से सामाजिक प्रगति केवल एक सम्भावना है। कम से कम यह धारणा नहीं बनती है कि सामाजिक उद्‌विकास का कोई और प्रत्येक स्वरूप सामाजिक प्रगति में भी एक स्वरूप या एक चरण है।"हॉबहाउस कहता है : उदाहरण के लिए, जाति प्रणाली सामाजिक प्रणाली का एक फल है, और जितनी कठोर (rigid) और संकीर्ण जाति होगी, जितना जटिल (complex) श्रेणी नियम (hierarchy) होगा, उतने ही अधिक पूर्णरूप से जाति-प्रणाली का उद्‌विकास होगा। जैसे-जैसे एक ढीली और प्रारम्भिक अवस्था की जाति-प्रणाली एक कठोर और अत्यन्त दृढ़ जाति-प्रणाली बनती जाती है, हम उद्‌विकास की एक स्पष्ट प्रक्रिया देखते हैं, परन्तु हममें से अनेक व्यक्ति इस बात पर जोरों से प्रतिवाद करेंगे कि क्या इसको किसी प्रकार सामाजिक प्रगति का एक पहलू समझा जा सकता है ? मानव मूल्यों की दृष्टि से देखते हुए, यह अवनति अधिक मालूम पड़ती है।

इसके आगे, हॉबहाउस कहता है कि यह सत्य कि किसी वस्तु का उद्‌विकास हो रहा है, इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह अच्छी ही है; यह सत्य कि समाज का उद्‌विकास हुआ है, कोई प्रमाण नहीं है कि उसने प्रगति की है।

प्रोफेसर टॉड (Todd) ने अपनी पुस्तक Theories of Social Progress' में सामाजिक प्रगति के सम्बन्ध में दिये गये विचारों का अध्ययन किया और उनको चार भागों में विभाजित किया—भौतिकवादी, प्राणीशास्त्रीय, संस्थात्मक और आदर्शवादी। इसका अर्थ यह है कि जब कभी भी प्रगति के विचारकों ने प्रगति का संस्थात्मक और आदर्शवादी दृष्टिकोण रखा है। इसके साथ, जैसा कि आगे स्वयं स्पष्ट हो जायेगा, उन्होंने उद्‌विकास और प्रगति में किसी भी प्रकार का भेद नहीं किया है।

(i) **भौतिकवादी (Materialistic)** :—अनेक लेखकों ने यह विचार प्रस्तुत किये हैं कि अनुकूल जलवायु, अच्छी मिट्टी, सन्तोषजनक टौपोग्राफी (topography), वर्षा की मात्रा, आर्द्रता (humidity) और अन्य प्राकृतिक विशेषताओं पर ही सामाजिक प्रगति निर्भर करती है और उसी के निश्चित होती है। एक लेखक ने इस बात पर बल दिया है कि तूफानी जलवायु के कारण जापान में एक विशेष प्रकार का मस्तिष्क चुना और सहेजा गया है। दूसरे लेखकों ने कहा है कि

सर्वत्र ठंडा जलवायु मानव हृदय और मस्तिष्क को शान्त और स्थिर रखता है। तीसरे लेखक का कहना है कि स्थान से कार्य निश्चित होता है और कार्य सामाजिक संगठन निश्चित करता है।

इन सब लेखकों के विचार में मनुष्य ने उतनी ही प्रगति की है जितना कि भौगोलिक पर्यावरण ने उसको बाध्य किया है। इस बात की बिल्कुल अवहेलना की गई है कि अनेक पिछड़े हुये लोग अनुकूल भूमि- प्रदेश में रहते हैं।

(ii) **प्राणीशास्त्रीय (Biologic)**:–कुछ लेखकों ने इस बात पर बल दिया है कि मानव प्रगति का एकमात्र कारण प्राकृतिक प्रवरण (natural selection) है। उन्होंने कहा है कि मनुष्य ने मनुष्य बनने के लिये अपने मस्तिष्क, फुर्ती, आश्चर्य-जनक हाथ, और अन्य गुणों को प्राप्त किया। उसने अपनी ओर से कुछ भी नहीं किया, प्राकृतिक प्रवरण के द्वारा उसे यह सब गुण प्राप्त हो गये और वह एक योग्य (fit) व्यक्ति बन गया।

इन्हीं लेखकों के समूह में ऐसे व्यक्ति भी हैं जो कि अमिश्रित प्रजाति (eugenically pure race) पर बल देते हैं और कहते हैं कि सोच विचार कर ही यौन-सम्बन्ध करना मुश्किल है क्योंकि हम यही ठीक से नहीं जानते कि किसको और क्यों चुना जाये—बहुत कुछ अंश में यह मानव मूल्यों पर निर्भर करते हैं। प्राणीशास्त्रियों के दूसरे समूह का कथन है कि संसार में केवल एक ही शुद्ध प्रजाति (race) है और वह नार्डिक (Nordic) प्रजाति है और प्रगति करने का एकमात्र तरीका नार्डिक ढंग है। उनके विचार में सब प्रजातियों को आपस में लड़ने दीजिये और अन्त में नार्डिक लोग ही विजयी होंगे; यही प्रगति होगी, चाहे अन्य प्रजातियों का नाश ही क्यों न हो जाये। परन्तु, जैसा कि मैकाइवर ने कहा है, मनुष्य के सम्बन्ध में प्राकृतिक प्रवरण (natural selection) पूर्ण और शुद्ध रूप से प्राकृतिक नहीं होता, बल्कि कुछ अंश में सामाजिक भी होता है अर्थात् उसमें मानव मूल्यों का भी समावेश होता है।

(iii) **संस्थावादी (Institutionalistic)** :—इस समूह में प्रोफेसर टॉट ने उन सब लेखकों को सम्मिलित किया है जिन्होंने सम्पत्ति या परिवार, कुछ प्रकार की सरकार या अच्छे कानून या जनमत से बने कुछ राज्य या महान् पुरुषों को ही आधार मान कर प्रगति की परिभाषा की है।

अनेक लेखकों ने सम्पत्ति के संग्रह को ही प्रगति का आधार माना है; जितनी अधिक सम्पत्ति होगी उतनी ही अधिक प्रगति होगी; जितनी अधिक प्राइवेट सम्पत्ति होगी उतनी ही अधिक प्रगति होगी।

इसी प्रकार दूसरे लेखकों ने कानून को ही प्रगति का आधार माना है— जितने अधिक कानून हों उतना ही अधिक अच्छा होगा। स्वभाव से मनुष्य पापी है

और कानून के बन्धनों के द्वारा उस पर नियन्त्रण रखना चाहिए—यह इन लेखकों के विचार हैं। क्योंकि प्रतिदिन नये कानून बन रहे हैं और कानूनों की संख्या बढ़ रही हैं, इसलिए हम प्रगति कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे लेखकों ने कुशल संगठन (efficient organization) को आधार मानकर प्रगति की परिभाषा दी है। उनके विचार में सरकार, उद्योग, धर्म, शिक्षा में अधिक प्रवीणता ही प्रगति है।

(iv) **आदर्शवादी (Ideologic)**—एक ओर, वेदान्तियों या आध्यात्म-वादियों (theologians) का कहना है कि प्रगति तभी हो सकती है जब भगवान के आदेशों के अनुसार ही मनुष्य कार्य करें।

दूसरी ओर, बुद्धिवादियों (intellectualists) का कहना है कि प्रगति तभी सम्भव है जब कि मनुष्य ऐसे कार्य करें जिससे ज्ञान का अर्जन और संग्रह हो। यदि मनुष्य को कभी ज्ञान हो जायेगा तो वह अपने आप जान जायेगा कि क्या उचित है। विचारशीलता सबसे बड़ी शक्ति है।

तीसरी ओर, कलाकारों (artists) ने सुन्दरता, शक्ति, संगीत, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन से कुरूप वस्तुओं के त्याग ही को प्रगति का आधार माना है। जहाँ कहीं भी हमारे पास अधिक से अधिक संख्या में सुन्दर इमारतें, पार्क और सड़कें हैं; अधिक से अधिक संख्या में सुन्दर कवितायें, गीत, ड्रामा हैं; अधिक से अधिक संख्या में शान्तिमय सामाजिक संगठन है; कम से कम अश्लील साहित्य है; कूड़े करकट के कम से कम ढेर हैं; कम से कम सस्ते या अश्लील संगीत हैं; कम निर्धनता और अपराध, दुराचार और रोग हैं; कम युद्ध और अफवाहें हैं तो हम प्रगति कर रहे हैं।

परन्तु उपर्युक्त लेखकों के विचारों पर आपत्ति भी की जा सकती है। हम किस प्रकार से यह विश्वास कर सकते हैं कि सामान्य रूप से प्रगति हो रही है? यदि यह कहा जाये कि संसार में भ्रातृभाव बढ़ रहा है, तो उसके साथ, दूसरी ओर, अधिक और भीषण युद्ध और अधिक हत्यायें भी हो रही हैं। पिछले युग की अपेक्षा अधिक और अच्छे मकानों की व्यवस्था है, तो दूसरी ओर ऐसे गन्दे और टूटे-फूटे मकान भी दिखाई देते हैं जो कि पहले कभी भी नहीं देखे गये। दूसरे शब्दों में, प्रगति के सम्बन्ध में अनेक निराशावादी और आशावादी लेखक भी हैं।

प्रगति के आधार (The Criteria of Progress)

वास्तव में प्रगति के अनेक आधार बताये गये हैं परन्तु हम यहाँ केवल चार विषयों पर ही संक्षेप में विचार करेंगे—जनसंख्या, स्वास्थ्य और दीर्घायु सम्पत्ति और रीतियाँ।

(१) **जनसंख्या (Population)**—कुछ लेखकों का कहना है कि प्रगति का मापदण्ड जनसंख्या ही है। उनके विचार में यदि जनसंख्या बढ़ रही है तो हम

प्रगति कर रहे हैं; यदि वह कम हो रही है, तो हम प्रगति नहीं कर रहे हैं बल्कि अवनति कर रहे हैं। यह सम्भव है, और ऐसा अनेक बार होता रहा है कि जनसंख्या समाज के साधनों को देखते हुए बहुत बढ़ जायें, और फिर एकदम से कम हो जाये। यह बतलाना मुश्किल होगा कि यह अवस्था कैसे प्रगति होगी। इस प्रकार कुछ लेखकों का कहना है कि जनसंख्या न तो बहुत अधिक हो और न बहुत कम बल्कि बीच की हो। इन लेखकों के विचार में 'optimum population' होनी चाहिए अर्थात् केवल इतनी अधिक कि वह ऊँचे से ऊँचा जीवन स्तर बनाये रखे। परन्तु यह कसौटियाँ (test) केवल जनसंख्या का ही परीक्षण नहीं हुईं; बल्कि अन्य वस्तुओं, जैसे कि सम्पत्ति, का भी परीक्षण हुई। कोई भी व्यक्ति यह नहीं जानता हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका या भारत या अन्य किसी देश के लिये कितनी जनसंख्या ऑप्टिमम होगी।

इसके अतिरिक्त, इस प्रकार का जनसंख्या-परीक्षण संदेहपूर्ण है। टाड (Todd) ने ठीक ही कहा है कि इस बात के समर्थक किसी व्यक्तिगत उद्देश्य के कारण ही पक्षपातपूर्वक ऐसा कहते हैं। उदाहरण के लिए, प्रवरणवादी (selectionists) बड़ी जनसंख्या के लिये इस लिए बल देते हैं जिससे कि काफी संख्या में उपयुक्त (fit) व्यक्तियों का जन्म हो सके। परन्तु हम यह बताने में असमर्थ हैं कि कौन लोग उपयुक्त होंगे। इस विचार में आवश्यक रूप से यह बात भी छिपी है कि समाज में बढ़ी संख्या में अनुपयुक्त (unfit) व्यक्ति भी उपस्थित हैं—यह समस्या केवल ऐसा कहने से ही हल नहीं हो जाती। क्या यह प्रवरणवादी (selectionists) युद्ध के लिये अधिक संख्या में उपयुक्त व्यक्तियों की कामना करते हैं? इसके अतिरिक्त, उद्योगपति इसलिए अधिक जनसंख्या की कामना करते हैं जिससे कि मजदूरों की हमेशा अधिकता रहे—मजदूरी (wages) कम होती जाए और लाभ बढ़ते जाएँ। इसके अतिरिक्त मिलिटरीवादी (militarist) इसलिए जनसंख्या की वृद्धि की कामना करते हैं जिससे कि साम्राज्य बढ़ाने की आवश्यकता हमेशा अनुभव की जाए और बराबर युद्ध करते रहने का बहाना मिल सके। दूसरी ओर धर्मशास्त्री इसलिए जनसंख्या की वृद्धि की कामना करते हैं जिससे अधिक से अधिक चर्च और मन्दिरों की स्थापना हो सके और उन्हें अधिक से अधिक भेंट (offerings) प्राप्त हों।

इस प्रकार की अन्य आपत्तियाँ भी इस परीक्षण के विरुद्ध की जा सकती हैं।

(२) **स्वास्थ्य और दीर्घायु (Health and Longevity)** :—यह कहा गया है कि औसत आयु अवधि ही वास्तव में इस बात का द्योतक है कि संसार प्रगति कर रहा है या नहीं। परन्तु प्रश्न यह है : यदि व्यक्ति अधिक दिनों तक—परन्तु दुर्भाग्य से घिरे—जीवित रहते हैं, तो क्या यह प्रगति है? क्या छोटा और गौरवपूर्ण (heroic) जीवन लम्बे और दु:खी जीवन से अच्छा नहीं? इस प्रकार, हम

मैडिकल विद्वानों की इस बात से सहमत नहीं हो सकते कि दीर्घायु ही सब कुछ है और हमें अन्य कसौटियाँ (tests) छोड़ देनी चाहिए। यदि हम अच्छे स्वास्थ्य को ही प्रगति का परीक्षण मान लें तो यह भी समस्या उठ खड़ी होती है कि मूढ़ और पागल व्यक्ति भी, कम से कम शारीरिक अर्थ में खूब स्वस्थ होते हैं।

(३) **सम्पत्ति (Wealth)** :—कुछ लोगों का कहना है कि सम्पत्ति का परीक्षण ही यह बता सकता है कि प्रगति हो रही है या नहीं। यदि सम्पत्ति का एक परीक्षण है तो हम उसको नाप सकते हैं क्योंकि हम इस बात का बहुत कुछ पता लगा सकते हैं कि एक समय में किस समुदाय के पास कितनी भौतिक (physical) सम्पत्ति है। इसके अतिरिक्त, इस बात पर किसी को कोई संदेह नहीं हो सकता कि पिछले समय से सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में बढ़ती रही है; संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति इस समय पहले से कहीं अधिक है। परन्तु इस सम्बन्ध में भी कुछ आपत्तियाँ हैं।

पहले, यह 'सम्पूर्ण सम्पत्ति' का विचार ही निरर्थक है जहाँ तक कुछ विशेष व्यक्ति सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि धनी प्रतिदिन धनी हो रहे हैं और निर्धन दिन प्रतिदिन निर्धन हो रहे हैं। ऐसी स्थिति को, कम से कम निर्धन व्यक्ति तो, कभी भी प्रगति नहीं मान सकते।

दूसरे, बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि सम्पत्ति किसके पास रहती है। यदि पागल या सनकी या बदमाश व्यक्तियों के पास ही सम्पत्ति का अधिकतर भाग है, तो इस स्थिति को भी प्रगति नहीं कहा जा सकता है।

(४) **नीतियाँ (Morals)** :—वेदान्ती या आध्यात्मवादी (theologians) और नीतिज्ञ इसी बात पर बल देते हैं। उनका कहना है कि प्रगति का सबसे सफल और निश्चित परीक्षण नैतिकता ही है। वे जीवन की पवित्रता, न्याय, निस्वार्थ-भावना, ईमानदारी को ही प्रगति का मापदण्ड मानते हैं और वे प्रगति को वह सफलता बतलाते हैं जो इन क्षेत्रों में प्राप्त होती है।

परन्तु यहाँ भी अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। सबसे पहले, यदि भूमितल के सभी व्यक्ति कुछ बातों के सम्बन्ध में एकमत होते—जैसे कि कौन से नैतिक नियम हैं, क्या गौरवपूर्ण है, क्या पवित्र है, निःस्वार्थ भावना किसे कहते हैं, ईमानदारी क्या है—तब भी हमारे पास कुछ होता जिससे हम विशिष्ट कार्यों और धारणाओं को मापते। परन्तु, जैसा कि हम सब जानते हैं, इन विषयों पर भी असहमति है। बोर्नियो (Borneo) में सर का शिकार करने वाले अपने शत्रुओं के सरों का घर लाना—जब कभी वह ऐसा कर सकते हों— गौरवपूर्ण और नैतिक समझते हैं, परन्तु दूसरों के लिय यह कार्य निन्दनीय है। किसकी बात सही है ? कुछ लोग बहु-पति विवाह (polyandry) को नैतिक बताते हैं, दूसरे अनैतिक; ऐस्किमो में वृद्ध जनों को मार डालना नैतिक है, दूसरों के लिए अनैतिक। इसी प्रकार के हम अनेक

उदाहरण दे सकते हैं, जिसमें एक ही कार्य को कुछ लोग नैतिक और कुछ लोग अनैतिक कहते हैं।

दूसरे, जब हम कह सकते हैं कि समाज ही अनैतिकता के माप-दण्ड को निश्चित करता है, हम यह भी जानते हैं कि जितने समाज हैं उतने ही नैतिकता के भिन्न स्तर हैं। जब एक समाज इस बात की घोषणा करता है कि उसके स्तर (standards) ही अन्तिम और सही हैं, दूसरे समूह इस बात का विरोध करने के लिये उठ खड़े होते हैं।

यह चार परीक्षण—जनसंख्या, स्वास्थ्य और दीर्घायु, सम्पत्ति और नीतियाँ—पूर्णरूप से संतोषजनक नहीं हैं। इसी प्रकार, अन्य लेखकों द्वारा बताये गये परीक्षण भी सन्तोषजनक नहीं हैं। उदाहरण के लिये, हॉबहाउस (Hobhouse) ने कहा है कि समुदाय तभी प्रगति करता है जब कि वह निम्नलिखित चार बातों में उन्नति करता है: जनसंख्या; कार्य कुशलता; स्वतन्त्रता और पारस्परिक सेवा।* परन्तु इन मापदण्डों से भी हमें कोई सहायता नहीं मिलती है: दैनिक जीवन में कुशलता को कौन माप सकता है? फैक्टरी में तो इसे मापा जा सकता है। परन्तु कोर्टशिप (courtship) को कैसे मापा जायेगा? स्वतन्त्रता या पारस्परिक सेवा को कैसे मापा जा सकता है? इस प्रकार, प्रगति के लिए सभी परीक्षण, कसौटियाँ या आधार असन्तोषजनक सिद्ध होते हैं।

कुछ वर्ष पूर्व ई० टी० देवाइन (E. T. Devine) ने प्रगति के १४ परीक्षणों या कसौटियों (tests) का सुझाव दिया था।† वे परीक्षण निम्नलिखित हैं—

(१) प्राकृतिक साधनों की सुरक्षा (conservation) और सभी व्यक्तियों, न कि कुछ थोड़े से चतुर, व्यक्तियों, के लाभ और भलाई के लिये उसका अपेक्षाकृत अधिक उपयोग।

(२) अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, शारीरिक और मानसिक वंशानुक्रमण से उत्पन्न सन्तानों की संख्या में बढ़ती और दुर्बल मस्तिष्क या शराबी माता-पिता से उत्पन्न होने वाले नष्टधर्मी (degenerate) सन्तानों की संख्या में अपेक्षाकृत कमी।

(३) स्वास्थ्य के लिये अधिक अनुकूल पर्यावरण, और हानिप्रद मकानों, असन्तोषजनक सैनिटेशन और छूत के रोगों में कमी।

(४) स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन में बढ़ती और हानिप्रद मनोरंजन में कमी और नागरिक जीवन की थकाने वाली रफ्तार में कमी।

(५) स्वस्थ और सम्पन्न परिवारों और शिक्षित बच्चों की संख्या में बढ़ती

और ऐसे बच्चों की संख्या में कमी जिनकी माता, पिता के द्वारा अवहेलना की जाती है। उद्योग में बच्चों के साथ होने वाली ज्यादती में कमी।

(६) अपेक्षाकृत अधिक व्यक्तियों के लिये रचनात्मक कार्यों के अवसर। ऐसे व्यक्तियों की संख्या में बढ़ती जो कि अपने कार्य को ईमानदारी के साथ करते हैं, कामचोरी नहीं करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की संख्या में कमी जो अपने जीवन के मध्य काल में बेकार हो जाते हैं।

(७) उद्योग और व्यापार का अधिक प्रजातन्त्रीकरण (democratization) जिसमें उद्योग और व्यापार के नियन्त्रण में मजदूर, पूंजीपति, पब्लिक सभी की बात का महत्व हो और ऐसे मजदूर, कारीगर, मालिकों की संख्या में वृद्धि जो कि पहले दूसरों की, फिर अपनी, भलाई के लिये कार्य करें।

(८) दुर्घटनाओं, रोगों, वृद्धावस्था, मृत्यु और बेकारी के सामाजिक बीमा (social insurance) में वृद्धि।

(९) अपेक्षाकृत अधिक व्यक्तियों के जीवन स्तर में वृद्धि, जिसमें पौष्टिक भोजन, ताजगी लाने वाला मनोरंजन, रचनात्मक अवसर सम्मिलित हैं।

(१०) इस बात पर अपेक्षाकृत कम बल कि मैं सरकार से क्या प्राप्त कर सकता हूँ? और इस बात पर अधिक बल कि मैं सरकार के लिये क्या कर सकता हूँ?

(११) अच्छे संगीत, चित्रकारी, कविता, मूर्तिकला और अन्य कलाओं में अधिक रुचि।

(१२) व्यावसायिक (vocational), अव्यावसायिक (avocational) और जन-कल्याण शिक्षा का प्रसार।

(१३) अपेक्षाकृत अधिक व्यक्तियों की प्रकृति के आध्यात्मिक और धार्मिक पहलू का अपेक्षाकृत अधिक विकास।

(१४) जीवन के सहयोगात्मक ढंग में वृद्धि।

प्रगति पर एक आधुनिक दृष्टि (A Modern View of Progress)

प्रगति की दशायें (Conditions of progress):—लम्ले ने प्रगति की आठ दशायें बताई हैं।*

(१) जहाँ यह समझा जाता है कि संघर्ष का कोई वाँछित फल नहीं होगा, वहाँ परिवर्तन की सम्भावना कम रहती है। मनुष्य वहीं कार्य या संघर्ष करता है जहाँ उसे यह विश्वास होता है कि उसके प्रयास का कोई अच्छा फल होगा और

---

* Friedrick Lumley : *Principles of Sociology*, p. 409.

जहाँ वह जानता है कि वह कार्य करने, परिवर्तन करने, किसी वस्तु का निर्माण करने के लिये स्वतन्त्र है। यह प्रगति की एक दशा है।

(२) दूसरी दशा यह है कि लोगों को यह विश्वास होना चाहिए कि प्रगति सम्भव है। मनुष्यों ने चाहे अभी तक प्रगति न की हो और चाहे वह यह भी न जानते होंगे कि प्रगति किस प्रकार की जाये, फिर भी प्रगति की सम्भावना में अवश्य विश्वास होना चाहिए।

(३) इसकी तीसरी दशा यह है कि लोगों को यह विश्वास होना चाहिये कि प्रगति अनिवार्य (inevitable) नहीं है। यदि वह यह विश्वास कर लेंगे कि प्रगति तो हर हालत में होगी ही तो वे यह भी सोचेंगे कि फिर उसके लिये चिन्ता करने, संघर्ष करने, कष्ट सहने की क्या आवश्यकता है? यदि प्राकृतिक शक्ति इसको लायेगी ही, तो हम इसे स्वयं क्यों लाने का प्रयास करें?

(४) प्रगति की चौथी दशा मनुष्य के मस्तिष्क से भय का पूर्णरूप से विलीन होना है, विशेषकर अलौकिक (supernatural) शक्तियों को क्रुद्ध करने का भय नहीं होना चाहिए। इसी भय के कारण, सम्भवत: कोई प्रगति नहीं हो सकी है। प्रगति के लिए परीक्षण (experimentation) आवश्यक है और भय परीक्षण का विरोधी है।

(५) प्रगति की दूसरी दशा काफी मात्रा में भौतिक (material) पदार्थों का संग्रह है। समाज द्वारा उत्पन्न की गई निर्धनता को हम प्रगति नहीं कह सकते। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए अधिक से अधिक उपयोगी वस्तुयें (consumers-goods) आवश्यक हैं।

(६) प्रगति की छठी दशा सार्वभौमिक (universally) रूप से उन लोगों के लिए शिक्षा का अवसर है जो उससे लाभ उठा सकें।

(७) इसकी सातवीं दशा यह है कि इस भूमि तल पर आनुवंशिक रूप से दुर्गुणी लोगों (hereditary defectives) की संख्या में निरन्तर कमी होना। लम्ले का कहना है कि ऐसे व्यक्तियों पर समाज का धन व्यय होने से समाज के संग्रह किए हुए धन में कमी आ जाती है।

(८) अन्त में, संसार में सर्वत्र जाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। मनुष्य किस प्रकार आवश्यकतानुसार परीक्षण कर सकते हैं, जब कि वह दूसरे समाजों के मनुष्यों से नहीं मिल सकते और प्रगति के लिए आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त नहीं कर सकते? इसका अर्थ है भ्रमण, अनुभव बढ़ाने के लिए, परन्तु इसका अर्थ विज्ञान भी है, इसका अर्थ यह है कि संसार के हर पहलू का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जाए।

प्रगति के तत्व (Elements of progress)—हमने अभी प्रगति की कुछ दशायें बताई हैं जो कुछ हद तक तत्व भी हैं । हमें यहाँ इस बात पर बल देना है कि दशायें तत्वों को प्रभावित करती हैं और तत्व दशाओं को प्रभावित करते हैं। दशायें नये तत्वों को जन्म देती हैं और नये तत्व नयी दशाओं की उत्पत्ति में सहायक होते हैं।

ऐसा मालूम होता है कि वे सब विशेषतायें जो कि प्रगति के लिये बताई गई हैं—अच्छी जनसंख्या, स्वास्थ्य और दीर्घायु, सम्पत्ति, नैतिकता, कार्य-कुशलता स्वतन्त्रता आदि—प्रगति के तत्व भी हैं, कम से कम योरोप निवासियों के लिये तो हैं ही। प्रगति के सम्बन्ध में जब हम कोई विचार प्रस्तुत करें तो इन सब विशेषताओं को तो उसमें सम्मिलित करें ही, साथ में अन्य विशेषताओं की लें। इन विशेषताओं के प्रतिपालकों का दोष यह है कि उन्होंने अपने द्वारा बतलाई गई एक ही विशेषता को प्रगति का आधार माना है। सामाजिक प्रगति एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है और इसके अन्दर अनगिनती तत्व होने चाहिए, जिसमें से कुछ तत्वों की अभी खोज करनी है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रगति एक ऐसा तथ्य है जो कि एक काल से दूसरे काल में और एक स्थान से दूसरे स्थान में भिन्न होता है। जो बात एक व्यक्ति या समूह या समाज के दृष्टिकोण से प्रगति हो सकती है, वही बात दूसरे व्यक्ति या समूह या समाज के लिये अवनति हो सकती है। युद्ध के लड़ने की विधियों में होने वाली प्रगति मानवता (humanitarianism) और मानव जीवन की पवित्रता के विचार के विरुद्ध हैं। वाणिज्य और उद्योग में होने वाली उन्नति जागीरदारों के दृष्टिकोण से अवनति थी। रूसो (Rousseau) ने आधुनिक समय की संस्कृति की अपेक्षा असभ्यों (savages) की संस्कृति को श्रेष्ठ माना है। उसने असभ्य जीवन की सरलता को समाज की आदर्श स्थिति माना है। इसलिए, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, एक ही स्थिति किसी के लिये प्रगति, तो दूसरे के लिए अवनति हो सकती है। फ़ैरिस ने ठीक ही कहा है : "प्रगति की समस्या जब आधुनिक मस्तिष्कों के सामने रखी जाती है तब प्रगति के तथ्य को प्रदर्शित करने की कठिनाई अत्यन्त सत्य रूप धारण कर लेती है। यह प्रमाणित करना सम्भव हैं कि संसार अब अधिक जटिल हो गया है। यह प्रमाणित करना शायद ही सम्भव हो कि वह पहले से अच्छा हो गया है और यह प्रमाणित करना तो बिल्कुल असम्भव है कि यह आगे भी अच्छा ही होता रहेगा।*

---

* "The difficulty in demonstrating the fact of progress has

आधुनिक समाजशास्त्रियों ने लक्ष्य (end) पर विचार करना ही छोड़ दिया है। धीरे-धीरे हम यह सीख रहे हैं कि आवश्यक या पूर्वनिश्चित कोई एक लक्ष्य नहीं होता जिसकी ओर सम्पूर्ण संसार या समाज बढ़ता है। इसके स्थान में, एक नहीं, अनेक लक्ष्य होते हैं। प्रगति का अर्थ इन उपयोगी व लाभदायक लक्ष्यों की खोज में बढ़ना है; उन लक्ष्यों की खोज जो न निराश करेंगे, न नष्ट करेंगे। यह स्पष्ट हो ही गया है कि हम किसी ओर भी अकेले अलग व्यक्तियों के रूप में नहीं बढ़ सकते। हमें एक साथ आगे बढ़ना है, चाहे हमारा उत्थान हो या पतन, परिवर्तन ने हम सबको एक दूसरे का सदस्य बना दिया है। इसलिए, हमारे पास कुछ सामाजिक आदर्श हैं। प्रगति इन सामाजिक आदर्शों की प्राप्ति है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि प्रगति उस लक्ष्य की ओर बढ़ना है जिसकी प्राप्ति की कामना की जाती है; किसी भी वस्तु का उस दिशा में परिवर्तन जिसे अपेक्षाकृत अच्छा समझा जाता है।†

---

become very real as the problem is presented to modern minds. It is possible to prove that the world has become more complex. It is hardly possible to prove that it has become better and quite impossible to prove that it will continue to do so." Ellsworth Faris, quoted in Robert E. Park and Earnest W. Burgess; *An Introduction to the Science of Sociology*, p. 916.

† "The movement toward a goal the attainment of which is desired; a change in the direction of anything which is thought to be better."